



परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अमृत प्रवचन

(भाग-5)

परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
'बहिनश्री के वचनमृत' पर प्रवचन
(प्रवचन क्रमांक 121 से 150, वचनमृत 324 से 379)

: हिन्दी अनुवाद व सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

न्यौछावर राशि : 20.00 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)
अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
4. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,
ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,
कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. श्री परमागम प्रकाशन समिति
श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट
योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

भारत की भव्य वसुन्धरा अनादि से सन्तरत्नों की पवित्र भूमि रही है। यहाँ तीर्थकर परमात्मा, वीतरागी सन्त एवं ज्ञानी-धर्मात्मा होते रहे हैं। इस देश का सौराष्ट्र प्रान्त भी अध्यात्मप्रधान जैन धर्म के गगन मण्डल में चमकीले नक्षत्र श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्मयुगस्रष्टा आत्मज्ञसन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी और प्रशममूर्ति स्वानुभवविभूषित पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन जैसे असाधारण स्वानुभूतिप्रकाशक साधक धर्मात्माओं की भेंट प्रदान कर पुण्य भूमि बना है।

परम देवादिदेव चरम तीर्थकर पूज्य श्री महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि द्वारा प्रवाहित और गुरु-परम्परा से प्राप्त परम पावन अध्यात्मप्रवाह को भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने परमागम श्रीसमयसार आदि प्राभृत भाजनों में सूत्रबद्ध करके चिरंजीवी किया है। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने महाविदेहक्षेत्र में विराजमान शाश्वत् भगवन्त श्री सीमन्धरस्वामी के दर्शन एवं दिव्यध्वनि श्रवण का महान सौभाग्य भी प्राप्त किया था, जो इस पंचम काल की एक अविस्मरणीय घटना है। आचार्यश्री द्वारा प्रवाहित वीतरागी तत्त्वज्ञान के पुनीत अमृत का पान करके अन्तर के पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूति समृद्ध आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करके, जिन्होंने सौराष्ट्र, गुजरातसहित सम्पूर्ण देश तथा विदेशों में भी शुद्धात्मतत्त्व प्रमुख अध्यात्मविद्या का पवित्र आन्दोलन प्रसारित करके वर्तमान शताब्दी के भौतिक युग में दुःखी जीवों का उद्धार किया है - शाश्वत् शान्ति का मार्ग उपलब्ध कराया है - ऐसे जिनशासन प्रभावक, करुणामूर्ति, परमोपकारी, परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की शुद्धात्म-सुधारसमय मंगल पवित्रता, पुरुषार्थ से चमत्कृत ध्येयनिष्ठ सहज वैराग्य, उत्तम बाल ब्रह्मचर्यसहित पवित्र जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्ग-दर्शक सदुपदेश तथा अन्य अनेकानेक उपकारों का वर्णन कितना भी संक्षिप्तरूप से किया जाये तो भी अशक्य है।

आपश्री के विविध उपकारों में से एक महान उपकार यह है कि आपने पूज्य बहिनश्री की पहिचान जगत् को प्रदान की है। पूज्य बहिनश्री के परिणमन में से निकले हुए शब्द अर्थात् 'बहिनश्री के वचनामृत'; इन वचनामृतों में अनुभव का सार, समयसार का सार, समस्त शास्त्रों का सार आ गया है। सादी भाषा में परम सत्य प्रकाशित हुआ है। जैन-जैनेतर सबको समझ में आ सकने योग्य अध्यात्ममार्ग का खजाना वचनामृत में है। जगत् का भाग्य है कि यह अलौकिक पुस्तक प्रसिद्ध हुई।

विशिष्ट ज्ञानविभूषित स्वानुभूतिपरिणत बहिनश्री चम्पाबेन की पवित्र मुद्रा ही मानो साधकदशा का मूर्तरूप हो तथा सम्यक् मोक्षमार्ग का मूक उपदेश प्रदान कर रही हो! शास्त्रोपम गम्भीर, तथापि सादी सरल भाषा में उनके वचनामृत विविध कोटि के सर्व जीवों को अति उपकारक होते हैं। वे शुद्धात्मरूप द्रव्यसामान्य की मुख्यतापूर्वक, अनेकान्त सुसंगत द्रव्य-पर्यायस्वरूप निज आत्मतत्त्व को हस्तकमलवत् दर्शाते हैं और साधक जीवों की अटपटी अन्तर परिणति की अविरुद्धरूप से स्पष्ट समझ प्रदान करते हैं।

कृपासागर पूज्य गुरुदेवश्री भी सभा में पूज्य बहिनश्री की स्वानुभवविभूषित अन्तर परिणति; अनेक भवसम्बन्धी धर्म विषयक असाधारण जातिस्मरणज्ञान और वचनामृत की विशिष्टता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। पूज्य गुरुदेवश्री की वह प्रसन्न मुद्रा हजारों श्रोताओं के स्मृति-पटल में स्पष्टरूप से आज भी तैरती है।

पूज्य बहिनश्री गुणगम्भीर, देव-गुरु के परम भक्त, अन्तरंग में अत्यन्त महान और पवित्र तथा बाह्य में अत्यन्त निर्लेप थीं। उनकी निर्विकल्प आनन्दमय अद्भुतदशा परखकर पूज्य गुरुदेवश्री ने उन्हें 'भगवती', 'जगदम्बा' जैसे असाधारण विशेषण प्रदान किये थे।

जैनधर्म की गीता अर्थात् 'बहिनश्री के वचनामृत' और मुमुक्षु जगत के लिये अमृत की बेल! पूज्य बहिनश्री लघुवय से ही उग्र पुरुषार्थी थी। इस भव में ही आत्मप्राप्ति कर लेने योग्य है - ऐसी तीव्र धगश, खटक बचपन से ही थी। सतत् पुरुषार्थ, गुरु की महिमा, मुमुक्षु की भूमिका, भेदज्ञान, ज्ञानी पुरुष की अन्तर्बाह्यदशा, आत्मा प्राप्त करने की विधि, मुनिदशा का वर्णन, आदि वचनामृत के बोल में दिखता है।

इस वचनामृत में 432 बोल हैं। उन पर पूज्य गुरुदेवश्री के 181 प्रवचन हुए हैं। उन प्रवचनों को अक्षरशः छह भाग में प्रकाशित किये जायेंगे। उनमें से यह पाँचवाँ भाग है। पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. टेप प्रवचन सुनते समय शब्दशः वाचन पद्धति मुमुक्षुओं को अत्यधिक अनुकूल और सुगम हुई है; इस कारण यह शब्दशः प्रवचन-ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए, हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

बहिनश्री के वचनामृत में समाविष्ट अनेक आध्यात्मिक विषयों पर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अद्भुत छनावट की है-तलस्पर्शी स्पष्टीकरण किया है, उसे पढ़कर आश्चर्य होता है कि आहा...हा...! ऐसे गम्भीर भाव भरे हैं! यह वचनामृत अमृत है और पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन भी अमृत हैं; इसलिए इस प्रवचन ग्रन्थ का नाम 'अमृत प्रवचन' रखा गया है। एक ओर दिव्य-देशना का प्रपात बहानेवाला तीर्थकर का द्रव्य और दूसरी ओर दिव्य-देशना को ग्रहण करनेवाला गणधर का द्रव्य! कैसा भव्य सुयोग! इस दिव्य-देशना का मूल्यांकन किस प्रकार हो सकता है!! परम पूज्य गुरुदेवश्री ने यह अमृतसागर प्रवचनों की भेंट प्रदान करके समस्त मुमुक्षुओं को निहाल कर दिया है।

‘बहिनश्री के वचनामृत’ ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का बारम्बार अमृतपान कर लेने योग्य है। एक-एक बोल में अर्थ गम्भीरता, तत्त्वविषय की गहरायी, तलस्पर्शी अनुभव-पूर्ण मार्गदर्शन, जगत के जीवों के प्रति करुणापूर्ण पवित्रता की भावना-इत्यादि अनेकानेक गुणों का दर्शन कराते हुए ये प्रवचन, मुमुक्षु जीव को आत्महित में निश्चित ही निमित्तभूत होंगे।

इन प्रवचनों को शब्दशः लिखकर गुजराती भाषा में तैयार करने हेतु श्री निलेशभाई जैन, भावनगर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद, साथ ही सी.डी. प्रवचन से मिलान पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) द्वारा किया गया है। इस हिन्दी प्रकाशन में व्यक्तिगत नाम एवं सम्बोधन आदि भी यथावत् रखे गये हैं। जहाँ आवाज की अस्पष्टता से वाक्य समझ में नहीं आया, वहाँ करके स्थान छोड़ दिया गया है। ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए श्री दिनेश जैन, देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। इसके अलावा सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में ‘बहिनश्री के वचनामृत’ के अमृत प्रवचनों का स्वाध्याय करके सभी आत्मार्थी परम शान्ति को प्राप्त हों, ऐसी भावना है।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी (संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव ।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था ।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली । दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा ।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया । सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है । इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ । भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा । तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है । इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी । अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया ।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर

दिया और स्वयं घोषित किया कि अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल 'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यो के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वी सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी

सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त,

निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :-

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तों!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तों!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तों!!!



अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
१२१	१६-१०-१९७८	३२४-३२६	१
१२२	१७-१०-१९७८	३२७-३२९	१५
१२३	१८-१०-१९७८	३२९-३३०	२९
१२४	१९-१०-१९७८	३३१-३३३	४३
१२५	२०-१०-१९७८	३३४-३३६	५७
१२६	२१-१०-१९७८	३३७-३३८	७३
१२७	२२-१०-१९७८	३३८-३४०	८९
१२८	२३-१०-१९७८	३४१-३४२	१०३
१२९	२४-१०-१९७८	३४३-३४४	११८
१३०	२५-१०-१९७८	३४४-३४५	१३४
१३१	२६-१०-१९७८	३४५-३४८	१४८
१३२	२७-१०-१९७८	३४८-३५०	१६२
१३३	२८-१०-१९७८	३५०	१७७
१३४	२९-१०-१९७८	३५०-३५२	१९३
१३५	३०-१०-१९७८	३५२-३५३	२०८
१३६	३१-१०-१९७८	३५३-३५४	२२३
१३७	०१-११-१९७८	३५५-३५६	२३९

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
१३८	०२-११-१९७८	३५७-३५९	२५४
१३९	०३-११-१९७८	३६०-३६१	२७०
१४०	०४-११-१९७८	३६२-३६३	२८५
१४१	०५-११-१९७८	३६४-३६६	३०२
१४२	०६-११-१९७८	३६६-३६७	३१७
१४३	०७-११-१९७८	३६८-३७०	३३४
१४४	०८-११-१९७८	३७०-३७२	३५०
१४५	०९-११-१९७८	३७३-३७५	३६४
१४६	१०-११-१९७८	३७५	३७८
१४७	११-११-१९७८	३७६	३९३
१४८	१२-११-१९७८	३७७-३७८	४०७
१४९	१३-११-१९७८	३७८	४२२
१५०	१४-११-१९७८	३७८-३७९	४३६

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का अपार उपकार

(पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के भक्तिभीने उद्गार)

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थकर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महामंगलकारी, आनंद उपजानेवाली थी। ऐसी वाणी का श्रवण जिनको हुआ वे सब भाग्यशाली हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी और पूज्य गुरुदेवश्री तो इस काल के एक अचम्भा थे। बाहरी अभ्यास तो जीव को अनादि से है परन्तु चैतन्य का अभ्यास तो इस काल में पूज्य गुरुदेवश्री ने बहुत सालों तक करवाया है। उनकी वाणी रसात्मक-कसदार थी। उनके अन्तर में श्रुत की धारा और उनकी वाणी में भी श्रुत की गंगा बहती थी। उनकी महा आश्चर्यकारी मुखमुद्रा-शान्तरस बरसाती, उनके नयन उपशमरस भरपूर। अहो! गुरुदेवश्री तो भरत (क्षेत्र) के सौभाग्य थे, भरतक्षेत्र भाग्यशाली कि पूज्य गुरुदेव विदेह से सीधे यहाँ पधारे। सौराष्ट्र भाग्यशाली, जैनसमाज महाभाग्यशाली। पूज्य गुरुदेवश्री ने सच्चा जिनशासन स्वयं ने प्रगट किया। प्रसिद्धरूप से समझाया। और ऐसा काल तो कभी ही आता है। अहो! इस सोनगढ़ में तो 45-45 साल तक मूसलधार बारिश की माफ़िक मिथ्यात्व के जमे हुए चिकने सेवार जैसे पापभाव को उखेड़ने के लिये तेज हवा की माफ़िक पूज्य गुरुदेवश्री ने सम्यक्श्रुत की प्रभावना की थी। उनकी कृपा हमलोगों पर सदैव रहती थी। हम तो उनके दास हैं, अरे! दास तो क्या? दासानुदास ही हैं। 3.



अहो! पूज्य गुरुदेवश्री ने तो समग्र भरत(क्षेत्र) को जागृत कर दिया है। उनका तो इस क्षेत्र के सर्व जीवों पर अमाप उपकार है। अनन्त-अनन्त उपकार है, पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अनादि मंगलरूप तीर्थकर का द्रव्य था। इतना ही नहीं उन्हें वाणी का अद्भुत-अनुपम और अपूर्व योग था। पूज्य गुरुदेवश्री अनुपम द्रव्य थे। अपूर्वता के दातार-उनकी वाणी सुननेवाले पात्र जीवों को अन्तर से अपूर्वता भासित हुए बिना नहीं रहती। उपादान सबका अपना-अपना लेकिन उनका निमित्तत्व प्रबल से प्रबल था। उन्हें सुननेवाले को अपूर्वता भासित हुए बिना रहे ही नहीं। उनकी वाणी में ऐसा अतिशय था कि उन्हें सुननेवाला कोई भी जीव कभी भी नीरस होकर उनका वक्तव्य सुनते हुए छोड़ दे ऐसा नहीं बनता। ऐसा परम कल्याणकारी मूसलधार उपदेश था। 4.



नमः श्री सिद्धेभ्यः

अमृत प्रवचन

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर धारावाहिक प्रवचन)

भाग-५

आसोज शुक्ल-१५, सोमवार, दिनाङ्क १६-१०-१९७८
वचनामृत-३२४ से ३२६ प्रवचन-१२१

जैसे एक रत्न का पर्वत हो और एक रत्न का कण हो, वहाँ कण तो नमूनेरूप है, पर्वत का प्रकाश और उसका मूल्य अत्यधिक होता है; उसी प्रकार केवलज्ञान की महिमा श्रुतज्ञान की अपेक्षा अत्यधिक है। एक समय में सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को सम्पूर्णरूप से जाननेवाले केवलज्ञान में और अल्प सामर्थ्यवाले श्रुतज्ञान में—भले ही वह अन्तर्मुहूर्त में सर्व श्रुत फेरनेवाले श्रुतकेवली का श्रुतज्ञान हो तथापि—बहुत बड़ा अन्तर है। जहाँ ज्ञान अनन्त किरणों से प्रकाशित हो उठा, जहाँ चैतन्य की चमत्कारिक ऋद्धि पूर्ण प्रगट हो गयी—ऐसे पूर्ण क्षायिकज्ञान में और खण्डात्मक क्षायोपशमिकज्ञान में अनन्तगुना अन्तर है ॥३२४॥

३२४। जैसे एक रत्न का पर्वत हो... दृष्टान्त। और एक रत्न का कण हो, वहाँ कण तो नमूनेरूप है, पर्वत का प्रकाश और उसका मूल्य अत्यधिक होता है;... कण

की अपेक्षा पर्वत का प्रकाश और उसकी कीमत बहुत अधिक होती है। उसी प्रकार केवलज्ञान की महिमा श्रुतज्ञान की अपेक्षा अत्यधिक है। आहाहा! केवलज्ञान एक समय में परिपूर्ण ज्ञान की पर्यायरूप से परिणमता है, वह तो बड़ा पर्वत है। आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में केवलज्ञान की पर्याय परिपूर्ण तीन काल, तीन लोक को देखती है। आहाहा! उसी प्रकार केवलज्ञान की महिमा श्रुतज्ञान की अपेक्षा अत्यधिक है। एक समय में सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को... सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र—लोक का अन्त नहीं, उसे भी, सर्व काल—आदि नहीं, अन्त नहीं—उसे भी, आहाहा! सर्व भाव—अनन्त गुण और अनन्त पर्याय। आहाहा! उन्हें सम्पूर्णरूप से जाननेवाले केवलज्ञान में और अल्प सामर्थ्यवाले... श्रुतज्ञान, भले कहते हैं कि अन्तर्मुहूर्त में सब ज्ञान (द्वादशांग) पारायण कर जाये, ऐसी ताकत होती है। आहाहा! वह ताकत कितनी! क्या कहा देखा?

अल्प सामर्थ्यवाले श्रुतज्ञान में— भले ही वह अन्तर्मुहूर्त में सर्व श्रुत फेरनेवाले... आहाहा! अन्तर्मुहूर्त—४८ मिनट में, आहाहा! श्रुतकेवली बारह अंग (फेर जाते हैं)। भगवान एक समय में तीन काल-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जाने और यह अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग अर्थात् सर्व श्रुत को फेरना (पारायण करना) जाने। आहाहा! यहाँ तो अन्तर्मुहूर्त में, पच्चीस-पचास गाथा १००, २००, ५०० गाथा, (फेर जाये)। आहाहा! परन्तु उस ज्ञान का विकास बारह अंग का भी हो और अन्तर्मुहूर्त में वह अन्दर में फेर जाए। आहाहा! अजब बात है। भाई! साधारण को बात (जँचे नहीं)। यह ताकत है। आहाहा!

सर्व श्रुत फेरनेवाले श्रुतकेवली का श्रुतज्ञान हो... द्रव्यश्रुत केवली, भावश्रुत तो कहा अभी यहाँ। जो कोई इस भावश्रुत से, चैतन्य के भावश्रुत के प्रकाश के भाव से, जो त्रिकाली प्रकाशित हुआ प्रभु, उसे जो जानता है, वह निश्चय से श्रुतकेवली है अर्थात् जैसे केवल आत्मा को भगवान ने जाना, वैसे इस श्रुतकेवली ने केवल आत्मा (जाना है)। आहाहा! अरे प्रभु! यह कितना आत्मा! जिसके अनन्त-अनन्त गुण और जिसकी अनन्त पर्यायें, जो गुण और पर्याय का छोर नहीं कि यह अन्तिम गुण और यह अन्तिम पर्याय। आहाहा! ऐसे गुण और पर्याय को अन्तर्मुहूर्त में द्रव्यश्रुतकेवली फेर जाते हैं। आहाहा! यह भी आश्चर्यकारी बात लगती है। आहा..! केवलज्ञानी एक समय.. बापू! उसका स्वभाव है। आहाहा! वह स्वभाव परिपूर्ण जहाँ प्रगट हुआ, वह तो तीन काल के द्रव्य-क्षेत्र

—काल-भाव को पूर्ण जाने और श्रुतकेवली अन्तर्मुहूर्त में उस द्रव्यश्रुत के जितने प्रकार हैं... आहाहा! उन्हें एकदम फेर जाए, तथापि वह केवलज्ञान के समक्ष तो कण है। आहाहा!

सर्व श्रुत फेरनेवाले श्रुतकेवली का श्रुतज्ञान हो तथापि—बहुत बड़ा अन्तर है। आहाहा! यह आता है न? स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में। सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञान की पर्याय को; अपनी पर्याय प्रगटी, हों! द्रव्यश्रुत तो एक ओर (रहा), उसे पामर मानता है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा। आहाहा! कहाँ मेरी ज्ञानपर्याय और कहाँ परमात्मा केवलज्ञान की पर्याय! ओहो..हो..! महापर्वत जितना प्रकाश और यह एक कण का प्रकाश। आहाहा! वस्तुरूप से प्रभुता और परमेश्वरपना मानने पर भी धर्मी, पर्याय को पामररूप से मानता है। आहाहा!

जिसका—प्रभु का अकेला ज्ञानस्वभाव ही है, वह ज्ञान चैतन्यस्वभाव, उसका जानना-देखना ऐसा त्रिकाली स्वभाव है। उसे जिसने अपने को और पर को... उसमें कहा नहीं? कि जो तीन काल और पर को न जाने तो स्वयं एक ही द्रव्य त्रिकाली है, उसे भी नहीं जाने। आहाहा! क्या कहते हैं? ४८-४९ (गाथा प्रवचनसार) भगवान आत्मा एक स्व है, अनादि-अनन्त है, वह एक को जाने तो उसमें तीन काल आ गये। आहाहा! ऐसे अनादि-अनन्त है। उसने आत्मा को जाना न? तो आत्मा त्रिकाली है, उसका ज्ञान हुआ न? त्रिकाल का हुआ या नहीं? कि वर्तमान है, उसका हुआ? आहाहा! ऐसी ताकत है। मूल वस्तु की पूरी शक्ति और उसकी दशा और उसका प्रमाण और यह कोई अलौकिक बातें हैं! आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं। श्रुतज्ञान हो, तथापि—बहुत बड़ा अन्तर है। आहाहा! भले भावश्रुतज्ञान से आत्मा को जाना, इस अपेक्षा से तो आत्मा को केवली ने जाना और यह जाना, इस अपेक्षा से तो वे केवली हैं, हम श्रुतकेवली हैं। आहाहा! परन्तु भावश्रुत का जो ज्ञान अपार, उसका जो ज्ञान है, वह भी द्रव्यश्रुत को अन्तर्मुहूर्त में फेर जाये तो भी वह केवलज्ञान की पर्याय के समक्ष, केवल (ज्ञान) के प्रकाश के पुंज के पर्वत के समक्ष वह श्रुतज्ञान एक कण है। आहाहा! समझ में आया?

अपना स्व-आत्मा है.. यह तो कहा ३३ (गाथा) में प्रवचनसार में। भगवान ने आत्मा को अक्रम से एक साथ जाना। हमने क्रम-क्रम से परन्तु एक साथ जाना, पूरा। ऐसा जो भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का पर्वत, ज्ञान पर्वत, जो हिलाने से हिले नहीं पर्याय में,

ऐसा ध्रुव। आहाहा! उसे हमने जाना, पंचम काल के यह तो अभी हजार वर्ष पहले हुए अमृतचन्द्राचार्य, वे ऐसा कहते हैं, हम श्रुतकेवली हैं। आहाहा! इस अपेक्षा से। आत्मा का जैसा पूर्ण स्वरूप है, केवलज्ञान तो एक गुण की एक पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड ज्ञान और ऐसे अनन्त गुण, अनन्त पर्याय का पिण्ड, ऐसा जो आत्मा प्रभु, उसे हमने जाना तो हम भी श्रुतकेवली हैं। अब उस समय तो एक अंग का भी ज्ञान नहीं था – द्रव्यश्रुत। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य को भी आचारांग के एक अंग के अमुक भाग का ज्ञान था। आहाहा! तथापि उनके हजार वर्ष बाद अमृतचन्द्राचार्य भी... आहाहा! इनकी टीका तो गजब है! आहाहा! जिनके ज्ञान की क्षयोपशम की शक्ति का विकास.. आहाहा! वे ऐसा कहें, हमने प्रभु आत्मा-स्वरूप जो चैतन्यद्रव्य, उसे हमने ज्ञान की पर्याय से जाना और भगवान ने केवलज्ञान से जाना, इस अपेक्षा से तो हम श्रुतकेवली हैं, कहते हैं। वे (भगवान तो) केवली हैं। आहाहा! द्रव्यश्रुत तो एक अंग का अमुक भाग था। समझ में आया? आहाहा!

इस स्वरूप से अन्दर... आहाहा! यहाँ तो द्रव्यश्रुत को अन्तर्मुहूर्त में फेर जाए, आहाहा! भावश्रुत से आत्मा को जाना हो और द्रव्यश्रुत पूर्ण जाना हो, उसे अन्तर्मुहूर्त में फेर ले। गजब बातें, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो घण्टे भर में हजार, दो हजार, पन्द्रह सौ श्लोक फेरे जाएँ। स्वाध्याय करते हुए वहाँ सम्प्रदाय में। पाँच, छह हजार श्लोक कण्ठस्थ थे। रात्रि में घण्टे, डेढ़ दो घण्टे स्वाध्याय हो। पन्द्रह सौ, हजार पन्द्रह सौ श्लोक फेरे जाएँ। अब यहाँ कहते हैं कि अन्तर्मुहूर्त में बारह श्रुत फेर ले। गजब बात है, तो भी वह मानता है कि मेरी पर्याय केवलज्ञान की अपेक्षा से कण है। आहाहा!

जहाँ ज्ञान अनन्त किरणों से प्रकाशित हो उठा,... आहाहा! अब यह अभी तीन दिन पहले समाचार पत्र में चर्चा आयी है। कितने ही मुमुक्षु ऐसा कहते हैं कि आत्मा को जाने, वह निश्चय श्रुतकेवली है, यह बात मिथ्या है, श्रुतकेवली अभी होते नहीं। आहाहा! तब श्रुतसागर ऐसा कहते हैं कि अभी पंचम काल में शुभयोग ही होता है। अरे प्रभु! क्या करता है? भाई! सन्त ये श्रुतकेवली हुए, आत्मा को जाना, वह शुभयोग से ज्ञात हुआ? आहाहा! वह शुभयोग था वहाँ? वह चैतन्य के प्रकाश के नूर के तेज में भगवान ने उसे जाना। आहाहा! उसे शुभयोग से भिन्न जाना। आहाहा! अरे! कैसी हल्की दशा कर डाली!

अभी मुनिपना और समकित और सब शुभयोग में सब होता है, बस। क्योंकि शुभयोग से निर्जरा होती है अनिवृत्तिकरण में; इसलिए वर्तमान में जहाँ शुभयोग हो, उससे संवर-निर्जरा होती है (ऐसा वे लोग कहते हैं)। अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि द्रव्यश्रुत को अन्तर्मुहूर्त में फेर जाए, बारह अंग। आहाहा! कितनी याद शक्ति! यहाँ तो थोड़ा होवे तो उसे हो जाता है कि हमें तो, ओहो..हो..! कितना धारण किया और कितना हमें आता है। अरे! प्रभु! सुन न भाई! आहाहा! यह तो अन्दर में भावश्रुत हुआ है, उससे जाना है आत्मा, उसे द्रव्यश्रुत का इतना हो... आहाहा! वह अन्तर्मुहूर्त में फेर ले। गजब बात है। जँचना कठिन पड़े। छद्मस्थ है, अन्तर्मुहूर्त में (फेर ले)? परन्तु बापू! तुझे खबर नहीं ज्ञान की—केवल (ज्ञान) की पर्याय तीन काल, तीन लोक को जाने। वह अब श्रुतज्ञान की पर्याय में द्रव्यश्रुत जो हुआ... आहाहा! वह अन्तर्मुहूर्त में (फेर जाए)। (केवली) एक समय में तीन काल जाने। यहाँ अन्तर्मुहूर्त में श्रुत फेर ले। बराबर है। आहाहा!

तथापि—बहुत बड़ा अन्तर है। जहाँ ज्ञान अनन्त किरणों से प्रकाशित हो उठा,... आहाहा! जहाँ चैतन्य की चमत्कारिक ऋद्धि पूर्ण प्रगट हो गयी... आहाहा! जिसकी पर्याय में चैतन्य ऋद्धि (प्रगट हुई), पर्याय में, हों! पूर्ण प्रगट हो गयी। आहाहा! तथापि वहाँ वस्तु में तो पूर्णपना ही पड़ा है। आहाहा! पूर्ण प्रगट हुई, इसलिए अन्दर शक्ति में कुछ हीन रही है, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या यह वस्तु! ऐसी भाषा आयी न? चमत्कारिक ऋद्धि पूर्ण प्रगट हो गयी, पूर्ण प्रगट हो गयी, पर्याय में। तथापि वस्तु गुण और द्रव्य है, वह तो पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. चमत्कारिक चीज़ है। आहाहा! वह साधारण तर्क में, विकल्प में बैठे, ऐसी चीज़ नहीं है, बापू! आहाहा! वह तो द्रव्य का स्वभाव ही कोई ऐसा है। आहाहा! कि ऐसी पूर्ण पर्याय प्रगट हुई, यद्यपि उसे श्रुत के साथ मिलाना है, तथापि वह पूर्ण पर्याय प्रगट हुई परन्तु अन्दर वस्तु में पूर्णता में से आयी, इसलिए पूर्ण में कुछ कमी हो गयी, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! क्या यह बात! कठिन काम है, भाई! आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि ही यह सहन करता है, इसे इस प्रकार से स्वीकार करता है। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में, चेतनजी! बारह अंग को फेरे, यह क्या? आहाहा! भाई! जिसे बारह अंग का ज्ञान है, उस ज्ञान की पर्याय की इतनी ताकत है। भगवान जब एक समय में सब जाने, तो यह एक

अन्तर्मुहूर्त में सब फेरे। आहाहा! इसमें क्या है? आहाहा! ऐसा भगवान चैतन्य पर्वत जिसे पर्याय में प्रगट हुआ और इस श्रुत को अन्तर्मुहूर्त में फेरा, तब भी दोनों में बड़ा अनन्त अन्तर है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष-परोक्ष का भेद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। प्रत्यक्ष, परोक्ष का नहीं। इसमें शक्ति कम और उसकी शक्ति अधिक, ऐसा अन्तर है। आहाहा! क्योंकि मात्र अन्तर्मुहूर्त में फेर सकता है परन्तु एक समय में तीन काल जान सकता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या प्रभु की लीला। आहाहा! यह चैतन्य-चमत्कारिक पदार्थ प्रभु, आहाहा! उसे जिसने जाना और जानने पर भी द्रव्यश्रुत में भी बहुत ज्ञान प्रगट हुआ... आहाहा! तथापि उस द्रव्यश्रुत को अन्तर्मुहूर्त में फेरे तो ऐसा लगे कि यह तो ऐसे-ऐसे फेर जाता है। अरे! प्रभु! यह बात ही कोई अलग है। आहाहा!

द्रव्य का स्वभाव तो, गुण तो अचिन्त्य चमत्कारिक है परन्तु पर्याय का-श्रुतज्ञान की पर्याय में द्रव्यश्रुत हो, वह ऐसे साधारण तर्क में आवे परन्तु एक समय अन्तर असंख्य समय है और अन्तर्मुहूर्त में असंख्य समय है और द्रव्यश्रुत तो बहुत है। आहाहा! एक आचारांग के अठारह हजार पद, अठारह हजार पद, एक पद में इक्यावन करोड़ अधिक श्लोक—ऐसे-ऐसे दोगुने सूयगडांग, दोगुने अठारह हजार, छत्तीस हजार, बहत्तर हजार, एक सौ चौवालीस हजार, आहाहा! दो लाख अट्ठासी हजार, जाओ डबल। ओहो..हो..! और उस बारह अंग में भी वापस चौदह पूर्व और उसके उपरान्त भाग वापस। आहाहा!

जब केवलज्ञान पर्याय तीन काल, तीन (लोक जाने) बापू! यह तो द्रव्य की और पर्याय की माहात्म्य की बातें हैं। उसमें राग का माहात्म्य है नहीं। आहाहा! जिसका—छद्मस्थ का अल्पज्ञान और द्रव्यश्रुत का अपार भाग.. आहाहा! तर्क में साधारण को जँचे नहीं। इतना एक असंख्य समय में (जाने)। भगवान एक समय में जाने, यह असंख्य समय में द्रव्यश्रुत को फेरे। कम जाने वह तो ठीक, परन्तु जाने इसका अर्थ क्या हुआ, प्रभु! आहाहा!

तीन काल, तीन लोक एक द्रव्य के गुण के, पर्याय के अपने, भाई! यह क्या है! आहाहा! वह पर्याय बैठना अन्तर में, आहाहा! यह तो कहा न? 'जो जाणदि अरहंतं

दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहि' (प्रवचनसार, गाथा ८०) अरहन्त की पर्याय पूर्ण है, ऐसा जाना और जानकर आत्मा के साथ मिलान करने जाता है, वहाँ पर्याय में गुण मिलाता है और गुण को द्रव्य में अभेद करता है। आहाहा! वहाँ उसे आत्मा का ज्ञान होता है, सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! विकल्प से यह बात बैठ सके, ऐसी नहीं है।

यह स्वभाव ही भगवान आत्मा का एक समय में तीन काल को जानने का है। शक्ति में तो तीन काल, तीन लोक को जाने, ऐसी शक्ति तो त्रिकाल है परन्तु यहाँ तो प्रगट में तीन काल, तीन लोक को जाने। आहाहा! एक समय में की दशा। वह तो गुण है। ऐसे केवलज्ञान के सामने भी भावश्रुत केवली निश्चय से हो और द्रव्यश्रुत में इतना ज्ञान बारह अंग का हो। आहाहा! वह फेरे, इतनी ताकत हो धारण की... आहाहा! तो भी उस पर्वत में पर्वत के पास जैसे कण (हो), वैसे केवलज्ञान के समक्ष कण है। आहाहा! अरे यह कौन है? प्रभु! आहाहा!

जिसे चैतन्य के चमत्कार प्रगट हुए, आहाहा! उस चमत्कार की क्या बात करना! आहाहा! कहते हैं कि भले वह प्रगट हुआ और द्रव्यश्रुत हुआ परन्तु वह अभी केवलज्ञान के समक्ष तो अनन्तवें भाग पामर है, कण है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसा उपदेश। यह लोगों को अभी चढ़ा दिया है, व्रत करो और अपवास करो और भक्ति करो और यात्रा करो। अरे! भगवान! यह सब बातें तो राग की क्रिया है, प्रभु! तुझे खबर नहीं है। तेरे द्रव्य और गुण-पर्याय की ताकत कितनी है, उस ताकत की तुझे खबर नहीं है। वह राग की ताकत तुझे—आत्मा को जनवा दे, ऐसी ताकत राग में नहीं है। आहाहा! लाख उपवास कर और करोड़ कर और यात्राएँ अरब कर तथा करोड़-अरब रुपये खर्च करे परन्तु वह राग का कण है, उसमें ताकत नहीं कि आत्मा को जान सके। आहाहा! छोटाभाई! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! यह तो अन्दर भावश्रुतज्ञान की ताकत है कि जो अन्तर आत्मा को जाने। ये राग की क्रियाएँ सब आवे, परन्तु वह बन्ध का कारण, हेयरूप से है। आहाहा!

निश्चय से तीर्थ प्रभु आत्मा प्रभु पूर्ण सब स्वयं है, देव स्वयं, गुरु स्वयं, सिद्धान्त का तत्त्व है, वह स्वयं। आहाहा! ऐसा होने पर भी, भान होने पर भी, उसे देव-गुरु-शास्त्र का व्यवहार से महिमा का विकल्प आता है। आहाहा! तथापि वह विकल्प है, वह हेयरूप से है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि उसे हेय जानता है। तब कोई कहे कि हेय जानता है तो वह

करता क्यों है ? बापू! वह आये बिना रहता नहीं, भाई! आहाहा! ऐसा प्रगट हुआ हो बारह (अंग) श्रुत का ज्ञान, तथापि (द्रव्यश्रुत और केवलज्ञान में अनन्त अन्तर है)।

चैतन्य की चमत्कारिक ऋद्धि पूर्ण प्रगट हो गयी—ऐसे पूर्ण क्षायिक ज्ञान में... आहाहा! ऐसे पूर्ण क्षायिक ज्ञान में और खण्डात्मक क्षायोपशमिक ज्ञान में अनन्तगुना अन्तर है। आहाहा! कितना सरस आया है! आहाहा! अब यहाँ साधारण जहाँ अभी सम्यग्ज्ञान बिना, आत्मज्ञान बिना धारणा का ज्ञान हो, वहाँ इसे ऐसा हो जाए कि आहाहा! उसे बेचारे को (ऐसा लगे) कि आहाहा! हमने कितना जाना! हम कहाँ बढ़ गये हैं! अरे! प्रभु! सुन न, भाई!

ऐसे भावश्रुतज्ञान से आत्मा को जाना है और द्रव्यश्रुत का ज्ञान बारह अंग का प्रगट हुआ है... आहाहा! वह भी केवलज्ञानी के समक्ष... आहाहा! खण्डात्मक ज्ञान है, अनन्त अन्तर है। आहाहा! भावश्रुतज्ञानसहित जो द्रव्यश्रुत इतना हुआ, हों! बारह अंग का ज्ञान मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। मिथ्यादृष्टि को तो नव पूर्व और ग्यारह अंग का ज्ञान होता है। आहाहा! दस पूर्व का ज्ञान हो, वह तो सम्यग्दृष्टि होता है। आहा..हा..! समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो भगवान आत्मा जिसने भावश्रुतज्ञान से जाना, उसे द्रव्यश्रुत का इतना ज्ञान हो तो भी उसे केवलज्ञान की अपेक्षा से अनन्त अन्तर है। आहाहा! अनन्त अन्तर है। आहाहा! यह तो आत्मा के लिए बात है, बापू! ३२४ (बोल पूरा हुआ)।

ज्ञानी को स्वानुभूति के समय या उपयोग बाहर आये, तब दृष्टि तो सदा अन्तस्तल पर ही लगी रहती है। बाह्य में एकमेक हुआ दिखायी दे, तब भी वह तो (दृष्टि-अपेक्षा से) गहरी अन्तर्गुफा में से बाहर निकलता ही नहीं ॥३२५॥

ज्ञानी को स्वानुभूति के समय... आहाहा! या उपयोग बाहर आये, तब दृष्टि तो सदा अन्तस्तल पर ही लगी रहती है। आहाहा! विकल्प बाहर आवे, भक्ति का, किसी व्रत का विकल्प, भगवान के दर्शन का ऐसा विकल्प-राग आता है। है वह राग; धर्म नहीं। आहाहा! धर्मी को स्वानुभूति के समय या उपयोग बाहर आये तब... दो बात है। क्या

कहा? भगवान का अनुभव (होता है), जब निर्विकल्प में पड़ा है, स्वानुभूति—स्व अनुभव की दशा में निर्विकल्प दृष्टि, निर्विकल्प अनुभव है। आहाहा! गिलहरी है? यह अवतार। है कुछ इसे खबर बेचारे को? ऐसे अवतार हैं।

धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा का अनुभव हुआ है। आहाहा! यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद उसे आया है, उसे धर्मी और समकिति कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! धर्म का करनेवाला धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे भगवान चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसे जिसने पर्याय में उसका अनुभव हुआ हो और उस अनुभव के काल में... धर्मी जीव अर्थात् ज्ञानी जीव उसे कहते हैं कि जिसे स्वानुभूति के समय अन्तर अनुभव में पड़ा है, जिसे विकल्प से, राग से रहित होकर अन्तर आत्मा को अनुसरण कर अनुभूति में पड़ा हो। या उपयोग बाहर आये... आहाहा! उसे कोई विकल्प उठे, बाहर दया, दान, वांचन आदि का (विकल्प उठे)।

तब दृष्टि तो सदा अन्तस्तल पर ही लगी रहती है। आहाहा! तब दृष्टि तल अर्थात् ध्रुव वस्तु जो है तल; एक समय की पर्याय की अपेक्षा से तल, तल / ध्रुव / नित्य। आहाहा! ऐसी वस्तु। एक समय की जो पर्याय है, वह ऊपर-ऊपर है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि की पर्याय ऊपर-ऊपर है परन्तु उसका विषय जो है, वह तल / ध्रुव विषय है। धर्मी का सम्यग्दृष्टि का विषय त्रिकाली ध्रुव जो तल में तल पड़ा है। आहाहा! परन्तु यह क्या बात हुई? अरे! प्रभु! मार्ग बहुत अलग है, बापू! अभी तो सब अजैन के नाम से जैन चलाया है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, वह बात अन्दर से आकर कहते हैं। आहाहा! जब धर्मी का आत्मा, राग और मन का सम्बन्ध छोड़कर और स्वरूप के अनुभव में हो, उपयोग अर्थात् ज्ञान का व्यापार स्वसन्मुख ढल गया हो, तब भी दृष्टि तो ध्रुव पर है और विकल्प आवे भक्ति का, दया का विकल्प आदि (आवे), तथापि दृष्टि तो ध्रुव तल पर-ध्रुव पर-तल पर अन्दर है। समुद्र का तल होवे न, ऊपर की सपाटी से आगे, गहरा? उसी प्रकार पर्याय की सपाटी से तल जो ध्रुव है, वहाँ दृष्टि होती है। अरे.. अरे..! अब ऐसी बातें। यह किस प्रकार का धर्म? ऐसा मार्ग वीतराग का होगा ऐसा? भाई! वीतरागमार्ग इसने सुना नहीं है। आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं, वह यह बात है। आहाहा!

ज्ञानी को स्वानुभूति के समय... अर्थात् उपयोग अन्दर में, अनुभव में हो तब, आहाहा! यहाँ तो चौथे गुणस्थान में भी स्वानुभूति में हो तब। आहाहा! तब वे तो कहते हैं कि अभी पंचम काल में शुभयोग ही (होता है)। अरे! प्रभु! गजब किया, नाथ! यह चैतन्य हीरा, इसकी कीमत घटा दी। इसे शुभयोग से प्राप्त होता है, (ऐसा मान लिया) यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा की निर्विकल्प अनुभूति से वह प्राप्त होता है। आहाहा! और बाद में भी जब स्वानुभूति में निर्विकल्प में स्थित हो.. उसमें नहीं आता? भाई! कलश-टीका में, प्रवचनसार में। श्रावक को सामायिक के समय शुद्धोपयोग की भावना होती है। शुद्धोपयोग की भावना का अर्थ (यह कि) शुद्धोपयोग होता है, उसे सामायिक कहते हैं। यह सामायिक लेकर बैठे, णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं (करे वह) धूल में भी सामायिक नहीं है, राग है। आहाहा!

सामायिक तो प्रभु उसे कहते हैं कि आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा भगवान ने-तीर्थकर ने जाना वैसा, हों! दूसरों ने कहा, वह नहीं। ऐसा जो पूर्णानन्द का नाथ, उसका जिसे प्रथम राग तोड़कर निर्विकल्प अनुभव हुआ हो, उसकी दृष्टि भी वहाँ ही ध्रुव पर है। भले अनुभव में निर्विकल्पता आयी हो परन्तु दृष्टि तल पर-ध्रुव पर है। आहाहा! एकरूप सामान्य स्वभाव है, उस पर है। अरे! यह क्या होगा? और उपयोग बाहर राग की क्रिया में आवे.. चौथे में धर्मी है, पाँचवे में है तो विषय की वासना का भी राग आवे और भक्ति आदि का राग आवे, तथापि दृष्टि तो तल पर, ध्रुव पर है। आहाहा! वहाँ से दृष्टि हटती नहीं। उसे धर्मी और समकिति कहते हैं। आहाहा! यह क्या होगा यह? कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि ऐसा नया मार्ग निकाला? यह नया कहाँ है? शास्त्र में है। प्रवचनसार में, नियमसार में, समयसार में है, वह यह बात है। अरे रे! क्या करे?

ज्ञायकभाव, त्रिकाली ज्ञायकभाव प्रभु, ध्रुवभाव, भूतार्थभाव, त्रिकाली सत्यार्थभाव के सन्मुख होकर निर्विकल्प अनुभव हो, तब तो वह समकिति आनन्द के वेदन में है। आहाहा! यह चौथावाला हो या पाँचवाँ (गुणस्थान) वाला श्रावक हो। यह श्रावक तो वह, हों! ये वाड़ा के श्रावक, वे श्रावक नहीं है, वे तो सब सावज हैं। दृष्टि ही मिथ्यात्व है, अभी वस्तु की ही खबर नहीं वहाँ। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़ती हैं। बेचारा क्या करे?

अरे! भगवान! कहते हैं, भाई! सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को अन्तर के स्वभाव का पर्याय

में निर्विकल्प अनुभव वर्ते, तथापि उस पर्याय का अनुभव होने पर भी, दृष्टि तो अन्तर में है, ऐसा कहना है। तल का अर्थ यह। अनुभव की पर्याय पर दृष्टि नहीं है। समझ में आया? पूर्ण तल जो ध्रुव है, वहाँ दृष्टि है और उपयोग बाहर आवे, राग में आवे, विकल्प में आवे, शुभाशुभभाव में उपयोग आवे... आहाहा! तब दृष्टि तो सदा अन्तस्तल पर ही लगी रहती है। तल अर्थात् अन्तर। अन्तर जो वस्तु है, उस पर दृष्टि पड़ी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म है।

अरे रे! जिन्दगी चली जाती है। एक बार मौत / देह छूटने का काल आयेगा। उससे पहले यदि यह नहीं किया कुछ (तो) मरते समय दबेगा, दुःख में दब जायेगा। आहाहा! देह तो छूटेगी परन्तु राग की क्रिया में एकाकार हुआ होने से भिन्न तत्त्व भासित नहीं हुआ, वह दुःखी होकर दब जायेगा, पर गति में चला जायेगा। धर्मी जीव को, आहाहा! मृत्यु काल में या उपयोग निर्विकल्प में हो तो ठीक परन्तु कदाचित् विकल्प आया कि यह प्रतिकूल परीषह है, ऐसा आया तो भी दृष्टि तो अन्तर के ऊपर है, बाह्य पर्याय पर दृष्टि नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐसी क्या बात? दृष्टि तल पर है, और ध्रुव पर है। ऐसा क्या है? बापू! प्रभु का मार्ग, इन सम्यग्दृष्टि का मार्ग कोई अलग है, भाई! आहाहा! समझ में आया? यह तो शुभयोग की क्रिया करना और मानना कि हमने धर्म किया। दया और दान, व्रत और तप और उपवास... अरे रे! जिसका मिथ्यात्वभाव में अनन्त भव करने का गर्भ है, उसमें से भव प्रस्फुटित होगा, भाई!

भव का अभाव करने का तो यह है कि जिसके स्वरूप में भव और भव का भाव नहीं... आहाहा! उसका वर्तमान पर्याय में त्रिकाल का आश्रय करना। आहाहा! यह आश्रय करके जो धर्म होता है, सम्यग्दर्शन-निर्विकल्प वेदन होता है, आनन्द के अंश का वेदन अतीन्द्रिय का होता है, उस अनुभव के काल में भी दृष्टि तो ध्रुव पर है और विकल्प आया है तो भी दृष्टि तो तल पर है। आहाहा!

बाह्य में एकमेक हुआ दिखायी दे... विकल्प में आया, इसलिए दिखायी दे मानो कि आहाहा! भक्ति का भाव आया हो, वांचन का आया हो, सुनने का आया हो; इसलिए मानो कि यह उस राग में आ गया है। आहाहा! ऐसा नहीं है। आहाहा! तल-ध्रुव आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा; जिनेश्वर ने प्रगट किया, वैसा ही आत्मा अन्दर

है। आहाहा! उस पर जो दृष्टि है, उसे विकल्प में आया दिखायी दे, तब भी वह तो (दृष्टि-अपेक्षा से) गहरी अन्तर्गुफा में से बाहर निकलता ही नहीं। आहाहा! द्रव्यस्वभाव, ज्ञायक ध्रुवस्वभाव की दृष्टि में से वह बाहर निकलता ही नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें।

सम्यग्दृष्टि जीव तीर्थकर चक्रवर्ती थे। युद्ध करने निकले थे। आहाहा! उन्हें विकल्प आया परन्तु अन्दर दृष्टि तो त्रिकाली ज्ञायक पर पड़ी थी। आहाहा! उसमें से निकले नहीं थे। ऐसा क्या स्वरूप होगा यह? बापू! ऐसा स्वरूप है। आहाहा! (दृष्टि-अपेक्षा से) गहरी अन्तर्गुफा में से... अर्थात् कि पर्याय को अन्दर में ले गया है न? ध्रुव के ऊपर। जो सामान्य स्वभाव, त्रिकाल स्वभाव पर्याय से अन्तर स्वभाव, पर्याय ऊपर-ऊपर है और उस पर्याय की दृष्टि अन्तर-अन्तर स्वभाव पर पड़ी है। आहाहा! उसमें से निकलता नहीं। आहा..! चक्रवर्ती तीर्थकर सोलह, सत्रह, अठारहवें, समकिती, तीन ज्ञान के धनी, किन्तु युद्ध करने जाते हों, जब देश ऐसे... तथापि उस विकल्प के काल में भी दृष्टि तो अन्दर ध्रुव पर है। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन काम, बापू! यह तो हित का पन्थ है, भाई! आहाहा!

गुफा में से बाहर निकलता ही नहीं। आहाहा! ध्रुव जो तल पर्याय के अन्दर में पड़ा है, उसमें से दृष्टि हटती नहीं। आहाहा! और वहाँ से दृष्टि हट जाए तो मिथ्यादृष्टि हो जाए। भले त्यागी हो, मुनि हो, पंच महाव्रत पालन करता हो परन्तु अन्तर्दृष्टि जिसे नहीं है, वह सब पंच महाव्रत पालनेवाला (हो) तो (भी) मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! और मुनि को पंच महाव्रत के विकल्प आवें, परन्तु उनकी दृष्टि अन्दर ध्रुव पर लगी है। आहाहा! उसमें से बाहर निकलता ही नहीं। आहाहा!

अब ऐसा उपदेश। समाज में ऐसा कहना। इसलिए फिर लोग टीका (आलोचना-विरोध) करें, यह निश्चय की बातें करते हैं। (निश्चय की बातें) अर्थात् सत्य बात करते हैं, ऐसा। हमारी मिथ्या कहते हैं, यह तो कहते ही नहीं। आहाहा! भगवान! यह तो भव के उद्धार की बात है, प्रभु! अनन्त काल से भव कर-करके मर गया है, भाई! अशुभभाव किये और नरक-तिर्यच में गया। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के भाव किये और फिर मनुष्य हुआ अथवा स्वर्ग में देव हुआ, उसमें कुछ धूल-धाणी में कहीं भव का अभाव नहीं हुआ कहीं। आहाहा!

भव के अभाव की दृष्टि तो ज्ञायकभाव जो त्रिकाली है, वह भव और भव के भावरहित चीज़ है। अरे! पर्याय एक समय की, उससे रहित चीज़ है। आहाहा! उस पर दृष्टि होने से धर्मी को, विकल्प में आया होने पर भी वह दृष्टि हटती नहीं है। आनन्द का तल देखा है न! अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत अन्दर देखा है। आहाहा! कहो, छोटाभाई! ऐसा है। कहीं है कलकत्ता-फलकत्ता में? यह तो बात ऐसी है, बापू! क्या हो? अरे! परम सत्य चीज़ सुनने को मिले नहीं, वह कब समझे और कब सम्यग्दर्शन करे? आहाहा! ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! यह ३२५ (बोल पूरा हुआ)।

जिसने तल को स्पर्श किया, उसे बाहर सब थोथा लगता है। चैतन्य के तल में पहुँच गया, वह चैतन्य की विभूति में पहुँच गया ॥३२६॥

३२६ जिसने तल को स्पर्श किया, उसे बाहर सब थोथा लगता है। अर्थात्? ज्ञायकभाव जो पूर्णानन्द का नाथ प्रभु आत्मा, उसे-ध्रुव को जो स्पर्श किया है, उसे बाह्य विकल्प आदि दया, दान के, व्रत के सब थोथा लगते हैं। आहाहा! तल स्पर्श किया, ध्रुव स्पर्श किया। स्पर्श किया तो पर्याय ने, परन्तु वहाँ ध्रुव पर दृष्टि गयी। आहा..! जिसमें पूरा माल पड़ा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता—उसका जो खजाना भगवान, उसमें जिसकी दृष्टि गयी है, उसने तल को स्पर्श किया है, उसे बाहर (आना) थोथा लगता है। यह विकल्प आवे, अशुभ से बचने को शुभ का भी भाव आवे, परन्तु स्वरूप की अपेक्षा से थोथा लगता है, थोथा। आहाहा!

ज्वार की डंडी होती है न पोली? वह ज्वार की डंडी नहीं होती? ज्वार का, जवार का होता है न? ज्वार का। ज्वार का सूखा होता है न? क्या कहा? परन्तु वह थोथा जैसा पोला होता है, ज्वार का। इसी प्रकार धर्मी जीव को, अन्दर चैतन्य का आनन्द का माल देखा है न! आहाहा! उसके पास दया, दान, व्रत के विकल्प आवें वे थोथा लगते हैं। ज्वार की डंडी, ज्वार की डंडी की ऊँटनी नहीं कहते? हमारे गुजराती में अपने कहते हैं। वह ज्वार की डंडी होती है न, पृथक्, ऊँटनी बनावे, उसके ऊपर की छाल होती है न? उटनी-उटनी (खिलौने) बनाते हैं, ज्वार की डंडी (सूखी और छिली हुई) के। अपने कहा जाता

है। आहाहा! इसी प्रकार यह पुण्य के, पाप के भाव आवें परन्तु लगते हैं थोथा। आहाहा! उनमें कुछ माल नहीं है; माल तो मेरे स्वरूप में है। आहाहा! ऐसा काम लोगों को कठिन पड़ता है। अरे! बापू! यह तो भव के अभाव की बातें हैं न, भाई! आहाहा!

चैतन्य के तल में पहुँच गया, वह चैतन्य की विभूति में पहुँच गया। भगवान् चैतन्यस्वरूप जो ध्रुव, उसकी जो विभूति अन्दर (भरी है)। वस्तु में अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, वीतरागता—ऐसी जो विभूति, उसमें गया, उसे वह विभूति मिल गयी। आहा..! वह चैतन्य की विभूति में पहुँच गया। उस विभूति के समक्ष शुभ-अशुभराग आवे, वह भी थोथा लगता है। आहाहा! होवे, (परन्तु) थोथा लगता है, उसकी इसे कीमत नहीं लगती। समझ में आया? ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अपूर्व सम्यग्दर्शन होने की रीति और सम्यग्दृष्टि की झंकार

अनादिकालीन मिथ्यादृष्टिपना दूर होकर अपूर्व सम्यग्दर्शन कैसे होता है—वह यहाँ आचार्यदेव ने बतलाया है। वर्तमान एक समय में आत्मा का त्रिकाली शुद्धस्वभाव और पर्याय में विकार—ऐसे दोनों प्रकार एकसाथ हैं। उसमें त्रिकाली शुद्धस्वभाव को भूलकर, विकार ही मैं हूँ, शुभभाव से लाभ होता है—ऐसी जो बुद्धि है, वह मिथ्यात्व है; और वह विकारबुद्धि छोड़कर त्रिकाली शुद्धस्वभाव ही मैं हूँ—इस प्रकार अन्तर्मुख होकर शुद्धनय से आत्मा के भूतार्थस्वभाव का अनुभव करना, वह अपूर्व सम्यग्दर्शन होने की रीति है। जो जीव ऐसा अपूर्व सम्यग्दर्शन प्रगट करता है, उसका परिणामन बदल जाता है, उसे अनन्त भव की शंका दूर हो जाती है और आत्मा में से सिद्धदशा की झंकार आ जाती है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

आसोज कृष्ण-१, मंगलवार, दिनाङ्क १७-१०-१९७८
वचनमृत-३२७ से ३२९ प्रवचन-१२२

देवलोक में उच्च प्रकार के रत्न और महल हों, उससे आत्मा को क्या ? कर्मभूमि के मनुष्य भोजन पकाकर खाते हैं, वहाँ भी आकुलता और देवों के कण्ठ में अमृत झरता है, वहाँ भी आकुलता ही है। छह खण्ड को साधनेवाले चक्रवर्ती के राज्य में भी आकुलता है। अन्तर की ऋद्धि न प्रगटे, शान्ति न प्रगटे, तो बाह्य ऋद्धि और वैभव क्या शान्ति देंगे ? ॥३२७॥

३२७, वचनमृत। देवलोक में उच्च प्रकार के रत्न और महल हों... महल, मकान। उससे आत्मा को क्या ? बाहर की ऋद्धि चाहे जितनी हो, उसमें आत्मा को कहाँ शान्ति है ? कर्मभूमि के मनुष्य भोजन पकाकर खाते हैं, वहाँ भी आकुलता और देवों के कण्ठ में अमृत झरता है वहाँ भी आकुलता ही है। आहाहा! छह खण्ड को साधनेवाले चक्रवर्ती के राज्य में भी आकुलता है। पर के ओर की सामग्री या ऋद्धि, वह तो दुःख के निमित्त हैं, आकुलता के निमित्त हैं। आहाहा!

अन्तर की ऋद्धि न प्रगटे,... आहाहा! भगवान अनन्त शान्ति का रसकन्द है, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द है; उसकी दृष्टि करके, उसकी अन्तर की जहाँ शान्ति न प्रगटे, तब तक कहीं शान्ति नहीं है। अन्तर की ऋद्धि न प्रगटे,... 'ऋद्धि-सिद्धि, बुद्धि दीसे घट में प्रगट सदा।' भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द और अकषाय शान्तरस से भरपूर भण्डार है। उसमें से शान्ति न आवे, तब तक कहीं शान्ति नहीं है। आहाहा! अन्तर की ऋद्धि न प्रगटे,... आत्मा का सम्यग्दर्शन, आत्मा का ज्ञान, आत्मा की शान्ति, आत्मा की स्वच्छता, आत्मा का शान्त स्वभाव त्रिकाली, उसमें से—शक्ति में से व्यक्तता न प्रगटे, तब तक कहीं शान्ति नहीं है। आहाहा!

शान्ति न प्रगटे, अन्तर की ऋद्धि न प्रगटे, शान्ति न प्रगटे, तो बाह्य ऋद्धि और वैभव क्या शान्ति देंगे ? बहुत सुविधा के साधन आये, इसलिए अब अपने को शान्ति मिली शान्ति—ऐसा जरा भी नहीं है। यह सब बाहर की ऋद्धि आकुलता में निमित्त है। भगवान का अनाकुलस्वभाव शान्त, शान्तरसकन्द प्रभु की ऋद्धि अन्तर में से न प्रगटे, तब तक कहीं शान्ति नहीं है। आहाहा ! तो बाह्य ऋद्धि और वैभव क्या शान्ति देंगे ? आहाहा ! एक (मुनि ने) लिखा है कि अभी के साधु सम्यक्त्व बिना साधुपना दे देते हैं। परन्तु स्वयं सम्यक्त्व से रहित है। उसे बेचारे को बाहर की क्रिया...।

मुमुक्षु : लेनेवाले ले तो सही न !

पूज्य गुरुदेवश्री : लेनेवाले किसलिए लें ? लेनेवाले को खबर नहीं ? साधु, संयम किसे कहना। अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं। आहाहा ! ऐसे ले लो पंच महाव्रत और हो गये त्यागी। यह तो अज्ञान का पोषण है। आहाहा ! लेनेवाले को खबर नहीं होती, देनेवाले को खबर नहीं होती कि सम्यग्दर्शन क्या और चारित्र क्या ? आहाहा !

मुनिदशा का क्या कहना ! मुनि तो प्रमत्त-अप्रमत्तपने में सदा झूलनेवाले हैं ! उन्हें तो सर्वगुणसम्पन्न कहा जा सकता है ! ॥३२८ ॥

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है। यह आयेगा अब। आहाहा ! मुनिपना किसे कहना, बापू ! आहाहा ! मुनिदशा का क्या कहना ! है ? यह आया है। आहाहा ! मुनिदशा का क्या कहना ! मुनि तो प्रमत्त-अप्रमत्तपने में सदा झूलनेवाले हैं ! क्षण में छठवाँ, क्षण में सातवाँ गुणस्थान (आता है), उन्हें मुनि कहते हैं। विकल्प आवे, सम्यग्दर्शनसहित का अनुभव हुआ है; चारित्र भी—स्वरूप की रमणता प्रगट हुई है सातवें गुणस्थान में। उसमें से वापस नीचे आवे, तब विकल्प उठे, वह प्रमाददशा; वापस सप्तम में जावे, वह अप्रमाददशा। आहाहा ! वह छठवें गुणस्थान में आवे तो सातवें में क्षण में जाए; सातवें में आवे, क्षण में छठवें में आवे। ऐसी दशा सन्तों की भाव मुनि की ऐसी दशा होती है। आहाहा ! यह तो पंच महाव्रत के परिणाम लिये, वह तो राग है। नग्नपना, वह तो अजीव की क्रिया है। आहाहा ! वहाँ कहाँ आत्मा उसमें आया ?

आत्मा, जिसमें आनन्द का नाथ प्रभु, उसका जिसे सम्यग्दर्शन का अनुभव हुआ पहले। आहाहा! ३८ गाथा में कैसा आया, देखो न? गुरु ने समझाया, वह श्रोता ऐसा कहता है कि मैं ऐसा हूँ, मुझे मोह फिर से उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! ऐसी शैली! ऐसी शैली!! आहाहा! ऐसे भाव जिसे कान में पड़े और जिसने अन्दर में तल को-ध्रुव को देखा; देखा और जाना और अनुभव किया। आहाहा! आचरण सहित है न! वह श्रोता कहता है; गुरु ने कहा, वह श्रोता ऐसा कहता है कि मेरा जो मिथ्यात्व का - मोह का नाश हुआ, (वह) अब मुझे उत्पन्न हो - ऐसा नहीं है। आहाहा!! गजब बात! यह ३८ गाथा का पहला ऐसा अर्थ आया। पहले यह अर्थ नहीं आया था। आहाहा! पहले समुच्चय (कहते थे कि) मुनि ऐसा कहते हैं, मुनि ऐसा (कहते हैं)। परन्तु यह तो, आहाहा!

जिसने जीव-आत्मा जाना, और बताया और जिसने जाना, (उसने) अन्तर स्वसंवेदन से जाना; सुनकर नहीं। आहाहा! अपना स्व आनन्दस्वरूप, शान्तस्वरूप - उसके वेदन से निर्विकल्प समाधि से जिसने आत्मा को जाना। आहाहा! वह ऐसा कहता है, हमें जो यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ है, वह हमने मोह को मूल में से नाश कर दिया है। आहाहा! समझानेवाले गुरु छद्मस्थ हैं। वह समझनेवाला ऐसा इतना तो कहता है। आहाहा! गुरु ने समझाया - ऐसा है न? क्योंकि यह पंचम काल की बात है न! केवली ने समझाया, यह यहाँ अभी बात नहीं है। आहाहा! विरक्त गुरु ने समझाया। आहाहा! जिसे राग की रक्तता छूट गयी है और अतीन्द्रिय आनन्द की रक्तदशा प्रगट हुई है, राग से विरक्त हुए हैं। आहाहा! और स्वरूप में रक्त हुए हैं - ऐसे गुरु ने समझाया। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि राग से विभक्त है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग से तो विभक्त है। यह तो अभी सन्तों-निर्ग्रन्थ की बात है। पंचम काल में सन्तों की अपेक्षा से बात है, तथापि सम्यग्दृष्टि राग से भिन्न पड़ा है, वह भी (राग से विरक्त है)। उसमें लिया है, आस लिया है। अध्यात्म पंच संग्रह (में) सम्यग्दृष्टि को आस में लिया है। है, यह पंच संग्रह। दीपचन्द्रजी का अध्यात्म पंच संग्रह। हित की बात करते हैं न! जिसे हित प्रगट हुआ है, वह आस-गुरु है।

मुनि तो प्रमत्त-अप्रमत्तपने में... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान तो प्रगट हुआ है, शास्त्रज्ञान नहीं। आहाहा! ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय शान्ति

प्रगटी है और जिसे चारित्रदशा में रमणता है, वह मुनि... आहाहा! क्षण में सप्तम गुणस्थान में आते हैं। आहाहा! क्षण में छठवें में आते हैं। उन्हें तो सर्वगुणसम्पन्न कहा जा सकता है!

नियमसार में आता है न? आहाहा! जिन्हें तीन कषाय का नाश होकर, तीन कषाय के अभाव की शान्ति प्रगट हुई है। आहाहा! सर्वार्थसिद्धि के समकित्ती एकावतारी जीवों को जो शान्ति है, उसकी अपेक्षा पंचम गुणस्थानवाले को शान्ति अधिक है; उसको गुणस्थान कहते हैं। आहाहा! उसकी छठवेंवाले को शान्ति अधिक है; उसकी अपेक्षा सातवें में शान्ति अधिक है। घड़ीक में निर्विकल्प; घड़ीक में सविकल्प, आहाहा! ऐसे शान्ति के झूले में झूलते हैं। आहाहा! धन्य अवतार! यह मुनिदशा (कही जाती है)। आहाहा!.....।

नियमसार में एक कलश में कहा है। एक कलश में ऐसा कहा कि जरा राग है, इसलिए उन्हें पूर्ण नहीं है। दूसरे श्लोक में ऐसा कहा कि यह तो उन्हें पूर्ण न माने, (वह) जड़ जैसा है। आहाहा! क्योंकि प्रवचनसार की अन्तिम पाँच गाथाओं में (कहा है कि) ऐसा दर्शन, ज्ञान और चारित्र—वस्तु का दर्शन, वस्तु का ज्ञान और वस्तु की रमणता – ऐसा प्रगट हुआ, उसे मोक्षतत्त्व कहा है। आहाहा! अन्तिम पाँच गाथायें हैं न? आहाहा! उनकी क्या बात करनी, बापू! यह तो अभी... आहाहा! दर्शन दुर्लभ हो गये, भाई! आहाहा! वीतराग तीन लोक के नाथ के दर्शन तो दुर्लभ हुए, परन्तु ऐसे सन्तों का विरह पड़ गया। आहाहा!

मुमुक्षु : सन्तों के कथन तो रह गये न!

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव रह गये, परन्तु स्वयं कहाँ है? आहाहा! उन्हें तो सर्वगुणसम्पन्न कहा जा सकता है! आहाहा! सर्वगुणसम्पन्न चारित्र है न? परमेष्ठी हैं न? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचुर स्वसंवेदन में है। आया न पाँचवीं गाथा (समयसार) में? आहाहा! मुनि को तो प्रचुर स्वसंवेदन भावलिंग में जिन्हें प्रगट हुआ है। आहाहा! उन्हें सर्वगुणसम्पन्न कहा जा सकता है। आहाहा!

मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूप से चैतन्यनगर में प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं। उस दशा में, अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में एक आश्चर्यकारी आनन्दतरंगों में डोलता है। मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन कोई और ही है, वचनातीत है। वहाँ शून्यता नहीं है, जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे ॥३२९॥

३२९, मुनिराज... अधिकार बहुत अच्छा आ गया है। आहाहा! मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूप से... अन्तर स्वरूप में निर्विकल्परूप से, विकल्प की अपेक्षा छोड़कर। आहाहा! आनन्द के नाथ में निर्विकल्परूप से चैतन्यनगर में... अन्दर चैतन्यनगर है, प्रभु! आहाहा! जिसमें अनन्त गुण की बस्ती है। आहाहा! मुनिराज बारम्बार... निर्विकल्परूप से अर्थात् वीतरागरूप से, आहाहा! चैतन्यनगर में प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं। यह मुनि, बापू! आहाहा! उसने बेचारे ने लिखा है कि अभी तो सम्यग्दर्शन के बिना सीधा मुनिपना दे देवे गुरु। परन्तु तुमने क्यों समझे बिना लिया? आहाहा! परन्तु यह प्रथा ही पूरी टूट गयी है। सम्यग्दर्शन पहली चीज़ है और यह क्या है, उसे प्रगट हुए बिना दूसरा सब व्यर्थ है। आहाहा!

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में समकित का उपचार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार किसका? खोटा। मिथ्यात्व है, वहाँ उपचार किसका? ऐई! चेतनजी! द्रव्य समकित का उपचार देते हैं। आहाहा! भारी गजब किया। श्वेताम्बर पंथ ही गृहीत मिथ्यात्व है। कठोर, यह तो बहुत कठोर बात, भाई! आहाहा! उसमें यह बात ही कहाँ है उसमें? जैन की पद्धति वीतरागता है, वह बात कहाँ है? वहाँ तो राग की क्रिया, यह करो और यह करो और यह करो, पूजा करो, सिद्धयन्त्र की, कर्मदहन की, उपधान करो डेढ़ महीना के... आहाहा!

मुमुक्षु : अन्तरायकर्म की पूजा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म दहन की आ गया न। आहाहा! यह तो बापू! वह तो सब

शुभविकल्प राग है। यदि वह दिखाने के लिए न करता हो तो। आहाहा! भाई! मार्ग यह है। तुझे खोटा लगे, आहाहा! वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भाई! कहते हुए लज्जा आवे ऐसी बात है यह। आहाहा! मार्ग... प्रभु! आहाहा! दिगम्बर में जो वस्तु है, उस वस्तु की दृष्टि ही अभी नहीं हुई। आहाहा! तो दिगम्बर में वह क्या है ?

अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु, ज्ञायक को शक्ति में से व्यक्त रूप से जगाया नहीं... आहाहा! वहाँ तक उसे आकुलता का वेदन है। आहाहा! शुभयोग है, वह आकुलता है। आहाहा! मुनिराज ने शुभयोग से भिन्न करके, आनन्द के नाथ को अनुभव किया है। आहाहा! जो आनन्द की दशा प्रगट हुई, उसे रखते हैं; नहीं प्रगट हुई, उसे प्राप्त करने को प्रयत्न करते हैं। ऐसे मुनिराज। आहाहा! निर्विकल्प दशा होकर, बाह्य से शून्य होकर अन्दर में प्रवेश करते हैं, वहाँ शून्यता नहीं है। **चैतन्यनगर में प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं।** आहाहा! मुनिदशा तो अतीन्द्रिय आनन्द की अद्भुत दशा को अनुभव करते हैं। आहाहा! अरे! उन्हें मुनि कहते हैं।

आहाहा! **उस दशा में, अनन्त गुणों से भरपूर...** अनन्त-अनन्त गुणों से भरपूर **चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में...** आहाहा! भिन्न-भिन्न प्रकार के चमत्कारिक ज्ञान-आनन्द, और शान्ति, स्वच्छता, आहाहा! जो वचन को गम्य नहीं। आहाहा! ऐसी चमत्कारिक आनन्द आदि विविध प्रकार के भाव को **चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों...** शक्ति तो है, कहते हैं। गुणों से भरपूर चैतन्य देव, उसे तो है। अब उसे भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायें। आहाहा! द्रव्य और गुण तो भगवान परिपूर्ण शक्ति, परिपूर्ण आनन्द (स्वरूप है), परन्तु उनका अनुभव होने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर... आहाहा! भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्याय। आहाहा! अनन्त काल में जिसे जाना नहीं, ऐसी शान्ति की पर्याय, स्वच्छता की पर्याय, सम्यग्दर्शन की पर्याय, स्वरूपाचरण की पर्याय। आहाहा! तरंगें, वह पर्याय की तरंग है, प्रगट पर्याय की तरंग है। वस्तु ध्रुव है, वेदन पर्याय का है; वेदन ध्रुव का नहीं होता। वेदन की पर्याय वर्तमान दशा है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा है न ? बीसवें बोल में। अलिंगग्रहण। प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो चैतन्य द्रव्यस्वभाव। आहाहा! उसे वह स्पर्श नहीं करती, ऐसी शुद्धपर्यायरूप आत्मा है। मैं तो मुझे वेदन में आई दशा, वह मैं हूँ। आहाहा! अलिंगग्रहण में बीसवाँ बोल है।

प्रत्यभिज्ञान का कारण यह द्रव्य है, वह पहले था, वही यह। यह जाननेवाला पहले था, वह जाननेवाला यह। ऐसा जो त्रिकाली द्रव्य, उसे नहीं स्पर्शती, उसे नहीं छूती, उसे आलिंगन नहीं करती, आहाहा! आत्मा वर्तमान वेदन में जो दशा आयी, वह आत्मा शुद्ध पर्यायस्वरूप है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि तो द्रव्य पर है, परन्तु वेदन में द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! दृष्टि तो ध्रुव पर परिणम गयी है, परन्तु यहाँ कहते हैं कि उस दृष्टि का विषय जो है, वह द्रव्य को नहीं आलिंगन करता, ऐसा आत्मा का वर्तमान शुद्ध वेदन, पर्याय वह आत्मा है। आहाहा! गजब काम किया है न!

यह यहाँ कहते हैं, तरंगों में एक आश्चर्यकारी आनन्दतरंगों में डोलता है। आहाहा! वेदन की पर्याय है, वह तो प्रगट है, ध्रुव में वह मिल नहीं गयी। ध्रुव को जाननेवाली पर्याय उस ध्रुव से भिन्न है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की पर्याय द्रव्य को मानती है, वह द्रव्य से भिन्न है, प्रगट है। आहाहा! ऐसे प्रगट तरंगों चैतन्य चमत्कार की, आहाहा! और आनन्द तरंगों में डोलता है। मुनि तो आश्चर्यकारी आनन्द (अनुभव करते हैं)। यह क्या वाणी से कहे। आहाहा! शक्ति में से जहाँ व्यक्त प्रगटता (अनुभव हुआ वहाँ)... आहाहा! बाढ़ आयी, ज्वार बाहर, शान्ति की, आनन्द की, स्वच्छता की, सम्यग्दर्शन की, स्वसंवेदन की, चारित्र की। आहाहा! ऐसी तरंगों में डोलता है। आनन्दतरंगों में डोलता है। आहाहा! आनन्द का नाथ ऐसे उछला है। जिसमें दृष्टि की एकाग्रता होने पर, वह एकाग्रता की पर्याय डोलती है, कहते हैं। आहाहा! ऐसी वस्तु। भगवान तुझे (यह) करने से ही छुटकारा है, भाई! इसे मानकर करने से ही छुटकारा है। इसके बिना परिभ्रमण नहीं मिटेगा। आहाहा! यह, वह लड़का है न? हसमुख का। वह कहता था। कहो, बारह वर्ष का होगा। अब हमारे परिभ्रमण नहीं करना। उसका पिता पूरे दिन वाँचन और उसमें रहता है न, दुकान-बुकान बन्द कर दी। आज आया है? नहीं आया, नहीं? मंगलवार उस समय आया था। लड़का बोला, अब हमारे परिभ्रमण नहीं करना। अच्छा, भाई! वाणी भी... आहाहा!

भगवान आत्मा को अपनी रुचि और परिणमन करे, उसे अब परिभ्रमण नहीं होता। आहाहा! क्योंकि परिभ्रमण का भाव उस वस्तु के स्वरूप में नहीं है। उसके द्रव्य में नहीं,

उसके गुण में नहीं। आहाहा! पर्याय में ऊपर अधर से खड़ा हुआ। पर्याय में पर्यायदृष्टि से निमित्त के वश से; निमित्त से नहीं; स्ववश का छूट गया है, इससे पर्याय में राग-द्वेष-मिथ्यात्व पर के निमित्त के वश से उत्पन्न होते हैं। आहाहा! यह भगवान आत्मा अपने आनन्द और ज्ञानस्वभाव के वश में हो, उसे यह परिभ्रमण टूट जाए, भ्रान्ति टूट जाए। आया न, सवेरे आया न? भ्रान्ति अब हमें नहीं। आहाहा!

अरे! पंचम काल के गुरु और श्रोता की व्याख्या तो देखो! प्रभु! आहाहा! भले कोई दो-चार निकले, परन्तु निकले... निकले... निकले... ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात की है न! क्योंकि वह श्रोता ऐसा समझा है, वह कहते हैं न बात? टीका तो उसकी हुई है न! आहाहा! उसे काल बाधक नहीं। पंचम काल है, इसलिए उसे बाधक नहीं, कहते हैं। आहाहा! प्रतिकूल संयोग हो गये—संहनन नहीं होता, संस्थान ऐसा नहीं मिलता तो भी उसे व्यवधान नहीं है, कहते हैं, प्रभु! सुन न! आहाहा! भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप है, उसे प्रगट करने में ऐसे साधन की कोई अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा!

यह यहाँ मुनिराज की व्याख्या है। आहाहा! धन्य अवतार! धन्य दशा! आनन्दतरंगों में डोलता है। आहाहा! यहाँ तो (आजकल) कहते हैं शुभयोग है, वह मुनिपना, उसमें निर्जरा होती है। अरे! प्रभु! क्या करता है, भाई? बापू! प्रभु! इसमें नुकसान है, भाई! तुझे भोगना पड़ेगा, भाई! आहाहा! मार्ग तो यह है। आहाहा!

अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव... यह द्रव्य। अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव... अनन्त गुणों से भरपूर द्रव्य, आहाहा! **भिन्न-भिन्न प्रकार की...** अब आयी पर्याय। अनन्त गुण से भरपूर द्रव्य, द्रव्य-गुण आ गये। अनन्त गुणों से भरपूर द्रव्य। आहाहा! **भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायों...** अब ऐसी (बात)! आहाहा! अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्य देव का आश्रय पर्याय ने लिया। आहाहा! उस पर्याय ने तल को देखा। आहाहा! इससे **भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायों...** ज्ञान की पर्याय, दर्शन की पर्याय, चारित्र की पर्याय, आनन्द की पर्याय, स्वच्छता की पर्याय, प्रभुता की पर्याय, जीवत्वशक्ति की पर्याय, कर्ता, कर्म, करण आदि छह कारक की पर्याय। आहाहा!

षट्कारक गुण से भरपूर तो भगवान कहा। अब उस पर दृष्टि पड़ने से, उसमें एकाग्र होने पर, जैसे फब्बारा फटे। आहाहा! वैसे पर्याय की तरंगें उठती हैं। द्रव्य, गुण,

पर्याय तीनों आ गये। समझे न? अभी द्रव्य क्या और गुण क्या और पर्याय क्या, इसकी खबर नहीं होती। भगवान! णमो अरिहंताणं आवे, परन्तु फिर भी द्रव्य क्या? उनका— अरिहन्त का द्रव्य किसे कहना? गुण किसे कहना? पर्याय किसे कहना? णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं... पहाड़े बोला करता है। आहाहा! अरे रे!

यहाँ तो कहते हैं कि जो यहाँ आत्मा अनन्त गुण से भरपूर भगवान, आहाहा! उसके सन्मुख हुआ, राग और पर्याय और निमित्त से विमुख हुआ, तब पर्याय में चमत्कारिक पर्यायों की तरंगें उठीं। अजब-गजब की ज्ञानपर्याय, अजब-गजब की सम्यक् पर्याय, अजब-गजब की चारित्र पर्याय, अजग-गजब की आनन्द पर्याय, चमत्कारिक पर्यायें। आहाहा! मुनिराज को चमत्कारिक आनन्द की पर्यायें उत्पन्न होती हैं। आहाहा! उनके पंच महाव्रत का विकल्प या नग्नपना वह कुछ मुनिपना नहीं है। आहाहा! मुनिपना तो यह है। आहाहा! अरे! इसे सुनने को नहीं मिलता।

भगवान अनन्त गुण का समुद्र प्रभु, द्रव्य-चैतन्यदेव कहा न? आहाहा! यह चैतन्यदेव। भिन्न परमात्मा देव वे तो पर हैं। आहाहा! उनके दर्शन और भक्ति, वह तो शुभभाव / पुण्य है; वह धर्म नहीं। आहाहा! तो भी धर्मी जीव को आनन्द की तरंग उठी है, उसे भी जब अन्दर में स्थिर नहीं हो सकता, तब ऐसा शुभभाव आता है, परन्तु उसे जानता है कि यह हेय है। यह राग है, वह दुःख है, वह मेरा आनन्द नहीं है। आहाहा! तो भी क्यों आता है? भाई! कमजोरी से आता है, भाई! आहाहा! व्यवहार ऐसा आवे, परन्तु वह वस्तु की निर्मल पर्याय है नहीं। आहाहा! वह तो मलिन पर्याय है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा-मान्यता-भक्ति, वह भी मलिन पर्याय है। आहाहा!

निर्मलानन्द के नाथ को अन्दर में देखने से जो पर्याय प्रगट होती है, वह चैतन्य चमत्कारिक पर्याय है। वह आनन्दतरंगों में डोलता है। सन्त। उन्हें सन्त कहते हैं। शान्ति प्राप्त करावे, उसे सन्त कहते हैं, आता है न? उनके दासानुदास होकर रहिए। जिन्हें अन्दर में शान्ति का सागर अन्दर से उछला है। आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं। यह नग्नपना और पंच महाव्रत के परिणाम है, यह कहीं मुनिपना नहीं है। आहाहा! ऐसा लोगों को कठिन लगता है। सुना न हो। क्या बात कहते हैं? किसकी बात कहते हैं? बापू! प्रभु! तेरे घर की बात है, भाई! आहाहा!

उसमें आता है न ? ' अब हम कबहूँ न निज घर आये, अब हम कबहूँ न निज घर आये ' परन्तु निज घर क्या है, इसकी खबर नहीं होती । ' पर घर भ्रमत... ' पुण्य और पाप के भाव करने से, वह तो पर घर है । आहाहा ! ' पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये, अब हम कबहूँ न निज घर आये । ' सम्यग्दृष्टि निज घर में आ गया है । यह पर घर के विकल्प उठते हैं, उन्हें अपना नहीं मानता है । मुनिराज भी आत्मा के निज घर में तरंग में उछलते हैं । आहाहा ! वे भी अन्दर में—आनन्द में स्थिर नहीं हो सकते, आनन्द तो है परन्तु निर्विकल्परूप से आनन्द में स्थिर न हो तो उन्हें विकल्प आता है परन्तु वह भी उन्हें सुहाता नहीं है, ठीक नहीं लगता है । आहाहा !

जिसे आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय प्रभु... महा पर्वत अतीन्द्रिय प्रभु अन्दर पड़ा है उसे जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान से स्पर्श किया है, उसे राग आवे, दया-दान, व्रत का, परन्तु वह सुहाता नहीं है, उन्हें रुचता नहीं है । आहाहा ! इसलिए वे मुनिराज राग में से हटकर दूसरे क्षण अन्दर में जाते हैं, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! ऐसी दशा, बापू ! यह क्या है ? अभी किसे पड़ी है ? ...अरे ! आहाहा ! अभी सम्यग्दर्शन क्या, कैसे हो, इसकी खबर नहीं होती । आहाहा ! यात्रा करो, पूजा करो, भक्ति करो, व्रत करो । अरे ! यह सब तो राग की क्रिया है, प्रभु ! आहाहा ! तुझे खबर नहीं, भाई ! आहाहा ! उस राग से भगवान अन्दर भिन्न पड़ा है, प्रभु ! आहाहा ! ऐसे जिसे शान्ति की तरंग उठी है । आहाहा ! उसे आनन्द की तरंग डोलती है ।

मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का... अब दो डाले हैं - सच्चे सन्त जिन्हें कहते हैं, जिन्हें आनन्द की तरंग उठती है, अतीन्द्रिय आनन्द की जिन्हें लहरें उठती हैं । आहाहा ! जैसे समुद्र में पानी का ज्वार-बाढ़ आती है, वैसे सच्चे सन्त उन्हें कहते हैं कि जिनकी पर्याय में आनन्द की तरंग की बाढ़ आती है । अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आती है । आहाहा ! अरे भगवान ! अब यहाँ ऐसा कहते हैं कि अभी तो शुभयोग होता है, बस, पंचम काल में । अरे ! प्रभु.. प्रभु.. प्रभु ! यह बात सुनने पर तो अरे ! ऐसा कैसे बैठा ? आहाहा ! बापू ! भाई ! तू भगवान है न । आहाहा ! उसे शुभभाव कैसे रुचा ? आहाहा ! और मुनि को शुभभाव ही होता है, प्रभु ! यह तूने क्या किया ? यह तेरे अनादर की बात नहीं प्रभु ! तुझे नुकसान है, भाई ! श्रुतसागर, शान्तिसागर के पथानुगामी (वे ऐसा कहते हैं) । आहाहा ! भाई ! वस्तु बहुत विपरीत है, भाई !

मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन कोई और ही है,... आहाहा! सम्यग्दृष्टि कहो या मुनिराज, दोनों को.. आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप का स्व वेदन अलग प्रकार का है। वह राग के पंच महाव्रत के विकल्प से भिन्न है। समकिति को भक्ति आदि के पुण्य के परिणाम आवें, परन्तु उसे प्रभु आत्मा का स्वसंवेदन भिन्न है। आहाहा! यह क्या कहते हैं प्रभु? मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन कोई और ही है,... अन्तर के आनन्द का वेदन... आहाहा! यह शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति..

ज्यों निर्मल तारै स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे,
श्री जिनवीर रे धर्म प्रकाशिया प्रबल कषाय अभाव रे ॥

आहाहा! यह पुण्य-पाप का कषायभाव, इससे अभाव। आहाहा! ऐसा शान्तरस का स्वभाव, उसे भगवान ने धर्म कहा है। आहाहा! कठिन लगे। जिन्दगी में सुना हो दूसरा, यह बात सोनगढ़वाले कुछ नयी करते हैं, ऐसा (लोग) कहते हैं। नयी नहीं है, बापू! यह तो अनादि की है, भाई! अनन्त तीर्थकर, अनन्त सन्त, केवली, अनन्त मुनि यह कहते आये हैं, भाई! तुझे सुनने को न मिला हो, इसलिए नया लगता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं मुनिराज को तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन... स्व अर्थात् आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द का पर्याय में वेदन। आहाहा! अलग ही है। राग से भिन्न है, विस्मयकारी है, आश्चर्यकारी है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि का भी स्वसंवेदन कोई अलग प्रकार का है। आहाहा! पाँचवें गुणस्थान में सच्चे श्रावक, सच्चे, उनका भी स्वसंवेदन राग से कोई भिन्न प्रकार का है। आहाहा! मुनिराज सन्त जो सच्चे हैं, उन्हें भी राग के विकल्प से स्व अपना... राग है वह अपना स्वभाव नहीं है। आहाहा! स्व-अपना शान्त, आनन्दस्वभाव का पर्याय में वेदन, कोई अलग प्रकार का है। वचनातीत है। है? वह वचन में क्या कहा जाए? भाई! आहाहा! गूँगे का गुड़। गूँगा गुड़ खाये। कैसा गुड़? ऐसा कहे, बस। आहाहा! वह वचनातीत है। वह बारम्बार प्रश्न करते हैं भव्यसागर। ऐसा कि यह है न? ९१, ९१ पृष्ठ न? ९१, ९१ न? है?

मुमुक्षु : २२८ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह २२८। आत्मा के अस्तित्व को पहिचानकर स्वरूप में स्थिर हो जा, बस!... तेरा अस्तित्व आश्चर्यकारी अनन्त गुणपर्याय से भरा है; उसका

सम्पूर्ण स्वरूप भगवान की वाणी में भी पूरा नहीं आ सकता। उसमें भी आया है। इस अपेक्षा से है। जो वस्तु है, वह वाणी में कितनी आवे? वाणी जड़, भगवान चैतन्य अरूपी। शत्रु के साथ सज्जन की बात करानी हो कि मेरे मित्र के गुण कहना। वह शत्रु कितना कह सके? भगवान आनन्द का नाथ अरूपी सागर अन्दर है और वाणी जड़, मिट्टी, धूल है, उसके द्वारा कितनी बात की जाए? भाई! आहाहा! इस अपेक्षा से यह रखा है। ऐसे पूर्ण कह सकते हैं। वह गाथा आती है न? पाँचवीं गाथा में सब कह सकते हैं, उस अपेक्षा से। कितने ही धर्म समझाते हैं, बाकी फिर अनुमान से, ऐसा कहा। आहाहा! वह यह बारम्बार पूछता है, उसमें भी पूछा है। मुझे समझ में नहीं आया, उसे बराबर स्पष्ट करके समझाओ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यही वह आता है परन्तु वह इसे जँचता नहीं। ऐसा कि भगवान तो सब जानते हैं, सब कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी में आवे अनन्त का,

जो पद श्री सर्वज्ञ ने जाना ज्ञान में
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब;
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे ?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब।

(अपूर्व अवसर, श्रीमद् राजचन्द्र)

वह तो अनुभवगम्य है, प्रभु! आहाहा! ऐसा करके उसे भी वापस दूसरे उड़ाते हैं कि भाई! भगवान तो पूरा कहते हैं न! समयसार में आता है न? पाँचवाँ बोल। सब कहते हैं ऐसा कि, स्याद्वाद से इतना कहते हैं और दूसरे अनुभव से भी थोड़ा कहते हैं, इस अपेक्षा से बात है। आहाहा!

ऐसा वापस गोम्मटसार में ऐसा आता है कि भगवान ने जितना जाना है, उसका अनन्तवाँ भाग वाणी में आता है और जितना वाणी में आया वह गणधर उसके अनन्तवें भाग जान सकते हैं। इतनी गम्भीरता है! वापस उसका अर्थ ऐसा एक व्यक्ति करता है

(कि) ऐसी वाणी में भी न आवे, ऐसी चीज़ किसी समय कही है, इसलिए अभी जितना कहा है, उसमें से दूसरा प्रकार भी होवे तो ? ऐसा नहीं है। इसलिए कोई ऐसी दूसरी चीज़ भी होगी कि जो वाणी में नहीं आयी, ऐसा नहीं है। आहाहा! जो कुछ भगवान की वाणी में आया है, वह तो परम सत्य ही है। उससे कुछ विरुद्ध दूसरा बाकी रह गया है, विरुद्ध बाकी रह गया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा कि भगवान ने तो अनेक प्रकार से कहा, वाणी में आया नहीं, क्या-क्या अन्दर स्याद्वाद से आया होगा ? तो किसी मत में कोई भी अभिप्राय किसी का कैसा हो, उसे कैसे मिथ्या कहना ? अरे! प्रभु! क्या करता है ? भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं वहाँ शून्यता नहीं है,... यह क्या कहा ? भगवान आत्मा के आनन्द का जो वेदन है, वह स्वसंवेदन है। वचन से नहीं कहा जा सकता, लो ! इसलिए है। वहाँ शून्यता नहीं है,... वचन से नहीं कहा जा सकता, इसलिए वहाँ शून्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! महाप्रभु आनन्द का भरपूर है और वेदन में भी आनन्द की पर्याय आ गयी है। वेदन है, वह शून्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब काम! ऐसा वीतरागमार्ग।

कहते हैं कि चमत्कारिक जीव का वेदन... आहाहा! आश्चर्यकारी वचनातीत है। वह राग के वेदन से कोई अलग प्रकार है। आहाहा! दया, दान, व्रत के विकल्प हैं, राग का वेदन अलग प्रकार का है, यह अलग प्रकार का है। आहाहा! गजब काम, भाई! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर की वाणी में भी अमुक आया। आहाहा! वाणी जड़ है। भगवान चैतन्य स्व-परप्रकाशक है, वाणी स्व-पर कथक है। स्व-पर का कथन करे, ऐसी उसकी शक्ति है। उसकी शक्ति में ऐसा है। ऐसा आवे, परन्तु पूर्ण स्वरूप आत्मा का वाणी में (नहीं आता)। आहाहा!

अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण। ऐसी एक समय की अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें। वह एक पर्याय, दूसरी, तीसरी ऐसी अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. और अनन्त की अन्तिम यह पर्याय भी जहाँ नहीं। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण जो भगवान आत्मा में हैं, उनका अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. उनका यह अन्तिम अनन्त, ऐसा भी नहीं है। अरे! प्रभु! आहाहा! यह तो गजब है, बापू! अन्दर भगवान अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. और अनन्त गुणा गुणाकर अनन्त-अनन्त अन्दर करो तो भी अन्तिम अनन्त, ऐसा अन्दर गुण में आवे, ऐसा नहीं है और उस अनन्त

का अन्तिम यह पर्याय, गुण है (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसी बात है।

शून्यता नहीं है,... वहाँ भरपूर भगवान है, वैसे उसकी पर्याय में शून्यता नहीं है, ऐसा कहते हैं। वेदन वचन से नहीं कहा जा सकता। वह रजनीश कहता है न, रजनीश? बहुत रोओ, बहुत रोओ, फिर तुम अन्दर शून्य हो जाओगे। परन्तु शून्य... और या बहुत हँसो, बहुत हँसो, हँसे फिर स्थिर हो जाओगे, निर्विकल्प। अरे रे! ऐसी बातें! अब वह जैन था, लो! तारणपंथी। यह दशा हो गयी। आहाहा! वीतरागमार्ग, बापू! अलौकिक है, भाई! ऐसा मार्ग अन्यत्र कहीं नहीं है। वीतराग के अतिरिक्त कहीं सत्य नहीं है, परन्तु यह सत्य बहुत महँगा है, भाई! दुर्लभ वस्तु है।

मुमुक्षु : अब उसका बड़े में बड़ा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़े में बड़ी चीज़ है। आहाहा! वह यहाँ कहा। शून्य नहीं, वेदन में विकल्प नहीं और वेदन आया, वह कहा नहीं जा सकता, इसलिए वेदन कुछ है ही नहीं, ऐसा नहीं है। वेदन तो आनन्द और शान्ति का वेदन अस्तिरूप से वेदन है। आहाहा! दूसरे कितने ही अभी कहते हैं कि यह एक बार बहिन का हुआ, दूसरी बार भी दूसरा लिखकर दूसरा (भाग) बाहर प्रसिद्ध करो। यह टूटे और दूसरा भाग करे, वह अलग बात है परन्तु इसमें सब आ गया है।

मुमुक्षु : दूसरा बाहर आनेवाला होगा तो वह भी आ जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा कहाँ? ऐसी बात आ गयी है न, सहज लिखी है लड़कियों ने। उन्हें कुछ खबर नहीं थी कि यह बात बाहर आएगी। बहिन, लड़कियों को खबर थी? आहाहा! वे लड़कियाँ भी अभिनन्दन की पात्र हैं, ऐसा लिखा है। ऐसी बात लिख ली। आहाहा! ओहो! उसके एक-एक शब्दों में तेरा तत्त्व भरा है। आहाहा! ऐसे ४३२ बोल हैं।

वहाँ शून्यता नहीं है,... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अनन्त गुण से भरपूर द्रव्य, देव-चैतन्यदेव का अनुभव जो स्वसंवेदन, वह वचन से नहीं कहा जा सकता है, विकल्प से नहीं ज्ञात होता, इसलिए वह शून्य है—ऐसा नहीं है। भरपूर वेदन है। आहाहा! वहाँ शून्यता नहीं है, जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का... जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। पर्याय के वेदन की बात है। आहाहा! तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे। इसकी व्याख्या लम्बी है। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण-२, बुधवार, दिनाङ्क १८-१०-१९७८
वचनामृत-३२९ से ३३० प्रवचन-१२३

३२९ का अन्तिम एक... क्या कहते हैं ? मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि... ३२९ की अन्तिम चार लाइनें। आहाहा! जीव का यह स्वसंवेदन कोई और ही है,... आत्मा में स्वभाव में आनन्द का वेदन सच्चे मुनि को और सम्यग्दृष्टि को कोई अलग ही है। अर्थात् कि राग की जाति की बात नहीं है। अनादि का राग का वेदन है, उससे यह जाति कोई भिन्न है, यह कहेंगे। वचनातीत है। वचन से न कहा जा सके, ऐसा सम्यग्दृष्टि और मुनिराज का अन्तर वेदन होता है।

अब यहाँ लेना है। वहाँ शून्यता नहीं है,... आहाहा! राग की शून्यता हुई और स्वरूप का वेदन हुआ, वह शून्य नहीं है। आहाहा! जैसे राग के वेदन में शून्यता नहीं है; राग का वेदन है, राग के अस्तित्व का वेदन है। वैसे ही सम्यग्दृष्टि को, मुनिराज को अन्दर में शुद्ध चैतन्य के अस्तित्व का वेदन, वह अस्ति है; शून्य नहीं। आहाहा! पर्याय में रागरहित होने पर भी, वचनातीत होने पर भी, वह रागरहित दशा विद्यमान है, अस्ति है; शून्य नहीं। आहाहा! जैसे भगवान स्वभाव से शून्य नहीं, आत्मा अपने स्वभाव से शून्य नहीं; वैसे ही उसके वेदन में ज्ञानी वेदन से वेदन में शून्यता नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म कठिन बातें।

तू वहाँ जा,... है ? जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप चैतन्य जागृतरूप का पर्याय में जागृतरूप से, अलौकिक ऋद्धि का जागृतरूप से, ज्ञानरूप से, जाननरूप से... आहाहा! अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। आनन्द और शान्ति का वेदन... आहाहा! वह अलौकिक ऋद्धि है। निज वैभव। आहाहा! उसका अत्यन्त स्पष्ट, प्रत्यक्ष वेदन है। आहाहा! वस्तु की यह स्थिति है।

जैसे राग का, पुण्य का, पाप का वेदन स्पष्ट प्रगट है; स्पष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं, परन्तु प्रगट वेदन है। जैसे राग से भिन्न पड़ा भगवान, ऐसे स्वभाव का स्व-वेदन, वह स्वभाव की शान्ति से खाली नहीं है, शून्य नहीं है। आहाहा! उसकी पर्याय में अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। आहाहा! तू वहाँ जा,... आहा! प्रभु तो आत्मा के आनन्दस्वरूप है। तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे। तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे। आहाहा! जैसे राग और विकार के दर्शन होते हैं, वह देखता है कि यह है। आहाहा! उसी प्रकार यह अन्तर (में) जाने से तुझे चैतन्य के दर्शन होंगे। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को कठिन लगती है, क्या हो? मुनि को भी ऐसा होता है। सच्चे मुनि हों, उन्हें। क्या हो? लोगों को ऐसा लगता है कि यह हम सब खोटे? बापू! ऐसा रहने दे, भाई! सत्य क्या है, उसे समझ न! आहाहा! कठिन बातें हैं। अब ३३० (बोल)। यह बड़ा पेरोग्राफ।

अहो! मुनिराज तो निजात्मधाम में निवास करते हैं। उसमें विशेष-विशेष एकाग्र होते-होते वे वीतरागता को प्राप्त करते हैं।

वीतरागता होने से उन्हें ज्ञान की अगाध अद्भुत शक्ति प्रगट होती है। ज्ञान का अन्तर्मुहूर्त का स्थूल उपयोग छूटकर एक समय का सूक्ष्म उपयोग हो जाता है। वह ज्ञान अपने क्षेत्र में रहकर सर्वत्र पहुँच जाता है—लोकालोक को जान लेता है, भूत-वर्तमान-भविष्य की सर्व पर्यायों को क्रम पड़े बिना एक समय में वर्तमानवत् जानते हैं, स्वपदार्थ तथा अनन्त परपदार्थों की तीनों काल की पर्यायों के अनन्त-अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदों को एक समय में प्रत्यक्ष जानते हैं।—ऐसे अचिन्त्य महिमावन्त केवलज्ञान को वीतराग मुनिराज प्राप्त करते हैं।

केवलज्ञान प्रगट होने पर, जैसे कमल हजार पंखुरियों से खिल उठता है तदनुसार, दिव्यमूर्ति चैतन्यदेव अनन्त गुणों की अनन्त पंखुरियों से खिल उठता है। केवलज्ञानी भगवान चैतन्यमूर्ति के ज्ञान आनन्दादि अनन्त गुणों की पूर्ण पर्यायों में सादि-अनन्त केलि करते हैं; निजधाम के भीतर शाश्वतरूप से विराज गये हैं, उसमें से कभी बाहर आते ही नहीं ॥३३०॥

अहो! मुनिराज तो निजात्मधाम में निवास करते हैं। आहाहा! मुनि का वास्तविक.. सत्य मुनि हैं। निजात्मधाम, निजस्वरूप आत्मा धाम, 'स्वयं ज्योति सुखधाम'... आहाहा! उसमें निवास-बसते हैं। आहाहा! वे निजात्मधाम में बसते हैं। अरे! ऐसी बात है, भाई! सम्यग्दृष्टि में थोड़ा अन्दर बसना है और मुनि को तो निजात्मधाम में उग्र बसना है। प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द की प्रचुर वेदन दशा, विशेष प्रचुर उग्र... आहाहा! ऐसी वेदन दशा से निजात्मधाम में निवास (करते हैं)। वहाँ वास स्थापित किया है। आहाहा!

उसमें विशेष-विशेष एकाग्र होते-होते... आनन्दधाम में विशेष-विशेष लीनता-एकाग्र होते हैं। चैतन्यस्वभाव जो अनन्त-अनन्त गुण से भरपूर भगवान है, उसमें निवास रहते.. रहते.. रहते.. रहते.. आहाहा! विशेष-विशेष एकाग्र होते-होते वे वीतरागता को प्राप्त करते हैं। आहाहा! वे वीतरागता को प्राप्त करते हैं। बारहवें गुणस्थान में चले जाते हैं, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! अन्दर चैतन्यधाम महाप्रभु प्रगट व्यक्त है। आहाहा! मुनियों का तो उसमें निवास है। आहाहा! शरीर और राग में निवास नहीं है। अशरीरी और अरागी स्वरूप में निवास है। उसमें एकाग्रता बढ़ते-बढ़ते वीतराग हो जाते हैं। वे पंच महाव्रत के विकल्प पालते-पालते वीतराग हो जाते हैं, ऐसा नहीं है। बीच में आता है, छठी भूमिका में (ऐसा विकल्प आता है)। निजात्मधाम में निवास होने पर भी, विकल्प आता है परन्तु उसमें उनका वास नहीं है। आहाहा! वे सुहाते नहीं हैं, इसलिए भगवान आनन्द के धाम में विशेष-विशेष एकाग्रता होते... आहाहा! वीतरागता हो जाती है। ऐसी वस्तुस्थिति है। आहाहा!

वे वीतरागता को प्राप्त करते हैं। आहाहा! वीतराग जिनबिम्ब स्वभाव में निवास करते-करते, एकाग्र होते-होते पर्याय में विशेष वीतरागता हो जाती है। पूर्ण वीतरागता हो जाती है। मुनिपने में वीतरागता थी परन्तु वह अभी अपूर्ण थी। आहाहा! वीतराग सम्यग्दर्शन वह भी वीतराग पर्याय है और सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी वीतरागी पर्याय है। आहाहा! ऐसी वीतरागी पर्याय में अर्थात् स्वरूप के निजात्मध्यान में एकाग्र होते-होते वीतरागता प्राप्त होती है। आहाहा!

वीतरागता होने से... और अन्तर में वीतरागदशा होने से, उन्हें ज्ञान की अगाध अद्भुत शक्ति प्रगट होती है। आहाहा! यह केवलज्ञान। ...बापू! वीतरागता होने से उन्हें

ज्ञान की अगाध अद्भुत शक्ति प्रगट होती है। आहाहा! स्वभाव में जो अगाध अद्भुत शक्ति थी, उसमें वीतरागता होने से पर्याय में... आहाहा! वह अद्भुत शक्ति पर्याय में प्रगट होती है।

मुमुक्षु : वीतरागता के कारण प्रगट हुई, वह तो चारित्रगुण की पर्याय हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चारित्र की पर्याय, परन्तु वीतरागता से केवलज्ञान होता है न? ऐसा कहा जात है न? वास्तव में तो केवलज्ञान त्रिकाली के आश्रय से होता है, परन्तु यहाँ साधन लेना है न! व्यवहार साधन नहीं, निमित्त साधन नहीं, यह बताने को (बात है)। आहाहा! वरना तो केवलज्ञान है, वह वीतरागी पर्याय से नहीं होता। जो केवलज्ञान की उत्पत्ति है... आहाहा! वह तो त्रिकाली अनन्त ज्ञान के स्वभाव में एकाग्र होने से वह होता है। द्रव्य में से होता है, वीतराग की पर्याय में से भी नहीं, परन्तु यहाँ साधन बताना है। आहाहा! स्वरूप चैतन्यस्वरूप जो भगवान, उसमें एकाग्र होने से जो सम्यग्दर्शन हुआ; विशेष एकाग्रता होने से चारित्र हुआ; उसमें विशेष एकाग्रता होने से वीतरागता होती है। आहाहा! और उस वीतरागता से बाद के कदम में केवलज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! बारहवें गुणस्थान में वीतरागता होती है और पश्चात् तेरहवें (गुणस्थान में) केवलज्ञान होता है न? भाषा तो ऐसी ही ली जाती है न? मोक्षमार्ग से मोक्ष होता है, मोक्षमार्ग से केवलज्ञान होता है। मोक्ष अर्थात् मोक्ष - केवलज्ञान। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे साधन बताना हो, वहाँ बाहर, आहाहा! पंच महाव्रत आदि के विकल्प को साधन कहा है परन्तु वह वास्तव में साधन नहीं है। वह तो व्यवहारनय का कथन है। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़ती हैं। वीतरागता साधन है, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। वास्तविक साधन तो अन्दर में करण नाम का, साधन नाम का गुण पड़ा है, इससे उस द्रव्य का अवलम्बन उग्र लेने से केवलज्ञान होता है। आहाहा! परन्तु साधन कहना अभी तो ऐसा कहा जाए न? मोक्षमार्ग कहना हो, तब मार्ग से मुक्त होता है, ऐसा कहा जाता है न? आहाहा! अभाव होकर होता है और भाव से होता है - त्रिकाल स्वभाव के भाव से होता है। आहाहा!

भगवान अनन्त-अनन्त ज्ञानस्वभाव का अपरिमित अतिशय स्वभाव का सामर्थ्यवाला

तत्त्व है। आहाहा! उस अनन्त-अनन्त अतिशय का ज्ञानस्वरूप प्रभु, उसमें से केवलज्ञान की पर्याय आती है। कोई वीतरागपर्याय गयी, उसमें से नहीं आती, परन्तु कहा जाता है, साधन कहना हो तो क्या कहा जाता है न? समझ में आया? आहाहा! मोक्षमार्ग है, वह मोक्ष का कारण है, ऐसा कहा जाए न? मोक्ष अर्थात् केवलज्ञान, उसका कारण है मोक्षमार्ग। समझाना हो साधकपना, फिर साध्य क्या आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। प्रभु... प्रभु! लोगों को कठिन लगती है। मुनि की दशा ऐसी वर्णन की जाए, तब ऐसा लगता है कि ये मुनि यह व्यवहारक्रिया करते हैं, वे सब मुनि नहीं? प्रभु! ऐसा रहने दे, भाई! भाई! सूक्ष्म बात, बापू! अभी सम्यग्दर्शन (किसे कहना, वह खबर नहीं)। द्रव्य का अन्तर में आश्रय करने से (सम्यग्दर्शन) होता है।

मुमुक्षु : कोई भी धर्म की पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ही यह है। उसे कोई राग की मन्दता की क्रिया थी, इसलिए यह सम्यक् होता है, (ऐसा नहीं है)। यह निरपेक्ष कहा है न नियमसार में? भाई! दूसरी गाथा में। आहाहा!

मुमुक्षु :ध्यान में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान में होता है। परन्तु यहाँ तो निरपेक्ष। स्वरूप जो भगवान आत्मा खजाना अन्दर भरा है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता उस खजाने में से... आहाहा! सम्यग्दृष्टि ने खजाना खोल डाला है। राग की एकता का ताला था, उसे तोड़ डाला है। आहाहा! इसलिए उस खजाने में एकाग्र होने से वीतरागता प्रगट होती है और फिर वीतरागता प्रगट होकर केवलज्ञान होता है। आहाहा! ऐसा कहना है। भारी कठिन काम। इसे ज्ञान तो करना पड़ेगा न कि भाई! केवलज्ञान कैसे होगा? मोक्ष कैसे होगा? मोक्ष, मोक्ष के मार्ग से होता है। ऐसे कथन में क्या आवे? आहाहा!

यह मोक्षमार्ग अर्थात् क्या? भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, चैतन्य रत्नाकर के सन्मुख से निर्विकल्प प्रतीति होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! उसके सन्मुख में जो उसका ज्ञान हुआ, उसका नाम तो आत्मज्ञान है और उसके सन्मुख में स्थिर होने से, अवलम्बन लेकर स्थिर होने से चारित्र अर्थात् मुनि की वीतरागदशा प्रगट होती है। आहाहा! वह वीतरागदशा भी अपूर्ण है। इसलिए अन्दर की एकाग्रता विशेष बढ़ते-

बढ़ते पूर्ण वीतरागता होती है, ऐसा बताना है। आहाहा! अरे रे! क्या हो? अनन्त काल का अनादि का भटका (है)। इसे मूल तत्त्व की महिमा ही नहीं आती क्योंकि इसे समस्त क्रीड़ायें अनादि से पर्याय में हैं। जो प्रगट पर्याय है, उस अंश पर सब व्यवहार। आहाहा! परन्तु अंश के पीछे प्रभु बड़ा ध्रुव भगवान है, उसकी महिमा नहीं आकर राग की क्रिया और दया, दान के भाव की महिमा आती है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त-अनन्त ज्ञान में भगवान भरपूर प्रभु आत्मतत्त्व, अनन्त-अनन्त ईश्वर / प्रभुता की शक्ति, जिसका कोई खण्डन नहीं कर सकता, (ऐसा) स्वतन्त्रता से शोभायमान ऐसा जिसका अन्तरगुण, अनन्त अपार गुण है। आहाहा! ऐसे भगवान के प्रति अन्तर में एकाग्रता, वह तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। विशेष एकाग्रता, वह चारित्र; विशेष एकाग्रता, वह वीतरागता। आहाहा! और पश्चात् भी, वीतराग पर्याय प्रगट हुई, पश्चात् भी अन्तर में विशेष एकाग्रता, वह केवलज्ञान है। यहाँ तो वीतरागता के पश्चात् यह होता है, ऐसा बतलाना है न? आहाहा! मार्ग सूक्ष्म है, भाई! इसके जन्म-मरण के अन्त की बातें (सूक्ष्म है), बापू! आहाहा!

ज्ञान का अन्तर्मुहूर्त का स्थूल उपयोग छूटकर... आहाहा! वीतरागता होकर पश्चात् केवलज्ञान हो, वह ज्ञान का अन्तर्मुहूर्त का स्थूल उपयोग पहले था, वह छूटकर एक समय का सूक्ष्म उपयोग हो जाता है। आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्यवाँ भाग एक समय। आहाहा! जो नीचे असंख्य समय का उपयोग स्थूल था.. आहाहा! उसे आत्मा को पकड़ने के काल में सम्यग्दर्शन के काल में भी जो सूक्ष्म उपयोग था, वह भी अभी स्थूल है। आहाहा! अन्दर में सूक्ष्म उपयोग पर्याय का हो, तब अन्दर में जाए, भगवान सम्यग्दर्शन की ओर। आहाहा! यह तो उससे भी अब (सूक्ष्म उपयोग हुआ)। उस समय भी उपयोग का काल तो असंख्य समय का था। भले एक समय में पकड़ में आये परन्तु उसमें उपयोग असंख्य समय लगे, असंख्य समय में इसे ख्याल में आता है। आहाहा! और यह शुद्ध उपयोग टलकर जहाँ वीतरागता होकर अन्दर केवलज्ञान होता है, तो एक समय का उपयोग हो गया। आहाहा! वह तो पर्याय-पर्याय की स्वतन्त्रता। आहाहा! वास्तव में तो केवलज्ञान उत्पन्न होने का निज क्षण है। कठिन काम, बापू! जिसे अपना करना हो, उसकी बातें हैं, भाई! आहाहा! एक समय का उपयोग अर्थात् क्या? आहाहा!

सूक्ष्म उपयोग हो जाता है। वह ज्ञान अपने क्षेत्र में रहकर... असंख्य प्रदेशी प्रभु आत्मा में रहकर। आहाहा! सर्वत्र पहुँच जाता है... तीन काल-तीन लोक को (निज) क्षेत्र में, अपने में रहकर जानता है। परक्षेत्र में उसे जानने नहीं जाना पड़ता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी धाम चैतन्य में रहकर एक समय का उपयोग सबको जानने पहुँच जाता है। आहाहा! सर्वत्र पहुँच जाता है अर्थात्? अपने क्षेत्र में रहकर ज्ञान सबको जान लेता है, ऐसा। आहाहा! उसे केवलज्ञान कहते हैं। आहाहा! अभी तो केवलज्ञान में कितनों को विवाद है। सर्वज्ञ ऐसे तीन काल-तीन लोक को सब जाने, ऐसा नहीं। वर्तमान में जिसमें जानने की सर्वोत्कृष्ट विशेष दशा है, वह सर्वज्ञ है। महेन्द्रकुमार पण्डित कहता था, पण्डित था वह। आहाहा!

जिसका ज्ञानस्वभाव, उसकी जहाँ पर्याय पूर्ण प्रगट हुई, भले एक समय की हो, वह पर्याय अपने क्षेत्र में रहकर तीन काल-तीन लोक को जानने में पहुँच जाती है। आहाहा! समझ में आया? सर्वत्र पहुँच जाती है अर्थात् अपने क्षेत्र में रहकर दूसरे को जानती है, ऐसा। पहुँच जाती है अर्थात् वहाँ (जाती है), (ऐसा नहीं है)। आहाहा!

देखो! यह परमेश्वर सर्वज्ञ पर्याय की ताकत! आहाहा! प्रभु! तू सर्वज्ञस्वरूपी ही है। आहाहा! तेरा स्वरूप ही सर्वज्ञस्वभाव है। 'ज्ञ' स्वभाव कहो, सर्वज्ञस्वभाव कहो, ज्ञान पूर्ण स्वभाव कहो, ऐसा भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी ही है। उसका आश्रय लेकर, अन्तिम में अन्तिम आश्रय लेकर जो सर्वज्ञस्वभाव है, उसमें से सर्वज्ञपर्याय आती है। आहाहा! आहाहा! शक्ति में से व्यक्ति प्रगट होती है। ऐसा बहुत सूक्ष्म, बापू! वीतराग परमेश्वर का मार्ग, सम्यग्दर्शन से लेकर केवली तक बहुत सूक्ष्म मार्ग है। आहाहा!

लोकालोक को जान लेता है—पहुँच जाता है... उसका अर्थ यह। लाईन की है न? अर्थात् कि लोकालोक को जान लेता है। आहाहा! अपने स्थान में रहकर दूसरे स्थान-लोकालोक को स्वयं स्थान में रहकर जान लेता है। आहाहा! जैसे एक मनुष्य मकान में खड़ा हो और दूसरी चीज़ को जानता है, वह मकान में खड़े-खड़े जानता है, वहाँ जाकर नहीं जानता। आहाहा! देखो! यह केवलज्ञान की ताकत! परमेश्वर अरिहन्त हुए। आहाहा!

कहते हैं कि वीतरागस्वरूपी प्रभु आत्मा जिनबिम्ब को पहले पकड़ा, तब एकाग्र होकर सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! जिनबिम्ब में विशेष एकाग्र हुआ, तब चारित्र हुआ।

चारित्रदशा उसे कहते हैं। आहाहा! विशेष एकाग्र होने पर पूरी वीतरागता हो गयी और एकाग्र विशेष अंश में होने पर केवलज्ञान हो गया। वीतरागता के बाद हुआ; इसलिए वीतरागता से हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसा उपदेश। यह क्या कहते हैं? ऐसा यह मार्ग होगा? वह तो व्रत करो और अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो और यात्रा करो... ऐसा समझ में तो आवे। क्या समझना? बापू! वह तो बहिर्लक्षी, बहिर्लक्षी क्रिया के भाव तो राग, विकार है। आहाहा! अन्तरलक्षी के परिणाम जो प्रगट हों, आहाहा! वह वीतरागता होती है। बहिर्लक्षी की क्रियाएँ तो रागवाली है। आहाहा!

अन्तर भगवान पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! उसके समीप में जाने से (वीतरागता होगी)। उससे दूर वर्तकर राग में रहने से बन्धन और अज्ञान होगा। आहाहा! उसके समीप में जाने से अबन्ध परिणाम और ज्ञान सत्य होगा। आहाहा! अब ऐसी बातें। ऐसा मार्ग है, भाई! परमेश्वर वीतराग जिनेश्वर के तो यह कथन और यह शैली है। आहाहा! इसके अतिरिक्त दूसरी पद्धति करेगा तो प्राप्त नहीं होगा; भटकेगा। आहाहा! कि अपने तो व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो, यात्रा करो और दान दो, उससे कल्याण होगा। तीन काल में उसमें कल्याण नहीं। वह तो सब राग की, पुण्य की, पुण्यास्रव की क्रिया है, पुण्यास्रव की क्रिया है, आहाहा! निरास्रव की वह क्रिया नहीं है। आहाहा!

निरास्रव की क्रिया तो भगवान पूर्ण आनन्द का नाथ प्रभु, उसके आश्रय में जाने से जो दशा प्रगट हो, वह निराश्रय के आश्रय से निराश्रय पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! अबन्धस्वरूपी भगवान आत्मा के आश्रय से अबन्ध परिणाम प्रगट होते हैं। अबन्ध परिणाम कहो या मोक्षमार्ग कहो। ऐसे भी नियम किस प्रकार के? वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भाई! भगवान जिनेश्वरदेव इन्द्रों के समीप में ऐसा कहते थे, वह बात है। आहाहा!

भूत-वर्तमान-भविष्य की सर्व पर्यायों को क्रम पड़े बिना... आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग के समय में, एक समय में वीतरागता के भाव के पश्चात् जो केवल(ज्ञान) होता है, वह एक समय में भूत-अतीत काल, वर्तमान, भावि, इन सब पर्यायोंसहित पर्यायों का क्रम पड़े बिना (जानता है)। पहले भूत को जाने और पश्चात् भविष्य को जाने, ऐसा नहीं है। आहाहा! पहले व्यतीत हो गयी, उन्हें जाने; पश्चात् वर्तमान वर्तती को जाने; पश्चात् वर्तेगी उन्हें जाने—ऐसा क्रम नहीं है। यह तो अभी केवलज्ञान की

दशा का वर्णन है। देव, देव कैसे होते हैं? आहाहा! अरिहन्त परमेश्वर परमात्मा ऐसे होते हैं। जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में उपयोग में केवलज्ञान हुआ और वह एक समय में होने पर तीन काल के द्रव्य-गुण और पर्यायों, भूत, (वर्तमान), भविष्य, एक समय में जान लेता है। आहाहा!

एक समय में वर्तमानवत् जानते हैं,... भविष्य की पर्याय अनन्त काल के बाद होगी, उसे भी केवलज्ञान की पर्याय वर्तमानवत् जानती है। यह रही - ऐसा जानते हैं। तब कि वर्तमान नहीं, उसे वर्तमानवत् जाने, वह झूठ नहीं? अरे! सुन तो सही।

मुमुक्षु : वर्तमानवत् है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमानवत् अर्थात् है उसे जाने, ऐसा। आहाहा! केवलज्ञान परमात्मदशा, भाई! क्या है यह? आहाहा! अभी मुनिदशा क्या है, इसकी खबर नहीं होती और सम्यग्दर्शन की दशा क्या है, इसकी खबर नहीं होती, उसे यह केवलज्ञान की दशा (की कहाँ से खबर होगी)? आहाहा!

ऐसा क्रम पड़े बिना एक समय में वर्तमानवत् जानते हैं,... आहाहा! देखो! यह केवलज्ञान, वीतरागपर्याय के फलरूप यह (प्रगट हुआ)। आहाहा! स्वपदार्थ तथा अनन्त परपदार्थों की... स्व-भगवान आत्मा, उसकी भी त्रिकाली पर्यायें... आहाहा! वर्तमान भगवान आत्मा का ज्ञान केवल, भूत की पर्याय अपनी वर्तमान और भविष्य की। आहाहा! ओहोहो! भविष्य की केवलज्ञान की पर्याय जो ऐसे पर्याय.. पर्याय.. पर्याय.. पर्याय.. उसे भी वर्तमान में जान लेती है। अपनी भविष्य की पर्याय केवलज्ञान की वर्तमान... बापू! अलौकिक बातें हैं, भाई! आहाहा! जिसकी ज्ञान की दशा भविष्य में जो केवलज्ञान.. केवलज्ञान.. केवलज्ञान.. केवलज्ञान.. दर्शन.. दर्शन.. दर्शन.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. रहेगा, उसे यहाँ वर्तमान में जान लेते हैं। आहाहा! क्या है यह? समझ में आया?

भाई! तत्त्व की वस्तु यह है। द्रव्यतत्त्व, गुणतत्त्व और पर्यायतत्त्व इतना है, ऐसा बताते हैं। आहाहा! द्रव्य-गुणतत्त्व तो परिपूर्ण शक्ति का सागर भगवान है। ऐसी शक्ति के सामर्थ्य के अवलम्बन से; किसी क्रियाकाण्ड से नहीं। ऐसा जो परमात्मा भगवानस्वरूप है, उसके अवलम्बन से वीतरागता होती है, उसके अवलम्बन से केवलज्ञान होता है। वह केवलज्ञान भी अपनी भूत और भविष्य की और वर्तमान की पर्याय को (जानता है)। आहाहा!

स्वद्रव्य जाना कब कहलाये ? कि तीन काल की पर्यायें भी उन्हें वर्तमान में जानने में आ गयी। आहाहा! भविष्य की अनन्त पर्यायें अन्त में, अन्त में, अन्त में तो है नहीं कहीं। यह केवलज्ञान... केवलज्ञान... केवलज्ञान... अन्तिम केवलज्ञान की पर्याय कौन सी ? अन्तिम थी कब ? आहाहा! आहाहा! और पहली पर्याय कौन सी ? अरे! पहली कौन सी ? आहाहा! द्रव्य पहला और पर्याय बाद में, ऐसा है ? आहाहा! द्रव्य भी अनादि और पर्याय अनादि उसके साथ है। आहाहा! जैनदर्शन तत्त्व का दर्शन है, तत्त्वदर्शन है, वह विश्वदर्शन है। आहाहा! स्वभाव को बतलानेवाला दर्शन है। आहाहा!

यह भगवान आत्मा अपनी जहाँ वीतरागदशा स्व के अवलम्बन से प्रगट की, तब उसे केवल (ज्ञान) हुआ। आहाहा! वह केवलज्ञान वर्तमान और भविष्य की अपनी पर्याय सब जानता है। आहाहा! जिनका अन्त नहीं, आनन्द की पर्याय पूर्ण प्रगट हुई, केवल पर्याय पूर्ण प्रगट हुई, वह पर्याय.. पर्याय.. पर्याय.. पर्याय.. ऐसे भविष्य में कहीं अन्त नहीं है, उसे वर्तमान में वर्तमानवत् जान ले। भाई! यह क्या है ? बापू! इसका द्रव्य-गुणस्वभाव तो अलौकिक, परन्तु इसका पर्यायस्वभाव अलौकिक, भाई! आहाहा! जिसमें कुछ राग को, विकल्प को अवकाश नहीं। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा एक समय में परमात्मदशा प्राप्त होने पर वीतरागभाव का फल। क्रियाकाण्ड के राग का फल तो बन्धन है। अबन्धपरिणामी भगवान के आश्रय से अबन्ध पूर्ण पर्याय प्रगट हुई, उस पर्याय की इतनी ताकत है कि भूत और भविष्य अपनी भी अनन्त पर्यायें यह, तथा अनन्त परपदार्थों की—अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मायें, और अनन्त केवली और सिद्ध। आहाहा! उनकी तीनों काल की पर्यायें। सिद्ध भगवान हैं, उनकी भी भूतकालीन पर्याय, भविष्य की पर्याय (जानता है)। आहाहा!

तीनों काल की पर्यायों के अनन्त-अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदों को... आहाहा! क्या कहते हैं ? सिद्ध का केवलज्ञान, उस केवलज्ञान में भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद है। क्योंकि केवलज्ञान अनन्त को जाने, तब उस पर्याय के अंश के ताकत के खण्ड से देखो तो अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद (होते हैं)। जिसका खण्ड न हो, ऐसा छोटे में छोटा अंश एक पर्याय में, हों! अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसे जगत की पर्यायें जो केवली आदि की या दूसरे आत्माओं का भविष्य का केवलज्ञान होगा, उनकी

पर्यायों का... आहाहा! उन्हें केवलज्ञान अनन्त द्रव्य को, अनन्त गुण को, अनन्त पर्याय को और एक-एक पर्याय में अनन्त-अनन्त अंशरूप ताकत (रूप से) अविभाग है।

अनन्त-अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदों को एक समय में प्रत्यक्ष जानते हैं। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव... आहाहा! हुए कैसे? कि वीतरागभाव से हुए हैं। है वह कितनी ताकतवाला तत्त्व है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक समय में अपनी भूतकाल-गतकाल की अनन्त पर्याय आदिरहित, अन्तरहित, उसे जाने और उन पर्यायों में भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद है, उन्हें जाने। अनन्त दूसरे पदार्थों के एक-एक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं। ऐसी भूत, भविष्य की पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं... आहाहा! उन्हें जाने। पर के अवलम्बन बिना, अपने क्षेत्र में रहकर, एक समय की काल की मर्यादा में रहकर। आहाहा! अपनी पर्याय एक समय में रहकर तीन काल-तीन लोक को जानती है। आहाहा! यह केवलज्ञान की वस्तु ऐसी है। केवली हैं और अरिहन्त हैं न... परन्तु क्या अरिहन्त? बापू! आहाहा!

ऐसे अचिन्त्य महिमावन्त केवलज्ञान को... ऐसे अचिन्त्य महिमावन्त केवलज्ञान को वीतराग मुनिराज प्राप्त करते हैं। अन्तर के आनन्द के कन्द को जागृत करके वीतरागभाव से परिणमते सन्त इस केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं। बहुत (सरस) व्याख्या आयी है, आहाहा! बहुत आ गया, (बहिन की) पुस्तक में, एक में बहुत आ गया है। आहाहा!

द्रव्य की-वस्तु की ताकत की तो क्या बात करना, उसके गुण की तो क्या बात करना! एक गुण की, एक ज्ञान की, एक समय की पर्याय में अपने भूत-भविष्य की अपनी केवल पर्याय है, उसे यहाँ वर्तमान में जानते हैं। अनन्त जीव हुए हैं, उनमें अनन्त को सिद्धपद हुआ और वह पर्याय सिद्ध की ऐसी की ऐसी रहेगी, (उसे भी जानते हैं)। आहाहा! अनन्त जीव अभी निगोद में पड़े हों, वे भी निकलकर केवलज्ञान को प्राप्त करेंगे। उनके केवलज्ञान की पर्याय का जहाँ अन्त नहीं, उसे भी वर्तमान में सर्वज्ञ जान सकते हैं। आहाहा! यह कोई तर्क का या विकल्प का विषय नहीं है। आहाहा! स्वभाव में स्वभाव का गर्भ अनन्त है। आहाहा!

ऐसा कहा न? 'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं' (प्रवचनसार, गाथा

८०)। जो कोई अरिहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय को जाने, वह अन्दर में अपने आत्मा को जानता है क्योंकि वह आत्मा था और आत्मा है, उसमें से उन्होंने प्रगट किया है। मैं भी आत्मा हूँ। ऐसा ही जैसा उनका आत्मा, उतना ही मेरा आत्मा; जितने उनके गुण, उतने ही मुझमें गुण; उनकी पर्याय जो प्रगट हुई (वह) अन्तर द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुई है। इसलिए मेरा द्रव्य, गुण का आश्रय मैं पूर्ण करूँ तो केवलज्ञान प्रगट करूँ। आहाहा! ऐसी बात है। कितनों ने तो यह बात पहले सुनी भी नहीं होगी। बापू! वीतराग तीन लोक के नाथ... आहाहा! महावीर आदि तीर्थंकर, सीमन्धर प्रभु आदि वर्तमान में विचरते हैं, उनका यह कथन है। समझ में आया? आहाहा!

केवलज्ञान प्रगट होने पर, जैसे कमल हजार पंखुरियों से खिल उठता है...
कमल, कमल हजार पंखुड़ियों से ऐसे खिल उठता है; इसी प्रकार भगवान अनन्त गुण से है, अनन्त गुण से पर्याय में खिल उठता है। आहाहा! हजार पंखुड़ियों का कमल जैसे खिलकर ऐसे बाहर निकले; वैसे भगवान अनन्त गुण प्रभु में पड़े हैं, वे पर्याय में खिल निकलते हैं। आहाहा! अरे! भाई! ऐसी वस्तु को मानना, जानना भी अपूर्व पुरुषार्थ है। आहाहा! उसका अन्दर में विश्वास आना। ऐसी बातें अजब की, गजब की, उनका विश्वास। आहाहा! वह तो निर्विकल्प दृष्टि होने पर विश्वास आता है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। अरे! इसमें वाद-विवाद को स्थान कहाँ है? आहाहा! एकान्त है, एकान्त है, बस एक ही बात (करते हैं)। सोनगढ़ का सिद्धान्त, सोनगढ़ का एकान्त है। अरे! प्रभु! तुझे एकान्त कहने में देर नहीं लगती, परन्तु बापू! यह भगवान का सिद्धान्त है। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ अन्दर बिम्ब—जिनबिम्ब प्रभु के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है। भगवान के दर्शन से और व्रत-तप के कारण से सम्यग्दर्शन नहीं होता। इसे एकान्त कहते हैं। यह करते-करते होगा। भगवान! यह तो राग की क्रिया है न! प्रभु! इसमें से वीतरागता कहाँ से होगी? आहाहा! भगवान जिनबिम्ब प्रभु अन्दर है न! आहाहा! और पर्याय में वीतरागता प्रगट करना है, उसे तो जिनबिम्ब का अवलम्बन लेने से होगी। लाख क्रियाकाण्ड करे और दया, दान, व्रत (करे), वे सब बन्ध के कारण हैं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! यह कहना चाहते हैं इसमें।

केवलज्ञान प्रगट होने पर, जैसे कमल हजार पंखुरियों से खिल उठता है

तदनुसार, दिव्यमूर्ति चैतन्यदेव... दिव्य शक्ति का भण्डार भगवान आत्मा अचिन्त्य शक्ति, अचिन्त्य शक्ति ऐसी दैवी शक्ति भगवान स्वयं (धारण करता है)। आहाहा! चैतन्य दिव्यमूर्ति चैतन्यदेव अनन्त गुणों की अनन्त पंखुरियों से खिल उठता है। अनन्त गुणों की अनन्त पंखुरियाँ। एक-एक गुण की पर्याय। आहाहा! अनन्त गुणों की अनन्त पंखुरियों से खिल उठता है। आहाहा!

केवलज्ञानी भगवान चैतन्यमूर्ति के ज्ञान-आनन्दादि अनन्त गुणों की पूर्ण पर्यायों में सादि-अनन्त केलि करते हैं;... अब आनन्द में रमते हैं, ऐसा कहते हैं। केवलज्ञानी भगवान चैतन्यमूर्ति, भगवान चैतन्यस्वरूप; मूर्ति अर्थात् स्वरूप, के ज्ञान और आनन्द आदि जो अनन्त गुण हैं, अनन्त-अनन्त गुणों की शक्ति जो अनन्त है गुणों की, उसकी पूर्ण पर्यायों में (खिलावट हो गयी।) आहा! बहुत आ गया। एक साथ सब आ गया।

अनन्त-अनन्त चैतन्यदेव भगवान, उसके जो अनन्त गुण-अपार गुण, जिसके गुण का छोर / अन्त नहीं कि यह गुण अन्त में है, यह अन्तिम है। उसका अन्त नहीं, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आहाहा! उसकी पूर्ण पर्यायों में, उसकी पूर्ण दशा में भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर सादि-अनन्त केलि करते हैं। जब से केवलज्ञान प्रगट हुआ, तब से आदि हुई, अब अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहनेवाला है। आहाहा!

सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में,
अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो, आहाहा!
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि की ऐसी भावना होती है। आहाहा! 'सादि अनन्त-अनन्त' समाधि आनन्द। समाधि सुख में, अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो,.. आहाहा! ऐसा सादि-अनन्त पद। आहाहा! उसमें वे केलि करते हैं, आनन्द में रमते हैं प्रभु। आहाहा! सिद्ध क्या करते हैं? आनन्द में अतीन्द्रिय आनन्द पर्याय में, रमत में रमते हैं। आहाहा! एक व्यक्ति पूछता था, नहीं? वढ़वाण का। मुम्बई में है न? सिद्ध क्या करते हैं, कहे? आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द, और अनन्त गुण-पर्याय का वेदन (करे)। बस! हम यहाँ इतना काम दूसरों का करते हैं, इतने बड़े हुए वे कुछ नहीं? ऐसा प्रश्न किया। (संवत्) १९९४ के पहले की बात है। हीराभाई के मकान में थे। कुछ खबर नहीं होती। सिद्ध भगवान हुए, वे

क्या करते हैं ? कहा, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. पर्यायें निर्मल प्रगट हुई हैं, उनका वेदन करते हैं । किसी का कुछ नहीं करते ?

मुमुक्षु : आपकी बहियों में है कहाँ किसी का करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान के तत्त्व में नहीं है । कोई तत्त्व अपने कार्य बिना खाली नहीं है, तो अब कार्य स्वयं करे और दूसरा करे, ऐसा आया कहाँ ? आहाहा ! प्रत्येक पदार्थ अपनी वर्तमान पर्याय जो है, उस कार्य का कर्ता वह है । अब फिर दूसरा पदार्थ उसका कर्ता वह है, उसमें यह पर का कहाँ से करे ? आहाहा ! पर का करे नहीं किसी का और पर को जाने बिना रहे नहीं पर का । आहाहा ! ऐसी बातें हैं, बापू ! जैनधर्म, यह कोई पक्ष नहीं, यह कोई वाड़ा नहीं; यह तो वस्तु का स्वरूप है । आहाहा !

निजधाम के भीतर... निजधाम सुखधाम ज्योति स्वयं सुखधाम प्रभु, ऐसे निजधाम के भीतर शाश्वतरूप से विराज गये हैं,... शाश्वतरूप से विराज गये अनन्त काल, बस । आहाहा ! उसमें से कभी बाहर आते ही नहीं । ऐसा कहे, सिद्ध होने के बाद और यहाँ भक्तों को कष्ट पड़े और अवतार धारण करे । यह गीता में आता है न ? ऐसा नहीं है । आहाहा ! पूर्णानन्द की प्राप्ति पूर्ण स्वरूप के अवलम्बन से हुई, वह पूर्ण पर्याय में आनन्द में वेदते हुए बाहर नहीं निकलते । कभी बाहर आते ही नहीं । अन्दर में आनन्द में रमे, उसे परमात्मपद कहते हैं और परमात्मपद का उपाय स्वद्रव्य के अवलम्बन से होता है, यह उसका उपाय है । विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

आसोज कृष्ण-३, गुरुवार, दिनाङ्क १९-१०-१९७८
वचनमृत-३३१ से ३३३ प्रवचन-१२४

कहीं रुके बिना 'ज्ञायक हूँ' इस प्रकार बारम्बार श्रद्धा और ज्ञान में निर्णय करने का प्रयत्न करना। ज्ञायक का घोटन करते रहना ॥३३१॥

३३१, यहाँ तक आया है न? ३३०। कहीं रुके बिना... निमित्त में या राग में या एक समय की पर्याय में रुके बिना। आहाहा! 'ज्ञायक हूँ'.. मैं एक ज्ञायक वस्तु हूँ। ध्रुव ज्ञायक, नित्य ज्ञायक, सदृशरूप त्रिकाली ज्ञायक, वह मैं हूँ। इस प्रकार बारम्बार श्रद्धा और ज्ञान में निर्णय करने का प्रयत्न करना। आहाहा! यह बात है एकदम। यहाँ अभी कहा गया न? कर्तृत्वशक्ति। वह तो उस भाव के ऊपर से यह विचार आया था। भावअभाव। दो जगह आया और तीसरी जगह यह (आया)। ३२ में भावअभाव। ३६ में भावअभाव और यहाँ आया है कर्तृत्वशक्ति में। आहाहा!

तू पर्याय में ऐसा निर्णय कर और उस पर्याय का काल है। आहाहा! सम्यग्दर्शन के निर्णय का यह काल है। आहाहा! क्योंकि यह सम्यग्दर्शन की जो पर्याय है, वह त्रिकाली ज्ञायक के निर्णय से होती है। यह इसका अर्थ यह है कि ज्ञायकभाव में कर्तृ नाम का एक गुण-शक्ति है, कर्ता और कर्तृ जरा भाई ने पूछा था, भाई! कर्ता और कर्तृ क्या मस्तिष्क में... वे कहे, बोला जाता है ऐसा। गुजराती में ऐसा कहा है। हिन्दी में ऐसा आया है। मुझे तो कर्ता और कर्तृ क्यों आया इतना? मस्तिष्क में विचारते हुए (ऐसा आया)। और वह भी ऐसा विचारते हुए कि कर्तृत्वशक्ति है, उसकी सामर्थ्य अनन्त है। आहाहा! और उस कर्तृत्वशक्ति का सामर्थ्य अनन्त (शक्तियों में) है। ज्ञानगुण में भी उस कर्तृत्वशक्ति का रूप है। ज्ञानगुण, ज्ञायक में, ज्ञानगुण में वह भी एक शक्ति है। आहाहा! इससे वह पर्याय जिस समय में,

सम्यग्दर्शन आदि जिस समय में होनेवाली परन्तु उसका निर्णय करने के लिए द्रव्य पर लक्ष्य जाना चाहिए। सम्यग्दर्शन की पर्याय तो क्रमसर के काल में होनेवाली है, वह होगी परन्तु वह होती है कैसे ? कि ज्ञायकभाव पर नजर पड़ने से ज्ञायकभाव में वह कर्तृत्व नाम का गुण है, ज्ञानगुण आदि में। आहाहा ! उसके श्रद्धागुण में भी कर्तृत्व नाम का रूप है। आहाहा ! गजब बात है। अमृतचन्द्राचार्य ने गजब काम किया है ! केवलज्ञानी का भाव भरा है। आहाहा !

भगवान आत्मा ज्ञायक हूँ—ऐसा निर्णय सम्यग्दर्शन में होता है, वह वास्तव में तो वह पर्याय उस काल में होनेवाली ही थी, परन्तु वह होनेवाली थी, इसका निर्णय किसके सन्मुख देखकर हुआ ? इस ज्ञायक के सन्मुख देखकर हुआ। उसे पलटने की पर्याय मात्र इस ओर ढालना, इतना करना है। क्या कहा ? जिस समय में सम्यग्दर्शन होता है, उस समय में होगा, उसमें कुछ फेरफार नहीं है, परन्तु उसका अर्थ क्या ? आहाहा ! उस सम्यग्दर्शन की पर्याय का निर्णय पर्याय, ज्ञायकभाव के लक्ष्य से होती है। उसका पलटा मात्र किया है। पर्याय तो उस समय में होगी परन्तु वह पर्याय उस समय में होगी, ऐसा जो निर्णय ज्ञायक के अवलम्बन से हुआ है। सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

इस ज्ञायकस्वरूप में कर्तृत्व का एक गुण है कि जिससे सम्यग्दर्शन की पर्याय उस काल में होगी, यह तो बराबर है परन्तु हुई तब किस प्रकार से हुई ? कि भाव नाम का गुण है, उसके कारण वह पर्याय भावरूप होगी ही। आहाहा ! उस पर्याय में होती है उस समय में—ऐसा कब ख्याल में आता है ? कि ज्ञायक की ओर उन्मुख होने पर जिसमें पर्याय होने का गुण जिसमें है.. आहाहा ! ऐसे ज्ञानगुण में भी पर्याय सम्यग्दर्शन श्रद्धा में भी उस काल में श्रद्धापर्याय की शक्ति का गुण है। आहाहा !

श्रद्धागुण में कर्तृत्व का भाव-रूप है, तो वह श्रद्धा की पर्याय ऐसा जो भाव, वह उस काल में होनेवाला वह होनेरूप सिद्धभाव, उसका भावकपना, वह उसके गुण में है। क्या कहा ? उसके गुण में है अर्थात् कि उसके द्रव्य में है। आहाहा ! ऐसी बात है। मूल झगड़ा.. झगड़ा.. झगड़ा.. अरे ! प्रभु ! भाई ! यह तो झगड़ा मिटाने की पद्धति है। आहाहा ! अन्तर में से आया नहीं, बाहर से सुना हुआ नहीं। आहाहा ! और यह गुरु से सुने बिना या संस्कार के बिना यह बात अपने आप नहीं जँचती, ऐसी बात है। आहाहा !

मैं ज्ञायक हूँ – ऐसा जो निर्णय, वह ध्रुव के लक्ष्य से निर्णय (हुआ), वह सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन की पर्याय में उस काल में सम्यग्ज्ञान की पर्याय भी साथ में प्रगट हुई। आहाहा! उस काल में स्वरूपाचरण की स्थिरता का अंश भी तब प्रगट हुआ, वह तभी होनेपनेरूप-सिद्धरूप अर्थात् निश्चितपने की पर्याय, ऐसा जो भाव। पर्याय को वहाँ भाव कहा। भाव का भावकपना, द्रव्य के भाव का भावकपना है। गुण (कहा भले) परन्तु गुण (अर्थात्) वास्तव में पूरे गुण का समुदाय, वह द्रव्य, वह भावक के भाव का करनेवाला है। आहाहा!

वास्तव में तो जो पर्यायरूपी भावकभाव, उसका पर्यायभाव, पर्याय में भावकभाव दो है। आहाहा! पर्याय उस समय भावक होकर भाव हुआ है। पर्याय भाव, उसका भावक वह पर्याय, ऐसी बात! क्योंकि षट्कारकरूप से सम्यग्दर्शन का परिणमन हुआ, उस पर्याय में षट्कारकरूप से परिणमन हुआ है। जरा सूक्ष्म है, प्रभु! परन्तु सत्य मार्ग ऐसा है, हों! आहाहा! इसे तो द्रव्य पर देखना है। ऐसा देखने से सब पर्याय उस काल में होनेवाली वह होगी उस काल में। सूक्ष्म बातें हैं, भाई! यह कोई विद्वत्ता और बहुत पढ़ गया, इसलिए आती है, यह नहीं। आयेगा इसमें, बाद में आता है न? 'मुझे आता है,' इसका अभिमान करना नहीं, बापू! आहाहा!

लन्दन से पत्र आया है। बहुत प्रसन्नता बतायी है। मात्र बहिन के वचनमृत मिले नहीं, ऐसा लगता है। नहीं तो बहुत प्रसन्न होते। कोई होशियार व्यक्ति है, महाजन है। बहुत बड़ा पत्र (आया है)। वहाँ वाँचन करते हैं, बहुत होशियार व्यक्ति लगता है। उम्र भले चाहे जितनी होगी परन्तु यह मिला नहीं, किसी भी कारण से। नहीं तो वह इसे पढ़कर उन्हें प्रमोद आये बिना नहीं रहता। ऐसी यह चीज़ है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **कहीं रुके बिना...** अर्थात् कि ज्ञायकस्वरूप जो ध्रुव है, वहाँ नजर कर। उस ध्रुव में कर्तृत्वशक्ति भी पड़ी है, इसलिए उस पर्याय का कार्य और उसका कर्ता, उसमें कर्मशक्ति भी है, कार्यशक्ति है, उससे हुआ है और कर्तृत्वशक्ति है, वह भावक होकर वह भाव हुआ है। आहाहा! ऐसा है। लोग कुछ विवाद करे, ऐसा कि ज्ञान में निर्मलता होती है या हीनता होती है, वह कर्म के कारण है। ऐसा नहीं है, भाई! बापू! ऐसा मार्ग है, भाई!

बापू! तुझे दुःख लगे, माने हुए में धक्का लगे तो प्रभु! माफ करना, परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञायक अर्थात् अनन्त शक्तियों का संग्रहालय, अनन्त गुण का संग्रह का स्थान। आहाहा! उसमें कार्यशक्ति और कर्तृत्वशक्तिपना, इसका आलय-स्थान वह है। कर्तृत्वशक्ति और कार्यशक्ति का स्थान तो वह है। आहाहा! इसलिए उसका निर्णय करने में... आहाहा! लाख बात की बात (आवे) परन्तु वहाँ जाना पड़ेगा, कहते हैं। निश्चय की बात। लाख बात की (बात) निश्चय उर लाओ। चारों ओर से देखो तो, ओहोहो! जिनवाणी कोई अलौकिक है, बापू! वह जिनवाणी तो यह, हों! दिगम्बर में कही वह। अन्यत्र जिनवाणी है नहीं। आहाहा!

भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी, वह वाणी देखो तो चारों ओर से खोज करो तो इसका सीधा कर्तागुण अथवा कर्ताद्रव्य अर्थात् द्रव्य कहलाता है। बाकी उसकी पर्याय कर्ता और पर्याय कार्य। आहाहा! यह सब द्रव्य के आश्रय में लक्ष्य जाने पर होता है। ऐसी बात है। अरे! प्रभु! भाई! बहुत धीर होना पड़ेगा इसे। आहाहा! ऐसे के ऐसे वांचन कर गये और पढ़ गये बड़े पृष्ठ और पुस्तक, इसलिए इसे ज्ञान हुआ, भाई! ऐसा नहीं है। आहाहा! जिस ज्ञान में साथ में आनन्द आवे, आहाहा! कि जिस ज्ञानगुण का धारक भगवान, वही भगवान आनन्दगुण का धारक है। आहाहा! उस ज्ञायक का स्वीकार-निर्णय होने पर पर्याय में सम्यग्दर्शन होता है। उस पर्याय का भावक वह द्रव्य है अथवा गुण है अथवा उसकी पर्याय है। तीनों लेना होवे तो लिये जाते हैं।

यह निर्णय जो है, सम्यग्दर्शन का निर्णय... आहाहा! वह पर्याय का भाव... वह पर्याय का भाव, पर्यायरूप भाव, होनेपनेरूप भाव, उसरूप उस काल में प्राप्त होनेरूप भाव, सिद्ध-निश्चित भाव। आहाहा! उसके कार्यरूप कार्य नाम का एक गुण, कर्तृ कर्म नाम का गुण है, जिससे उस गुण के धारक द्रव्य की दृष्टि जहाँ हुई, इससे उसमें सम्यग्दर्शन की पर्याय का कार्य हुआ, वह कर्म नाम के गुण का कार्य है और श्रद्धागुण का वह कार्य है। श्रद्धागुण में कर्म पड़ा है न? कर्म का रूप। आहाहा! गजब बात है! और उस श्रद्धा का निर्णय सम्यक् हुआ, उसमें ज्ञायक के निर्णय में ज्ञायक में कर्तृत्व नाम का गुण है, वह गुण भावक होकर सम्यग्दर्शन की पर्याय के भाव का कर्ता भावक है। आहाहा! और उसके

आधार से, गुण जिसके आधार से रहा है, उसे कहे तो वह द्रव्य भावक है और सम्यग्दर्शन की पर्यायरूपी (कार्य है)। यह एक सम्यग्दर्शन की पर्याय पर उतारा, वैसे सब निर्मल पर्याय पर ले लेना। आहाहा! इसमें कुछ ज्यादा जानपने की आवश्यकता है या ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु: जरूरत किसकी है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरूरत है वस्तु के स्वभाव की ओर दृष्टि करने की। आहाहा! कहो, गोविन्दरामजी! ऐसी बातें हैं, प्रभु! आहाहा! अरे! प्रभु! ऐसे सत् का विरोध नहीं होता, भाई! बहुत विरोध करते हैं, ऐसा विरोध (करते हैं), नियत है, क्रम-क्रम से होता नहीं, उल्टी-सीधी नहीं होती.. अरे! भगवान! क्या करता है? प्रभु! तू। आहाहा! भाई! प्रभु! तेरे द्रव्य के स्वभाव की शक्ति की सामर्थ्य की तुझे खबर नहीं है, भाई! उसे तेरे द्रव्य की शक्ति का तू विरोध करता है। आहाहा! यहाँ तो ज्ञायकपने में भावकपना मस्तिष्क में आया था। आहाहा! धीर के काम हैं, प्रभु! यह कोई (कथा-वार्ता नहीं है)। आहाहा!

ज्ञायक हूँ—ऐसा ज्ञान में, श्रद्धा में निर्णय करने का प्रयत्न कर। **ज्ञायक का घोटन करते रहना।** आहाहा! क्योंकि उसमें कर्तृत्व, कर्म अर्थात् कार्य आदि शक्तियाँ पड़ी हैं। उन सब शक्ति का पिण्ड प्रभु है। उसका घोटन कर तो सब कार्य तेरी पर्याय में निर्मल सब आयेगा। आहाहा! सम्यग्दर्शन कार्य होगा, सम्यग्ज्ञान होगा, स्वरूपाचरण होगा, आनन्द होगा। कर्तागुण की पर्याय कार्यरूप से आयेगी, कर्मगुण का कार्यरूप से होगा, वह कर्तारूप से होगा। पर्याय में अधिकरण आधार के आधार से जो गुण है, उसकी पर्याय पर्याय के आधार से पर्याय होगी अथवा गुण के आधार से होगी अथवा द्रव्य के आधार से होगी। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है, बापू! आहाहा! लोग विरोध करते हैं न, उसके समक्ष यह अधिक मस्तिष्क में (आया था)। बापू! मार्ग यह है, भाई! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। क्रमबद्ध का विरोध करे, निमित्त से होता है, किसी समय और किसी समय उपादान से होता है। (ऐसा कहकर) इसका विरोध करे अथवा दो हो तो ही हो परन्तु वह दो तो यह तो प्रमाण का ज्ञान कराया है। होता है तो उस समय में अपनी निर्मल पर्याय, यहाँ निर्मल की बातें हैं, बापू! आहाहा! जिस समय निर्मल ज्ञान की और श्रद्धा की, शान्ति की पर्याय होती है, वह उसका होने का काल है, इसलिए हो गयी है परन्तु वह हुई है कब? - कि, ध्रुव के जोर में लक्ष्य गया, तब हुई है। क्योंकि ध्रुव में कर्तृत्व, कार्य आदि शक्तियाँ पड़ी

हैं, उन शक्तियों का परिणमन भावक होकर यह कार्य होता है। आहाहा! याद रहना मुश्किल। कितना याद रखना इसमें? अरे! बापू! याद नहीं, भाई! तेरे गुण की, द्रव्य की ताकत इतनी अधिक है, वह सब निर्मलरूप से परिणमे, ऐसी तेरी ताकत है। मलिनरूप से परिणमे, ऐसी किसी गुण और द्रव्य की ताकत है ही नहीं। आहाहा! मलिनपना तो निमित्त के वश से पर्याय में होता है, परन्तु यहाँ शक्ति का और शक्ति के धारक भगवान को जहाँ देखकर निर्णय होता है, वहाँ उस विकारी पर्याय के भाव से रहितपना, यह इसका भाव गुण है। विकारी पर्याय की क्रियाएँ, क्रिया पर्याय में (होवे), उससे रहित होना, यह इसका गुण है। सहित होना, ऐसा कोई इसका गुण नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह जो विकारी पर्याय है... पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। पर्याय में षट्कारक की विकृत अवस्था पर्याय में पर्याय से हो, ऐसा कोई गुण नहीं है। इसलिए उस गुण का धारक भगवान, वह षट्कारक की विकृत अवस्था से रहितपना, ऐसा आत्मा में भाव नाम का गुण है। आहाहा! और उस षट्कारक की परिणति के भावरूप परिणमे, ऐसी एक क्रिया नाम का गुण है। पहले में ऐसा कहा था कि विकृत अवस्थारूपी क्रिया / पर्याय का, अपनी पर्याय में अपने से (होता है)... आहाहा! वह विकृत अवस्थारूपी क्रिया, उससे रहितपना ऐसा आत्मा में भाव नाम का गुण है। आहाहा! इसलिए उस भाव का धारक द्रव्य का आश्रय ले। आहाहा! ओहोहो! चारों अनुयोगों का सार (यह है)। यह तो (ऐसा कहते हैं), करणानुयोग में ऐसा कहा है और चरणानुयोग में ऐसा कहा है। अरे भगवान! सुन न, भाई! आहाहा! तुझे ऐसा अवसर कब आयेगा भाई! आहाहा!

यह आत्मा विकारी क्रिया के समय भी पर्याय में षट्कारक से स्वतन्त्र है, परन्तु अब यहाँ उस विकारी (रूप) परिणमे ऐसा कोई गुण नहीं है, इसलिए इसमें एक भाव नाम का गुण है कि जिससे विकारी क्रिया रहितपना होना, ऐसा इसमें गुण है। विकारीरूप से होना, ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म है, पोपटभाई! ऐसा मार्ग गजब। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! अरे! प्रभु का विरह पड़ा और झगड़े खड़े हुए। आहाहा! कहते हैं कि निर्विकारी पर्याय इसकी हो-भाव, उसका भावक कौन? कि उसमें कर्तृत्व नाम का गुण है, वह भावक होकर यह निर्मल पर्याय होती है और विकारी पर्यायरहितपना होना, ऐसा इसमें भाव नामक का गुण है। विकारी (अवस्था) के काल में भी, आहाहा! जिसने

द्रव्यदृष्टि की है, ज्ञायकभाव का जिसने अवलम्बन लिया है, उसे इस विकारी पर्याय रहितपने परिणमन होता है, ऐसा इसमें यह भाव नाम का गुण है और उस गुण का धारक द्रव्य है; इसलिए जिसने द्रव्य का आश्रय लिया, उसे निर्मल ही पर्याय होती है। आहाहा! क्योंकि कोई शक्ति, विकार हो ऐसा कोई गुण नहीं है। गुण होवे तब तो कभी मिटे नहीं। आहाहा! अभी तो विकार में विवाद। विकार कर्म के कारण होता है। पश्चात्? शुभभाव होता है, उसके कारण यहाँ धर्म होता है। अरे रे! भगवान! क्या करता है? भाई! तू (क्या करता है)? आहाहा! और पंचम काल में तो शुभभाव ही है, ऐसा कहता है। अरे..! प्रभु! तूने यह क्या किया? भाई!

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य को अकेला शुभभाव ही होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुन्दकुन्दाचार्य, ये अमृतचन्द्राचार्य, आहाहा! आकाश के स्तम्भ! परमात्मस्वरूप विराजमान सन्त हैं। वे तो नग्न मुनि। बाह्य से और अन्दर में नग्न विकल्परहित चीज़, उसे जिसने जाना और अनुभव करके स्थिर हो गये थे। आहाहा! वहाँ कोई पंचम काल बाधक नहीं है। अपने द्रव्यस्वभाव का परिणमन करना, उसमें काल क्या अवरोधक हो? आहाहा!

यहाँ कहते हैं **ज्ञायक का घोटन करते रहना**। अर्थात् उसका अर्थ यह कि बारम्बार ज्ञायकस्वभाव.. ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव.. चैतन्य के प्रकाश के नूर का तेज का पूर, ऐसे ज्ञायकस्वभाव का बारम्बार घोटन करना कि जिससे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की पर्याय उसमें से होगी। बारम्बार शुभ करते-करते होगी, ऐसा नहीं होगा, प्रभु! दुनिया को अच्छा लगेगा, दुनिया ऐसा कहे (कि) आहाहा! कैसी सरस बात करते हैं! आगमसिद्ध आगम की बात है यह और यह आगम से विरुद्ध की बात है, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहते हैं ललितपुर में। आहाहा!

मुमुक्षु : उसका ही वेदन करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वस्तु है बस, बस! अन्तर भगवान चैतन्यमूर्ति भगवान है न? आहाहा! उसका विचार, उसका निर्णय, उसमें रमना, वह कर न, भाई! विचार को दीर्घ लम्बा कर और लम्बाकर अन्तर्मुख में जा। आहाहा! ऐसा है।

एकान्त से दुःख के बल से अलग हो, ऐसा नहीं है, परन्तु द्रव्यदृष्टि के बल से अलग होता है। दुःख लगता हो, सुहाता न हो, परन्तु आत्मा को पहिचाने बिना—जाने बिना जाये कहाँ ? आत्मा को जाना हो, उसका अस्तित्व ग्रहण किया हो, तभी अलग होता है ॥३३२ ॥

३३२ एकान्त से दुःख के बल से अलग हो, ऐसा नहीं है,... अर्थात् ? तुझे राग में दुःख लगे तो इसके आश्रय से कुछ अलग हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! एकान्त से दुःख के बल से (अर्थात् राग के बल से) अलग हो ऐसा नहीं है, परन्तु द्रव्यदृष्टि के बल से अलग होता है। आहाहा! क्योंकि द्रव्य में वह कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान.. यह करण, करण। होनेपनेरूप भाव, उसका करण नाम का गुण है, उससे साधन होता है। आहाहा! उस राग के विकल्प का वह साधन नहीं है। आहाहा! परन्तु कहीं कहा हो, वह तो मात्र वहाँ अलग पड़ा है, इससे उस काल में, इसलिए उसे निमित्तरूप से कहा कि उससे हुआ, ऐसा। बाकी उससे हुआ अर्थात् उससे, पृथक् पड़ा तब हुआ। आहाहा! तथापि ऐसी भाषा आती है।

एकान्त से दुःख के राग के लक्ष्य से संसार का विकल्प उठता है, उसके लक्ष्य से अलग पड़ता है, ऐसा नहीं है। दूसरे प्रकार से कहें तो पर्यायबुद्धि से, रागबुद्धि से अलग पड़ता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु द्रव्यदृष्टि के बल से अलग होता है। आहाहा! भगवान आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं और एक-एक शक्ति में अनन्त सामर्थ्य है। एक-एक शक्ति में अनन्त शक्तियों का रूप है और एक-एक शक्ति में अनन्त धर्मत्व का रूप है। अनन्त धर्म, भाई! आता है न ? अनन्तधर्मत्व। आहाहा! यह गुण है ऐसा उसका। ओहो!

मुमुक्षु : छहों द्रव्यों में ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबमें है, परन्तु अभी तो अपने आत्मा का (लेना है)। अनन्त-धर्मत्व, ऐसा एक गुण है और उस गुण का रूप प्रत्येक गुण में अनन्तधर्मत्व का रूप पड़ा है। आहाहा! ऐसा है, प्रभु! क्या हो ? आहाहा!

अमुक करणानुयोग में ऐसा कहा है और चरणानुयोग में ऐसा कहा है, वह तो मानते

नहीं, ऐसा कहते हैं। अरे! प्रभु! अरे, भगवन्त! तेरी बात ऐसी नहीं है, भाई! उन सबमें वीतरागता वर्णन की है। राग का वर्णन किया हो, उस समय राग आता है, उसका ज्ञान कराया है। आहाहा! इसका अर्थ, ज्ञान कराया है, इसका अर्थ कि उससे रहित होवे तो ज्ञान कराया कहलाये न? सहित में रहे, वह ज्ञान कहाँ से करे? आहाहा! ललितपुर में जोरदार सोनगढ़वालों से विरुद्ध बड़ा पुकार हुआ है। भगवान! क्या करता है? बापू! वह तो था ही, प्रभु! वह कुछ नवीन बात नहीं है। आहाहा! अरे! प्रभु! यह क्या है? भाई!

यहाँ तो कहते हैं, वस्तु है अनन्त गुण जिसमें ऐसे अनन्त गुण भरे हैं और एक-एक गुण में अनन्त का धर्म स्वरूप है, एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है, एक-एक गुण के अन्तर अविभाग प्रतिच्छेद का तो पार नहीं होता, ऐसे अनन्त गुणों का धारक भगवान, उसकी दृष्टि से अलग होता है। उस दृष्टि के जोर से राग से अलग पड़ता है। अरे! ऐसी बात है। अब ऐसी बात। अरे! चले जाते हैं बेचारे अभी जयसुखभाई कुछ नहीं था बेचारे को। सोमवार को उठा, कहते हैं। पत्र आया है बहिन गंगाबेन के प्रति। भाई! तार भी आया है संस्था पर, भाई! देखा न? संस्था पर। चन्दुभाई कहते थे संस्था पर? संस्था पर तार आया है त्रंबकभाई का कि इस प्रकार जयसुखभाई गुजर गये हैं। आहाहा! यहाँ अभी आये थे। बहिन के जन्मदिवस पर। बहुत प्रेम था, उन बेचारे को, बहुत मस्तिष्कवाला वकील। यद्यपि आया था बाद में, बहुत वर्षों से, उसका भाई है, उसका एक लड़का है, बहुत होशियार है। दस वर्ष की उम्र में सूक्ष्म प्रश्न करता था। उसे तो बहुत वर्ष हो गये। परेश। इन खीमचन्दभाई का लड़का और उससे बड़ा त्रंबकभाई, उससे बड़े थे। सोमवार को अस्पताल में ले गये। आहाहा! रात निकाली, मंगलवार दिन निकाला, रात्रि को (गुजर गये)। आहाहा! उस पल में उसी समय में वही देह छूटने का समय था। आहाहा!

यह यहाँ उससे भी अलग पड़ना, अब यहाँ तो (ऐसा कहते हैं)। देह अलग पड़ा है परन्तु अब राग से अलग (करना)। आहाहा! परपदार्थ की विस्मयता और अचिन्त्यता छोड़ दे, नाथ! तुझमें अचिन्त्यता का विस्मय तत्त्व पड़ा है, प्रभु! तेरे एक-एक गुण में अनन्त आश्रयता विभूति पड़ी है। भाई! तुझे उसकी खबर नहीं है। आहाहा! ऐसी अनन्त शक्ति की विभूति का भण्डार भगवान है। आत्मा को यहाँ भगवान कहते हैं, हों! भगवान हो गये, वे तो हो गये। आहाहा!

उस द्रव्यदृष्टि के बल से... क्योंकि द्रव्य में ऐसे कर्तृत्वगुण, कर्मगुण, अधिकरणगुण, करणगुण... आहाहा! भावगुण, अभावगुण, भावअभावगुण (भरे हैं) । आहाहा! वर्तमान पर्याय भावरूप है, उसका अभाव होना—ऐसा भावअभाव नाम का गुण है । उस गुण का धारक द्रव्य है । आहाहा! उस पर्याय को इस पर्याय को बदलना, नयी लाना, उसमें इसे कुछ करना नहीं है । आहाहा! इसे तो द्रव्यस्वरूप, जिसमें ऐसे अनन्त गुण तेजवाले, तेजवाले, शक्तिवाले, सामर्थ्यवाले, अनन्त-अनन्त रूप के धारक, स्वरूप के धारक, अनन्त गुणों का रूप अर्थात् उनका स्वरूप धरनेवाले । आहाहा! ऐसे द्रव्यस्वरूप पर (दृष्टि करनी है) । आहाहा!

बल से अलग होता है । क्योंकि वह राग से अलग है । राग, दया, दान, विकल्प जो है, उनसे अलग है परन्तु इसमें द्रव्य पर जोर होने पर अलग उसे वर्तमान ज्ञात होता है । आहाहा! ऐसी बातें सुनना कठिन पड़ती है । आहाहा! ऐसी बात है, भाई! यह तो जन्म-मरण के अन्त लाने की बातें हैं, बापू! आहाहा! शुभभाव भी अनन्त बार किये, अशुभ अनन्त बार किये, परन्तु इसने द्रव्यदृष्टि नहीं की । आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' दिगम्बर साधु हुआ, अट्टाईस मूलगुण चुस्त (पालन किये), हों! अभी तो ऐसे भी नहीं मिलते, अभी तो उनके लिए चौका बनाकर आहार लें । उसमें अट्टाईस मूलगुण व्यवहार में भी उन्हें नहीं हैं । ऐषणासमिति टूटी, अहिंसाव्रत टूटा, सत्यव्रत टूटा । क्यों? उनके लिए बनावे और वह बोले, आहार शुद्ध, मन शुद्ध, वचन शुद्ध, काय शुद्ध । किया है उनके लिए और वह इसे स्वीकार करे । अरे! भगवान! बहुत बापू! वीतराग के बिना मार्ग में बहुत फिरके कर डाले । अरे! कोई उपस्थिति नहीं मिलती । ऋषभदेव के समय तो चार हजार साधु (दीक्षित) हुए परन्तु उल्टे-सीधे होने लगे तो देव कहे, नहीं होगा । साधुपना लेकर तुम वनस्पति खाओ और यह खाओ, नहीं चलेगा । छोड़ दो । आहाहा! देव ने आकर कहा । अभी कोई (आता नहीं) । अरे भगवान! आहाहा! ऐसी कोई शक्तिवाला नहीं है, यह पुण्यवाला प्राणी अभी कोई नहीं है । आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **दुःख लगता हो,...** इस बाहर की ओर के लक्ष्य में ठीक न लगता हो परन्तु आत्मा को पहिचाने बिना, आहाहा! **सुहाता न हो,...** आहाहा! आत्मा को पहिचाने बिना प्रभु! आहाहा! अनन्त गुण की चमत्कृति के चमत्कार से भरपूर प्रभु है । ऐसे

आत्मा की जिसे नजर नहीं, उसकी पहिचान बिना वह दुःख मिटे ऐसा नहीं है। आहाहा! चाहे जितनी तेरी शास्त्र की जानकारी कर। आहाहा! वेदिया, ये सब वेदिया कहलाते हैं। हमारे गढ़डा में एक था। उसने बहुत कण्ठस्थ किया हुआ था। वेदिया, आटा माँगने जाए भिखारी की तरह। यह तो (संवत्) १९६९ के वर्ष की बात है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, बापू! कि इस शास्त्र के वेदिया के पठन का यहाँ काम नहीं है। आहाहा! यहाँ तो भगवान चिदानन्द प्रभु अन्दर (विराजता है), उसका आश्रय कर, बापू! वह भगवान है, पूर्ण है। प्रभु! तू पूर्ण इदम्। आहाहा! अरे! ऐसी बात सुनने को मिलती नहीं, प्रभु! वह कहाँ जाएगा? क्या करेगा? आहाहा! उसका परिणाम योगफल, बापू! दूसरा आयेगा। उल्टी श्रद्धा से (दूसरा आयेगा)। आहाहा!

जाने बिना, पहिचाने बिना, पहिचाने बिना अर्थात् ऐसा। जाने बिना दुःख जाते नहीं। जाने बिना जाये कहाँ? जाये कहाँ? आत्मा को जाना हो, उसका अस्तित्व ग्रहण किया हो,... वस्तु भगवान पूर्ण अनन्त शक्ति का सागर प्रभु, उसे जाना हो, उसका अस्तित्व ज्ञान में ग्रहण किया हो। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का अस्तित्व-मौजूदगी को ज्ञान में स्वीकार किया हो। आहाहा! ऐसी बात है, लोगों को... तभी अलग होता है। आहाहा! वस्तु है, वह पूर्ण शक्ति का सागर है। अनन्त-अनन्त गुण अपार गुण का गोदाम, ऐसे भगवान आत्मा को जाना हो, पहिचाना हो, तब तो ... पहिचाने बिना, जाने बिना कहाँ जाएगा? भाई! यह तो राग और पुण्य और पाप के भाव में भटकता रहेगा। आहाहा! आत्मा को जाना हो, उसका अस्तित्व ग्रहण (किया हो)। अस्तित्व अर्थात् हयाति, मौजूदगी चीज महाप्रभु चैतन्य महाप्रभु भगवान आत्मा है। आहाहा! उसकी मौजूदगी, उसकी अस्ति। पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी अस्ति है। उसकी सत्ता के अस्तित्व को यदि जाना हो, ग्रहण किया हो। आहाहा! तभी अलग होता है। आहाहा! ३३३, ३३२ हुआ न? १०० रहे। ४३२ हैं न?

चेतकर रहना। 'मुझे आता है' ऐसे जानकारी के गर्व के मार्ग पर नहीं जाना। विभाव के मार्ग पर तो अनादि से चल ही रहा है। वहाँ से रोकने के लिये सिर पर गुरु होना चाहिए। एक अपनी लगाम और दूसरी गुरु की लगाम हो तो जीव पीछे मुड़े।

जानकारी के मान से दूर रहना अच्छा है। बाह्य प्रसिद्धि के प्रसंगों से दूर भागने में लाभ है। वे सब प्रसंग निःसार हैं; सारभूत एक आत्मस्वभाव है ॥३३३॥

चेतकर रहना। आहाहा! वास्तविक वस्तु है, उसे जानकर रहना। आहाहा! 'मुझे आता है'.. कुछ भेदप्रभेद सीखा हो। दो, पाँच हजार, दस हजार, पचास हजार श्लोक (सीखा हो इसलिए) 'मुझे आता है' ऐसे जानकारी के गर्व के मार्ग पर नहीं जाना। आहाहा! कुछ मुझे आता है, मुझे प्रश्न करे तो जवाब देना आता है, जवाब शीघ्र एकदम.. एकदम.. एकदम.. अरे! भगवान! क्या है? बापू! आहाहा! आहाहा! ऐसे शब्द रच गये हैं। आहाहा! बहिन ने तो कहा, परन्तु लड़कियों ने लिख लिये, आहाहा! और उसमें हिम्मतभाई ने व्यवस्थित करके रखा सब संक्षिप्त-संक्षिप्त सार। आहाहा!

कहते हैं चेतकर रहना। ध्यान रखकर रहना। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा ध्यान रखकर रहना। थोड़ी बहुत जानकारी की हो, इसलिए हम बढ़ गये हैं, दूसरे को आता नहीं। आहाहा! व्याख्यान करना आया और उसके कारण लोग मुझे आदर करते हैं, वह कोई चीज़ नहीं है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो राग की विकल्प की है। आहाहा! ऐसा है। आहाहा! भाई! तू चेतकर रहना, हों! स्वरूप का ध्यान, लक्ष्य छोड़ना नहीं और जानकारी का अभिमान करना नहीं। आहाहा! मुझे आता है, आहाहा! ऐसी जानकारी के गर्व में, जानकारी के गर्व में। भाषा तो कैसी सादी! आहाहा! उस मार्ग में चढ़ना नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा है, प्रभु! आहाहा!

विभाव के मार्ग पर तो अनादि से चल ही रहा है। न, प्रभु! आहाहा! यह जानपना शास्त्र का करके जानकारी का अभिमान किया तो उस विभाव के रास्ते तू अनादि का है, वह कुछ नया नहीं है। आहाहा! विभाव के रास्ते अर्थात् यह; जानकारी के रास्ते चढ़ना, वह तो विभाव के रास्ते चढ़ने जैसा है। आहाहा! बहुत अच्छी बात की है। अनादि से चल ही रहा है। यह कहाँ तेरा नया है? कहते हैं। आहाहा! ग्यारह अंग की जानकारी की, उसमें यह बात नहीं आयी थी? कि आत्मा ज्ञायक है। धारणा तो सब की थी। आहाहा! परन्तु उसकी धारणा में उसे वह मुझे कुछ आया, ऐसा अभिमान हो गया था। आहाहा! अर्थात्? उस शास्त्र के जानपने की जानकारी की अधिकता इसने मानी। इस ओर अधिकपना मानना चाहिए, वह नहीं माना। आहाहा! इन्द्रियज्ञान और शास्त्रज्ञान सब एक है। आहाहा! कहना आया जगत को हजारों, पाँच-पाँच हजार दस-दस हजार (लोगों को)... बापू! यह क्या चीज़ है? आहाहा!

विभाव के मार्ग पर तो अनादि से चल ही रहा है। अर्थात् कि स्वरूप के ज्ञान बिना ऐसा जो ज्ञान बाहर का, धारणा का ज्ञान (किया), उस मार्ग में तो अनादि का है। आहाहा! वह तो अनादि से (किया है)। भगवान! तुझे ग्यारह अंग और नौ पूर्व का ज्ञान हुआ है न तुझे? अभी तो इतना भी नहीं। आहाहा! एक अंग के असंख्य भाग में भी तुझे धारणा नहीं है। आहाहा!

विभाव के मार्ग पर तो अनादि से चल ही रहा है। आहाहा! वहाँ से रोकने के लिये सिर पर गुरु होना चाहिए। आहाहा! उसे रोकने के लिए टोकनेवाला चाहिए, कहते हैं। आहाहा! जानकारी के भाव से दुनिया को प्रसन्न करे और दुनिया उसे बड़ा माने, तब वह भी स्वीकार करे। मेरी महिमा को ये पैर छूते हैं। आहाहा! यह सब भ्रमणा है। आहाहा! मुनिव्रत धारण करके जब पंच महाव्रत लिये, नौवें प्रैवेयक गया, (तब) कितनी जानकारी होगी? आहाहा! चौथे काल में दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ। अरे! भगवान के समवसरण में वहाँ अनन्त बार गया, प्रभु विराजते हैं वहाँ अनन्त बार भगवान की वाणी सुनी और जानने का भाव जाना, उसका अभिमान आया, ऐसा कि मैंने कुछ जाना है, मुझे आता है। आहाहा! 'पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' उसे कहीं धर्म नहीं हुआ। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़ती है। आहाहा! प्रभु! ऐसी कठिन बात है, बापू! आहाहा!

आहाहा! मिथ्यात्व का दर्द कठोर है न? इसलिए उसकी दवा भी कठोर होगी न! आहाहा!

एक अपनी लगाम... अपनी लगाम चाहिए कि यह बाहर की जानकारी कोई चीज़ नहीं है, ऐसी लगाम चाहिए। आहाहा! **और दूसरी गुरु की लगाम हो तो जीव पीछे मुड़े।** यह जानकारी का गर्व मिट जाए। आहाहा! जानकारी के गर्व में इज्जत ले, जानकारी के गर्व में पैसा मिले, रोटियाँ मिले, आजीविका मिले। आहाहा! ऐसा कि जाननेवाला हुआ, व्याख्याति हुआ, पश्चात् उसे अपन अच्छा जीमाओ। चूरमा, मैसूरपाक। आहाहा! उसे मानपत्र दो, अभिनन्दन दो। अरे! प्रभु! यहाँ तो मर जाएगा। आहाहा! एक तो अपनी लगाम चाहिए, कहते हैं। वापस मुड़ने की। यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं। और एक गुरु की लगाम सिर पर हो तो जीव वापस मुड़े। आहाहा! गजब वस्तु यहाँ आ गयी है। बहुत बोल आ गये हैं। अब कोई नये की माँग करते हैं।

मुमुक्षु : एक क्रमबद्ध नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, क्रमबद्ध नहीं है, कारणपर्याय नहीं है, यह खबर है परन्तु इसमें सब सार आ गया है। आहाहा!

जानकारी के मान से दूर रहना अच्छा है। प्रभु! आहाहा! **बाह्य प्रसिद्धि के प्रसंगों से दूर भागने में लाभ है।** आहाहा! बाहर हमें प्रसन्न करे, लोग बढ़ गये। आहाहा! इन बाह्य प्रसिद्धि के प्रसंगों से दूर भागने में लाभ है। आहाहा! जानकारी देखकर लोग जन्मोत्सव करें, पैसा दे, अभिनन्दन दे, बापू! वहाँ तू मर जाएगा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कठिन काम, बापू! बहुत कठिन बात है, भाई! आहाहा! **बाह्य प्रसिद्धि के प्रसंगों से दूर भागने में लाभ है।** आहाहा! मुझे कोई पहिचाने और मुझे माने तो मेरी बात सत्य बाहर आवे, यह सब मान के भाव हैं। **वे सब प्रसंग निःसार हैं;...** आहाहा! उनसे बाहर भागने में लाभ है। उसमें लाभ बाहर में माने, वे सब निःसार है; सारभूत एक आत्मस्वभाव है। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण-४, शुक्रवार, दिनाङ्क २०-१०-१९७८
वचनामृत-३३४ से ३३६ प्रवचन-१२५

आत्मार्थी को श्रीगुरु के सान्निध्य में पुरुषार्थ सहज ही होता है। मैं तो सेवक हूँ—यह दृष्टि रहना चाहिए। 'मैं कुछ हूँ' ऐसा भाव हो तो सेवकपना छूट जाता है। सेवक होकर रहने में लाभ है। सेवकपने का भाव गुणसमुद्र आत्मा प्रगटने का निमित्त होता है ॥३३४॥

३३४ वाँ बोल है। ३३३ हो गया।

आत्मार्थी को... है ? यह आत्मा जो भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर (ने) जिसे आत्मा कहा, वह आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द है। आहाहा!

मुमुक्षु : वेदान्त ऐसा कहता है।

पण्य गुरुदेवश्री : वेदान्त कहता है, वह अलग बात है। वेदान्त में पर्याय नहीं मानी है। आत्मार्थ त्रिकाल ध्रुव है, ऐसा निर्णय करनेवाला कौन ? त्रिकाल ज्ञायक चैतन्य ध्रुव, यह वस्तु। उसे भगवान् जिनेश्वरदेव आत्मा कहते हैं। अब वह आत्मा ऐसा है - यह निर्णय कौन करे ? वह तो पर्याय है। पर्याय जो अवस्था है, वह निर्णय करती है कि मैं ऐसा हूँ। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बात है।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिसे आत्मा कहते हैं, वह आत्मा अन्दर एक समय में पूर्ण अनन्त गुण सम्पन्न, अनन्त शक्तियों का संग्रहालय, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण का गोदाम—ऐसा जो आत्मा, उसका जो अर्थी है... आहाहा! उसे प्राप्त करने की जिसे भावना है। वह कहीं दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से प्राप्त नहीं होता। यह तो राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप दया, दान की बात करते हो वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग, वह तो विकल्प है। आता है, परन्तु उससे प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : दया धर्म...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त काल से सबने यह सुना है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जो आत्मा शरीर, वाणी, मन से तो भिन्न है, कर्म से भी भगवान आत्मा तो भिन्न है, परन्तु पुण्य और पाप के विकल्प जो राग है, उनसे भी प्रभु आत्मा भिन्न है। नव तत्त्व है या नहीं? तो शरीर, वाणी, कर्म तो अजीवतत्त्व है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग-वासना, काम, क्रोध, वह पापतत्त्व है तथा दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, यह पुण्यतत्त्व है। भगवान आत्मा तो पुण्य और पापतत्त्व से अन्दर भिन्न है। आहाहा!

मुमुक्षु : होवे तब या अभी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी ऐसा है। होवे, तब तो बाह्य पर्याय प्रगट हुई। वस्तु अभी ऐसी है। सूक्ष्म बात है, भाई! इसे अनन्त काल में कभी आत्मा का दर्शन-सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं। ऐसे के ऐसे व्रत, तप, भक्ति, पूजा करो, तो यह तो सब राग की क्रिया है, बन्धन के भाव हैं। उनसे तो संसार फलता है। आहाहा!

आत्मार्थी... इतने का अर्थ चलता है। आत्मा एक समय की पर्याय में भी नहीं है। आहाहा! क्योंकि एक समय के राग और पुण्य में तो नहीं; शरीर, कर्म में तो नहीं, परन्तु अपनी एक समय की जो व्यक्त / प्रगट पर्याय / दशा है, उसमें आत्मा तत्त्व नहीं है। आत्मतत्त्व तो उस पर्याय से रहित अन्दर भिन्न है। आहाहा! ध्रुव है। पर्याय ऐसी मानती है, धर्मी की पर्याय ऐसा मानती है कि मैं तो अखण्ड अविनाशी परमात्मद्रव्य हूँ। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? वह आत्मार्थी इस पर्याय का जो आत्मा का प्रयोजन है... आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल में कभी किया नहीं।

मुनिव्रत धारण किया, दिग्म्बर हुआ, परन्तु वे अट्टाईस मूलगुण और महाव्रत के परिणाम तो आस्रव है। वह पुण्यतत्त्व है; वह आत्मतत्त्व नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु! सत् शाश्वत् कायम रहनेवाली चीज़ (है)। ज्ञान और आनन्द जिसका त्रिकाली कायम स्वभाव है। ऐसे आत्मा का जिसे प्रयोजन है, धर्मी को तो आत्मा

का प्रयोजन होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! बाहर से कोई मिल जाए, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा!

आत्मार्थी को श्री गुरु के सान्निध्य में पुरुषार्थ सहज ही होता है। निर्मानपना रखना। आहाहा! धर्मात्मा-सन्त-गुरु आदि के पास निर्मानपने रहना। नहीं तो मान आ जाता है कि मैं इतना जानता हूँ, मैं जानता हूँ। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मार्थी को...

मुमुक्षु :यह तो व्यवहार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार, परन्तु यह तो निमित्त है, किन्तु व्यवहार निमित्त में अपनी निर्मानता है। श्रीमद् में आता है न! 'मानादि शत्रु महा निज छन्दे न मराय।' इस अपेक्षा से बात है। 'जाते सद्गुरु शरण में अल्प प्रयासे जाए।' पाटनीजी! आता है या नहीं? यह उसमें आता है। ऐसी चीज़ है, बापू! अनन्त काल में इसने कभी किया नहीं। वह चीज़ अन्दर क्या है? व्रत, तप, भक्ति, पूजा, गजरथ, रथ चलाना - ऐसे क्रियाकाण्ड में घुस गया। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें कुछ तो होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें संसार फल है। उसमें परिभ्रमण का फल है। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध चैतन्यघन, जिसे आवरण भी नहीं, जिसे अशुद्धता नहीं, जिसे अपूर्णता नहीं। आहाहा! जो भगवान आत्मा पूर्ण है, शुद्ध है; आवरणरहित निरावरण भगवान अन्दर है। आहाहा! ऐसे आत्मा का जो अर्थी है.. आहाहा! उसे गुरु के सान्निध्य में पुरुषार्थ सहज ही होता है। निर्मानरूप से रहता है न? वह तो (अभिमान तो) कहता है, हम जानते हैं... हम जानते हैं... जानते हैं... अभिमान चढ़ेगा तो चीज़ हाथ में नहीं आयेगी। माने भले। समझ में आया? आहाहा!

मैं तो सेवक हूँ—यह दृष्टि रहना चाहिए। आहाहा! आत्मार्थी की दृष्टि निर्मानरूप से गुरु के सान्निध्य में... आहाहा! सेवकपने की दृष्टि रहनी चाहिए। 'मैं कुछ हूँ' ऐसा भाव हो तो सेवकपना छूट जाता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु छूट जाती है। अभिमान आ गया न ? आहाहा ! मैं दूसरों की अपेक्षा ठीक हूँ, मुझमें कुछ ठीक है। यह तो अभिमान आया। यह आत्मा की दृष्टि, सेवकपना। गुरु का सेवकपना छूटे, इसका अर्थ कि आत्मा का सेवकपना छूट जाता है। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म मार्ग है, भाई ! आहाहा !

‘मैं कुछ हूँ’ ऐसा भाव हो तो सेवकपना छूट जाता है। सेवक होकर रहने में लाभ है। निर्माणरूप से रहने में लाभ है, ऐसा कहना है। आहाहा ! शास्त्र का थोड़ा ज्ञान हुआ और स्वयं ने मान लिया कि मुझे आत्मज्ञान हो गया। वह भटक मरेगा, कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! यहाँ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में तो यहाँ तक कहा है कि अपना आनन्दस्वरूप भगवान, उसका पर्याय में भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, ऐसा होने पर भी अपनी पर्याय में अपने को केवलज्ञान की अपेक्षा से पामर मानता है। आहाहा ! अपनी चीज़ को प्रभुता मानता है। आहाहा ! समझ में आया ? वस्तु भगवान आत्मा, वह तो पूर्ण प्रभु है, परन्तु पर्याय में भान हुआ, किन्तु केवलज्ञान नहीं। आहाहा ! अभी चौथे-पाँचवें गुणस्थान में चारित्र नहीं है। वह पर्याय में पामर मानता है। आहाहा !

सेवकपने का भाव गुणसमुद्र आत्मा प्रगटने का निमित्त होता है। निमित्त की बात है न ? अपना स्वरूप गुणसमुद्र प्रभु है। सूक्ष्म बात, प्रभु ! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. इतने गुण आत्मा में हैं कि अनन्त-अनन्त गुण में कोई अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुणाकार करके अनन्त-अनन्त ले ले और उसका अनन्तवाँ भाग करते.. करते.. करते.. अनन्तवाँ भाग हो और अन्तिम अनन्त आवे, ऐसा भी आत्मा में नहीं है। आहाहा ! गजब बात है, भाई ! भगवान आत्मा गुणसमुद्र है। वह राग और विकार का समुद्र नहीं है। वे तो विकार हैं—दया, दान आदि विकल्प हैं। आहाहा !

अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ऐसे गुण का समुद्र है। **गुणसमुद्र आत्मा..** देखो न ! पहले **आत्मार्थी..** कहा था न ? ऐसा गुणसमुद्र। परन्तु भाई ! यह भाषा भले जान ले। परन्तु... आहाहा ! जैसे क्षेत्र का अन्त नहीं। कहीं अन्त है ? अलोक-अलोक। लोक का अन्त हो गया, पश्चात् आकाश। कहाँ पूरा हुआ ? है ? नहीं ? अन्त नहीं ? अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त योजन चले जाओ लक्ष्य में से, तो भी अन्तिम आया—

ऐसा नहीं है। आहाहा! भाई! एक क्षेत्र की भी जहाँ इतनी अनन्तता, अस्तित्ता-अस्ति चारों ओर। यह लोक तो अन्दर राई जितना है। असंख्य योजन में अलोक में यह लोक तो एक राई जितना है। चारों ओर अलोक.. अलोक.. अलोक.. खाली आकाश.. आकाश.. आकाश.. आकाश.. ऊपर जाए तो कहीं अन्त है? आकाश का अन्त है? नीचे जाए तो कहीं अन्त है? ऐसा आकाश.. ओहो! भगवान ने कहा कि ऐसा अन्तरहित आकाश.. आहाहा! इतने आकाश का जो प्रदेश है। एक परमाणु जितने में रोके, उसका नाम प्रदेश, तो इतने एक प्रदेश जितने आकाश के अन्तरहित प्रदेश हैं, उन प्रदेशों से अनन्त गुणे गुण आत्मा में हैं। अरे! इसे कहाँ खबर है? समझ में आया?

ऐसा आत्मद्रव्य.. आहाहा! गुणसमुद्र भगवान। यह आत्मा, हों! सबका (आत्मा)। परमात्मा अरिहन्त भगवान को तो प्रगट हुआ, परन्तु सबका आत्मा ऐसा है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण का समुद्र भगवान है। आहाहा! वह जिसे प्राप्त करना है, तो उसकी दृष्टि में कितनी दीर्घता और कितनी सामर्थ्यता होती है! आहाहा! वह क्या दया, दान के विकल्प से प्राप्त होता है? वे तो राग हैं। यह तो वीतराग अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। आत्मा जिनबिम्ब है। 'जिन सो हि है आत्मा अन्य सो हि है कर्म, इसी वचन से समझ ले जिनवचन का मर्म।' आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! अभी तो सम्प्रदाय में सर्वत्र गड़बड़ गड़बड़ (चलती है)। आहाहा! व्रत करो (ऐसी बातें चलती हैं)। वस्तु स्थिति ऐसी है, प्रभु! (कि) तू गुणसमुद्र है न, नाथ! तेरी तुझे खबर नहीं है और राग की क्रिया मेरी है तथा उससे मुझे लाभ होगा, यह भ्रमणा है। आहाहा! यह सत्यबुद्धि नहीं है। यह मिथ्याबुद्धि है। आहाहा!

जो गुणसमुद्र अरूपी चैतन्यरत्नाकर है। एक समय की वर्तमान पर्याय में जिसकी दृष्टि अनादि से है। वर्तमान है न, ज्ञान का उघाड़, विकास, पर्याय। वह पर्याय में विकास है और वहीं उसकी दृष्टि अनादि से है, परन्तु पर्याय के समीप पूरा तत्त्व पड़ा है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! दूसरी शास्त्र भाषा से कहें तो एक समय की पर्याय को मानना, प्रगट पर्याय है और उसके अतिरिक्त सब चीज़ वह अव्यक्त अर्थात् प्रगट पर्याय में नहीं आयी। वस्तुरूप से अन्दर प्रगट है परन्तु एक समय की पर्याय में पूरा तत्त्व नहीं आया, तो इस अपेक्षा से पर्याय को व्यक्त कहा और द्रव्य को अव्यक्त कहा। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, बापू! वीतराग का मार्ग! अभी तो सब गड़बड़ उठी है। आहाहा!

उसमें आया है। अमरचन्दजी है न? वहाँ राजगृही भाषण दिया, ऐसा किया। स्वयं अब श्रमणसंघ में से निकल जाता है। वह स्थानकवासी का आनन्द ऋषि है न बड़ा। तुम्हारे जालना में है। भव्यसागर का आता है। ऐसा कि वह स्वयं साधु ने खोटा किया है। ऐसा किया, वैसा किया। उनके सम्प्रदाय में भी अब... क्योंकि ये लोग उसे सम्प्रदाय में रखने.. क्योंकि सब लाखों रुपये खर्च करके बड़ा.. बनाते हैं, बड़ा मकान और यज्ञ करावे। यज्ञ अर्थात्... साधु का स्थानकवासी की दृष्टि से भी यह बात नहीं है। इसलिए वे लोग उसे निकाल डाले। यह पहले से... आया है, कि मैं.. श्रमणसंघ में से निकल जाता हूँ। वह श्रमणसंघ था ही कब? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो एक वस्त्र का टुकड़ा रखे और अपने को मुनि माने, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वस्त्र का टुकड़ा रखे और हम मुनि हैं—ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि अनन्त संसारी है। आहाहा!

मुमुक्षु : कपड़े ने क्या दोष किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : कपड़े ने नहीं। कपड़े को रखने का जो भाव है, वह ममता है और वह ममता मुनि को नहीं हो सकती। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! श्वेताम्बर शास्त्र में ढेर लिखा है। मुनि को ऐसे वस्त्र इतने हों, इतना हो, और इतने हों। यह वीतराग की वाणी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! मार्ग बहुत कठिन है, भाई!

मुमुक्षु : आप सुगम करके समझा रहे हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारा लड़का भी प्रसन्न होता है न, देखो न! निरंजन! तुम्हारे भाई तो प्रसन्न होते हैं। बापू! मार्ग यह है। क्या कहे? तीन लोक के नाथ भगवान सीमन्धर प्रभु महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ से आयी हुई यह वाणी है। आहाहा! वहाँ यह मार्ग वर्तता है। अन्तर आत्मा के अनुभवसहित जिसे वस्त्र का त्याग है और अन्तर में अनन्त-अनन्त शान्ति का सागर जिसके अन्तर में उछल रहा है, उसे मुनि कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कुछ ठिकाना होता नहीं और कहे हम मुनि हैं। बापू! यह परमेश्वर मार्ग है, प्रभु! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि आत्मार्थी को गुणसमुद्र जो भगवान, उसकी प्राप्ति में गुरु सत् है, वे निमित्त हैं। कुगुरु उसे निमित्त नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु :क्या दोष हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है न ? निमित्त की बात करते हैं न ? उससे होता नहीं, परन्तु निमित्त ऐसा ही होता है, ऐसा। आहाहा! बहुत सूक्ष्म काम, बापू!

यह यहाँ कहते हैं **गुणसमुद्र आत्मा...** भगवान गुणसमुद्र प्रभु को प्रगट करने में गुरु तो निमित्त है। उपादान तो स्वयं का है। स्वयं से प्रगट होता है, गुरु से होता नहीं। समझ में आया ? आहाहा! उसमें आता है न ? 'गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागू पायं, बलिहारी गुरुदेव की जिसने आत्म दियो बताय।' जिसने, आत्मा आनन्द का नाथ चैतन्य प्रभु अन्दर विराजता है, निर्लेप निरावरण वस्तु अन्दर पड़ी है। यह राग और विकल्प के सम्बन्ध में है ही नहीं, ऐसी चीज़ अन्दर पड़ी है। आहाहा! यह गुरु ने इसे बताया, तो जिसने बताया, उसे गोविन्द की अपेक्षा मैं तो मेरे गुरु को विशेष मानता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

यह आत्मा कौन है ? एक समय की पर्याय में अनादि से बस लक्ष्य वहाँ है। एक समय की पर्याय है न ? वहाँ लक्ष्य है और राग पुण्य और उस पर लक्ष्य किन्तु एक समय की दशा, अवस्था रूपान्तर होती है। उसके समीप पूरा चैतन्य तत्त्व पड़ा है, भगवान! आहाहा! गुणसमुद्र पड़ा है। पर्यायसमुद्र नहीं, एक समय की पर्याय में नहीं। आहाहा! एक समय में तो अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें हैं, तथापि उस पर्याय में गुणसमुद्र नहीं है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! अभी तो सम्यग्दर्शन का विषय, गुणसमुद्र भगवान पूर्णानन्द, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। उसे ध्येय बनाने से सम्यग्दर्शन होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! सहारनपुर.. सहारनपुर ? ये वहाँ पढ़ते हैं। आहाहा! सहारनपुर से आये हैं। जिनेश्वरदास, ये वहाँ पढ़ते हैं। आहाहा! परन्तु सूक्ष्म बहुत है, बापू! आहाहा!

पहले लक्ष्य में तो ले। कहते हैं कि भगवान आत्मा में अन्दर जो अनन्त पर्यायें हैं, उन अनन्त पर्यायों का समुद्र नहीं। ये पुण्य-पाप का भाव है, उससे तो रहित है परन्तु अनन्त गुणों की वर्तमान अवस्था है, उन अनन्त पर्यायों का समूह आत्मा नहीं है। आहाहा! अनन्त गुण जो कायम रहनेवाली चीज़ है, उन अनन्त गुण का समुद्र / सागर आत्मा है। आहाहा! गोविन्दरामजी! ऐसा है, ऐसा है। गोविन्दराम। आहाहा! यहाँ तो गुणसमुद्र आत्मा। प्रगट करने की दृष्टि स्वयं की है। अपनी दृष्टि गुणसमुद्र पर दृष्टि रखने से प्रगट होता है,

परन्तु गुरु उसमें निमित्त है। बस! कुगुरु और कुशास्त्र उसमें निमित्त नहीं हैं, इतना बताना है।

मुमुक्षु : सेवकपने का भाव, यह निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसका भाव। आयेगा। आहाहा! निमित्त होता है। सेवकपने का भाव गुणसमुद्र आत्मा प्रगटने का निमित्त... सेवकपने का भाव निमित्त होता है। वैसे तो गुणसमुद्र भगवान आत्मा की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, परन्तु निमित्तरूप से गुरु ने ऐसा कहा है कि तू त्रिकाली गुणसमुद्र प्रभु है। आहाहा! वहाँ आनन्द का पूरा समुद्र भरा हुआ है। ज्ञान का समुद्र है, आनन्द का समुद्र है, शान्ति का समुद्र है, प्रभुता की शक्ति का ईश्वरता का समुद्र है—ऐसा गुरु ने बताया, उन्हें निमित्त कहा गया है। यदि इसे निर्मानता होवे तो उन्हें निमित्त कहा जाता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं।

बहिन की तो कैसी स्थिति है? देखो न! आहाहा! इतना-इतना अनुभव, अनुभूति, तथापि ऐसा लिखे.. आहाहा! हम तो आत्मा बोलना गुरु से सीखे हैं। अर..र! प्रभु! प्रभु! प्रभु! इनकी स्थिति.. इनकी स्थिति.. आहाहा!

मुमुक्षु : सेवकपना तो ऐसा ही होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना अधिक! आहाहा! आत्मा बोलना सीखे, ऐसा कहते हैं। इसमें है न? भाई! आहाहा! गजब है नाथ तेरी। इनका विनय और इनकी नम्रता.. आहाहा! इस पुस्तक में है। आगे है। कहीं है न? ३६४। ३६४ बोल है न? ३६४ है। ३, ६ और ४। यहाँ इतना कहना है। चैतन्य हूँ, ज्ञायक हूँ। आहाहा! और वापस गुरुदेव का कोई अद्भुत प्रताप है। 'आत्मा' शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेव के प्रताप से। आहाहा! ऐसी इनकी नम्रता है। इन्हें तो अनुभूति से आत्मा प्रगट हुआ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निमित्त की बात होवे तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् यह।

'आत्मा' शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेव के प्रताप से। आहा! यहाँ गुणसमुद्र आत्मा प्रगटने का... उपादान गुणसमुद्र आत्मा की दृष्टि करने से पर्याय में प्रगट होता है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मस्वरूप ही भगवानस्वरूप ही आत्मा है। जिनबिम्ब है, यह जिनस्वरूप है। अरे! कैसे जँचे? वर्तमान आत्मा जिनस्वरूप ही है। आहाहा!

‘जिन सो हि है आत्मा, अन्य सो हि है कर्म’ आहाहा! ‘कर्म कटे जिन वचन से...’ श्रीमद् का शब्द ऐसा है। ‘कर्म कटे जिन वचन से ये जिनवाणी का मर्म’। परन्तु मैंने तो ऐसा कहा। ‘जिन सो ही है आत्मा।’ वीतरागमूर्ति आत्मा है, उसकी दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। बाकी सब व्यर्थ बातें हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे रे! सुनने को मिलता नहीं। क्या करे? बाहर की पैसे की यह धूल। दो-पाँच-पच्चीस लाख मिले, धूल में रच जाए। आहाहा! भाई नहीं आये न? नहीं आये न भाई? कैसे? हसमुख.. हसमुख। वे कहीं गये लगते हैं? कहीं काम में गये हैं। कहीं मुम्बई गये हैं। चलती दुकान। दो-तीन लाख की आमदनी। बोटद का गाँधी है। दो-तीन लाख की आमदनी, मुम्बई (में) लोहे की दुकान में दो-तीन लाख की आमदनी। स्वयं ने दुकान की और उसकी ४२ वर्ष की उम्र है। यहाँ आता है। कल आयेगा। शनि-रवि (वार को) हमेशा आता है, यहाँ भावनगर रहता है। दुकान छोड़ दी है। दो छोटे भाईयों को दुकान में साथ रखा था। ४२ वर्ष की उम्र है। भाई! अपन तीन भाई हैं, तो तीसरा भाग मुझे आता है, मुझे चौथा भाग दो। पैसा है न? चौथा भाग (दो) परन्तु अब मैं दुकान में नहीं आऊँगा। ऐई! शान्तिभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो यह बात करते हैं। ऐई! हमारे अजितभाई हैं। यह घीया करोड़पति है। यह घीया करोड़पति है। साठ-सत्तर लाख इसके पास है। पैसे बहुत पड़े हैं। वह भाई दुकान छोड़ते समय ऐसा कहता था। कल आयेगा? ४२ वर्ष की उम्र है। एक तेरह वर्ष की लड़की है और बारह वर्ष का लड़का है। बस, दुकान में बिल्कुल नहीं आऊँगा। अब यह पाप तो बहुत किये, मैं तो मेरे आत्मा का करूँगा। भाई ने विवाद किया, परन्तु दुकान तुम्हारी, तुमने की, उसमें हमें क्या? चाहे जो कहो, भाई! परन्तु अब मैं दुकान में नहीं आऊँगा, तुम्हें मुझे चौथा भाग देना हो तो दो। चौथा भाग दो। तीसरा भाग नहीं। फिर छोटे भाई ने पाँच लाख दिये। वापस कुछ बोला नहीं कि अपने इतनी आमदनी है, आमदनी। पाँच (लाख) दिये बस। तो दुकान एकदम बन्द। ४२ वर्ष की उम्र है। यहाँ पचपन-पचपन वर्ष नौकरी में से बाहर करे, वह तो यहाँ व्यापार में निवृत्त नहीं होता और वह पाँच लाख का हर महीने पाँच हजार ब्याज आता है। पाँच हजार ब्याज, तो एक महीने में इन शास्त्रों में और गरीबों में देने में खर्च कर डालता है। यहाँ शास्त्र अपने बाँटता है। शास्त्र के लिए पैसा तो पानी की तरह देता है। जहाँ-तहाँ वितरित करे, यहाँ भावनगर में

वितरित करे। कोई गरीब आवे तो भी... अरे! मैं भी गरीब था, भाई! एक महीने का पाँच हजार ब्याज आवे, वह शास्त्र और धर्म के बहाने खर्च कर डाले और वे पाँच लाख उस लड़की और लड़के के लिये। आहाहा! ऐई! हिम्मतभाई! यह तो शर्म आवे ऐसा है। पचपन-पचपन वर्ष, साठ-साठ वर्ष हुए तो भी निवृत्त नहीं होता। नौकरी वालों को भी पचपन वर्ष होवे तो बर्खास्त करते हैं।

मुमुक्षु : अब ५८ वर्ष में....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब ५८ वर्ष होंगे। आहाहा!

आहाहा! अरे! मुझे तो मेरा करना है, बापू! मैं कहाँ जाऊँगा? ये सब पाप, पूरे दिन कमाना, स्त्री, पुत्र और परिवार को सम्हालना। बाईस-तेईस घण्टे अकेला पाप। धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य नहीं। आहाहा! पुण्य तो जब सत्समागम करे, दो-चार घण्टे सत्समागम करे, सत्समागम में दो-चार घण्टे शास्त्र वाचन करे तो पुण्य भी हो। धर्म नहीं। धर्म दूसरी चीज़ है। धर्म तो राग के विकल्प से भिन्न भगवान आत्मा है।...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना है। आहाहा!

राग के विकल्प से भी प्रभु भिन्न है। अकेला ज्ञायकस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, अभेदस्वभाव की अन्तर्दृष्टि करना, वही करना है। वह सम्यग्दर्शन का कारण है। आहाहा! अभी धर्म की पहली शुरुआत है। चारित्र की बातें तो कठिन हैं। आहाहा! चारित्र किसे कहना, यह तो बहुत सूक्ष्म चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह भी इसमें आ गया है। बहुत जगह आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आता है न, आता है।

यहाँ तो गुणसमुद्र आत्मा प्रगट होने में गुरु निमित्त है। बस! ३३४ बोल हुआ। ३३५। यह पुस्तक तुम्हें मिली? वहाँ मिली या नहीं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ नहीं मिली? यहाँ पढ़ ली। एक पुस्तक देना इन्हें। हिन्दी भेंट दी गयी है। यहाँ आये थे। अलौकिक चीज़ है, भाई!

बाहर के चाहे जैसे संयोग में धर्म को नहीं छोड़ना, चैतन्य के ओर की रुचि नहीं छोड़ना। धर्म या रुचि छूटी तो अमूल्य मनुष्यभव हार गये ॥३३५॥

बाहर के चाहे जैसे संयोग में धर्म को नहीं छोड़ना,... आहाहा! चाहे तो प्रतिकूल संयोग हो या अनुकूल हो। परन्तु मैं आनन्दस्वरूप भगवान चैतन्यघन, उसकी दृष्टि नहीं छोड़ना। आहाहा! मैं तो शुद्ध चैतन्यघन पूर्णानन्द प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर ने-जिनेश्वर ने कहा वह (आत्मा हूँ)। अज्ञानी ने आत्मा-आत्मा कहा, वह नहीं। आहाहा! उस चाहे जैसे संयोग में धर्म को... उस ज्ञायक की दृष्टि-रुचि हुई, शुद्ध चैतन्य की प्रतीति-अनुभव हुआ। वह रुचि चाहे जैसे संयोग हों... आहाहा! नहीं छोड़ना। वह रुचि-दृष्टि नहीं छोड़ना। जो आत्मा अपनी रुचि में पोषाण हुआ, पोषाण क्या कहते हैं? जैसे व्यापारी को माल पोसाता है न? तीन रुपये मण हो और साढ़े तीन उपजें तो वह माला पोसाता है परन्तु तीन रुपये में आवे और यहाँ ढाई रुपये मिलें, तो वह माल पोसायेगा? बनिया ऐसा धन्धा नहीं करता। इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! जिसे राग पोसाता नहीं, एक समय की पर्याय पोसाती नहीं।

भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप, रुचि में पोसाण हुआ... आहाहा! वह प्रतिकूल चाहे जो संयोग हो, निर्धन हो, पानी नहीं मिले, आहार नहीं मिले, दुष्काल हो, पूरी दुनिया दुश्मन हो जाए, परन्तु अपने ज्ञायकस्वरूप की रुचि नहीं छोड़ना। आहाहा! आहाहा! नियमसार में आता है न? अन्त में नहीं (आता)? निन्दा.. लोग चाहे जो निन्दा करें परन्तु तू जैनधर्म को छोड़ना नहीं। आहाहा! नियमसार में अन्त में है। यह कहने का आशय वह है कि अपना आनन्दस्वरूप भगवान वीतरागमूर्ति की प्रतीति और ज्ञान हुआ, वे लोग निन्दा करे कि लो! यह तो निश्चय-निश्चय की बातें करते हैं और अमुक... ऐसा करके लोग विरोध करे तो भी तू छोड़ना नहीं। तेरी दृष्टि छोड़ना नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है।

अमरचन्दजी से सब स्थानकवासी के शास्त्र श्वेताम्बर के, उनका सब कथन दे, आधार दे। इसमें ऐसा कहा है और उसमें ऐसा कहा है। दृष्टि ही विपरीत है। '...' में है न? बड़ा वीरायतन किया है? दुर्लभजी वे हैं न? कैसे? झवेरी थे न? दुर्लभजी मोरबी के। हमें मिले थे। यहाँ आये थे। राजकोट आये थे, गोण्डल आये थे, हों! गोण्डल आये थे। वहाँ

क्या परन्तु पहले... जब ६९ के वर्ष में मोरबी में... का चातुर्मास था। खबर नहीं, भाई! मोरबी, मोरबी। ६९ के वर्ष। ७० से पहले। ६०-६५ वर्ष पहले की बात है। तो हम गये थे। गृहस्थाश्रम में थे न? पालेज में दुकान थी। उसे छोड़कर आये थे। पालेज में दुकान है न? अभी दुकान है। वहाँ नौ वर्ष रहे थे। भरुच और बड़ोदरा के बीच में पालेज है। वहाँ नौ वर्ष रहे। पिताजी की दुकान थी। पाँच वर्ष तो मैंने दुकान चलायी थी। १७ से २२ वर्ष तक, पाँच वर्ष। तो दुकान छोड़कर आये थे। ६९ में मोरबी में श्रीलालजी चातुर्मास था। हम गये थे, तब दुर्लभजी मिले थे। इनके पिता, परन्तु श्रद्धा-बद्धा की कोई खबर नहीं होती। वह बाहर में हो..हा.. हो..हा.. हो..हा..। श्रीलालजी मारवाड़ी थे। बड़े मकान में मोरबी। वहाँ की... है। फिर राजकोट। आहाहा!

परन्तु यह वस्तु नहीं थी बापू! वहाँ हमने सब सुना है न, वह दृष्टि सब विपरीत। आहाहा! गुणसमुद्र भगवान आत्मा... आहाहा! उसकी जिसे अन्तर में रुचि हुई, चाहे जो प्रतिकूल संयोग हो, पूरी दुनिया बदल जाए परन्तु वह दृष्टि जो रुचि हुई, वह नहीं बदलती। आहाहा! समझ में आया? धर्म या रुचि छूटी... आहाहा! यह अनन्त-अनन्त गुण का समुद्र प्रभु, इसकी दृष्टि-रुचि हुई, वह यदि छूटे... आहाहा! तो अमूल्य मनुष्यभव हार गये। मनुष्यभव मिला, उसे हार गया। आहाहा! दुनिया माननेवाले न मिलें, विरोध करनेवाले मिलें, तो धर्मरुचि नहीं छोड़ना। मैं तो पूर्णानन्द का नाथ हूँ। मैं पर्याय में नहीं, मैं राग में नहीं। आहाहा!

धर्म या रुचि... धर्म अर्थात् स्वरूप शुद्ध चैतन्य भगवान... आहाहा! उसकी दृष्टि और उसमें रमणता हो, वह नहीं छोड़ना। आहाहा! दुनिया मानो, न मानो; संख्या हो या न हो, परन्तु अपना आनन्दस्वरूप भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कहा, उसकी जो रुचि हुई तो उसे नहीं छोड़ना। प्रतिकूल संयोग में नहीं छोड़ना। है? अमूल्य मनुष्यभव हार गये। आहाहा! ३३५ बोल हुआ।

कर्मों के विविध विपाक में ज्ञायकभाव चलित नहीं होता। जिस प्रकार कीचड़ में कमल निर्लेप रहता है, उसी प्रकार चैतन्य भी चाहे जैसे कर्मसंयोग में निर्लेप रहता है ॥३३६॥

३३६ बोल। कर्मों के विविध विपाक में ज्ञायकभाव चलित नहीं होता। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप, द्रव्यस्वरूप, पदार्थस्वरूप, तत्त्वस्वरूप, शुद्ध चैतन्यघन को कर्म के निमित्त में कर्मों के विविध विपाक में ज्ञायकभाव चलित नहीं होता। चाहे तो शुभ-अशुभभाव हो। आहाहा! कर्म के निमित्त के संग से कर्म के विपाक से अपनी पर्याय में अशुभभाव हो, परन्तु दृष्टि से चलित नहीं होता। क्या आ गया? अरे रे! यह तो होता है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञायकभाव चलित नहीं होता। ज्ञायक जो त्रिकाली प्रभु है, वह दृष्टि में से चलित नहीं होता। वह वस्तु चलित नहीं होती। चाहे तो रौद्रध्यान हो जाए... आहाहा! समझ में आया? कर्म के विपाक के संग में अशुभभाव मलिन आवे, परन्तु ज्ञायकभाव में-उसमें नहीं आता, ज्ञायकभाव चलित नहीं होता। आहाहा! ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव ही रहता है। धर्मी की दृष्टि में ज्ञायकभाव आया, वह तो ऐसा का ऐसा रहता है। आहाहा! गजब बात है। कर्मों के विविध विपाक में ज्ञायकभाव चलित नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : त्रिकाली वस्तु।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली ज्ञायकभाव चलित नहीं होता। दृष्टि में आया न, ऐसा कहते हैं। वह त्रिकाल द्रव्यस्वभाव जो वस्तु है, एक पर्याय के पार अन्दर... आहाहा! पर्याय है, वह ऊपर है और वस्तु है, वह अन्दर है। अरे! यह क्या? पर्याय जो वर्तमान बाहर पर्याय दिखती है। जानने की, श्रद्धा की, विचारने की पर्याय है, तो वह पर्याय एक समय की है। उसमें वस्तु अन्तर में तल में अन्दर भिन्न है। पर्याय में नहीं आती। पर्याय तो ऊपर-ऊपर तैरती है। आहाहा! आहाहा! और पर्याय से निर्णय होता है, वह पर्याय भी ऊपर तैरती है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : बात तो सब।

पूज्य गुरुदेवश्री : सवेरे जरा यह विचार आया था कि भाई सोगानी का 'पर्याय मेरा ध्यान करे तो करे, मैं किसका करूँ?' आता है उसमें? आहाहा! सोगानी थे। कलकत्ता, निहालचन्द्र सोगानी, यहाँ आये थे। बहुत पैसेवाले हैं। लड़के हैं, बहुत पैसे हैं। बहुत वांचन की बात, शास्त्र अभ्यास किया। बाबा, योगी, साधु को मिले हुए, परन्तु यहाँ आये।

इतना कहा, प्रभु! इस राग का जो विकल्प उठता है, उससे भगवान अन्दर भिन्न है। आहाहा! तो उस विचार में एक रात्रि घोलन किया। सम्यग्दर्शन निर्विकल्प ध्यान हुआ। उन्होंने लिखा है। है? उसमें है न? वह आज सवेरे याद आया था। वापस सामने लिखा है न? नहीं तो हाथ में भी न आवे। सामने भाई ने निकाला था हमारे हिम्मत। आठवें पृष्ठ पर है। देखो, आठवाँ पृष्ठ? आठवें पृष्ठ में गिना था? भाई! दूसरा भाग है। उसमें भी पृष्ठ बदलता है? ऐसा, ठीक। लिखावट में, ठीक। आहाहा!

अभिप्राय में जरा भी, जो भी भूल, पूरी भूल है। अभिप्राय में जरा भी भूल कि राग मेरा है, पर्याय मेरी है; इतना भी हो, तो बड़ी भूल है। पर्याय ध्यान करनेवाली है। हिन्दी है। पर्याय जो ज्ञान की वर्तमान अवस्था है, वह ध्यान करनेवाली है, वह मेरा ध्यान करती है, मैं तो ध्रुव हूँ। पाटनीजी! यह मिला है न? आहाहा! पर्याय ध्यान करनेवाली है। आहाहा! राग नहीं, शरीर नहीं, पर्याय ध्रुव नहीं। ध्रुव का ध्यान करनेवाली पर्याय है। अरे रे! अब ऐसी बातें। कभी सुनी न हो। पर्याय ध्यान करनेवाली है और मैं तो ध्यान की विषयभूत वस्तु हूँ, मैं तो... पर्याय ध्यान करो, परन्तु मैं तो पर्याय (रहित) ध्यान का विषय जो त्रिकाली वस्तु है, वह मैं हूँ। आहाहा! पर्याय मेरा ध्यान करती है। मैं ध्यान करनेवाला नहीं हूँ। आहाहा! तुमने तो पढ़ा है न? पढ़ा है। आहाहा!

शरीर, वाणी, मन तो जड़, पर है। राग, दया, दान, विकल्प और हिंसा वह तो विकार-पर है, परन्तु विकाररहित यहाँ जो पर्याय है, वह पर्याय मेरा ध्यान करती है। मैं तो ध्रुव अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, ध्रुव हूँ। आहाहा! तुम्हारे भाई! द्रव्यदृष्टि (प्रकाश) आ गया या नहीं? अजितभाई! वहाँ है? आहाहा! आज लन्दन भेजने को पाँच ली है। भाई लन्दन भेजनेवाले हैं। वहाँ प्रेमचन्द है न? लन्दन में पढ़ते हैं। यहाँ का वाँचन है। यहाँ का प्रचार लन्दन में है। भाई पाँच भेजनेवाले हैं। इन्हें मिला नहीं बेचारों को। महाजन है। वहाँ पढ़ते हैं, लोगों को इकट्ठा करते हैं। ओहोहो! यह मार्ग! कभी सुना नहीं, कभी जाना नहीं। लन्दन, अफ्रीका से आगे है न, भाई! आगे? अफ्रीका से आगे। नहीं? अफ्रीका नजदीक, लन्दन दूर। अफ्रीका में तो अभी पन्द्रह लाख का मन्दिर बना है। इस ज्येष्ठ शुक्ल ११, उन लोगों के श्वेताम्बर के साठ घर हैं, वे सब दिगम्बर हो गये। अफ्रीका में, नैरोबी में। २५-३० वर्ष से यहाँ का वाँचन चलता है और समयसार की टेपरिकार्डिंग पाँच हजार ले गये

हैं। अप्रीका, ज्येष्ठ शुक्ल ११ में पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाना है, ढाई लाख का तो छोटा है। स्वाध्याय करते हैं। अजितभाई और वे सब इकट्ठे हैं। खातमुहूर्त, क्या कहलाता है वह ? शिलान्यास। अप्रीका में पन्द्रह लाख के मन्दिर का, अपने मुमुक्षुओं ने दिगम्बर मन्दिर का शिलान्यास किया है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे ? यह तो हुआ है, यह बतलाना है। डेढ़ वर्ष में पूरा होगा। विनती करने आयेंगे, वहाँ ले जाने को। परन्तु शरीर को ८९ वर्ष हुए। गर्भ का तो ९०वाँ है। सवा नौ महीने गिने न ? शरीर को ९० वर्ष चलता है।

मुमुक्षु :हवा-पानी आपको अनुकूल...

पूज्य गुरुदेवश्री : हवा-पानी... आहाहा! और भोजन साधारण। चार फुलके।

मुमुक्षु : अरे वहाँ के हवा-पानी ऐसे हैं कि अपने को....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या पता पड़े ? अब वहाँ तो हवा-पानी अच्छा नहीं, ऐसा कहते हैं। दिसम्बर में अच्छा हो, ऐसा कहते हैं। ऐसा है, कुछ नहीं ? आगे-पीछे हवा-पानी अच्छा नहीं। बहुत सर्दी।

मुमुक्षु : दिसम्बर-जनवरी में...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहते हैं। अब क्या हो ?

यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! पर्याय ध्यान करे तो करो। आहाहा! मैं तो अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु हूँ। आहाहा! पोपटभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह द्रव्यदृष्टि प्रकाश मिला है या नहीं ? है न ? पहले से होगा न।

आहाहा! मैं कौन हूँ ? मैं तो अनन्त गुण का समुद्र, सागर परमात्मस्वरूप मैं हूँ। अभी, हों! परमात्मस्वरूप न हो तो पर्याय में परमात्मस्वरूप केवली को-अरिहन्त को होता है, (वह) कहाँ से आयेगा ? बाहर से कोई चीज़ आयेगी ? आहाहा! भगवान आत्मा मैं ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। उसमें उत्पाद-व्यय पर्याय है। ध्रुव, वह

त्रिकाली नय की अपेक्षा से द्रव्य है। नय का द्रव्य। प्रमाण का द्रव्य तो (द्रव्य-पर्याय) दो होकर (है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव-धर्मी उसे कहते हैं कि यह ध्रुवस्वरूप मैं हूँ। आहाहा! त्रिकाली द्रव्यस्वभाव जो वस्तु ज्ञायकभाव, वह मैं हूँ। वह मैं हूँ, यह पर्याय मानती है; ध्रुव नहीं। मैं ध्रुव हूँ, यह पर्याय कहती है कि मैं ध्रुव हूँ। पर्याय ध्रुव का ध्यान करती है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसा कठिन है, बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग कोई अलौकिक है। लोगों को बेचारों को मिला नहीं। आहाहा! अजैन को जैनपना मानकर जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

भगवान आत्मा वीतरागबिम्ब प्रभु, वह मैं हूँ—ऐसा धर्मी जानता है और मैं हूँ—ऐसी जो पर्याय है, वह कहती है। पर्याय ऐसी है कि मैं पर्याय हूँ—ऐसा नहीं (कहती)। आहाहा! भगवान त्रिकाल रहनेवाला आदि-अन्तरहित चीज़ है। नित्यानन्दनाथ प्रभु, ध्रुव, वह सम्यग्दृष्टि की पर्याय ऐसा कहती है कि मैं यह हूँ। आहाहा! उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। बाकी तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! मैं तो ध्यान का विषय हूँ, इस बात में जरा अन्तर लगता है, परन्तु रात-दिन जितना बड़ा अन्तर है। एक में पर्याय में दृष्टि रहती है। दूसरे में द्रव्यदृष्टि होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मैं ध्यान करनेवाला नहीं हूँ, मैं तो ध्यान का विषय हूँ। आहाहा! ध्यान करनेवाला मैं और ध्यान करने का विषय, वह मैं—दोनों में अन्तर है। यह पर्यायबुद्धि है, एक द्रव्यबुद्धि है। इतना अन्तर है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण-५, शनिवार, दिनाङ्क २१-१०-१९७८
वचनामृत-३३७ से ३३८ प्रवचन-१२६

द्रव्य को ग्रहण करने से शुद्धता प्रगट हो, चारित्रदशा प्रगट हो, परन्तु ज्ञानी उन पर्यायों में नहीं रुकते। आत्मद्रव्य में बहुत पड़ा है, बहुत भरा है, उस आत्मद्रव्य के ऊपर से ज्ञानी की दृष्टि नहीं हटती। यदि पर्यायों में रुकें, पर्याय में चिपक जायँ, तो मिथ्यात्व में आ जायँ ॥३३७॥

३३७ बोल है। बहुत सरस बात, मक्खन है। जैनदर्शन वीतराग को बारह अंग में तात्पर्य क्या कहना है? वह तात्त्विक बात है। अभ्यास न हो, उसे कठिन पड़ती है। क्या हो? द्रव्य को ग्रहण करने से... अर्थात् क्या? आत्मा अन्दर वस्तु है। उसमें द्रव्य-गुण और पर्याय तीन हैं। शरीर, वाणी तो पर है, जड़ है। पुण्य-पाप के भाव हैं, वे भी विकार, अचेतन हैं। सवेरे आ गया न? आहाहा! अब अन्दर आत्मा जो त्रिकाली द्रव्य / वस्तु है, ज्ञायकभाव, चैतन्यस्वभावभाव, अतीन्द्रिय आनन्द स्वभाव का धारक आत्मा, उसे द्रव्य कहते हैं। अब इस भाषा की इसे खबर भी न पड़ती हो। द्रव्य अर्थात् यह पैसा और द्रव्य अर्थात्...

यहाँ परमात्मा सर्वज्ञदेव द्रव्य उसे कहते हैं कि यह आत्मा जो त्रिकाली ध्रुव चैतन्यमूर्ति पूर्णानन्द का नाथ है, उसे यहाँ द्रव्य कहते हैं। उसमें जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि शक्तियाँ हैं, उन्हें गुण कहते हैं और उनकी वर्तमान होनेवाली दशाएँ / हालत, उसे पर्याय कहते हैं।

अब यहाँ धर्मी-ज्ञानी की दृष्टि, जिसे धर्म करना है, उसकी दृष्टि द्रव्य को ग्रहण करने से... सूक्ष्म बात है, प्रभु! वीतराग जैनशासन बहुत अलौकिक है। द्रव्य जो वस्तु है, शाश्वत् रहनेवाला ध्रुव, यहाँ द्रव्य का अर्थ ध्रुव का अर्थ है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्;

उत्पाद-व्यय पर्याय है और यह ध्रुव है। उस ध्रुव को यहाँ द्रव्य कहा गया है। आहाहा! यह ध्रुव जो स्वयं वस्तु-प्रभु है, उसे ग्रहण करने पर (अर्थात्) उस पर दृष्टि देने पर, उस द्रव्य को ज्ञान में ग्रहण करने पर, उस वस्तु को श्रद्धा में लेने पर। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! वर्तमान से तो पूरा अन्तर है, भाई! शान्तिभाई! दूसरा प्रकार है यह। आहाहा!

यहाँ जो द्रव्य अर्थात् वस्तु जो है; यह शरीर, वाणी, मन और जड़कर्म वह तो पर है, उनसे अन्दर भिन्न, उसकी एक समय की जो पर्याय है, उससे भिन्न और उसमें जो अनन्त आनन्द आदि गुण हैं, वह गुण और गुणी का भेद जहाँ नहीं। आहाहा! यह द्रव्य वस्तु है, उसे समकिति ने उसे ग्रहण किया है। आहाहा! धर्मी जीव ने, ज्ञानी जीव ने, धर्म की शुरुआत करनेवाला जीव, वह द्रव्य अर्थात् नित्यवस्तु है, उसे ग्रहण करता है।

मुमुक्षु : ग्रहण करता है अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रहण करता है अर्थात् उसे पकड़ता है। पकड़ता है अर्थात् वर्तमान दशा को उस ओर ले जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! वीतरागमार्ग, जिन (देव) का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! तुम तो गुजराती समझते हो, बहुत बार आते हो न? अहमदाबाद। यहाँ माल लेने हमेशा आते हैं। आहाहा!

हसमुखभाई पीछे बैठे हैं। शान्तिभाई! पहिचानते हो? भाई! यह पीछे बैठे, देखो इन्होंने निवृत्ति ले ली है। बैठे हैं, ४२ वर्ष की उम्र है। एक लड़की चौदह वर्ष की है और लड़का बारह-तेरह वर्ष की (उम्र का), ४२ वर्ष की उम्र है, दो-तीन लाख की आमदनी लोहे की दुकान मुम्बई (में है उसे) छोड़ दी है, दुकान ही नहीं अब। अब धन्धा करने नहीं आता, छोड़ दिया। यह पूरे दिन वाँचन-मनन। लड़का-राजू आया है या नहीं? अभी आया था। है? बैठा है, राजू वह बैठा उस ओर अन्त में बैठा है अन्त में बैठा है, वह लड़का इन्हें एक ही है। भाई! यह तो दस-दस, बीस-बीस लाख हो, पचपन (वर्ष की) उम्र होवे तो भी निवृत्ति का ठिकाना नहीं। मजदूरी करनी है। आहाहा!

मुमुक्षु : लाभ होवे, तब मजदूरी करते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका? धूल का लाभ? वहाँ तो पाप का लाभ है। आहाहा! शान्तिभाई के वहाँ जमीन बहुत है और जमीन के बहुत पैसे इन्हें पैदा हुए हैं। बहुत लाखों

धूल के। धूल में से धूल (उपजी है), वह कहाँ आत्मा की चीज़ है? आहाहा! यहाँ तो प्रभु उस चीज़ का ग्रहण तो नहीं, वह तो आत्मा में है ही नहीं। परन्तु आत्मा में जो कुछ पुण्य और पाप का विकार है, उसका ग्रहण नहीं, वह भी पर चीज़ है। आत्मा की वर्तमान अवस्था जो है दशा, उस पर भी धर्मी की दृष्टि नहीं। आहाहा! छोटाभाई! ऐसा सूक्ष्म है। उसके गुण और गुणी का भेद, वस्तु अखण्ड गुणी, गुणी अर्थात् यह बोरी, वह नहीं, हों! चावल की बोरी और... अरे रे! गुणी अर्थात् अनन्त-अनन्त अन्दर आत्मा में गुण है, उन गुण का धारक वह द्रव्य अर्थात् गुणी। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात सुनी न हो, उसे बेचारे को क्या करे? सब बात अलग, बापू! क्या हो? आहाहा!

द्रव्य को ग्रहण करने से... आहाहा! वस्तु जो है त्रिकाल रहनेवाला भगवान आत्मा, उसे ग्रहण करने पर अर्थात् उस पर दृष्टि देने से। आहाहा! अर्थात् कि दृष्टि में उसे ग्रहण करने से अर्थात् ज्ञान की पर्याय में उसे ग्रहण (करने से)-पकड़ने से। आहाहा!

मुमुक्षु : शब्दों का हेर-फेर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेर-फेर है? आहाहा! प्रभु! जिनेश्वर तीन लोक के नाथ का मार्ग पूरी दुनिया से अलग है। आहाहा! अभी तो सम्प्रदाय में भी सब गड़बड़ उठी है। यह करो और यह करो और यह करो। अरे! भगवान! पर का तो यह कर नहीं सकता। स्वतत्त्व है, वह परतत्त्व का—इस शरीर का, वाणी का, परिवार का कुछ नहीं कर सकता। धन्धे के व्यापार का कुछ नहीं कर सकता। इसमें पुण्य और पाप के भाव हों, उन्हें अज्ञानी करता हो और वहाँ रुक जाए। आहाहा! यहाँ तो ग्रहण करना है न? अर्थात् यहाँ रुके, ऐसा कहा। पुण्य और पाप के भाव हों, उनका कर्ता होकर वहाँ रुक जाता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे धर्म की खबर नहीं और धर्म कैसे हो, उसकी खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ तो **द्रव्य को ग्रहण करने से शुद्धता प्रगट हो,**.. आहाहा! भगवान आत्मा वस्तु है। उसमें अनन्त-अनन्त गुण बसे हुए हैं, रहे हुए हैं। उस वस्तु को श्रद्धा में पकड़ने से, ज्ञान की वर्तमान दशा में उसकी ओर उन्मुख होने से, उसे ग्रहण करने से ऐसा कहने में आता है। आहाहा! तब उसे शुद्धता प्रगट हो, तब धर्म प्रगट हो। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तब प्रगट होता है। आहाहा! भाषा सादी है, प्रभु! भाव तो बहुत महँगा, भाई! आहाहा!

वस्तु जो अन्दर चैतन्यस्वरूप भगवान् त्रिकाल है, उसे यहाँ द्रव्य (कहते हैं) है तो ध्रुव। नय का द्रव्य है, यहाँ प्रमाण का द्रव्य (नहीं है)। यह भाषा क्या? द्रव्य दो प्रकार के हैं। एक प्रमाण का द्रव्य अर्थात् निश्चय का द्रव्य ध्रुव और व्यवहार का विषय उत्पाद-व्यय-पर्याय, दोनों होकर द्रव्य विषय, वह प्रमाण का विषय है। परन्तु यहाँ तो अकेला द्रव्य को विषय बनाना है। क्योंकि द्रव्य के विषय को जाने बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! जिस नय में पर्याय का निषेध हो। आहाहा! पुण्य-पाप का तो निषेध ही है, वह तो विकार है। समझ में आये उतना समझना, प्रभु! यह तो अगम्य बातें हैं, भाई!

एक समय की जो पर्याय है न? अभी पर्याय और द्रव्य क्या, इसकी खबर नहीं। एक व्यक्ति यहाँ प्रश्न करता था। 'थान' वाला (था) माणिकचन्दभाई थानवाला। पोटी है उसकी। नानालालभाई कालीदास का रिश्तेदार। ऊपर लिखा हुआ है कि 'द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि'। बहुत वर्ष की बात है। स्वाध्यायमन्दिर में (लिखा हुआ है)। अभी अब ऐसा लिखा, पहले ऊपर था। (वह कहता है), महाराज! यह द्रव्यदृष्टि वह (सम्यग्दृष्टि)? वह मानो कि करोड़पति यहाँ बहुत आते हैं, इसलिए वह द्रव्यदृष्टि, सो सम्यग्दृष्टि? द्रव्य अर्थात् यह वस्तु—पैसा। अरे! माणिकचन्दभाई! तुम क्या कहते हो? अरे! तुम जैन के वाड़ा में जन्मे... श्वेताम्बर थे। 'थान', थान है न? वह उनकी पोटी है। कुछ खबर नहीं होती। द्रव्य किसे कहना? कहा, यह द्रव्य तुम्हारे पैसे की बातें नहीं हैं, बापू! वह धूल तो पर रह गयी, उसकी यहाँ बात नहीं है।

यहाँ तो द्रव्य अर्थात् त्रिकाली चीज़ / वस्तु जो तत्त्व है, एक समय की पर्याय के समीप में ध्रुव चैतन्य है, जो अनन्त गुण का एकरूप है, उसे यहाँ परमात्मा द्रव्य कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! उस द्रव्य को ग्रहण करने से शुद्धता प्रगट होती है अर्थात् धर्म प्रगट होता है। आहाहा! उस त्रिकाली वस्तु को पकड़ने पर... आहाहा! उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हो। दो पहले लिये हैं, फिर चारित्र लेंगे। समझ में आया? आहाहा!

तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव के कथन में आया, वह यहाँ कहा जाता है। जो आत्मा पर्यायरूप है और द्रव्यरूप है। द्रव्य अर्थात् यहाँ निश्चयनय का विषय। अब दूसरा तो उसे कुछ है नहीं उसमें। अब उसमें द्रव्यरूप है और पर्यायरूप है। उसमें पर्याय को ग्रहण न करके, पर्याय द्रव्य को ग्रहण करती है। आहाहा! अपनी जो पर्याय है, ज्ञान की

अवस्था; वह पर्याय, पर्याय को ग्रहण न करके, पर्याय ने पर्याय को ग्रहण अनादि से किया है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। कहो, रतिभाई! ऐसा है, भगवान! क्या हो? अरे रे!

शरीर, वाणी तो इसने ग्रहण ही नहीं किये। ग्रहण किया हो तो एक समय की पर्याय और पुण्य-पाप के विकल्प, वे ग्रहण किये हैं। अनादि से मिथ्यादृष्टि (ने)। उसे धर्म की खबर नहीं है। आहाहा! अब यह कहते हैं कि जो पर्याय को-एक समय की अवस्था को ग्रहण किया है और पुण्य-पाप के भाव को ग्रहण किया, वह वर्तमान पर्याय को त्रिकाली द्रव्य की ओर उन्मुख करने पर वह पर्याय द्रव्य को ग्रहण करती है। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! यह तो कहीं नया धर्म होगा यह? जैनधर्म तो भाई! अभी तक तो ऐसा सुनते हैं, छह काय की दया पालन की, व्रत करना, उपवास करना, रात्रिभोजन नहीं करना। सब हमने किया था, हों! वहाँ। सम्प्रदाय में क्रिया ऐसी कठिन कड़क थी परन्तु वह सब क्रियाएँ राग की क्रिया और उनमें धर्म माना हुआ था। आहाहा!

यहाँ तो परमेश्वर कहते हैं, वह इन बहिन के वचन हैं। समझ में आया? आहाहा! प्रभु! तू अन्दर अनन्त-अनन्त गुण का भरपूर भगवान द्रव्य है न! आहाहा! जैसे शक्कर है, उसमें मिठास, सफेदाई, सुगन्ध जैसे भरी है, उसे शक्कर कहते हैं। उसी प्रकार आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, ऐसे अनन्त गुण जिसमें रहे हैं, उसे यहाँ द्रव्य और वस्तु कहते हैं। आहाहा! भाषा तो सादी है, प्रभु! शब्द...

मुमुक्षु : धर्म के शब्द हैं, यह हमारे घर के शब्द नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तुम्हारे घर के शब्द यहाँ कहाँ से? यहाँ तो वीतराग के शब्द हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा-वैसा सब धूल अब। इसके पास कहाँ आते हैं? इसके पास तो, ममता पर इसका लक्ष्य जाता है। जैसे मिले अर्थात् (ममता मिली)। वह ममता इस आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! और ममता को जानने की जो वर्तमान ज्ञानपर्याय है, उतना आत्मा नहीं है। आत्मा उस पर्याय के समीप में पूरा तत्त्व पड़ा है, जिसे यहाँ द्रव्य कहते हैं। दूसरी भाषा में कहें तो उसे ध्रुव कहते हैं, तीसरी भाषा में कहें तो उसे सामान्य

कहते हैं, चौथे भाषा में कहें तो उसे एकरूप रहनेवाला तत्त्व कहते हैं, जिसमें परिणमन / बदलना भी नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहेंगे।

द्रव्य को ग्रहण करने से... त्रिकाली भगवान चैतन्य वस्तु को पकड़ने से अर्थात् उस पर दृष्टि पड़ने से, उसकी पर्याय में शुद्धता—सम्यग्दर्शन-ज्ञान की शुद्धता, धर्म की दशा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह इसे (द्रव्य को) ग्रहण करने पर प्रगट होती है। आहाहा!
चारित्रदशा प्रगट हो,... इसे ग्रहण करने पर-त्रिकाली ज्ञायक को पकड़ने पर शुद्धता धर्म की (प्रगट होती है) पुण्य-पाप है वह तो अशुद्ध मैल है। वह कहीं द्रव्य को ग्रहण करने से वह उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें। अब तो यह पुस्तक बाहर आ गयी है। बहुत चालीस, पचासी हजार बाहर प्रकाशित हो गयी है। हिन्दीवालों को, गुजरातीवालों को सबको भेंट में दी है। जितने (आत्मधर्म) मासिक मँगाते हैं, सबको यह भेंट है। आहाहा! है सात रुपये की पुस्तक, विक्रय करते हैं तीन में, परन्तु जितने आत्मधर्म मँगाते हैं, उन्हें भेंट है मुफ्त (मे दी गयी है)। अरे! बापू! ऐसी चीज़ कहाँ है? भाई! इसकी बहियाँ देखा करता है शाम-सवेरे, यह तो देख बही। आहाहा! यह तो भगवान के घर की बहियाँ हैं। आहाहा!

प्रभु! तू अन्दर में शाश्वत रहनेवाली चीज़ है या नहीं? विचार, पर्याय है, वह तो बदलती है। विचार बदले, श्रद्धा बदले, वह तो पर्याय है परन्तु पर्याय अर्थात् अवस्था का वर्तमान अंश है, परन्तु वर्तमान त्रिकाली वस्तु है या नहीं अन्दर? आहाहा! जो त्रिकाली वस्तु है, उसमें तो शरीर की पर्याय भी नहीं है, उसमें राग भी नहीं है और वर्तमान पर्याय में उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसी चीज़ को ग्रहण करने पर शुद्धता प्रगट होती है, धर्म प्रगट होता है। धर्मी ऐसा जो यह द्रव्यस्वभाव त्रिकाल है, इसे पकड़ने पर धर्मदशा / सम्यग्दर्शन-ज्ञान, सम्यग्ज्ञान तब प्रगट होता है। शास्त्र के पठन से सम्यग्ज्ञान नहीं प्रगट होता। आहाहा! कैसे जँचे इतना बड़ा आत्मा? आहाहा!

आत्मा साक्षात् जिनबिम्ब परमात्मस्वरूप प्रभु है। आहाहा! समझ में आया?

जिनबिम्ब है वह, जिनबिम्ब। 'घट घट अन्तर जिन बसै' वह जिनबिम्ब अर्थात् पूर्ण वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान् द्रव्य है। आहाहा! उस द्रव्य को पकड़ने से, आहाहा! अनादि से एक समय की पर्याय है, उसे इसने पकड़ा है, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। आहाहा! परन्तु उस पर्याय की दृष्टि को पकड़ना छोड़कर और त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवस्वभाव, एकरूप चैतन्यस्वभाव को पकड़ने पर उसकी पर्याय में शुद्धता प्रगट होती है, उसकी पर्याय में धर्म प्रगट होता है। भाषा तो सादी है, प्रभु! मार्ग तो सूक्ष्म है, भाई! यह अपूर्व बातें हैं। आहाहा! समझ में आया?

उसे शुद्धता प्रगट हो और उसके द्रव्य को विशेषरूप से अन्दर एकाग्र होने पर चारित्र प्रगट हो, जिसे चारित्र कहते हैं (वह)। यह चारित्र कहीं देह की क्रिया, वह चारित्र नहीं है। तथा अन्दर पंच महाव्रत के परिणाम आते हैं, वे कहीं चारित्र नहीं हैं, वह तो राग है। आहाहा! यह वस्तु है भगवान् अनन्त गुण का भण्डार सागर, उस पर दृष्टि पड़ने से पर्याय में वर्तमान में जो अशुद्धता और अल्पता है, उसकी जगह शुद्धता प्रगट होती है। भले शुद्धता कम हो परन्तु उसे द्रव्य के त्रिकाल के आश्रय से (शुद्धता प्रगट होती है)। वीतराग को भूतार्थ आश्रित, ऐसा कहा है। त्रिकाली जो भूतार्थ ध्रुवस्वरूप है, अविनाशी शाश्वत् रहनेवाला अनादि से अनन्त ऐसी की ऐसी रहनेवाली वह चीज है, उस चीज को पकड़ने से शुद्ध-शुद्धता धर्म प्रगट हो, उस द्रव्य को पकड़ने से चारित्र प्रगट हो। आहाहा! ऐसी बात है। अपने आप पढ़े तो समझ में आये, ऐसा नहीं है इसमें। भाषा सिद्धान्त तत्त्व की है न?

चारित्रदशा प्रगट हो, परन्तु ज्ञानी उन पर्यायों में नहीं रुकते। आहाहा! धर्मी जीव उसे कहते हैं, ज्ञानी / धर्मी उसे कहते हैं कि जिसने त्रिकाली ज्ञायक को पकड़ा और जिसकी पर्याय में शुद्धता—सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र वीतरागी पर्याय प्रगट हुई है, तथापि वह ज्ञानी, धर्मी उस पर्याय में रुकता नहीं। आहाहा! उसकी दृष्टि तो द्रव्य के ध्रुव पर पड़ी है। आहाहा! जैसे समुद्र में नाव और जहाज चलते हैं। वह ध्रुव तारा, ध्रुव तारा है न? उसके लक्ष्य से (चलते हैं)। इसी प्रकार यहाँ पर्याय में शुद्धता ध्रुव के लक्ष्य से प्रगट होती है। आहाहा! अरे! यह किस प्रकार की भाषा! ऐसा जैनधर्म होगा? यहाँ तो ५०-६० वर्ष से सुनते हैं कि दया पालो, व्रत करो,.... अब वह सब भाषा जड़, सुन न! और उसमें

विकल्प उठता है, वह तो राग है, भाई! आहाहा! ...आता है न? निःशलयव्रती। विशल्यी करणेण, आता है न? शल्यरहित। परन्तु शल्य क्या? उससे रहित क्या है, इसकी तो खबर भी नहीं होती। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि जिसका अन्दर स्वरूप चैतन्यबिम्ब प्रभु पड़ा है अन्दर, उस पर दृष्टि पड़ने से, उसे ग्रहण करने से शुद्धता, धर्म की पवित्रता आनन्द आदि दशा, आनन्द अतीन्द्रिय आनन्ददशा प्रगट होती है। आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होता है, अतीन्द्रिय सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, अन्दर की स्वच्छता में पर्याय में स्वच्छता प्रगट होती है, पर्याय में प्रभुता ईश्वरशक्ति की दशा प्रगट होती है, स्वयं ईश्वर प्रभु, हों! कोई दूसरा ईश्वर-फीश्वर कर्ता-फर्ता है नहीं। आहाहा!

यह प्रगट दशा हो परन्तु ज्ञानी उन पर्यायों में नहीं रुकते। आहाहा! उस निर्मल पर्याय में वहाँ अटकते नहीं। उनकी दृष्टि का जोर तो द्रव्य पर है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। क्या कहा? कि ज्ञानी उस पर्याय में रुकते नहीं। आहाहा! माल आया है आज, हों! ऐई! निरंजन! इसे सुनने में प्रेम है। अब सुने तो सही। जवानी और शरीर तो मिट्टी-धूल है, जवान और वृद्ध तथा बालपन यह तो मिट्टी-धूल का है। भगवान कहाँ अन्दर बाल, वृद्ध है। वह तो ताजा पड़ा है चैतन्यमूर्ति भगवान। आहाहा! अरे रे! कहाँ से जँचे? दो सिगरेट ठीक से पीवे तो भाईसाहब को दस्त उतरे। ऐसे तो अपलक्षण। अब उसे कहना कि तू भगवानस्वरूप है। किस गज से मापे?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अब धूल में कहाँ था बीड़ी में। आहाहा! और पाव सेर, डेढ़ पाव सेर चाय पीकर आवे सुनने, तो मस्तिष्क ठिकाने रहे, नहीं तो कहे, आज बराबर चाय नहीं पी, इसलिए मस्तिष्क ठिकाने नहीं है। अरे! यह क्या तेरे लक्षण। पानी का उकाला अथ सेर पीकर आया हो तो सुनने में मस्तिष्क ठीक रहे। अब उसे कहना, प्रभु! तू अनन्त गुण का धनी प्रभु अन्दर है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह चाय पीवे, तब आनन्द आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी (आनन्द नहीं है)। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहना है कि प्रभु जो शुद्ध चैतन्यघन द्रव्य है, उसे पकड़ने पर जो निर्मल दशा होती है, वहाँ भी धर्मी की वहाँ निर्मल (पर्याय) के ऊपर दृष्टि नहीं है। उसका वहाँ रुकाव नहीं है, अटकना नहीं है। आहाहा! पोपटभाई! कहीं लुआणा में कहीं नहीं था। यह सब यहाँ (सुनने को मिला) ऐसी बातें हैं। रामजीभाई है न? तुम्हारे राजकोट के किसान, किसान है, करोड़पति है, वे खम्बे की ओर बैठे, इस ओर। यह भाई यहाँ रहते हैं। राजकोट के किसान करोड़पति हैं, करोड़ रुपये हैं। पैंतीस लाख की तो एक फिल्म बनायी है। अरे! भगवान! परन्तु तू कौन? बापू! यह पैसा पति नहीं, नरपति नहीं, रागपति नहीं और पर्यायपति तुम नहीं। आहाहा! ऐई! ये रहे करोड़पति घीया। धूल के। आहाहा!

प्रभु! यहाँ तो तीन लोक का नाथ पुकार करता है। जिनेश्वरदेव की ध्वनि में यह आया था कि प्रभु! धर्मी तो उसे कहते हैं कि जिसे ज्ञायकस्वभाव, नित्यानन्द प्रभु, सहजानन्द प्रभु (है, उसकी दृष्टि हुई है)। तथा एक बार सहजानन्द आया तो एक भाई सुनकर कहे, सहजानन्द तो स्वामी नारायण में होता है। अरे! भाई! तुम्हें खबर नहीं। आता है न स्वामी नारायण? यहाँ तो सहज स्वाभावी अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु है, भाई! तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

बड़ा समुद्र पानी का भरा हुआ हो परन्तु यदि किनारे चार हाथ का कपड़ा आड़े हो (तो) नहीं दिखता, वह अपार समुद्र नहीं दिखता। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा जिसे अन्दर दया, दान, व्रतादि के राग का प्रेम है... आड़ी पड़ी है, उसे नहीं दिखायी देता वह। आहाहा! अथवा एक समय की पर्याय का भी जिसे प्रेम है, उसकी आड़ में, विभ्रम की आड़ में वह दिखायी नहीं देता। आहाहा! आहाहा! ऐसा है, बापू! फिर सोनगढ़ के नाम से लोग बेचारे ऐसा कहें इनका एकान्त है। कहो, बापू! तुम्हें तुम्हारे धर्म-तत्त्व की खबर नहीं है, भाई! आहाहा!

इस धर्मी को... शरीर-बरीर यह तो धूल-मिट्टी है, यह कहीं आत्मा नहीं और आत्मा में यह है नहीं और आत्मा इसमें नहीं। आत्मा तो अन्दर भिन्न चीज़ है। आहाहा! वह आत्मा एक समय की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली चैतन्य का गंज प्रभु पड़ा है। जैसे बड़ी गाँठ पड़ी हो और उसमें मात्र कपास-रुई भरी है, वैसे इस भगवान आत्मा में एक समय में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता अन्दर भरी

है। भाई! तुझे खबर नहीं है। उसे यहाँ द्रव्य और पदार्थ वस्तु कहते हैं। उसे पकड़ने पर धर्म होता है, वह शुद्धता की दशा, आनन्द की दशा प्रगट होती है और उसे पकड़कर, स्थिर होने पर चारित्र प्रगट होता है अर्थात् वीतरागदशा प्रगट होती है, तथापि ज्ञानी की नजर पर्याय पर नहीं है। वहाँ पर्याय प्रगट हुई, इसलिए वहाँ रुक गया है—ऐसा नहीं है। आहाहा! उसकी नजर में तो भगवान पूर्णानन्द का नाथ है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया कहा न? किस पद्धति से कहा जाता है, (यह समझ में आता है)? समझ जाए तब तो निहाल हो जाए, परन्तु किस पद्धति से कहा जाता है तो इसे समझ में आया? ऐसा कुछ कहा जाए। आहाहा!

यह धर्मी जीव, उसे जो धर्म प्रगट हुआ है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागदशा, उसमें भी धर्मी रुकता नहीं क्योंकि वह तो पर्याय है। उसमें कोई पर्याय में से नयी पर्याय आवे, ऐसी शक्ति उसमें नहीं है। आहाहा! नयी वीतरागी विशेष शुद्धि की वृद्धि होना हो तो वह शुद्धि की पर्याय में से नहीं आती, वह तो त्रिकाली ज्ञायक भगवान है, उसके अवलम्बन से नयी शुद्धता प्रगट होती है। आहाहा! अरे! यह किस प्रकार की भाषा? अनजान व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि यह क्या है यह? भगवान! यह भगवान के मन्त्र हैं, प्रभु! आहाहा! सर्प काट खाया हो, उसे उतारते हैं न मन्त्र? इसी प्रकार राग की एकताबुद्धि का जहर इसे अनादि से चढ़ गया है। आहाहा! उसे उतारने के ये मन्त्र हैं, भाई! प्रभु!

आचार्य तो भगवानरूप से ही बुलाते हैं। आहाहा! (समयसार की) ७२ गाथा में आता है न? पुण्य और पाप के भाव अशुचि हैं, मैल हैं। आहा! भगवान आत्मा निर्मलानन्द है, ऐसा पाठ में ७२ में आता है। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव जड़ हैं। यह तो सवेरे आ गया। यहाँ भी जड़ कहा है, क्योंकि वे कहीं स्वयं जानते नहीं हैं, तथा जाननेवाले को जानते नहीं हैं, जाननेवाला उन्हें जानता है; इसलिए वे जड़ हैं। आहाहा! और यह पुण्य और शुभ-अशुभभाव, वह दुःखरूप है। आहाहा! कैसे जँचे? अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान अन्दर है, उसकी पर्याय में जो शुभ-अशुभभाव होता है, (वह) दुःखरूप है। अन्दर त्रिकाली प्रभु है, वह अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। उसके आश्रय से प्रगट हुई निर्मल पर्याय, धर्म पर्याय, शान्ति की पर्याय, वीतरागी पर्याय है; तथापि धर्मी उस पर्याय में रुकता नहीं है। उसका जोर तो द्रव्य / वस्तु पर है। आहाहा!

समुद्र के मध्यबिन्दु से जो ज्वार-बाढ़ आती है न ? ज्वार। उस ज्वार पर लक्ष्य नहीं है, कहते हैं। अन्दर मध्यबिन्दु जो पड़ा है, वहाँ (लक्ष्य है)। आहाहा! ऐसा आत्मा.. परन्तु वह आत्मा क्या है, इसकी खबर नहीं। यह दया पाले, वह आत्मा; हिले-चले, वह त्रस और स्थिर रहे, वह स्थावर। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं है। तीन लोक का नाथ जिनेश्वर परमेश्वर तो ऐसा फरमाते हैं, भाई! तेरी अन्तरवस्तु में, अन्तर आत्मा में शक्ति में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त का कोई अन्त नहीं, इतनी शक्तियों के गुण भरे हैं। आहाहा! जैसे कोठी में ज्वार है, ऐसे नहीं। कोठी भिन्न है और ज्वार भिन्न है। कोठी (कोठार) होती है न ? परन्तु जैसे दूध में सफेदी और मिठास पड़ी है, वैसे भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान आदि गुण भरे हैं। अरे रे! तब हमारे एक थे न भगवानजीभाई! रामजीभाई के मित्र वकील (थे वे कहें), आप ऐसी बात करते हो तो धोयी हुई मूली जैसा गया कहाँ ? ए... भगवानजीभाई! वह वकील नहीं था ? कुछ खबर नहीं होती। वकालात में लाखों रुपये कमाकर बँगला और अमुक और अमुक... कि ऐसा आत्मा तुम कहते हो वह तो धोयी हुई मूली जैसा गया कहाँ ? कहे - ऐसा प्रश्न किया। अरे! भगवान वह है, यहाँ है, बापू! परन्तु तेरी नजर वहाँ नहीं, इसलिए तुझे नहीं दिखता। आहाहा!

धर्मी जीव पर्यायों में रुकता नहीं क्योंकि ? **आत्मद्रव्य में बहुत पड़ा है,..** आहाहा! आज गाथा (बोल) बहुत सरस आ गयी है। हमारे आये हैं न भाई ? अपने आप ये सब आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्यवाले व्यक्ति को मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बात सत्य, बापू! भाग्यवान को मिले ऐसा है यह तो। आहाहा! कहते हैं कि **आत्मद्रव्य में बहुत पड़ा है,..** पर्याय में क्यों नहीं रुकते ? आहाहा! शरीर, शरीर-बरीर धूल और मिट्टी, माँस, हड्डियाँ ये तो, ये तो कहीं अलग रह गये। बापू! यह तुझमें और तू इनमें नहीं। यह तो धूल है। आहाहा! परन्तु तुझमें तो **बहुत भरा है,..** कहते हैं। वे धर्मी जीव पर्याय में क्यों नहीं रुकते ? कि द्रव्य में... पहले द्रव्य कहा था न ? अब आत्मद्रव्य लिया स्पष्ट। **आत्मद्रव्य में बहुत पड़ा है,..** आहाहा!

इसके अन्दर स्वभाव में तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त

प्रभुता, ईश्वरता। आहाहा! ऐसे-ऐसे अनन्त गुण बहुत भरे हैं, भाई! आहाहा! बहुत पड़ा है, बहुत भरा है, ... दो शब्द लिए हैं। भगवान! तेरे द्रव्यस्वभाव में बहुत पड़ा है और बहुत भरा है। आहाहा! ऐसी बातें। उस आत्मद्रव्य में बहुत पड़ा है, ... आहाहा! बहुत अर्थात् अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण पड़े हैं। एक-एक गुण का भी अनन्त-अनन्त सामर्थ्य है। एक-एक गुण में अनन्त गुण हैं, उनका रूप है। आहाहा! ऐसे-ऐसे अनन्त गुण तुझमें भरे हैं, प्रभु! भाई! जो सर्वज्ञ केवली हुए, वह केवलज्ञान की पर्याय कहाँ से आयी? कहीं बाहर से आती है। आहाहा! यह भी खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : पर्याय.....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है परन्तु कहाँ से आयी ?

मुमुक्षु : यह पर्याय अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अवस्था। पर्याय अर्थात् अवस्था। पर्याय अर्थात् हालत, पर्याय अर्थात् दशा, पर्याय अर्थात् वर्तमान अंश की प्रगटता, उसे पर्याय कहते हैं। वह कहीं द्रव्य-गुण-पर्याय नाम भी न आते हों बेचारे को। अरे रे! रंक कहा है, भिखारी (कहा है)। पुण्य के अर्थी, पैसे के अर्थी, राग के अर्थी सब भिखारी हैं। भीख माँगते हैं। भगवान होकर भीख माँगता है। आहाहा!

कुन्दकुन्द भगवान ने शास्त्र में वरांका कहा है। वरांका-भिखारी। आहाहा! अरे! अनन्त-अनन्त लक्ष्मी पड़ी है न, प्रभु! तेरे घर में अन्दर है और तू बाहर की लक्ष्मी-पैसा लाओ और स्त्री लाओ और इज्जत लाओ और कीर्ति लाओ तथा पुत्र लाओ... आहाहा! माँगनेवाला बड़ा भिखारी है, भाई! यहाँ तो दरबार आये थे, तब कहा था। भावनगर दरबार, करोड़ का तालुका है न, भावनगर। करोड़ रुपये वर्ष का। यहाँ व्याख्यान में आया था। यहाँ तो सब बड़े राजा भी आते हैं। दो-तीन बार व्याख्यान में आये। एक बार कहा, उनका एक भाई है, नहीं? वह बड़ा कैसा? वह साथ में आया था। फिर दरबार को कहा। वर्ष की एक करोड़ की आमदनी है। कहा, दरबार! महीने में दो लाख माँगे, वह छोटा भिखारी, पाँच लाख माँगे, वह बड़ा भिखारी, करोड़ माँगे, वह बड़ा भिखारी में भिखारी है। वह तो बेचारा सुने। हमारे कहाँ उससे कुछ लेना था? कि यह बड़ा राजा है, इसलिए (ऐसा मत कहो)।

भिखारी है, भिखारी। अन्दर लक्ष्मी पड़ी है, अनन्त ज्ञान, आनन्द की (लक्ष्मी है), वहाँ तू देखता नहीं और जिसमें नहीं है, और जो नहीं इसके पास आता, उसे माँग.. माँग.. करता है, यह लाओ.. यह लाओ.. यह लाओ.. यह लाओ। आहाहा! ऐसी बात कैसी यह? बापू! वीतराग के मार्ग के घर की यह बात है, भाई! आहाहा! अरे! ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है, प्रभु! वस्तु को समझे बिना जाएगा तो वह वापस चौरासी के अवतार में भटकेगा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, उस आत्मद्रव्य में बहुत पड़ा है, बहुत भरा है, उस आत्मद्रव्य के ऊपर से ज्ञानी की दृष्टि नहीं हटती। उस आत्मद्रव्य से अर्थात् वस्तु जो त्रिकाली ध्रुव है, धर्मी की दृष्टि वहाँ से नहीं हटती, वह पर्याय में नहीं रुकता। आहाहा! जैसे खूँटे से बैल और गाय को बाँधे तो वहीं के वहीं रहते हैं; उसी प्रकार इस ध्रुव में जिसने दृष्टि को बाँधा है, आहाहा! प्रभु महास्तम्भ ध्रुव है। वह क्या होगा? उस ध्रुव पर जिसने दृष्टि बाँधी है, वह पलटती चीज़ नहीं, वह तो कायम रहनेवाली चीज़ है। आहाहा!

उस आत्मद्रव्य के ऊपर से... आत्मद्रव्य से, ज्ञानी की दृष्टि नहीं हटती। आहाहा! वह चाहे जिस प्रसंग में दिखायी दे, परन्तु ध्रुव पर दृष्टि पड़ी है, वह हटती नहीं। आहाहा! उसे तो धर्मी और ज्ञानी कहते हैं। आहाहा! आत्मद्रव्य के ऊपर से, ऊपर से समझ में आया? आत्मद्रव्य के ऊपर से... ऊपर से समझ में आया? आत्मद्रव्य से, ऐसा। आत्मद्रव्य से ज्ञानी की दृष्टि हटती नहीं, आहाहा! वस्तु। यदि पर्यायों में रुकें,... वर्तमान अवस्था से वहाँ रुके। आहाहा! पर्याय में चिपक जायँ,.. पर्याय क्या और...! अरे, भगवान! यह तो जैनदर्शन की इकाई की शून्य की बातें हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इकाई का शून्य अलग प्रकार का होता है। अकेला शून्य अलग होता है और इकाई में वह शून्य होता है न? एक में शून्य पहला। होवे, दूसरा शून्य गोल अकेला हो और एक का शून्य जरा ऐसा करके ऐसा लम्बा करे। आहाहा! अरे! इसकी भी इसे कहाँ खबर है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव, उनके इकाई के शून्य की यह बात पहले करते हैं।

आहाहा! उसे पकड़कर दर्शन हो, उसे पकड़कर चारित्र हो, उसे पकड़कर केवलज्ञान हो। आहाहा! समझ में आया? धर्मी की दृष्टि प्रगट हुई पर्याय में नहीं रुकती। क्योंकि उसका ध्येय तो द्रव्यस्वरूप है। ध्यानी-ज्ञानी का ध्येय वस्तु द्रव्यस्वभाव है। इसलिए वह पर्याय में, अपनी इस पर्याय में रुकता है, ऐसा नहीं है और यदि वहाँ पर्याय में रुक गया और वहाँ एक अंश की दशा में चिपटा.. आहाहा! तो मिथ्यात्व में आ जायँ। मिथ्यादृष्टि हो जाए। यह गजब बात है! भाई! आहाहा! क्या कहा यह?

वस्तु जो प्रभु पूर्ण अनन्त गुण का धारक द्रव्य-वस्तु, उस पर धर्मी की—समकृती की—ज्ञानी की दृष्टि होती है। उस जीव को पर्याय में निर्मलता आदि आवे, तथापि वहाँ उसे रुकना नहीं है, परन्तु यदि वह पर्याय में रुक गया और एक समय की दशा में चिपट गया तो द्रव्य की दृष्टि सम्यग्दृष्टि हट जाती है, तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। आहाहा! आज माल-माल आया है। पाँच लाईन में तो...

यदि पर्याय में रुके, उसमें उसकी रुचि हो जाए तो वस्तु की जो त्रिकाल रुचि है, वह छूट जाए, मिथ्यात्व हो जाए। आहाहा! पर्यायदृष्टि 'पर्याय मूढा परसमया', प्रवचनसार। प्रवचनसार, ज्ञेय अधिकार की ९३ गाथा। पहली गाथा। एक समय की पर्याय में यदि महिमा आ जाए, उसे महा प्रगट हुआ, ऐसी दशा हो जाए तो भगवान जो त्रिकाल ऐसी अनन्त पर्याय और अनन्त गुण का धनी है, उसकी दृष्टि हट जाए। आहाहा! सूक्ष्म बात है, अपूर्व बातें हैं, बापू! आहाहा! यह तो जिनेश्वर तीन लोक के नाथ परमेश्वर वीतराग अरिहन्त का यह कथन है। समझ में आया? यह इतना सब अन्तर बहुत इसमें तो। यह जगत मानकर बैठा है कुछ, उससे तो यह बड़ा पूरा अन्तर है।

पर्याय में रुके... क्या कहा यह? एक समय की भले निर्मल पर्याय प्रगट हुई, परन्तु उस पर्याय पर यदि रुचि जाए, पोसाण जाए तो मिथ्यादृष्टि हो जाए। आहाहा! माल-माल है। ऐसा है, भाई! पर्याय में रुके, पर्याय में चिपक जाए वहाँ। आहाहा! एक समय की पर्याय में यदि रुचि हो जाए (तो) मिथ्यादृष्टि हो जाए अर्थात् (सम्यक्त्व से) छूट जाए। ऐसा वहाँ तो तुम्हारे कपड़े में नहीं था। आहाहा! यह तो भाग्यशाली को कान में पड़े, ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! वह आता है न? भगवान की वाणी में, नहीं? वचन... भाग्य के कारण परमात्मा के वचन निकलते हैं।

मुमुक्षु : भवि भागन वच जोगे....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह.. भवि भागन वच जोगे... भगवान की वाणी निकलती है। वाणी निकलती है, उसके कर्ता नहीं कि मैं वाणी करूँ। भगवान केवलज्ञानी हैं। वाणी तो जड़ से निकलती है। आहाहा! भवि भागन जोग - वीतराग की वाणी निकलती है। परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। आहाहा! इन्द्र एक भवतारी, सौधर्म का इन्द्र अभी है, एक भव करके मोक्ष जानेवाला है, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है। उसकी रानी (इन्द्राणी) है, वह भी एक भव में मोक्ष जानेवाली है। देवी, करोड़ों देवियाँ हैं, परन्तु एक देवी वह है। वह सुनने आती है, तब भगवान की ऐसी वाणी आती है। आहाहा! जिसे एक भव में तो मोक्ष जाना है, तीन ज्ञान तो वर्तते हैं, समकित / द्रव्यदृष्टि तो वर्तती है। अन्तर्दृष्टि हो गयी है। पर्याय में रुकते नहीं। दृष्टि वहाँ द्रव्य पर पड़ी है। आहाहा! वे सुनने आवें, तब भी प्रभु की तो यह वाणी है कि जो तेरी पर्याय है, उसमें यदि रुक गया तो मिथ्यादृष्टि हो जाएगा; जैनपना नहीं रहेगा। आहाहा! ऐसी बात है। यह ३३७ हुआ। एक घण्टे चला। पाँच-छह मिनट रहे हैं। गम्भीर-गम्भीर वस्तु है, बापू!

शुभभाव में श्रम पड़ता है, थकान लगती है; क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। शुद्धभाव आत्मा का स्वाधीन स्वभाव होने से उसमें थकान नहीं लगती। जितना स्वाधीन, उतना सुख है। स्वभाव के सिवा सब दुःख ही है ॥३३८॥

शुभभाव में श्रम पड़ता है,... ३३८, कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का जो भाव, वह तो शुभ है। उस शुभभाव में श्रम पड़ता है, थकान लगती है;... राग है। आहाहा! यहाँ तो अपवास करे और व्रत पाले, वह धर्म है, (ऐसा) लोग मानते हैं। बापू! अब व्रत का विकल्प है, वह तो राग है। वह राग है, यह श्रम पड़ता है, ज्ञानी को थकान लगती है। उस शुभभाव का दुःख लगता है। आहाहा!

शुभभाव में श्रम पड़ता है, थकान लगती है; क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। वह शुभराग, शुभयोग... आहाहा! अरे रे! अब पंचम काल में तो शुभयोग ही होता

है, ऐसा कहते हैं। प्रभु.. प्रभु.. ! परन्तु इनने स्वयं स्पष्ट कर दिया, अच्छा किया। उसे जो बैठा, वह स्पष्ट किया। आहाहा! ख्याल तो आवे जगत को, बापू! वह तो बेचारा अपनी दृष्टि में पड़ा है। आहाहा! शुभभाव है, वह धर्म नहीं, राग है और शुभ करते-करते थकान लगती है और श्रम पड़ता है, ऐसी चीज़ है। उस शुभ में विश्राम और शान्ति नहीं है। आहाहा!

शुभभाव में श्रम पड़ता है, थकान लगती है; क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा! ज्ञानी को भी शुभभाव आता है परन्तु वह थकान है, दुःख है, विश्राम लेने की चीज़ वह नहीं है। आहाहा! विश्रामस्थल तो भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, स्वयं ज्योति सुखधाम, वह विश्रामधाम है। आहाहा! थकान उतारने की तो वह चीज़ है। थाक (को) क्या कहते हैं? थकान। तुम्हारी हिन्दी। यहाँ सब हिन्दी नहीं आती। यह तो थकान, थकान। आहाहा! शुभभाव दया का, पर की दया का भाव, वह शुभभाव। अहिंसा-पर को न मारूँ, ऐसा जो भाव, वह शुभभाव; सत्य बोलूँ, ऐसा भाव, वह शुभभाव। आहाहा! उस शुभभाव में श्रम पड़ता है क्योंकि वह विकार है। अरे! प्रभु! कैसा लगे इसे? आहाहा!

थकान लगती है; क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। शुद्धभाव आत्मा का स्वाधीन स्वभाव होने से उसमें थकान नहीं लगती। क्या कहते हैं? आहाहा! शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसका आश्रय लेकर जो शुद्धपर्याय प्रगट हुई, उसकी थकान नहीं है। वह तो इसका स्वभाव है। शुद्धता का-भगवान का-त्रिकाली आत्मा का स्वभाव, उसमें से प्रगट हुई पर्याय वह तो शुद्ध है। उस शुद्ध में थकान नहीं, श्रम नहीं; वहाँ तो आनन्द है। हाय.. हाय.. ! जितना स्वाधीन उतना सुख है। आहाहा! लोग भी नहीं कहते कि 'पराधीनता, वह दुःख और स्वाधीनता, वह सुख।' परन्तु वापस उसे समझते नहीं। भगवान आत्मा स्वयं आनन्दमूर्ति है, उसे स्वाधीन हो, उतना उसे धर्म और सुखदशा प्रगट होती है और पर के आश्रय से जितना शुभराग होता है, वह थकान और दुःख है। आहाहा!

जितना स्वाधीन उतना सुख है। स्वभाव के सिवा सब दुःख ही है। चाहे तो दया का भाव हो या चाहे तो हिंसा का भाव हो या झूठ का हो, या सत्य का हो, वह सब विभाव, वह दुःख है। आहाहा! कैसे जँचे? विशेष कहा जाएगा...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

आसोज कृष्ण-६, रविवार, दिनाङ्क २२-१०-१९७८
वचनामृत-३३८ से ३४० प्रवचन-१२७

३३८ फिर से। ३३८ है न? कल एकदम पाँच-छह मिनट में चला। विषय सूक्ष्म है, भाई! यह आत्मा है, वह तो अतीन्द्रिय अमृतसागर का पिण्ड है। अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय शान्ति से भरपूर यह भगवान आत्मा है। अब यहाँ कहते हैं कि इस आत्मा में अशुभभाव होता है, वह तो बोझ और भार तथा दुःख है। बाहर के बोझ की यहाँ बात नहीं है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, पुद्गलपरिणाम है, इसलिए दुःख-बोझ है न! आहाहा! वह तो ठीक परन्तु यहाँ तो शुभभाव में भी श्रम पड़ता है। यहाँ बात सूक्ष्म है, प्रभु! अन्दर जो शुभभाव आवे—दया का, दान का, भक्ति का, व्रत का, तप का, पूजा का, वह भाव शुभ है, उसमें श्रम है, उसमें शान्ति नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें आकुलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता है, यह कहेंगे अन्त में। दुःख है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। भगवान आत्मा अन्दर एक समय में वर्तमान जो ध्रुव है, ध्रुव, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति है, उसे पकड़ने से जो परिणाम शुद्ध हों, उसमें सुख और आनन्द और विश्राम है। अरे! अब ऐसी बातें। उसमें शुभभाव जो होता है, वह भी श्रम है, थकान है, आकुलता है।

मुमुक्षु : श्रम अर्थात् पुरुषार्थ करना पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रम (अर्थात्) थकान लगती है। शुभ करते-करते (थकान लगती है)। सूक्ष्मता से देखे तो उसमें दुःख लगता है, ऐसा कहते हैं। श्रम पड़ता है अर्थात् दुःख लगता है।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ करना पड़े ऐसा नहीं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुरुषार्थ है – यह पुरुषार्थ उल्टा हुआ न ? आहाहा ! शुभभाव में उल्टा पुरुषार्थ है । अरे ! ऐसी बातें । वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का अन्तरमार्ग कोई अलग है । आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि शुभभाव होता है । अरे ! सुनने का, कहने का, वह भी शुभभाव श्रम है, थकान है, थकान लगेगी । वहाँ अधिक नहीं रह सकेगा । आहाहा ! ऐसी बात है अब । थकान लगती है । श्रम की व्याख्या बाद में जरा विशेष करेंगे । जैसे चलते-चलते पाँच-छह कोस चला हो और थकान लगे, वैसे शुभभाव में थकान लगती है । विश्राम लेना, वह स्थान वस्तु है ध्रुव है, वहाँ (थकान) नहीं है और राग में आया, वहाँ थकान है । आहाहा ! अरे..रे.. ! कहाँ जाना इसे ?

क्योंकि.. कारण ? क्यों ? कहते हैं, वह शुभभाव जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का आता है, वह थकान लगती है और श्रम है । **क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव नहीं है ।** आहाहा ! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का जिसका स्वभाव है, अतीन्द्रिय शान्ति वीतरागता जिसका स्वभाव है, उससे यह शुभभाव विरुद्ध है, इसलिए यह आत्मा का स्वभाव नहीं होने से थकान लगती है, श्रम पड़ता है । आहाहा ! अरे रे ! यह लोगों को-मनुष्यों को कठिन पड़ता है । यह तो शुभक्रिया के राग को.. आहाहा ! धर्म मनवाना है । वह धर्म है । भाई ! वह धर्म नहीं, भाई ! वह परलक्ष्यी भाव है, वह शुभ है, विकार है, आकुलता है, दुःख है । आहाहा ! यह तो जिसे आत्मकल्याण करना हो, उसकी बातें हैं, बापू ! आहाहा !

वैसे तो ग्यारह अंग की धारणा में, वाँचन में इसे आ गया ग्यारह अंग में कि शुभभाव श्रम है । ग्यारह अंग के ज्ञान में आ गया । परन्तु यह श्रम है, वह क्या चीज़ है ? और अश्रम चीज़ अन्दर क्या है ? वहाँ दृष्टि किये बिना वह श्रम है, ऐसा धार रखा था । आहाहा ! सूक्ष्म बात है प्रभु ! यह ध्रुव जो परमात्मा स्वयं, इसकी पर्याय जो है-उत्पाद-व्ययवाली दशा है, उसके अतिरिक्त पूरा ध्रुव तत्त्व है । आहाहा ! वह अनन्त गुण का पिण्ड है । अनन्त शान्ति और अनन्त अमृत का सागर ऐसा जो आत्मा का स्वभाव है, उसकी दृष्टि करने पर पर्याय में शुद्धता प्रगट होती है, वह सुखरूप है । आहाहा ! और जितना पर का आश्रय लेने जाता

है, चाहे तो देव-गुरु और शास्त्र की भक्ति और विनय करने जाए। आहाहा! प्रभु! प्रभु! गजब बात है, भाई! वहाँ भी वह शुभभाव है, वह जीव का स्वभाव नहीं है। ऐसा है, प्रभु! आहाहा!

शुद्धभाव आत्मा का स्वाधीन स्वभाव होने से... शुभभाव, वह पराश्रित.. आहाहा! पराधीन विभाव होने से वहाँ थकान लगती है। आहाहा! परन्तु अनादि अज्ञानी को उसमें ही दृष्टि है, इसलिए थकान और अथकान की उसे कुछ खबर ही नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर चैतन्य ध्रुव दल, ज्ञायक का, आनन्द का दल प्रभु, उस पर दृष्टि नहीं है, इसलिए वह शुभभाव आकुलता है और श्रम है—ऐसा इसे लगता नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। और शुभभाव अर्थात्? अरे! प्रभु! ऐसा कहते हैं कि अभी शुभभाव ही होता है। अरे! प्रभु! आहाहा! तो अभी सम्यग्दर्शन नहीं होता? सम्यग्ज्ञान नहीं होता? (शुद्धभाव भी होता है)। आहाहा!

ध्रुव चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा की दृष्टि और श्रद्धा करने से शुद्धभाव प्रगट होता है, शुद्धस्वरूपी पवित्र पिण्ड प्रभु... अरे! वह भी कहाँ नजर डालना? कहते हैं। जिसकी नजर में शुद्ध चैतन्यघन जिसे आवे, उस नजर के परिणाम शुद्ध हैं, ऐसी बात है। आहाहा! कलकत्ता और दिल्ली और अभी तो यह बात लन्दन गयी है, अफ्रीका गयी है। ये बैठे अफ्रीका के सेठ। परन्तु अब यह बात ऐसी, बापू! आहाहा! अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का दल प्रभु, ध्रुव का आश्रय करने से जो परिणाम होते हैं, (वे स्वाधीन परिणाम हैं)। आश्रय का अर्थ उस ओर लक्ष्य है, इतना। जो परिणाम होते हैं, उन परिणाम को यहाँ शुद्ध कहते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, चारित्र का अंश वह त्रिकाल ध्रुव के अवलम्बन से होता है, स्व के आश्रय से होता है, स्वाधीनरूप से होता है। आहाहा!

वह **शुद्धभाव आत्मा का स्वाधीन स्वभाव होने से उसमें थकान नहीं लगती।** आहाहा! यहाँ धर्मी जीव की बात है। आहाहा! जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति का सागर (भरा है)। आहाहा! हिरन की नाभि में कस्तूरी है। मृग की नाभि में कस्तूरी है परन्तु उसे कस्तूरी की कीमत नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार यह भगवान आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द की कस्तूरी की शान्ति से भरा हुआ भगवान है। आहाहा! उसकी जिसे खबर और आदर नहीं, वह इस शुभभाव का आदर करता है, इस दुःख का आदर करता है।

अब यहाँ तो ऐसा कहना है कि जो शुद्ध चैतन्य है, उसके आश्रय से जो शुद्धभाव होता है, वह स्वाधीन है, स्वभाव है, उसमें थकान नहीं लगती। अरे! ऐसी बात है। बाहर में हो.. हा.. आज दो हाथी इकट्ठे हुए रास्ते में। कोई पालीताणा होंगे। बाबा थे और हाथी थे। कुछ रथयात्रा निकाले और ऐसा निकाले, परन्तु वह तो यह भाव, बापू! बाहर की क्रिया है, वह तो उसके काल में होनेवाली होती है। इसका कोई भाव हो अन्दर, तो वह शुभ है। थकान लगे ऐसा है परन्तु किसे? जिसे आत्मा आनन्द का धाम विश्रामस्थल.. आहाहा! अतीन्द्रिय अमृत का सागर भगवान आत्मा जिसने नजर में और श्रद्धा में लिया है, (उसे)। आहाहा! उस श्रद्धा के और ज्ञान के परिणाम भी वास्तव में तो कहीं द्रव्य के कारण नहीं होते। वे परिणाम, परिणाम से होते हैं। आहाहा! परन्तु स्व का लक्ष्य करता है, इतना द्रव्य का आश्रय कहने में (आता है)। आहाहा! ऐसा जो चैतन्य ज्ञायक प्रभु...

गुड़ का रवा होता है न? रवा... रवा कहते हैं न पाटनी? बड़े दो-दो मण, चार-चार मण के आते हैं। उसमें बरसात का पानी जरा गिरे तो वे पिघलते हैं। पिघले तो वहाँ सब मीठा पिघलता होगा या कड़वा? आहाहा! इसी प्रकार भगवान चैतन्य आनन्द का कन्द प्रभु महा गुड़ का रवा, ऐसे यह अमृत का रवा है प्रभु! कैसे जँचे? इसमें एकाग्र होने से उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द झरे, उसे यहाँ शुद्धभाव कहते हैं। आहाहा! उस शुद्धभाव में थकान नहीं है, क्योंकि स्व का आश्रय और स्वाधीन से हुआ है। आहाहा! अरे! ऐसा कहाँ जँचे? सुनने को मिलता नहीं।

महा भगवान अन्दर विराजता है, भगवान स्वरूप कृतकृत्य चैतन्य प्रभु है। द्रव्य से तो कृतकृत्य है। आहाहा! जिसके ध्रुवस्वभाव में कुछ करना है, यह है नहीं। करना तो वह परिणाम में परिणाम आता है। आहाहा! उस परिणाम में भी जो ध्रुवस्वभाव के आश्रय से स्वाधीन परिणाम होते हैं, वे शुद्ध हैं, उनमें सुख है; उनमें थकान नहीं लगती। आहाहा! परन्तु जो शुभभाव आयेगा... आहाहा! वह श्रम है क्योंकि वह पराधीन है। वस्तु के स्वाधीन चैतन्यमूर्ति के आश्रय से हुए नहीं हैं। आहाहा! भावपाहुड़ की ८३ गाथा में ऐसा कहा है कि पूजा, दान, व्रत, तप, भक्ति आदि, सन्तों के वैयावृत्य आदि ये सब परिणाम जैनधर्म नहीं है। अष्टपाहुड़-भावपाहुड़ की ८३ गाथा है। आहाहा! वह सब शुभभाव है, वह धर्म नहीं है।

धर्म तो मोह-क्षोभरहित परिणाम, वह धर्म है। आहाहा! स्वरूप के सन्मुख की सावधानी के परिणाम, वे मोहरहित। आहाहा! और क्षोभरहित; पुण्य-पाप का राग है, वह क्षोभ है। आहाहा! शुभभाव भी क्षोभ है। आहाहा! उससे रहित अन्तर भगवान आनन्द के नाथ का अवलम्बन लेकर जो परिणाम प्रगट होते हैं, वे शुद्ध हैं, वे वीतरागी परिणाम हैं, वह जैनधर्म है। ऐसी व्याख्या। इसलिए लोग फिर विरोध करते हैं। यह तुमने तो सब उत्थापित कर दिया। भाई! प्रभु को सुन तो सही। तुझे बाहर के सब अहंकार पावर चढ़ गया है। आहाहा! मैं पैसावाला और शरीरवाला हूँ—ऐसा जो मिथ्या अभिमान / अहंकार, वह तो महापाप और महादुःखरूप है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा स्वयं आनन्द का नाथ अमृत का पिण्ड ध्रुव है, प्रभु! उसे जिसने दृष्टि में और ज्ञान की पर्याय में पकड़ा, उसके उस परिणाम को स्वाधीन, स्व के आश्रय से हुए सुखरूप है। पाटनीजी! सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! क्या कहें? आहाहा! दुनिया बाहर के गर्व में चलती है। यहाँ तो कहते हैं कि शुभभाव में भी यदि आवे... आहाहा! उसे शुद्धस्वभाव की दृष्टि और ज्ञान हुआ है, उसे उस शुभभाव में थकान लगती है। शशीभाई! आहाहा!

भगवान, आहाहा! तेरा स्वरूप ही भगवान है, भाई! आहाहा! और वह कृतकृत्य है। ध्रुव को कुछ करना है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसे शुद्ध चैतन्य के आश्रय से अवलम्बन करके जो परिणाम हों, वह परिणाम जैनधर्म है, वह परिणाम शुद्ध है, वह परिणाम सुखरूप है। आहाहा! तुलसीदास की शैली में अपने... सन्तोषभाई हैं न? गायन उतारे हैं। तुलसीदास ऐसा बोलते हैं। वे अपने जैन के तुलसीदास हैं। बहुत अच्छा लिखते हैं। बहिन के वचनमृत उसमें (भक्ति में) उतारे हैं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, वह यह बहिन की वाणी है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, भाई! यह व्रत, तप, भक्ति और पूजा का भाव है, वह तो शुभराग है, भाई! और वह शुभ करते-करते तो, प्रभु! तुझे थकान लगेगी; वह विश्राम का स्थल नहीं है। आहाहा! विश्रामस्थल तो, प्रभु! तेरा ध्रुव चैतन्य है न अन्दर! आहाहा! जो शाश्वत टिकता है, उसकी नजर करेगा तो टिका रहेगा। जो निधान-त्रिकाल ध्रुव है, वहाँ यदि नजर करेगा तो नजर वहाँ टिकेगी। ध्रुव है, उस पर नजर टिकेगी। आहाहा! उस नजर को सम्यग्दर्शन कहते हैं

और वह सम्यग्दर्शन के परिणाम शुद्ध हैं, स्वाधीन हैं। अब ऐसी बातें! उसमें जवान (होवे) और उसमें पाँच-पचास लाख इसकी पूँजी होवे - धूल (होवे), उसे तो यह कैसा लगे, यह क्या है? ऐसा जैनधर्म? बापू! जैनधर्म कोई अलौकिक है। आहाहा! ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त कहीं किसी धर्म में नहीं है। अन्यत्र धर्म ही नहीं है। आहाहा!

यह शुद्धभाव.. आहाहा! नित्यानन्द प्रभु अन्दर ध्रुवस्वरूप भगवान है, वह शुद्ध है। उसको अवलम्ब कर हुए परिणाम, वे शुद्ध हैं। वह शुद्धभाव आत्मा का स्वाधीन स्वभाव होने से... यह कल पढ़ा गया था परन्तु थोड़े में (पूरा किया था)। आहाहा! पाँच-छह मिनिट चल गया था। खबर तो थी परन्तु कहा अब (फिर से लेते हैं)। आहाहा!

शुद्धभाव आत्मा का स्वाधीन स्वभाव होने से उसमें थकान नहीं लगती। जितना स्वाधीन, उतना सुख है। वैसे लोगों में ऐसा कहलाता है—स्वाधीन सुख और पराधीन दुःख। परन्तु वह पराधीन और स्वाधीन क्या? खबर है? आहाहा! 'पराधीन सपनेहु सुख नहीं', ऐसा कहते हैं। तुम्हारी कुछ भाषा होगी। आहाहा! यह शुभभाव, वह पराधीन भाव है, प्रभु! जिसे लोग व्रत और तप के परिणाम हैं, वह धर्म है—(ऐसा मानते हैं)। आहाहा! भगवान कहते हैं कि वह तो राग है, प्रभु! तुझे खबर नहीं, वह तेरी जाति नहीं है। आहाहा! इसलिए वह शुभभाव (दुःखरूप है)। आहाहा! यह उपधान करते हैं न, श्वेताम्बर में? डेढ़ महीने के। ऐसा कुछ होगा। आज दो हाथी देखे थे। पूरे दिन भगवान को उठ-बैठ कर-करके बेचारे... आहाहा! परन्तु उसमें कदाचित् राग की मन्दता है तो शुभभाव है। उसे वह धर्म मनावे और मानता है। प्रभु.. प्रभु.. प्रभु.. क्या हो? भाई! इसका योगफल आयेगा, (तब) प्रभु! तुझे दुःख होगा।

यहाँ कहते हैं कि शुद्धभाव में थकान नहीं लगती। आहाहा! क्योंकि स्वभाव है और स्वभाव के आश्रय से हुआ भाव है। आहाहा! जितना स्वाधीन उतना सुख है। स्वभाव के सिवा सब दुःख ही है। सब अर्थात् यह संयोग नहीं। अन्दर स्वभाव के अतिरिक्त जितने विकल्प उठते हैं, वह सब दुःख है। आहाहा! लगभग आधा घण्टा होने को आया। कल तो शीघ्रता से किया था। हमारे... नाना पाटनी आये हैं न आज, ये सुनें तो सही। वहाँ कहीं कलकत्ता में नहीं कहीं धूल में। आहाहा! प्रभु! क्या कहें? वीतराग का पुकार है। केवली परमात्मा तीर्थकर का पुकार है। भगवन्त! तुझमें जितना... आहाहा! पर के लक्ष्य

से-आश्रय से जो भाव हो, वह सब दुःखरूप है। स्त्री-कुटुम्ब, कमाने के आश्रय से भाव हो, वह तो अशुभभाव पाप और दुःखरूप है परन्तु देव-गुरु और शास्त्र के आश्रय से जो भाव हो, वह भी शुभभाव और दुःखरूप है। अरे रे! यह बात जगत को कठोर पड़ती है। क्या हो? भाई! मार्ग यह है, भाई! अरे रे! वीतराग का मार्ग कहीं पड़ा रहा और कहीं मनवा दिया। आहाहा!

वह जापानवाला ऐतिहासिक है। उसमें आया था। बड़ा ऐतिहासिक है। बहुत पढ़ा, हजारों शास्त्रों को (पढ़ा), फिर उसने लिखा है। उसका पिता है और एक उसका लड़का है। जापान। बड़ा ६५-६६ वर्ष का होगा, लड़का २० या १८ (वर्ष का होगा) परन्तु इतिहास बहुत पढ़ा हुआ, फिर उसने निकाला कि जैनधर्म, अनुभूतिस्वरूप वह जैनधर्म है। भले उसे अनुभूति क्या और उसकी तो कुछ (खबर नहीं होगी परन्तु) बड़ा ऐतिहासिक है समाचारपत्र में आया है।

जैनधर्म वह अनुभूति (स्वरूप है)। अर्थात्? त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप भगवान का अनुभव होना अर्थात् आनन्द का नाथ प्रभु वीतराग जिनबिम्ब.. आहाहा! अभी एक श्लोक आया था, नहीं? हरिभाई! अपने उन योगीन्द्रदेव का, योगीन्द्रदेव है न? उनका श्लोक है न 'जिन सुमरो जिन चिन्तवौ जिन ध्यावो मन चित्त' (योगसार गाथा १९।) जिनस्वरूप वीतराग आत्मा। समझ में आया? वह नहीं यहाँ। योगीन्द्रदेव की अपने सज्जाय चलती है न? (उसका) १९वाँ श्लोक है। 'जिन संवरो जिन चिन्तवौ'। यह जिनस्वरूप भगवान आत्मा। आहाहा! अरे! एक छोटे में छोटे राग में प्रसन्न हो जाए, उसे जिनस्वरूप कैसे जँचे? 'जिन संवरो जिन चिन्तवौ जिन ध्यावो एक चित्त' आहाहा! उसके पश्चात् पद है कुछ। पश्चात् है याद? दो पद रह गये। अभी दोपहर को निकाला था। आहाहा!

अन्तर भगवान आत्मा तो जिनस्वरूप है। वर्तमान, हों! पर्याय में जिनस्वरूप होता है, वह तो वीतराग हो जाए, परन्तु अन्दर वस्तुस्वरूप है, वह आत्मा जिनस्वरूप है, जिनबिम्ब है, जिनप्रतिमा है। आहाहा! चैतन्य प्रतिमा भगवान आत्मा है। आहाहा! उसका आश्रय करने से जो परिणाम होते हैं, वे शुद्ध हैं, वे सुखरूप हैं। आहाहा! ३३८ (बोल पूरा हुआ)। आधे घण्टे चला। कल तो छह मिनट में पूरा किया था।

यह तो गुत्थी सुलझाना है। चैतन्य डोरे में अनादि की गुत्थी पड़ी है। सूत की लच्छी में गुत्थी पड़ गयी हो, उसे धैर्यपूर्वक सुलझाये तो सिरा हाथ में आये और गुत्थी सुलझ जाय, उसी प्रकार चैतन्य डोरे में पड़ी हुई गुत्थी को धीरज से सुलझाये तो गुत्थी दूर हो सकती है ॥३३९॥

३३९। यह तो गुत्थी सुलझाना है। आहाहा! हमारे काठियावाड़ में पहले ऐसा रिवाज था। तुम्हारे होवे वह ठीक। विवाह करने आवे न वर, वर, दूल्हा। उसे सूत की गुत्थीवाली लच्छी देते हैं। तुम्हारे होगा या नहीं, खबर नहीं। सूत की लच्छी गुत्थी करके देते हैं। अर्थात् कि वह विवाह करने आया है, उसे इतनी सब आकुलता और अधीरज होवे तो वह गुत्थी नहीं निकाल सकेगा। वह सूत की लच्छी गुत्थी ऐसी आड़ी-टेढ़ी करके उलझाकर देते हैं। वह धीर हो तो गुत्थी निकाल सके। रतिभाई! खबर है या नहीं? खबर नहीं? ले!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुत्थी मारे, गुत्थी करे। सूत की बड़ी लच्छी होवे न? फालको को क्या कहलाता है? बड़ी लच्छी। उसे गुत्थी करे। वर की धीरज है या नहीं? विवाह करने आया, इसलिए वेग में चढ़ा हुआ है तो वह गुत्थी नहीं सुलझा सकेगा परन्तु धीर होगा तो (गुत्थी निकाल डालेगा), उसकी कीमत वहाँ करने से पहले। ऐसा रिवाज था। अभी तो अब सब समझने जैसा है। यहाँ तो चार बजे विवाह हो और शाम को सात बजे छुट्टी दे दे, जाओ मुम्बई में। पाँच सौ-पाँच सौ लोग जीमाये हों तो बीसी में जीमा दे। एक-एक के पाँच-पाँच, छह-छह रुपये देकर। जाओ। रतिभाई। यह मुम्बई में ऐसा होता है। वहाँ तो बड़ी कीमत होती है। दस-दस रुपये एक-एक के। मैसूर बनावे। आहाहा! यहाँ तीन बजे विवाह और सात बजे छुट्टी, घर में जाओ। फुरसत ही कहाँ है? फुरसत (नहीं है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जैसे उस सूत की लच्छी की गुत्थी, धीर हो, वह विवाह करने आया है, उसे आकुलता एकदम बहुत हुई हो तो वह नहीं निकाल सकता। धीर होगा तो

निकालेगा। इसी प्रकार भगवान आत्मा में गुत्थी सुलझानी है। **चैतन्य डोरे में अनादि की गुत्थी पड़ी है।** भगवान चैतन्य डोरा नित्यानन्द प्रभु, उसे राग की गाँठ की गुत्थी पड़ गयी है। आहाहा! यह शुभ-अशुभराग मेरा है, ऐसी उसे गुत्थी पड़ गयी है। आहाहा! चैतन्य डोरा चैतन्य, चैतन्य ज्ञायकस्वरूप सरल शुद्धस्वरूप में राग की वक्रता की गाँठ पड़ गयी है। आहाहा! सत्, सरल, सर्वत्र शुद्ध प्रभु विराजता है, परन्तु उसे अनादि से शुभ-अशुभ राग के विकल्प की गाँठ पड़ गयी है। आहाहा!

सूत की लच्छी में गुत्थी पड़ गयी हो उसे धैर्यपूर्वक सुलझाये तो सिरा हाथ में आये... यहाँ तो वह नहीं आया था? भाई! जादूगर। पण्डितजी खड़े थे वहाँ। बड़ा जादूगर नहीं? के. लाल. बड़ा जादूगर। हमारे पास दो, चार, पाँच बार आया था। लाखों कमाता है, लाखों रुपये। वैसे तो गृहस्थ है, पचास वर्ष की उम्र है, विसाश्रीमाली है। इन्हें है, बहिन की लड़की है न? वह आती है, यहाँ आया था। यहाँ सूत का बतलाता था, परन्तु वह तो हाथ की चालाकी कि देखो! यह काटे तो भी डोरे के टुकड़े नहीं होते। क्योंकि उस प्रकार उसने सिरे... सिरे (किये हों)। पण्डितजी खड़े थे। यहाँ (किया था) और राजकोट में आया था, यहाँ तो प्रतिदिन पाँच-पाँच हजार की आमदनी। रात्रि की, एक रात्रि की पाँच हजार की (आमदनी)। आता है, हमारे पास तो आता है, सब आते हैं। आकर कहे, महाराज! हमारा यह धतंग है, ढोंग है। अरे! प्रभु! मर जाएगा, कहा। ऐसे के ऐसे। रात्रि के पाँच हजार, एक-एक रात्रि की कमाई। बाहर में एक बार कहीं गया था, अफ्रीका या कहीं (गया था)। सुना है। जापान। तीन लाख अमुक रात्रि के मिले। दूर से सब बताया था। तीन लाख। हमारे पास आया था। राजकोट (में)। वहाँ रात्रि को जादू करता था। बड़ा जादूगर है, है जवान व्यक्ति, विसाश्रीमाली है। यहाँ जगजीवन बालचन्द, उनका साला। उसकी लड़की यहाँ बालब्रह्मचारी है। महाराज! हमारा ढोंग है। बापू! हमें तेरी सब खबर है। मर जाएगा। यह पूर्व के पुण्य के कारण यह सब पैसा आदि मिलता है। पाप करके जाएगा नीचे। महाराज! फिर मैंने आत्मसिद्धि दी थी। अपने श्रीमद् की है न? व्याख्यान। श्रीमद् राजचन्द्र पढ़ो, बापू! पढ़ो, भाई! अरे रे! इसमें तुम कहाँ जाओगे? भाई! भले लाखों रुपये-पच्चीस लाख पैदा करे और यह हाथ चालाकी। और वह स्वयं कहता है, हाथ चालाकी है। हमारे पास दूसरा कुछ नहीं है। कोई चमत्कार-फमत्कार नहीं है। हाथ की

चालाकी से ऐसे लड़की मारे, टुकड़े करे, ऐसा दिखावे और फिर बुलावे, आओ.. आओ..। कुछ नहीं किया हो।

इसी प्रकार ये जगत के लोग चालाकी करके राग में रुक गये हैं। राग की और आत्मा की गुथी इन्हें पड़ गयी है। आहाहा! उसका सिरा धीरज से सुलझावे तो हाथ में आये और गुथी सुलझ जाए,.. सूत की। इसी प्रकार चैतन्य डोरे में पड़ी हुई गुथी को.. आहाहा! यह ज्ञायकभाव चैतन्यबिम्ब प्रभु, इसमें राग की गुथी पड़ी है। राग की गाँठ लगायी है। आहाहा! गुथी को धीरज से सुलझाये तो गुथी दूर हो सकती है। धीर होकर चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा को यदि अन्दर से पकड़े... आहाहा! उसे (गुथी सुलझ सकती है)। उसमें आता है न? भाई! १४३ में, कर्ता-कर्म में, नहीं? मति, श्रुत की पर्याय है, वह ऐसे बाहर की ओर ढल गयी है। उसे जरा मर्यादा में यहाँ ला, लाकर इस ओर ले जा। जहाँ भगवान पड़ा है, प्रभु! आहाहा! कर्ता-कर्म अधिकार। समयसार में तो महा समुद्र है। एक-एक गाथा और एक-एक पद। यह जगत का भाग्य है, वह पुस्तक रह गयी। सन्तों को विकल्प आया और (शास्त्र) हो गया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! वह शुद्धस्वरूप, आनन्दसागर नाथ, उसमें जो शुभविकल्प है, उसकी गुथी है। अर्थात् कि वह मैं हूँ, ऐसी वहाँ अहंपने के भाव की गुथी है। आहाहा! परन्तु यदि वह अहंपना छोड़कर, सीधा-सरल चैतन्य भगवान विराजता है, वहाँ यदि धीरज से दृष्टि ले जाए (तो) गुथी सुलझ जाए। राग की एकता टूट जाए। अरे! ऐसी बात है। अन्दर वीतरागमूर्ति प्रभु जिनबिम्ब (विराजता है), उसकी एकता करने से राग की एकता टूट जाए और गुथी निकल गयी, क्योंकि जिनस्वरूप प्रभु है, उसमें एकाग्र होने से वर्तमान परिणति को... रात्रि को कहा था, नहीं? रात्रि को। श्रीमद् का (कहा था)।

मूण मार्ग सांभलो जिननो रे, करी वृत्ति अखंड सन्मुख,

मूण मार्ग सांभलो जिननो रे, करी वृत्ति अखंड सन्मुख।

श्रीमद् राजचन्द्र। वृत्ति अर्थात् परिणति वर्तमान जो दशा, उसे अखण्ड (के) सन्मुख करे, अखण्ड वस्तु है, उसके सन्मुख कर। आहाहा! चेतनजी कहते थे कि यह तो हम यह बहुत बार बोलते हैं। आहाहा! 'मूण मार्ग सांभलो जिनने,' श्रीमद् का गुजराती है। 'करी वृत्ति अखंड सन्मुख,' जो वृत्ति परिणति—जो पर्याय, राग के सन्मुख होकर उलझ

गयी है, उसे एक बार प्रभु! उस परिणति को अखण्ड-सन्मुख कर। अन्दर अखण्ड वस्तु पड़ी है। फिर उसका स्पष्टीकरण किया।

‘हे देहादि से भिन्न आत्मा रे, हे देहादि से भिन्न आत्मा रे’ देहादि अर्थात् देह से भिन्न, कर्म से भिन्न, अरे! पुण्य-पाप के राग से भी प्रभु अन्दर भिन्न है। ‘उपयोगी सदा अविनाश...’ रात्रि को अर्थ किया था। भाई! पाटनीजी! थे या नहीं? नहीं थे रात्रि को? रात्रि को अर्थ किया था। वहाँ होंगे ठीक, आहाहा! रात्रि को किया था। ‘मूण मार्ग सांभलो जिननो रे, करी वृत्ति अखंड सन्मुख।’ परिणति, वर्तमान की परिणति-पर्याय को अखण्ड की ओर झुकाकर सन्मुख कर। आहाहा! तो वह वस्तु है कैसी? अखण्ड। यह तो समुच्चय बात हुई।

‘उपयोगी सदा अविनाश...’ वह तो ज्ञान-दर्शन के उपयोग का पिण्ड प्रभु है। आहाहा! उपयोगी सदा, सदा उपयोगी ज्ञान-दर्शन से भरपूर भगवान त्रिकाल उपयोग है। सदा और अविनाशी है। वह नाशरहित ध्रुव चीज़ है। आहाहा! इसका नाम... सम्यग्दर्शन। (इसमें मिथ्यादर्शन) की गुत्थी की गाँठ निकल गयी। आहाहा! भाषा तो सादी, बापू! परन्तु अन्तर का पुरुषार्थ.. आहाहा! अलौकिक है। यह कहीं बातों से बड़ा हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार चैतन्य डोरे में पड़ी हुई गुत्थी को धीरज से सुलझाये... धीरज से सुलझाये। वर्तमान परिणति को द्रव्य सन्मुख ढाले। आहाहा! यह तो कोई बात है! वर्तमान पर्याय जो परसन्मुख है... आहाहा! उसे स्वसन्मुख कर। यह क्या होगा? आहाहा! चैतन्य भगवान कृतकृत्य जिनबिम्ब पड़ा है, प्रभु! वर्तमान पर्याय को उस ओर झुका। ‘करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख’। आहाहा! वैसे तो लाखों का जवाहरात का धन्धा था, परन्तु वस्तुदृष्टि को प्राप्त हुए थे न! सम्यग्दर्शन था। आहाहा! यह जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! यह ३३९ (बोल पूरा हुआ)।

‘इसका करूँ, इसका करूँ’—इस प्रकार तेरा ध्यान बाह्य में क्यों रुकता है? इतना ध्यान तू अपने में लगा दे ॥३४०॥

३४०, 'इसका करूँ, इसका करूँ'... इसका करना, स्त्री का करना, लड़कों का करना, लड़कियों का करना, समधी का करना, व्यापार का करना। आहाहा! व्यापार ऐसा करना और वैसा करना। अरे! प्रभु! 'इसका करूँ, इसका करूँ'—इस प्रकार तेरा ध्यान बाह्य में क्यों रुकता है? आहाहा! दूसरे को समझा दूँ, समझा दूँ, यह भी पर में क्यों रुकता है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन मार्ग है। तेरा ध्यान क्यों रुकता है? यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ और मन्दिर बनाऊँ, भक्ति करूँ, यात्रा करूँ, शिष्य बनाऊँ और शिष्यों को पढ़ाकर तैयार करूँ। आहाहा! ऐसा तेरा ध्यान वहाँ क्यों रुकता है? भाई! आहाहा!

इतना ध्यान तू अपने में लगा दे। वहाँ चिपका है। यह करूँ और यह करूँ, और वह करूँ। उत्साह का जोश आता है तुझे। बाहर का करना। आहाहा! ऐसा किया और विवाह किया लड़के का और दो-चार, दो लाख खर्च किये, जाति में उपहार किये। आहाहा! तूने क्या किया? प्रभु! यह बाहर के करने में यह करना, यह करना, ऐसा रुक जाता है। आहाहा! इतना ध्यान तू अपने में लगा दे। यह करना है, यह करना है। आत्मा का ध्यान करना है ध्येय। वर्तमान पर्याय के ध्यान में ध्येय उसे-आत्मा को लेना है। यह करना है, ऐसा कर जा न! अरे! ऐसा उपदेश अब। अभी के सम्प्रदाय के उपदेश, इससे इस प्रकार से दूसरे लगते हैं। हमारे पाटनीजी कहते हैं न पहले दिन नहीं कहा था? कि ऐसा स्पष्टीकरण सुना ही नहीं, है नहीं कहीं। तुम्हारे पिताजी पहले कहते थे। है कहाँ? बापू! हमने पूरा हिन्दुस्तान देखा है। दस-दस हजार मील तीन बार हिन्दुस्तान में घूमे हैं। आहाहा! सब उल्टे गप्प मारना। यह करो और यह करो और वह करो। आहाहा! गजरथ निकालो, बड़ी शोभायात्रा निकालो, शोभायात्रा का शृंगार करो। हाथी के हौदे बैठा दो। उसकी क्या कहलाती है? बोली। पूरा कुटुम्ब बैठेगा। तीन हजार, दूसरा कहे-चार हजार। परन्तु क्या है यह? यह श्वेताम्बर का यहाँ है न? धर्मसागर पालीताणा। अभी आ गया था दो-तीन बार हमारे पास। वहाँ वह स्वयं बेचारा बोली में ऐसा बोले। वह कहे पाँच सौ, वह कहे हजार, दो हजार। कौन बोलता है? यह अभी सूरि गया है। हमारी पास आया था। पहले (संवत्) १९९९ के वर्ष में। हम बड़वाण में थे न? वह कांप में गया होगा तो आया था। यहाँ दो-तीन बार आया था। बाहर की धुन जगत की। आहाहा। पैसा बहुत खर्च करावे और पैसा खर्च करे, तब उसे ऐसा कि.. आहाहा! पैसा खर्च किया, उसे धर्म हो जाए

और स्वयं ने ऐसा सब कराया हो, उसे ऐसे धर्म हो जाए। धूल में भी नहीं है, सुन न! आहाहा! उसका करना, उसका करना, यह करना, ऐसा करना, वहाँ प्रभु! तू रुक गया है। आहाहा!

इतना ध्यान तू अपने में लगा दे। आहाहा! बाहर का करना.. करना.. करना.. करना... ऐसी जो ध्यान की, पर में आर्तध्यान और रौद्रध्यान की दशा हुई है, उसे तू आत्मा में लगा दे, प्रभु! आहाहा! मेरा नाथ आनन्द से भरपूर प्रभु, मुझे तो अब वहाँ जाना है, बस! आहाहा! यह ध्यान लगा दे। आहाहा! वह ध्रुव है। वह तो ध्यान की पर्याय भी ध्रुव में नहीं है। उसका यह ध्यान करूँ, यह ध्यान की जो पर्याय है, वह कहीं ध्रुव में नहीं है। वास्तव में तो पर्याय, पर्याय को करती है। आहाहा! परन्तु ऐसे ध्रुव पर लक्ष्य है न, इसलिए ध्रुव के आश्रय से हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बातें अब। बाईस घण्टे में पाप के धन्धे करना, एक-दो घण्टे फुरसत मिले प्रतिक्रमण करने की। साधु के पास जाए, वहाँ सुनने को यह मिले इसे, यह करो... यह करो... यह करो... आहाहा! कठिन बात, प्रभु! यह तो जन्म-मरणरहित होने की बातें हैं। जन्म-मरण करके मर गया है, बापू! यह दुःखी है, दुःखी। यह दुःख में जला हुआ है। आहाहा!

‘चूड़ा’ में एक हलवाई था वह भुजिया बना रहा होगा या गाठिया (बना रहा होगा)। तेल की कड़ाही ही, कड़ाही समझे तेल की? भुजिया या गाठिया, उसका धुँआ लगा तेल का। ऊपर सर्प जा रहा था। स्थानकवासी जैन था परन्तु उसे यहाँ प्रेम था। गुजर गया भावसार, हलवाई। उसमें वह सर्प आधा गिरा तेल में, आधा बाहर, उस बेचारे ने झारी होता है न, भुजिया बनाने की? उससे ऐसे-ऐसे करके बाहर निकाला। कुछ खबर नहीं होती। दुःख.. दुःख.. दुःख.. दुःख.. दुःख क्या कहलाता है वह? भट्टी में गिर गया। आहाहा! क्योंकि कुछ खबर नहीं होती। ऐसे उलझ गया। एकदम आधा, आधा तो यहाँ हो गया बाहर निकाला, इसलिए मानो कहीं गिर जाऊँ। इसलिए नीचे भट्टी थी न, उसमें गिर गया। राख। आहाहा!

इसी प्रकार दुःख के जले अधिक दुःख में अन्दर गिर जाते हैं। ऐसी बातें हैं। वह भाई कहता होगा। कुवरजीभाई हलवाई। यहाँ आता था। एक बार बारह महीने के धर्मादे के पैसे जो हो, वह सब यहाँ दिये थे। हलवाई की दुकान है। वह गुजर गया बेचारा अब

तो लड़के सब मन्दिरमार्गी। आहाहा! यह बात तो सुनना कठिन पड़े, वह करना, यह तो... आहाहा! वह सरल (लगे)। भगवान की पूजा करना और दया करना और व्रत पालना, उपवास करना। आहाहा! वह तो सब राग की क्रिया है, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! वह तो विश्रामस्थल नहीं है। आहाहा!

रागरहित प्रभु अन्दर विराजता है, उसके सन्मुख जा न! यह तो विमुख है, राग की वृत्ति सब तो विमुख है। उसके (स्वरूप के) सन्मुख जा। यह ध्यान वहाँ लगा दे। आहाहा! और ध्यान करना इसे आता है, राग का ध्यान करना आता है, कहते हैं। आहाहा! विचार करने से रुचता है अन्दर से। आहाहा!

एक लड़के का पिता था। कुछ पैसा होगा और लड़के का विवाह था। वहाँ उसकी बारात चढ़ी। बारात चढ़ती है न? उसका पिता अन्दर विचार में रुक गया। बारात कहाँ गयी? (खबर नहीं रही।) कल ऐसा करना है, कल ऐसा करना है, जाति को जीमाना है, प्रत्येक घर अमुक उपहार देना है और वह बारात गयी बाजार में। अन्दर देखे, यह कहाँ गया? परन्तु तुम कहाँ थे विचार में? ध्यान में चढ़ गया, अज्ञान में। इसी प्रकार यहाँ उल्टे ध्यान में चढ़ गया। ऐसा कमाया और ऐसा लिया और ऐसा दिया और ऐसा किया। आहाहा! कहाँ चढ़कर कहाँ जाना है? प्रभु अब तेरे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं इसकी लगन तुझे पर की लगी है, ऐसी जोरदार लगन ऐसी अन्दर कर न! आहाहा! जहाँ भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु विराजता है अन्दर, वहाँ लगन लगा। 'लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुन्यो मैं, काहू के कहे कहू न छूटे, लोकलाज सब डारी', आहाहा! 'जैसे अमली अमल करत समय लाग रही खुमारी।' अमुक शराब पीवे न? अफीम। वैसे भगवान आत्मा... आहाहा! तेरा जिनराजस्वरूप है, ऐसा सुना, वह उसके आधीन चढ़ गया। वह स्वभाव की शरण में गया। खुमारी लग गयी, कहते हैं। जैसे अफीम पीनेवाले को खुमारी चढ़ जाती है। आहाहा! वैसे स्वरूप में जाने पर मस्ती चढ़ गयी। आहाहा! मैं तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप हूँ, शुद्ध चैतन्यघन हूँ। आहाहा! ऐसे जो परिणाम हुए, उस परिणाम को शुद्ध कहते हैं, उस परिणाम को जैनधर्म कहते हैं, वह परिणाम मोक्ष का मार्ग है, वह परिणाम सुखरूप है। विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण-७, सोमवार, दिनाङ्क २३-१०-१९७८
वचनामृत-३४१ से ३४२ प्रवचन-१२८

निज चेतनपदार्थ के आश्रय से अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति प्रगट होती है। अगाध शक्ति में से क्या नहीं आता ? ॥३४१ ॥

३४१ बोल है। निज चेतनपदार्थ के आश्रय से... चेतनपदार्थ तो भगवान भी चेतनपदार्थ है किन्तु यहाँ आत्मा निजपदार्थ त्रिकाली, जिसे ज्ञायक कहते हैं, जिसे भूतार्थ कहते हैं, जिसे सत्यार्थ कहते हैं, ऐसा जो निजपदार्थ चेतन, उसके आश्रय से। आहाहा! यह लोगों को कठिन पड़ता है, इसलिए एकान्त है - ऐसा कहते हैं। दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रय से भी प्राप्त हो तो वह अनेकान्त कहलाये, ऐसा (वे) कहते हैं। आहाहा! यह तो मिथ्या अनेकान्त है। सम्यक् एकान्त तो यह है कि निजपदार्थ जो पूर्ण आनन्द ध्रुवसामान्य, उसका परिणाम से आश्रय करे। भाषा से क्या कहना? परिणाम उसका आश्रय करे अर्थात्? परिणाम तो परिणाम है, परन्तु परिणाम उस ओर ढले, तब उसका आश्रय किया, ऐसा कहने में आता है। ऐसा है।

मुमुक्षु : आश्रय लेना....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय कौन दे? आश्रय कहाँ था वहाँ? भाषा तो इसकी क्या कहना? 'भूदत्थमस्सिदो खलु' लो! यह भाषा है। ११वीं गाथा (समयसार)। भूतार्थ के आश्रय से अर्थात् परिणाम जो परसन्मुख झुके हुए हैं, वे परिणाम तो वहाँ रहे। बाद के परिणाम उत्पन्न हुए, उस परिणाम को उसमें (स्वभाव में) झुका। आहाहा! क्या भाषा हो? समय तो एक ही है। कथन क्या हो? आहाहा!

इस भगवान को पकड़ना अर्थात् क्या? परिणाम जो इस ओर ढले हुए हैं, पर्याय

पर्याय पर रुचिवाली है, पर्याय राग पर रुचिवाली है, वह पर्याय तो वहाँ रही। आहाहा! परन्तु बाद के परिणाम को (इस ओर झुका)। सूक्ष्म बात, बापू! लोगों को एकान्त लगता है, वे बेचारे पुकार करते हैं। समाचार-पत्र में आया है। बुलन्दशहर में एकदम पूरे शहर का पुकार (है कि) जितना यहाँ का साहित्य है, उसे मन्दिर में से बाहर निकाल डालो, निकाल डाला। अरे! प्रभु! क्या करता है? बापू! भाई! भगवान का यह पुकार है। सवेरे नहीं आया था? — कि शुभभाव है, वह अजीव है, भाई! वह जीव की जाति नहीं। शुभभाव.. आहाहा! वह अजीव है। अर्थात् चैतन्यस्वभाव का स्वरूप उसमें नहीं है। आहाहा! इससे उसे अजीव, भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! तब चेतनपदार्थ जो त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप है, उसके आश्रय से... आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति अद्भुत आत्मिक विभूति प्रगट होती है। आहाहा!

जिसके संग्रह में गृहीत-रहा हुआ, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति अर्थात् चारित्र / वीतरागता - ऐसा जो भगवान चैतन्य पदार्थ का स्वभाव है, उसका आश्रय लेने से अर्थात् परिणति को अन्दर झुकाने से। आहाहा! कल नहीं कहा था? श्रीमद् में से कल कहा था। 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख'। करि वृत्ति, वृत्ति अर्थात् परिणति। अखण्ड अर्थात् द्रव्यस्वरूप अखण्ड वस्तु। 'करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख मूल मारग सुन लो जिनवर का रे'। बापू! मार्ग तो यह है। आहाहा! 'हे देहादि से भिन्न आत्मा रे' देहादि अर्थात् देह, कर्म, पुण्य और पाप के भाव, 'इनसे भिन्न आत्मा रे उपयोगी सदा अविनाश।' वह तो ज्ञान-दर्शन के उपयोगवाला तत्त्व है, प्रभु! चेतनपदार्थ कहो या उपयोगस्वरूप कहो। त्रिकाल, हों! आहाहा! 'उपयोगी सदा अविनाश।' अविनाश है, वह तो ध्रुव है। 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे।' यह मार्ग है। आहाहा! इन शब्दों में इस प्रकार से सादी भाषा में कहा गया। आहाहा!

निज चेतनपदार्थ अर्थात् पर-भगवान पदार्थ, वह नहीं। आहाहा! निज भूतार्थ पदार्थ। प्रमत्त-अप्रमत्तदशा रहित जो ज्ञायकभाव। आहाहा! ऐसा जो निज चेतनपदार्थ। आहाहा! उसके आश्रय से अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति... आहाहा! पर्याय में अनन्त जितने गुण हैं, अद्भुत स्वभाव के सामर्थ्य से भरे हुए हैं, उसका आश्रय करने से तेरी पर्याय में, प्रभु! तुझे अनन्त विभूति प्रगट होगी। आहाहा! क्योंकि जितने गुण हैं, उतने गुणों का

एकरूप वस्तु चेतनपदार्थ (है), उसका आश्रय करने से, परिणाम को द्रव्य की भेंट होने से... आहाहा! भगवान में जो अनन्त विभूति पड़ी है, वह अनन्त विभूति, अद्भुत आत्मिक विभूति। देखा? वह धूल की नहीं और यह तेरे पैसे (रुपये) करोड़ और दो करोड़ धूल-मिट्टी के पिण्ड, वह (विभूति) नहीं है। आहाहा! क्या कहा?

मुमुक्षु : जवाहरात होवे तो भी मिट्टी का ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाहरात क्या बड़ा हीरा करोड़ नहीं? दस करोड़ का वह नहीं था? दीपचन्दजी के मामा सरदारशहर में दस करोड़ थे। तब, हों! अभी तो उसकी कीमत बढ़ गयी अब। परन्तु कितने करोड़ के हीरे भरे सन्दूक में। अपने दीपचन्द सेठिया, उनके मामा। दस करोड़ तो तब कहलाते थे। यह तो पचास वर्ष पहले के। अभी तो अब बढ़ गयी न। आहाहा! हीरा-माणिक अकेला। आहाहा! परन्तु वह जब कपड़ा सिलावे सुई के पास और वह क्या कहलाती है डोरे की? रील। वह डोरा होकर रहे और रील रहे न? रील, वह ले ले स्वयं। आहाहा! और शीशी दवा की दवा (समाप्त) हो तो शीशी बेचने जाए। भले लोगों को भेजे। अरे रे! प्रभु! क्या करता है तू? यह कोई कहता था, हों! इसीलिए हमने सुना हुआ है।

मुमुक्षु : पैसा मेरा परमेश्वर, ऐसा माना है, ऐसा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर.. र..र.. बापू! परमेश्वर तो चैतन्यपदार्थ पूर्ण परमेश्वर है। नहीं आता? ३८ गाथा में नहीं आया? मेरे परमेश्वर को मैं भूल गया। ३८ गाथा में आता है। आहाहा! परम ईश्वर, परम शक्तियों का भण्डार सागर नाथ आत्मा। आहाहा! अरे! बाल गोपाल, बालक भले वह आठ वर्ष की कन्या हो परन्तु जिसने इस अद्भुत निज पदार्थ का आश्रय किया तो उसे... भाषा है न? 'सर्वगुणांश, वह समकित' इसका अर्थ यह है कि अनन्त विभूति अद्भुत प्रगट होगी, भाई! आहाहा! दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आहाहा!

कहीं शास्त्र में ऐसा आया हो कि कर्मकाण्ड से ज्ञानकाण्ड होता है। प्रवचनसार में आता है, अन्त में। कर्मकाण्ड से ज्ञानकाण्ड होता है। वह तो निमित्त का ज्ञान कराया, भाई! ऐसे कर्मकाण्ड तो अनन्त बार किये हैं, परन्तु फिर भी क्यों नहीं हुआ? आहाहा! यहाँ तो कर्मकाण्ड जो है, वह तो अजीब है, ऐसा भगवान ने तो कहा है। आहाहा! यह व्रत और तप और जितने सब विकल्प उठते हैं, प्रभु! वह तो आस्रवतत्त्व में कहा है न प्रभु ने। वह

तो पुण्यास्त्रव है। आहाहा! उससे स्वभाव का आश्रय हो सकेगा? जिससे पृथक् करना है, उसके आश्रय से अन्दर जा सकेगा? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, निजपदार्थ-चेतनपदार्थ। निजपदार्थ है कौन? कि चेतनपदार्थ है, वह (निजपदार्थ है)। आहाहा! वह जागृतस्वभावस्वरूप पदार्थ है। अकेला उपयोग ज्ञायकभाव। उसमें अविनाभावी अनन्त गुण भले हों। आहाहा! वह चेतनपदार्थ जो निज, उसके आश्रय से। आहाहा! भगवान नौवें, दसवें, ग्यारहवें में ऐसा कहा, छट्टी में यह कहा और १५६ में ऐसा कहा 'विद्वानजन भूतार्थ तज व्यवहार में वर्तन करे किन्तु कर्मक्षय का विधान तो...' कर्मक्षय तो निज आत्मा के आश्रय से होता है। आहाहा! परमार्थ आश्रित सन्त को, ऐसा शब्द है न? 'परन्तु कर्मक्षय का विधान तो परमार्थ आश्रित सन्त को।' भगवान परमानन्द का नाथ पूर्ण स्वरूप के आश्रय से मुक्ति होती है। उसके आश्रय से मार्ग हो और उसके आश्रय से मुक्ति हो। आहाहा! भगवान का ऐसा पुकार है और उसे तुम एकान्त कहो, प्रभु! आहाहा! धर्म को लांछन आता है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो भगवान पूर्ण आनन्द है, उसका आश्रय छोड़कर और राग के आश्रय से लाभ मनावे, प्रभु! वह लांछन है। आहाहा! वह परमपदार्थ महाप्रभु, उसका अनादर करने के समान है, भाई! आहाहा! वीतरागस्वभाव से भरपूर निज पदार्थ को इस राग के आश्रय से लाभ होगा? आहाहा! भगवान भीख माँगे, आहाहा! राग की भीख माँगे कि राग मुझे होओ, राग मुझे होओ, उससे मुझे कल्याण होगा। अरे! प्रभु! आहाहा! यह भिखारीपना छोड़। आहाहा!

निज चेतनपदार्थ भगवान पूर्ण ज्ञायकभाव, भूतार्थभाव, सत्यार्थभाव, त्रिकालभाव, ध्रुवभाव, सामान्यभाव, एकरूप भाव, सदृशरूप भाव। आहाहा! उसके आश्रय से अनन्त अद्भुत पर्याय में शान्ति में से व्यक्तता (होती है)। शक्तिवन्त निज पदार्थ का जिसने आश्रय लिया.. आहाहा! उसकी वर्तमान पर्याय / दशा में अनन्त अद्भुत विभूति प्रगट होती है। आहाहा! अनन्त आत्मिक विभूति, इतने शब्द पड़े हैं न? अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति। आहाहा!

तुझे क्या करना है? प्रभु! दूसरा क्या करना है? बाकी तो सब तूने किया। सब अर्थात्? शुभ-अशुभभाव अनन्त बार किये, भाई! उसमें कुछ हाथ नहीं आया। भगवान!

क्योंकि वे उसमें नहीं, शुभ-अशुभभाव, स्वरूप में नहीं है। वह तो चेतनपदार्थ है। ज्ञान जागती-जागती ज्योति अन्दर जलती है। आहाहा! उसके आश्रय से, भगवन्त! तेरे निजपदार्थ के आश्रय से.. आहाहा! अनन्त अद्भुत (आत्मिक विभूति प्रगट होती है) क्योंकि वस्तु है, वह अद्भुत शक्ति का भण्डार है। उसका आश्रय लेने पर **अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति प्रगट होती है**। आहाहा! एक लाईन/ पंक्ति में तो गजब है! आहाहा!

बारह अंग में भी यह कहा है। आया है न कलश में? बारह अंग कोई अपूर्व नहीं कहलाते। आहाहा! परन्तु उसमें अनुभूति कही है भगवान ने, ऐसा कहा। आहाहा! अनुभूति अर्थात्? त्रिकाली ज्ञायकभाव का आश्रय लेकर अनुभव करना, वह अनुभूति। आहाहा! प्रभु! उसे तू भले एकान्त कहे, परन्तु वह प्रभु! वह सम्यक् एकान्त है। आहाहा! श्रीमद् में एक वाक्यांश नहीं आया? अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य कोई हेतु नहीं है। यह वहाँ कहा है।

अनेकान्त भी—द्रव्य और पर्याय दो अनेक हैं, अनेकान्त हैं, अनेक धर्म हैं। उसमें भी सम्यक् एकान्त, त्रिकाली स्वभाव का आश्रय, वह सम्यक् एकान्त। आहाहा! उसके अतिरिक्त निजपद की प्राप्ति का दूसरा कोई हेतु नहीं है, प्रभु! आहाहा! निज प्रभुता का माहात्म्य न आवे और इस राग की क्रिया का माहात्म्य आवे, प्रभु! वह तो अजीव का माहात्म्य है, भाई! आहाहा! निजपदार्थ के आश्रय से, निज चैतन्यपदार्थ के आश्रय से, चैतन्यपदार्थ के अवलम्बन से। आहाहा!

ऊँचे चढ़ना हो तो ऐसे रस्सी का अवलम्बन लेते हैं न? इसी प्रकार भगवान को ऊँचे अन्तर में जाना हो तो आत्मा का अवलम्बन उसे लेना पड़ेगा। आहाहा! तो ऊँचे जाएगा नीचे है वह। राग की क्रिया में एकत्व है न? प्रभु! वह नीचे है, प्रभु! उसे ऊँचे जाना हो तो द्रव्य का, द्रव्य का अवलम्बन लेना पड़ेगा। आहाहा! अब ऐसी बातें हैं। साधारण लोगों को सुनने पर कठिन पड़े, इसलिए दूसरा रास्ता ले लिया। भाई! दूसरा नहीं होता है। आहाहा!

सिर पर मौत का नगाडा बजता है, नाथ! किस समय पूरा हुआ? आहाहा! देखो न! घड़ीक में कुछ हो जाता है इन खेमचन्दभाई को अभी ऐसी पीड़ा है। चन्दुभाई के पिता। कल से वहाँ ले गये हैं, कल आये थे, देखा। मैं नीचे उतरा। श्वास तो था परन्तु यहाँ कुछ

होगी उलझन बहुत। वह सब हड्डियों का झुण्ड, माँस का पिण्ड, उसमें कहीं रक्त को ऐसा दबाव हो जाता है। भगवान तो अन्दर भिन्न है। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान उलझन में आ गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उलझन है, उसे अपना है, ऐसा मानकर उलझन में है। इस वस्तु में उलझन नहीं। वस्तु में तो मिथ्यात्वभाव, वह वस्तु में नहीं। आहाहा! यह तो कहा नहीं सवेरे? राग की एकत्वबुद्धि ऐसा जो अध्यवसान, वह मिथ्यात्व है, वह अजीव है। भगवानस्वरूप में वह नहीं है। आहाहा! मिथ्यादृष्टिरूप मिथ्याशल्य, वह भगवानस्वरूप में नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य के स्वरूप में नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पर्याय के लक्ष्य से, निमित्त के लक्ष्य से पर्याय में पर्याय के भाव से उत्पन्न हुआ, गुणभाव से नहीं। आहाहा! भगवान में-प्रभु में तो अनन्त गुण हैं। उस किसी गुण के अवलम्बन से मिथ्यात्व होगा? वस्तु में नहीं वहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : एक गुण का अवलम्बन ले तो राग होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो भेद करे तो (राग होगा)। एक गुण का कारण तो ऐसा कहा है प्रवचनसार में। असाधारण ज्ञान कारण को गृहकर। आहाहा! वहाँ पाठ तो ऐसा है, प्रवचनसार। प्रथम (अधिकार)। असाधारण कारण ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, जो दूसरे में नहीं, जो दूसरा ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ज्ञान कहकर, द्रव्य कहना चाहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान अर्थात् ही वह पूरा आत्मा। क्योंकि जाननेवाला ज्ञान है, दूसरे गुण जाननेवाले नहीं हैं। अपना अस्तित्व धराते हैं, दूसरे गुण अपनी अस्ति धराते हैं परन्तु वे स्वयं अपने को नहीं जानते। आहाहा! इससे यह ज्ञानगुण ही सबको जानता है। अपने को जानता है, अनन्त द्रव्य को, अपने, अनन्त द्रव्य को, अनन्त गुण को, अनन्त पर्याय को तथा वर्तमान अपनी अनन्त पर्यायों को (जानता है)। भिन्न-भिन्न जो अस्तित्व है, वह-वह पर्याय उसे जानती नहीं। आहाहा!

ऐसी जो ज्ञान की पर्याय ज्ञायकभाव के अवलम्बन से जो होती है, वह पर्याय स्वयं

स्वतन्त्र अनन्त गुण से भिन्न है और वास्तव में तो वह पर्याय है, वह श्रद्धा की पर्याय के कारण सम्यक् पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! प्रत्येक गुण की पर्याय स्वतन्त्र स्वयं से होती है। आहाहा! अरे रे! उस निज द्रव्य के आश्रय से जो अनन्त विभूति में ज्ञानपर्याय प्रगट हुई, स्व को पकड़ने की जो पर्याय, वह पर्याय भी निश्चय से तो षट्कारक के कारणों से परिणमकर प्रगट हुई है। आहाहा! आश्रय किया भले इस ओर, परन्तु वह स्वयं प्रगट हुई है, वह षट्कारक से स्वयं प्रगटी है। वह पर्याय कर्ता, पर्याय कार्य, पर्याय कारण, वही पर्याय सम्प्रदान, वही पर्याय अपादान, वही पर्याय अधिकरण, आहाहा! ऐसी बात है। क्योंकि द्रव्य है, वह तो ध्रुव / कूटस्थ है, अपरिणामी है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा तो कुछ श्वेताम्बर में लिखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर में कहाँ था? उन बेचारों को दुःख लगे उन्हें, हों! परन्तु वह वस्तु नहीं, भाई! यह तो दिगम्बर सन्त अर्थात् केवलियों के मार्गानुसारी। आहाहा! अरे! भाई! यह पक्ष नहीं, भाई! यह तो वस्तु का स्वभाव ऐसा है। यह दिगम्बर पक्ष ऐसा मानता है, श्वेताम्बर (ऐसा मानता है)। अरे! प्रभु! ऐसा नहीं है। यह वस्तु ऐसी है। वीतरागमूर्ति प्रभु है, उसके आश्रय से जो विभूति पर्याय में प्रगट होती है, वह वीतरागी प्रगट होती है। राग के आश्रय से वह प्रगटे और राग से वह हो, ऐसा वस्तु का स्वभाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आया है, जहाँ श्वेताम्बर का कथन है न अन्तिम? वे लोग शुभ से स्वर्ग भी मानते हैं और शुभ से मोक्ष भी मानते हैं। अन्तिम शब्द है। पाँचवें श्वेताम्बर का अन्तिम, अन्तिम बताया है। आहाहा! है यहाँ? यह मोक्षमार्गप्रकाशक है न? पाँचवाँ (अधिकार) और वे व्रतादिरूप शुभ उपयोग से ही देवगति का बन्ध मानते हैं तथा उसे वापस मोक्षमार्ग मानते हैं। आहाहा! पाँचवाँ अधिकार। कठिन पड़े, प्रभु! क्या हो? जो राग से धर्म माने, वह अन्यमत है; वह जैनमत ही नहीं। आहाहा! जैनमत तो वीतरागमूर्ति प्रभु, उस वीतराग पर्याय से उसे धर्म होता है, उसका नाम जैनधर्म और जैनमत है। आहाहा! क्या हो? यह तो बन्धमार्ग और मोक्षमार्ग को एक किया परन्तु वह मिथ्या है। दुःख लगे, यह भी कहा है न, मोक्षमार्ग में? ऐसा कौन-सा मार्ग है कि दूसरे को सबको ठीक लगे? क्या हो? भाई! आहाहा! प्रभु! तेरी भी करुणा से बात है, नाथ! तू दुःख में ले लेवे, ऐसा नहीं होता, भाई! आहाहा!

भगवान अन्दर परमात्मस्वरूप, कृतकृत्य भगवत्स्वरूप विराजमान है। उसके आश्रय से लाभ होगा या पर और राग के आश्रय से होगा ? आहाहा ! महिमा को छोड़कर हीन की दशा ली है। आहाहा ! भगवान महाप्रभु के अवलम्बन से अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति प्रगट होती है। आहाहा ! अगाध शक्ति में से क्या नहीं आता ? आहाहा !

मुमुक्षु : पैसा नहीं आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग भी नहीं आयेगा। आहाहा ! कहो, छोटाभाई ! ऐसी बातें हैं, प्रभु ! भाई ! दुनिया को बहुत कठिन लगे। यहाँ का साहित्य प्रभु ! यहाँ का साहित्य सम्यक्चैतन्य का आश्रय लेने की बात करता है। आहाहा ! चाहे जितनी बातें लिखी हों लाख, करोड़ परन्तु यहाँ का साहित्य अर्थात् प्रभु के आश्रय से होता है। आहाहा ! उस स्वरूप भगवान, जिसे ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थ कहा है, जिसे छठी गाथा में ज्ञायक कहा है, जिसे १५६ गाथा में व्यवहारतज भूतार्थ जिसे कहा। आहाहा ! प्रभु ! वह तुझे महेगा पड़े परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा !

धर्मी को शुभभाव में भी रस नहीं; आता है (परन्तु) रस नहीं है, तो फिर कोई अशुभभाव में रस में जुड़ जाए अशुभ में, तब तो उसकी दृष्टि रहती नहीं। क्या कहा यह ? शुभभाव में भी जहाँ सुहाता नहीं, उसका रस नहीं। रस तो भगवान का रस है, उसका रस है। आहाहा ! उसमें भी कोई जीव स्वच्छन्दी होकर अशुभरस के रस में चढ़कर माने कि मुझे अशुभभाव होवे तो भी निर्जरा है। भाई ! ऐसा नहीं है। यह क्या याद आया ? ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। भाई ! यह क्या कहा ? बापू ! आहाहा ! ज्ञानी को जो विकल्प उठता है, वह है तो दुःखरूप। भोग से निर्जरा ? तब तो फिर भोग के भाव को छोड़ना, यह तो रहता नहीं। वह तो दृष्टि का जोर बताकर, जिसे ज्ञायक चैतन्य महाप्रभु जिसकी दृष्टि में वर्तता है, उसे कोई भाव आया परन्तु वह उसे दृष्टि की अपेक्षा से अल्प स्थिति-रस पड़ता है, उसे नहीं गिना, ऐसा कहा है। परन्तु उस अशुभभाव में रस आकर, प्रेम आकर हो जाए, तब तो वह द्रव्य का आश्रय रहता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? दृष्टि द्रव्य से हट जाती है। ज्ञानी को जो अशुभभाव आता है, वह उसे काले नाग जैसा दुःख लगता है। आहाहा ! उसका उसे रस नहीं है, उसमें से सुखबुद्धि उड़ गयी है, भाई ! भगवान आनन्द के नाथ में सुखबुद्धि वहाँ रुक गयी है। आहाहा !

अगाध शक्ति में से क्या नहीं आता ? आहाहा ! भगवान तो अगाध शक्ति का भण्डार पड़ा है न, प्रभु ! आहाहा ! जिसकी सिद्ध की पर्याय के पीछे भी उसकी महिमा का पार नहीं । सिद्ध की तो एक समय की पर्याय है और ऐसी अनन्त-अनन्त पर्यायों का भरपूर एक गुण, ऐसे अनन्त गुण का भण्डार—अगाध शक्ति का भण्डार प्रभु है । आहाहा ! उसका आश्रय लेने पर, उसका अवलम्बन लेने पर क्या नहीं प्रगटे ? आहाहा !

आहाहा ! भरत चक्रवर्ती, जिसे बत्तीस ग्रास का आहार । उसका एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक पचा न सकें, ऐसा उसका बत्तीस ग्रास का आहार । एक ग्रास की अरबों की कीमत । हीरा और माणिक को भस्म करके और घी में डाला हो तथा उसमें गेहूँ डाले हों । वह गेहूँ पी जाए, उसकी रोटी बनावे । आहाहा ! ऐसे बत्तीस ग्रास का आहार । आहाहा ! तथापि वह विकल्प है, वह रसवाला नहीं । बत्तीस ग्रास का एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक नहीं पचा सकते, ऐसा जिसका आहार । आहाहा ! तो भी उस आहार के प्रति का अशुभभाव है, उसमें रस नहीं है । आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! उस अगाध शक्ति का नाथ प्रभु ! आहाहा ! उसमें से क्या नहीं आयेगा ? यह सवा दो लाईन हुई । आहाहा ! ग्यारहवीं और छठवीं (गाथा का) यह सार है । आहाहा ! ३४२ बड़ा है ।

अन्तर में तू अपने आत्मा के साथ प्रयोजन रख और बाह्य में देव-शास्त्र-गुरु के साथ; बस, अन्य के साथ तुझे क्या प्रयोजन है ?

जो व्यवहार से साधनरूप कहे जाते हैं, जिनका आलम्बन साधक को आये बिना नहीं रहता—ऐसे देव-शास्त्र-गुरु के आलम्बनरूप शुभभाव भी परमार्थ से हेय हैं, तो फिर अन्य पदार्थ या अशुभभावों की तो बात ही क्या ? उनसे तुझे क्या प्रयोजन है ?

आत्मा की मुख्यतापूर्वक देव-शास्त्र-गुरु का आलम्बन साधक को आता है । मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भी कहा है कि 'हे जिनेन्द्र ! मैं किसी भी स्थान पर होऊँ, (परन्तु) पुनः-पुनः आपके पादपंकज की भक्ति हो' !—ऐसे भाव साधकदशा में आते हैं, और साथ ही साथ आत्मा की मुख्यता तो सतत बनी ही रहती है ॥३४२ ॥

अन्तर में तू अपने आत्मा के साथ प्रयोजन रख... अन्तर में शुद्ध चैतन्यघन भगवान के साथ हित बाँध, प्रयोजन रख। आहाहा! बाहर में यदि विकल्प आवे, आहाहा! तो देव-शास्त्र-गुरु के साथ;.. विकल्प आवे तो देव-गुरु-शास्त्र (का) आवे। आहाहा! तथापि वह भाव आवे, वह भी शुभ है परन्तु ऐसा आता है, यह कहना है। आहाहा! बस, अन्य के साथ तुझे क्या प्रयोजन है? आहाहा! स्त्री, पुत्र, पति और पत्नी और पति के साथ प्रभु तुझे क्या काम है? आहाहा! प्रजा को राजा के साथ, राजा को प्रजा के साथ क्या प्रयोजन है? या तो भगवान पूर्णानन्द के नाथ के साथ प्रयोजन रख, वहाँ प्रयोजन जोड़ दे। आहाहा! या बाह्य में देव-शास्त्र-गुरु के साथ; बस, अन्य के साथ तुझे क्या प्रयोजन है? आहाहा!

जो व्यवहार से साधनरूप कहे जाते हैं, जिनका आलम्बन साधक को आये बिना नहीं रहता... व्यवहार। आहाहा! आलम्बन तो निश्चय का—स्व का है परन्तु व्यवहार का विकल्प, देव-शास्त्र-गुरु का अवलम्बन आता है। ऐसे देव-शास्त्र-गुरु के आलम्बनरूप शुभभाव भी परमार्थ से हेय हैं,... आहाहा! उसे तो सवेरे कहा, भगवान ने तो ऐसा कहा है कि जो देव-शास्त्र-गुरु का प्रेम का भाव, वह तो अजीव है। आहाहा! वह तेरी चैतन्य की जाति का नहीं है। चैतन्य की जाति का तो ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि आवे। यह (राग) तो अशान्ति का भाव है। आहाहा! जिसे व्यवहार से साधन कहा, वह निमित्त का ज्ञान कराने के लिए (कहा)। आहाहा! व्यवहार से व्यवहार साधन परन्तु वह भी ज्ञान कराने को। आहाहा! उसका अवलम्बन साधक को आये बिना नहीं रहता। ऐसे देव-शास्त्र और गुरु, ओहोहो! सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ, उनकी वाणी—परमागम और गुरु, उनके आलम्बनरूप शुभभाव। आहाहा! स्वद्रव्य के आलम्बनरूप भाव, वह शुद्ध है। आहाहा! बहुत कठिन बात। पहुँच नहीं सके, इसलिए एकान्त मानना, यह कहीं वस्तु है? मान्यता में ऐसा कि यह पहुँच नहीं सके अन्दर में, इसलिए उस व्यवहार से हो सके, ऐसा कहीं कहा जाए उसे?

श्रद्धा में तो मैं पहुँच सकता हूँ, मेरे भगवान को पहुँचूँगा—ऐसा श्रद्धा में तो पक्का कर। आहाहा! समझ में आया? मेरा भगवान पूर्णानन्द का नाथ ज्ञायकभाव, उसके अवलम्बन से ही शुद्धभाव प्रगट होता है। व्यवहारभाव तो पर के अवलम्बन से, पर के

लक्ष्य से प्रगट होता है; इसलिए वह शुभभाव हेय है। आहाहा! जिसे व्यवहार से साधन कहना, उसे हेय कहना। परन्तु व्यवहार से साधन कहा न? निश्चय साधन तो रागरहित प्रज्ञाछैनी कहा न? आहाहा! अनुभव, स्वभाव का अनुभव, वह साधक है। आहाहा! कठिन काम। सम्प्रदाय को तो मिलता नहीं बेचारे को। आहाहा! यह व्रत करो और यह करो, तप करो, श्वेताम्बर में यह सिद्ध की पूजा, सिद्धचक्र की पूजा करो और यह करो... आहाहा! भाई! वह तो परालम्बी भाव शुभ है, वह सम्यग्दर्शनरहित शुभ है। वह तो मिथ्यात्वसहित का शुभ है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो आत्मा के अवलम्बन के सम्यग्दर्शनसहित में देव, गुरु और शास्त्र का अवलम्बन शुभ आवे, वह भी हेय है। आहाहा! समझ में आया?

यह आत्मा अपना चैतन्यपदार्थ आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द का सागर, ऐसा जो भगवान आत्मा है, उसका आश्रय ले, तब तो उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और धर्म होगा। आहाहा! ऐसे जीव को व्यवहार से देव-गुरु-शास्त्र का अवलम्बन आता है, परन्तु वह देव, गुरु और शास्त्र का अवलम्बन भी शुभभाव है और परमार्थ से वह हेय है, वह शुभ आदरणीय नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

(आदरणीय) नहीं है तो फिर आता क्यों है? भाई! कमजोरी के कारण आता है। आहाहा! यह देव, गुरु और शास्त्र की श्रद्धा और अवलम्बन आवे परन्तु वह भाव शुभ है, वह पुण्य है; धर्म की दृष्टि से वह हेय है। आहाहा! धर्म तो वीतरागभाव है। वह वीतरागभाव तो वीतराग शक्ति के अवलम्बन से प्रगट होता है। भगवान वीतरागमूर्ति जिनबिम्ब प्रभु आत्मा अन्दर है। आहाहा!

**घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्दर जैन,
मत-मदिरा के पानसो, मतवाला समझे न।**

आहाहा! अपने मत के मतवाले पागल,... अन्दर घट में जिनस्वरूपी प्रभु वर्तता है। शाश्वत् जिनस्वरूपी प्रभु आत्मा है, स्वभाव से शक्ति और सामर्थ्य, गुण से। आहाहा! उसका अवलम्बन लेने से जैनधर्म अर्थात् वीतरागी दशा प्रगट होती है। आहाहा! उसमें स्थिर न हो सके, तब उसे देव-गुरु-शास्त्र, सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ देव, निर्ग्रन्थ गुरु और भगवान के कहे हुए परमागम / शास्त्र, उनका उसे अवलम्बन शुभभाव में आता है, तथापि वह शुभभाव हेय है; आदरणीय नहीं। उस शुभभाव को आदरणीय माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

यह परमात्मप्रकाश में कहा है कि जो कोई शुभभाव को उपादेय माने, उसे भगवान् आत्मा हेय है। आहाहा! देखो! यह सन्तों की वाणी। आहाहा! जिसे शुभभाव आता है, उसे उपादेय माने, आदरणीय है,—(ऐसा माने) उसे भगवान् त्रिलोकनाथ आत्मा है, वह हेय है। चन्दुभाई! ऐसा है और जिसने भगवान् आनन्द का नाथ प्रभु अन्तर में उपादेयरूप से जाना, उसे शुभभाव हेय है। आहाहा! वह शुभभाव भी परमार्थ से हेय है। परमार्थ से अर्थात् कि व्यवहार से साधन कहा था परन्तु परमार्थ से तो छोड़नेयोग्य है। आहाहा!

तो फिर अन्य पदार्थ या अशुभभावों की तो बात ही क्या? आहाहा! उनसे तुझे क्या प्रयोजन है? अन्य पदार्थों से या शुभभावों से तुझे क्या प्रयोजन है? निश्चय से स्व का प्रयोजन है; व्यवहार से देव-शास्त्र-गुरु का। वह भी प्रयोजन शुभभाव, वह हेय है। आहाहा! ऐसी बात है। बाह्य के पदार्थों का क्या है तुझे? कहते हैं। शरीर ऐसा ठीक होवे तो धर्म होता है न... आहाहा! यह तुझे क्या काम है उसका? ऐसा कहते हैं। शरीर निरोगी होवे, कुछ लड़के कमानेवाले तैयार हुए हों तो अपने को निवृत्ति मिले तो धर्म हो। परन्तु तुझे क्या काम है? आहाहा!

यहाँ ऐसा कहा न? अन्य पदार्थ से क्या? आहाहा! देव, गुरु और शास्त्र भगवान् ने कहे हुए, वे समकिति ज्ञानी को व्यवहार से शुभभाव आवे, परन्तु फिर भी धर्मी को तो वह शुभभाव भी राग है, जहर है। आहाहा! अमृत का सागर भगवान् आत्मा, उससे शुभभाव विरुद्ध है, यह (आत्मा) अमृतस्वरूप है, जबकि वह (राग) जहरस्वरूप है। आहाहा! तुझसे किसका उत्साह आता है? प्रभु! आहाहा! यह उत्साह लगा आत्मा में या उत्साह आवे व्यवहार से देव, गुरु में। दूसरे पदार्थ के साथ तुझे क्या प्रयोजन है? आहाहा! कि शरीर ठीक रहे तो ठीक। वह तुझे क्या? वह तो उसके कारण से हो, व्यवहार से भी वहाँ उसका अवलम्बन नहीं है। आहाहा! तो फिर ये डॉक्टर सब किस काम के? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! उनसे तुझे क्या प्रयोजन है?

आत्मा की मुख्यतापूर्वक... आहाहा! आत्मा जो ज्ञायक चैतन्य ज्योति, आनन्द का कन्द प्रभु, इसकी दृष्टि में तो उसकी मुख्यता है। उसकी मुख्यतापूर्वक देव-शास्त्र-गुरु का अवलम्बन साधक को आता है परन्तु मुख्यता इसकी है। आहाहा! अब इसके लिए वे

लोग कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य का वांचन नहीं किया, बहिन का (वचनमृत पढ़ते हैं)। परन्तु अब यह सब एक ही प्रकार है। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक नहीं पढ़ते? वह तो गृहस्थ का कहा है परन्तु जो तत्त्व है, वह चाहे जो समकित्ती कहे, केवली कहे, मुनि कहे। आहाहा! सब सत्य है। आहाहा!

आत्मा की मुख्यतापूर्वक.. आत्मा आनन्द का नाथ, धर्मी को तो उसकी मुख्यता रहनी चाहिए। कहीं दूसरे की मुख्यता हो जाए तो दृष्टि मिथ्यात्व हो जाए। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। देव-गुरु-शास्त्र की भी मुख्यता हो जाए तो वह मिथ्यादृष्टि है। मुख्यता तो आत्मा की है न? **आत्मा की मुख्यतापूर्वक..** आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, चैतन्यस्वभाव भगवान, उसकी मुख्यता रहकर देव-शास्त्र-गुरु का आलम्बन साधक को आता है। शुभभाव के समय देव, गुरु और शास्त्र का अवलम्बन आता है। आहाहा!

प्रवचनसार में कहा है न, कि एक मुनि बीमार हो या रोगी हो, दूसरे मुनि ध्यान में न हो और विकल्प में हों परन्तु वह वैयावृत्य का काल है। आहाहा! समझ में आया? ध्यान में होवे तो साथ में गुरु, मुनि चाहे वे बीमार हों तो उसमें कहाँ रहा उन्हें? परन्तु ध्यान में नहीं रह सके और विकल्प तो आया है, इसलिए उसे साथ में मुनि बीमार हों तो उन्हें वैयावृत्य का विकल्प आता है। आहाहा! तथापि वह विकल्प भी हेय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है।

मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने... यह पद्मप्रभमलधारिदेव नियमसार की टीका के कर्ता। मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भी कहा है कि 'हे जिनेन्द्र! मैं किसी भी स्थान पर होऊँ, (परन्तु) पुनः-पुनः आपके पादपंकज की भक्ति हो'! होऊँ तो मुझे भाव शुभ आवे और तुम्हारा निमित्तपना हो, बस इतना। आहाहा! हे जिनेन्द्र! पद्मप्रभमलधारिदेव में आता है। मैं चाहे जिस स्थल में होऊँ। आहाहा! कोई देव में होऊँ, कोई मनुष्यपने में होऊँ.. आहाहा! बारम्बार आपके पादपंकज की भक्ति हो। जिनेन्द्रदेव के चरणकमल की, पाद अर्थात् चरण और पंकज अर्थात् कमल, पंकज कमल। पाद-पैर कमल की भक्ति हो। आहाहा! ऐसा भाव आता है। आहाहा! ऐसे भाव साधकदशा में आते हैं,... देखो! ऐसे भाव साधकदशा में धर्मी को द्रव्य की मुख्यता की दृष्टि होने पर भी, ऐसा भक्ति का भाव आता है।

और साथ ही साथ आत्मा की मुख्यता तो सतत बनी ही रहती है। उस समय भी आत्मा की दृष्टि, जो ध्रुव है अन्दर, वह दृष्टि तो वहाँ से हटती नहीं। आहाहा! दृष्टि में द्रव्य का अवलम्बन है, वह तो दृष्टि त्रिकाल नहीं हटती वापस। आहाहा! भले वह शुभ में भक्ति में आये, परन्तु वहाँ द्रव्य दृष्टि जो हुई है अर्थात् द्रव्य में जो पर्याय दृष्टि की व्याप्त हो गयी है, वह तो वहीं की वहीं ऐसी की ऐसी ही है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति हो, ऐसा कहा परन्तु फिर भी दृष्टि में तो द्रव्य की मुख्यता वहाँ हटती नहीं है। अरे! अब ऐसी बातें इसमें। इसलिए बेचारे लोग फिर (ऐसा कहे) एकान्त है, अरे! एकान्त है, यहाँ का साहित्य एकान्त है। अर र र! प्रभु! प्रभु! क्या करता है? भाई! धर्म क्या, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! धर्म कहाँ से होता है और किसके आश्रय से होता है? आहाहा! देव-गुरु के आश्रय से धर्म नहीं होता। उनके आश्रय से शुभभाव हो। वह भी किसे व्यवहार (कहलाये)? जिसे द्रव्य का आश्रय निश्चय का हो उसे। निश्चय हो, उसे व्यवहार (होवे न)! आहाहा!

आत्मा की मुख्यता तो सतत बनी ही रहती है। सतत रहा ही करती है। आहाहा! जो ज्ञायक भगवान द्रव्यस्वभाव का जो प्रयोजन दृष्टि में प्रगट हुआ है, वह दृष्टि तो वहाँ लगी ही है। आहाहा! वहाँ से हट जाए और यदि शुभ में तथा अशुभ में रस आ जाए (तो) मिथ्यात्व हो जाए। आहाहा! ऐसा है, कठिन लगे। सम्प्रदाय में ऐसा सुनने को मिलता नहीं, उन लोगों को सोनगढ़ का एकान्त है, (ऐसा लगता है)। है तो भगवान का, सोनगढ़ का कहाँ है? सवेरे नहीं आया था? कि भगवान सर्वज्ञ की वाणी आगम ऐसा कहते हैं, सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं कि शुभभाव, वह अजीव है। आहाहा! भले देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव आया परन्तु है वह जीव चैतन्य की जाति नहीं, इसलिए अजीव कहा है। है तो जीव की पर्याय में, परन्तु वह चैतन्य के, चैतन्य के स्वभाव का कोई अंश उसमें नहीं है; इसलिए वह अचेतन है, अजीव है, हेय है। आहाहा! ऐसा सुनने को मिलता नहीं, मुश्किल पड़ता है। यात्रा करने जाए वहाँ से धर्म हो जाएगा, कहता है। गिरनार की यात्रा और पालीताणा की... यह क्या कहलाये? सम्मेशिखर की। आता है न? 'एक बार वंदे जो कोई नरक पशु गति न होई' अभी वह तो नरक, पशु नहीं हुआ तो क्या भला हुआ? बाद में होगा पशु। उस समय कोई शुभभाव आया हो तो उसे स्वर्ग का भव बँधे, परन्तु दृष्टि मिथ्यात्व है;

इसलिए वहाँ से निकलकर वापस नरक और निगोद में जाएगा। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात कठिन पड़ती है। हुआ न? ३४२ हुआ न?

मुख्यता तो सतत बनी ही रहती है। आहाहा! इस दर्शन की दृष्टि द्रव्य पर पड़ी है, वहाँ से हटती ही नहीं और वहाँ से हट जाए, तथा शुभराग और अशुभराग में रस आ जाए (तो वह) मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह शुभराग में भी यदि रस आ जाए तो (मिथ्यात्व हो जाए)। आहाहा! रस की व्याख्या नहीं की थी? एकाग्रता। उस शुभभाव में ही एकाग्रता हो जाए और यह एकाग्रता दृष्टि छूट जाए (तो मिथ्यात्व हो जाए)। यह ३४२ हुआ।

विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अज्ञानी भव देखता है, ज्ञानी भवरहित स्वभाव....

भले ही त्यागी होकर व्रत-तप के शुभभाव करता हो, परन्तु जिसके अन्तर में ऐसी सन्देह दृष्टि वर्त रही है कि—‘मुझे अनन्त भव करना होंगे’—वह जीव अनन्तानुबन्धी कषाय में विद्यमान है, क्योंकि जहाँ अनन्त भव होने की शंका वर्त रही है, वहाँ उसके कारणरूप अनन्तानुबन्धी कषाय विद्यमान ही है। उस जीव ने आत्मा के भवरहित स्वभाव को देखा ही नहीं है। इस ओर अन्तर में चैतन्यस्वभाव की अनन्त सामर्थ्य की अस्ति से च्युत हुआ, इसलिए अज्ञानी को उससे विरुद्ध ऐसे अनन्त भव का अस्तित्व भासित हुआ। ज्ञानी की दृष्टि में तो अपने शुद्ध चैतन्यस्वभाव का अस्तित्व भासित हुआ है और उस स्वभाव में भव की नास्ति है; इसलिए उसे भव की शंका नहीं होती। अज्ञानी को विपरीत दृष्टि में भव ही दिखायी देते हैं, परन्तु ज्ञानस्वभाव दिखायी नहीं देता; ज्ञानी भूतार्थदृष्टि से अकेले ज्ञानस्वभाव को देखता है, उसमें भव है ही नहीं।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

आसोज कृष्ण-८, मंगलवार, दिनाङ्क २४-१०-१९७८
वचनामृत-३४३ से ३४४ प्रवचन-१२९

अनन्त जीव पुरुषार्थ करके, स्वभावरूप परिणमित होकर, विभाव को टालकर, सिद्ध हुए हैं; इसलिए यदि तुझे सिद्धमण्डली में सम्मिलित होना हो तो तू भी पुरुषार्थ कर।

किसी भी जीव को पुरुषार्थ किये बिना तो भवान्त होता ही नहीं है। वहाँ कोई जीव तो, जैसे घोड़ा छलाँग मारता है वैसे, उग्र पुरुषार्थ करके त्वरा से वस्तु को पहुँच जाता है, तो कोई जीव धीरे-धीरे पहुँचता है।

वस्तु को पाना, उसमें स्थिर रहना और आगे बढ़ना—सब पुरुषार्थ से ही होता है। पुरुषार्थ बाहर जाता है, उसे अन्तर में लाओ। आत्मा के जो सहज स्वभाव हैं, वे पुरुषार्थ द्वारा स्वयं प्रगट होंगे ॥३४३॥

३४३ है; ३४२ हो गये हैं। अनन्त जीव पुरुषार्थ करके, स्वभावरूप परिणमित होकर,... ऐसी सूक्ष्म बात है। पुरुषार्थ, यद्यपि भगवान आत्मा तो अनन्त पुरुषार्थ का पिण्ड है, परन्तु पर्याय में स्वसन्मुख होना, वह पुरुषार्थ है। आहाहा! उसमें जो शुभ-अशुभभाव होते हैं; दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, वे परिणाम शुद्ध नहीं हैं। वह शुद्धस्वभाव का पुरुषार्थ नहीं है। आहाहा! वह तो दुःखरूप परिणाम है।

यहाँ तो भगवान आत्मा, ऐसा कहते हैं न? स्वभावरूप परिणमित होकर,... अनन्त जीव पुरुषार्थ करके। अपना चैतन्यस्वभाव, ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, ध्रुवस्वरूप जो भगवान आत्मा का है। उत्पाद-व्यय की पर्याय है, वह तो परिणाम है, उसके अतिरिक्त अन्दर जो ध्रुवस्वरूप है, उस ओर के झुकाव से स्वभाव का जो पुरुषार्थ होता है, उस

पुरुषार्थरूप परिणमकर। आहाहा! चैतन्य भगवान... सूक्ष्म बात है, बापू! तब चलती बात से बहुत अन्तर है। आहाहा!

यहाँ तो चैतन्यस्वरूप भगवान... एक समय के परिणाम / पर्याय जो है, आहाहा! उसके समीप में भगवान ध्रुव चैतन्य परमात्मा स्थित है। अपना स्वरूप, हों! निज चैतन्य पदार्थ। उस ओर का, स्वभाव की ओर का झुकाव, पुरुषार्थ जो स्वभाव की ओर जाता है। पुरुषार्थ करना, ऐसा कहा जाता है, परन्तु वास्तव में तो प्रयत्न स्वभावसन्मुख होता है, वहाँ वह प्रयत्न सहज हो जाता है। ऐसी बातें हैं। सूक्ष्म बात है, भाई!

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहते हैं कि जो वस्तु आत्मा है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत् है। उत्पाद-व्यय है, वह पर्याय है और वस्तु जो त्रिकाल है, वह ध्रुव है। ध्रुव, वह त्रिकाली स्वभाव है। उस त्रिकाली स्वभावसन्मुख होकर पुरुषार्थ करना। उस स्वभावरूप परिणमित होकर,... आहाहा! स्वभाव, स्व-भाव चैतन्य का जो त्रिकाली आनन्द और ज्ञान, सुखरूप, उस ओर के झुकाव से स्वभावरूप परिणमन होकर, आहाहा! पर्याय में स्वभावरूप परिणमन होकर। आहाहा! ऐसी बातें हैं। लोगों को तो एकान्त लगती है - कहते हैं लोग, उन्हें खबर नहीं है।

यहाँ तो परमात्मा ध्रुव जो चीज है... अभी प्रश्न किया था हमारे हसमुख के राजू ने। 'करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख' यह क्या? ऐसा पूछा था। आया है या नहीं? आया है। अन्दर। पूछने आया था। 'करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख' जो शब्द कहा है न?

मूल मारग सुन लो जिनवर का रे

करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख। मूल मारग...

श्रीमद् (कहते हैं)। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर का मूल मार्ग क्या है? कि वर्तमान परिणति अर्थात् जो ज्ञान की दशा चलती है, उस परिणति को अखण्ड ज्ञायक की ओर झुका दे। आहाहा! वह वृत्ति अखण्ड सन्मुख। नित्यानन्द प्रभु, सहजात्मस्वरूप जो त्रिकाली ध्रुव, उस ओर तेरी वर्तमान परिणति को झुका दे। इसका नाम प्रयत्न करके स्वभावरूप परिणमित हुआ (कहलाता है)। आहाहा! ऐसा है, परन्तु क्या हो?

जो अन्दर त्रिकाली शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, जिसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र, आनन्द

अनन्त-अनन्त आनन्द, श्रद्धा, ज्ञान अन्दर भरे हैं। ऐसी ध्रुव चीज़ जो है, ध्रुव; उस ओर उत्पाद-व्यय के परिणाम को स्वभावसन्मुख करके स्वभावरूप परिणमित हो जा। आहाहा! ऐसी बात है।

अनन्त जीव पुरुषार्थ करके, स्वभावरूप परिणमित होकर, विभाव को टालकर,... आहाहा! यह शुभभाव जो है या अशुभभाव है, वह सब विभाव है। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, काम, क्रोध के भाव पापरूप विभाव वासना है और दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, दान, यह राग पुण्यरूप विभाव है, शुभरूप विभाव है। आहाहा! उसे त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव सन्मुख के झुकाव के प्रयत्न से स्वभावरूप परिणमन का उत्पाद करके त्रिकाली जो स्वभाव है, उस ओर के झुकाव से वर्तमान में स्वभावरूप परिणमन का उत्पाद होकर, विभावरूप परिणमन का व्यय करके। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, भाई! और इसके अतिरिक्त कहीं है नहीं। अभी तो सम्प्रदाय में व्रत करो, अपवास करो और भक्ति करो और यात्रा करो, पूजा करो। यह सब तो विकल्प / राग है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। बहिर्लक्षी भाव हैं, वे तो विभाव हैं। अब यदि तुझे धर्म करना हो, मोक्ष का मार्ग (प्रगट) करना हो, तब तो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव शुद्ध ध्रुव है, उस ओर का प्रयत्न करके स्वभावरूप परिणमकर अनन्त सिद्ध हुए; और पुण्य तथा पाप के भाव व्यय करके और त्रिकाली स्वभाव का पर्याय में परिणमन उत्पाद करके... ध्रुव तो कायम है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

विभाव को टालकर, सिद्ध हुए हैं;... अनन्त परमात्मा हो गये। णमो सिद्धाणं। अनन्त सिद्ध जो हुए... अपना अन्तर जो ज्ञानानन्द सहजात्म प्रभु, सर्वज्ञ परमात्मा ने जो आत्मा देखा वह, हों! अज्ञानी आत्मा.. आत्मा.. करे, उसकी उसे खबर नहीं है। त्रिलोकनाथ परमेश्वर जिनेश्वर ने जो आत्मा ध्रुवरूप से शुद्ध परमपदार्थ देखा है, उस ओर का प्रयत्न करके, पुरुषार्थ से पर्याय में स्वभावरूप परिणमन करके (सिद्ध हुए)। यद्यपि पर्याय में ध्रुवस्वभाव आता नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः—यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह वीतरागी स्वभाविक पर्याय है। वह स्वभाविक पर्याय कब होती है? आहाहा! कि त्रिकाली ज्ञायक ध्रुवस्वभाव का पिण्ड अन्दर पड़ा है, अन्तर, उस अन्तर्मुखस्वभाव की दृष्टि करने से

स्वभावरूप परिणमन होता है, तब विभाव टालकर ऐसे अनन्त सिद्ध हुए। आहाहा!

इसलिए यदि तुझे सिद्धमण्डली में सम्मिलित होना हो... आहाहा! वे अनन्त सिद्धपरमात्मा जो हुए, वे अपने अनन्त शुद्ध चैतन्यकन्द प्रभु, ध्रुव.. ध्रुव, उस ध्रुव का अन्दर स्तम्भ पड़ा है, उस ओर का स्वभाव का परिणमन करके... आहाहा! विभाव टालकर अनन्त-अनन्त सिद्ध हुए। अब यदि तुझे सिद्ध होना होवे तो... आहाहा! यदि तुझे सिद्धमण्डली में सम्मिलित होना हो तो तू भी पुरुषार्थ कर। क्या (कहा)? अन्दर त्रिकाली ज्ञायकभाव को पकड़। आहाहा! वर्तमान प्रयत्न के परिणाम से अनन्त-अनन्त अपरिणामी स्वभावभाव, अथवा पारिणामिकस्वभावभाव भी अपरिणामी अर्थात् वह चीज़ पलटती नहीं। आहाहा! ध्रुव। आहाहा! उस ध्रुव का आश्रय करके, उस ओर के प्रयत्न से झुकाव करके, स्वभावरूप परिणमन होकर... आहाहा! तू भी पुरुषार्थ कर। परन्तु वह पुरुषार्थ क्या?

देव-गुरु ऐसा कहते हैं कि हमारे सन्मुख तेरी वृत्ति आयेगी तो वह विभाव है। आहाहा! वह वीतराग एक सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं। दूसरे किसी की ताकत नहीं है। यह सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि हमारे सन्मुख की तेरी जितनी वृत्ति है, उतना सब विभावभाव है, भाई! आहाहा! तेरा भगवान अन्दर परमात्मस्वरूप विराजमान है।

**‘जिन सो ही है आत्मा अन्य सो ही है कर्म;
यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म’**

आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा जिनबिम्ब, वीतरागी बिम्ब प्रभु स्वयं आत्मा विराजता है। अनादि, अनादि-अनन्त है। आहाहा! उस ओर का झुकाव, पुण्य-पाप के भाव की ओर का झुकाव छोड़कर... आहाहा!

यह स्वभाव चैतन्य अनन्त आनन्द की ओर का स्वभावरूप परिणमन करके, जिसके परिणमन में तो अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति तुझे प्राप्त होगी। आहाहा! क्योंकि प्रभु आत्मा अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति का तो खजाना, निधान है। आहाहा! उस खजाने में नजर करने पर... आहाहा! खजाने में कोई कमी नहीं है। आहाहा! पूर्णमिदम्। अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय वीतरागता, अतीन्द्रिय स्वतन्त्रता, अतीन्द्रिय प्रभुता.. आहाहा! अरे! कैसे जँचे? इसने कभी (जाना नहीं)। ऐसा भगवान

ध्रुवस्वरूप आत्मा वह स्वभाव है। उस स्वभाव का परिणमन करके। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! लोग तो ऐसा कहते हैं कि व्रत, तप, भक्ति और पूजा करो, वह करते-करते तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। अरे... प्रभु! वह तो विकार है न? विकार करते-करते निर्विकारी धर्म होता है? तीन काल में कभी नहीं होता। आहाहा! क्या हो?

यदि तुझे सिद्धमण्डली में सम्मिलित होना हो तो... इतनी शर्त। तुझे सिद्ध होना हो तो। कोई स्वर्ग में जाना है और... ऐसा होवे तब तो यह बात नहीं है। यह तो अनन्त बार स्वर्ग में गया।

**मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो**

मुनिव्रत धारण किया, दिगम्बर सन्त हुआ, पंच महाव्रत, अट्टाईस मूलगुण (पालन किये) परन्तु वह तो सब राग और आस्रव तथा दुःख है। ऐसा छहढाला में आया है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो।' नौवें ग्रैवेयक। 'पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो' तो वह सब दुःख है। आहाहा! यह महाव्रत आदि के परिणाम भी विभाव और दुःखरूप है, प्रभु! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

मुमुक्षु: कठिन पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े। क्या हो? भाई! दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! ध्रुवधाम में दृष्टि किये बिना, ध्रुवधाम भगवान आत्मा, स्वयं ज्योति सुखधाम। आहाहा! जहाँ पूर्ण स्वभाव प्रभु स्थित है, उस स्वभाव-सन्मुख होकर स्वभाव का परिणमन कर तो तुझे सिद्धपद होगा। पाटनीजी! भाषा तो सादी है, प्रभु! परन्तु मार्ग तो (सूक्ष्म है)। दुनिया को कहाँ पड़ी है कि मेरा क्या होगा? आहाहा! देह छूटकर कहाँ जाऊँगा? प्रभु! आत्मा का नाश नहीं होता। तू यदि राग और पुण्य के परिणाम को अपना मानेगा तो विभाव को अपना माना और स्वभाव का अनादर किया। आहाहा! उसे तो चार गति में भटकना है। आहा!

यहाँ तो सिद्धमण्डली में जाना हो तो... आहाहा! अर्थात् यदि तुझे मुक्ति, सिद्धपद प्राप्त करना हो तो यह वस्तु भगवान द्रव्यस्वभाव चैतन्य शुद्ध चैतन्यघन के स्वभावरूप परिणमन कर। आहाहा! परिणमन है तो पर्याय, परन्तु वह पर्याय, शुद्धस्वभाव के अवलम्बन

से होती है। आहाहा! ऐसी शर्ते। इस प्रकार से स्वभाव शुद्ध चैतन्यप्रभु तू, तेरा स्वभाव ध्रुव है। 'जिन सो हि है आत्मा।' परमात्मा तो ऐसा कहते हैं और 'जिन समरौ जिन चिन्तवो, जिन ध्यावो एक चित्त' वह जिनस्वरूप तू है। भगवान जिन हैं, उनका चिन्तवन करेगा तो विकल्प उत्पन्न होगा, राग होगा। आहाहा!

मोक्षपाहुड़ में कहा है, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त, संवत् ४९, दो हजार वर्ष पहले (लिखते हैं)। 'परदव्वादो दुग्गई' जो कोई अरिहन्त, सिद्ध परमात्मा हैं, वे तुझसे पर हैं। उस पर का यदि लक्ष्य करेगा तो तुझे राग उत्पन्न होगा और तेरी चैतन्यगति से विपरीत (गति) होगी। आहाहा!

मुमुक्षु : आप ऐसा फरमाते हो, फिर लोग झगड़ा न करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे बेचारे। तेरी बात सच्ची है। उनकी दृष्टि से उन्हें (ऐसा लगता है)। यह सब खबर है। खबर नहीं (ऐसा नहीं है)। आहाहा! भाई! प्रभु तो यह कहते हैं। यह तो आज सबेरे आ गया न? कि शुभभाव जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का है, वह जीव नहीं। ऐसा तो वहाँ भगवान ने कहा। आहाहा! वहाँ तो पुद्गल के परिणाम कहा। आहाहा! इसलिए यह प्रश्न हुआ, वे पुद्गल के परिणाम हैं तो चैतन्य में पुण्य-पाप की पर्याय भासित होती है न? उसका उत्तर ४५ गाथा में आयेगा। पुद्गलकर्म का विपाक सब दुःख है। आहाहा! जितने पुण्य और पाप के भाव उत्पन्न होते हैं, वह कर्म का पाक दुःख है। आहाहा!

भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु का आश्रय करके जो स्वभाव परिणमन होता है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का भाव आता है। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभावरूप परिणमन हो, उससे तेरी सिद्धगति होगी। आहाहा! कठिन बात, भाई! दुनिया कहती है, सब खबर है। आहाहा!

किसी भी जीव को पुरुषार्थ किये बिना तो भवान्त होता ही नहीं है। किसी भी जीव को अपना स्वभाव पूर्णानन्द प्रभु, स्वभाव-सन्मुख का पुरुषार्थ किये बिना भव का अन्त कभी किसी को नहीं होता। आहाहा! है प्रयत्न वर्तमान पर्याय, परन्तु भगवान पूर्ण प्रयत्नस्वरूप ही है। आहाहा! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. वीर्य—पुरुषार्थ पिण्ड प्रभु है।

अरे! कहाँ जँचे ? आहाहा! उसके सन्मुख होने का पुरुषार्थ है, वह उससे अनन्तवें भाग में है। आहाहा! समझ में आया ? चैतन्य भगवान् अन्दर, उसमें तो पुरुषार्थ अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. पुरुषार्थ पड़ा है। वीर्य, वीर्यगुण। उसका कार्य क्या ? स्वरूप की रचना, आनन्द की सम्यग्दर्शन की शान्ति की, स्वभाव की शुद्धता की रचना करे, वह अनन्त वीर्य-पुरुषार्थ का कार्य है। आहाहा! यह पुण्य और पाप की रचना करे, वह वीर्य / पुरुषार्थ का कार्य नहीं है। आहाहा! अरे! यह बात कहाँ सुने ? यह शुभभाव का पुरुषार्थ.. समयसार में पुण्य-पाप अधिकार में कहा है, नपुंसकता है। जैसे नपुंसक को पुत्र नहीं होता; इसी प्रकार शुभभाव नपुंसकता में धर्म की प्रजा उत्पन्न नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : लोग चिल्लाने लग जाँ ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिल्लाने लगे, बापू! सब खबर है, भाई! चिल्लाते नहीं। आहाहा! अशुभभाव भी है, हिंसा, झूठ, चोरी, यह तो महा पाप है। महा नपुंसकता है परन्तु शुभभाव में भी नपुंसकता है और जो शुभभाव से अपना धर्म माने तो वह मिथ्यात्व की अनन्त नपुंसकता है। आहाहा! भगवान्! कठिन बात है, बापू! भगवान् तो वहाँ विराजते हैं—महाविदेहक्षेत्र में त्रिलोकनाथ सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं, वहाँ से आयी हुई यह बात है। आहाहा! भरतक्षेत्र में परमात्मा का विरह पड़ा और यह विरह पड़ा ध्रुवस्वभाव का इसे। यह भगवान् का विरह.. आहाहा! वर्तमान परिणाम में ध्रुव का विरह पड़ा। परिणाम परसन्मुखता दया, दान, व्रत, भक्ति का करते हैं, उसमें वस्तु के स्वभाव का विरह है। आहाहा! उन भगवान् का तो विरह है, परन्तु इस भगवान् का परिणाम में विरह है। आहाहा! शुभभाव जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का होता है, परन्तु है वह विभाव। आहाहा! वह धर्म नहीं है और यह धर्म का कारण नहीं है—ऐसा तीन लोक के नाथ का पुकार है। दुनिया सुने, न सुने (स्वतन्त्र है)। समझ में आया ? आहाहा!

किसी भी जीव को पुरुषार्थ किये बिना तो भवान् होता ही नहीं है। अनन्त आनन्दरूप प्रभु की ओर का प्रयत्न, प्र-विशेष यत्न। आहाहा! शुभाशुभभाव के प्रयत्न का भाव छोड़कर, अन्दर त्रिकाली ज्ञायक भगवान् आत्मा शुद्ध चैतन्य जिनबिम्ब है, आहाहा! उस ओर का प्रयत्न करके। आहाहा! पुरुषार्थ किये बिना तो भवान् होता ही नहीं है। वहाँ कोई जीव तो, जैसे घोड़ा छलाँग मारता है... अश्व-घोड़ा, छलाँग लगाता है, वैसे,

उग्र पुरुषार्थ करके त्वरा से वस्तु को पहुँच जाता है, ... आहाहा! जैसे वह अश्व / घोड़ा छलाँग लगाकर मार्ग तय करता है, आहाहा! ऐसे कोई पुरुषार्थी धर्मी आत्मा, अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ स्वरूप भगवान में अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ की छलाँग लगाकर अल्प काल में सिद्ध होता है। आहाहा! है ?

घोड़ा छलाँग मारता है वैसे, उग्र पुरुषार्थ करके त्वरा से वस्तु को पहुँच जाता है, ... पूर्ण वस्तु को पहुँच जाता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी पूर्ण वस्तु को प्राप्त करता है परन्तु पर्याय में अभी कमजोरी है और उसमें से कोई प्राणी उग्र पुरुषार्थ करके छलाँग मारकर अल्प काल में सिद्धपद हो जाता है। अन्तर्मुहूर्त में सम्यग्दर्शन और अन्तर्मुहूर्त में केवलध्यान! ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! भगवान! क्या है यह? ऐसी बात को वे लोग मजाक करके उड़ा देते हैं कि यह सब तो निश्चय की बातें हैं। परन्तु निश्चय, वह सत्य है। आहाहा! व्यवहार तो उपचरित बातें सब व्यवहार की। आहाहा! भाई! तुझे सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो, इसकी खबर नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो प्रथम ध्रुवस्वरूप भगवान, उस परिणाम को स्तम्भ के साथ बाँध दे। ध्रुव के साथ परिणाम को लगा दे, एकाकार कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तब सम्यग्दर्शन होता है और कोई उग्र पुरुषार्थ करके अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। आहाहा!

तो कोई जीव धीरे-धीरे पहुँचता है। वस्तु की दृष्टि तो हुई। स्वरूप का प्रयत्न करके, स्वरूप की प्रतीति, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन हुआ परन्तु चारित्र प्राप्त करने में शिथिलता है तो कोई क्रम-क्रम से क्रम-क्रम से स्वभाव का आश्रय लेकर क्रम-क्रम से राग को मिटाकर, थोड़ी देर लगती है। आहाहा! ऋषभदेव भगवान का चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य था। ८३ लाख पूर्व तक चारित्र नहीं आया। आहाहा! तीर्थकर त्रिलोकनाथ जिन्हें इस भव में मुक्ति है। ८३ लाख पूर्व। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसे-ऐसे ८३ लाख पूर्व। उन्हें सम्यग्दर्शन और ज्ञान तो था। आत्मा आनन्दमूर्ति ध्रुवस्वरूप है, उसे तो पकड़ लिया था। समकित लेकर तो वे माता के गर्भ में आये थे। आहाहा! भगवान! परन्तु फिर सम्यग्दर्शन-ज्ञान का प्रयत्न तो था किन्तु चारित्र का प्रयत्न नहीं था।

चारित्र की व्याख्या—स्वरूप आनन्दकन्द का जो दृष्टि और ज्ञान ने भान किया, उस आनन्द में रमना, वह चारित्र है। चरना, रमना। आहाहा! व्याख्या बहुत कठिन।

नग्नपना, वह चारित्र नहीं। अन्दर पंच महाव्रत को विकल्प आता है, वह चारित्र नहीं; वह तो चारित्र का दोष है। आहाहा! तो फिर धीमे-धीमे ८३ लाख पूर्व तक चौथे गुणस्थान में या पाँचवें में रहे। किसी जगह ऐसा आता है। चारित्र तो क्रम-क्रम से पुरुषार्थ करके। आहाहा! ८३ लाख पूर्व के पश्चात् दीक्षा ली। उस दीक्षा का अर्थ—अन्तर में / स्वरूप में रमणता करने की भावना हो गयी। आहाहा! अरे! मैंने मेरी चीज़ देखी है, परन्तु उसमें मेरी रमणता की कमी है। वह कमी छोड़कर उग्र पुरुषार्थ से आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान में रम जाना, जम जाना, वह किसी को क्रम से होता है, किसी को उग्र पुरुषार्थ से अल्प काल में होता है। समझ में आया? आहाहा! **कोई जीव धीरे-धीरे पहुँचता है।**

वस्तु को पाना,... भगवान वस्तु चैतन्य तत्त्व, द्रव्य-वस्तु, एक समय के परिणाम जो वर्तमान पर्याय है, उसके पास आत्मतत्त्व वस्तु जो ध्रुव पड़ी है... आहाहा! उसे प्राप्त करना, **उसमें स्थिर रहना...** वस्तु को प्राप्त करने के पश्चात् उसमें रमना, अन्दर में स्थिर हो जाना। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! **और आगे बढ़ना—सब पुरुषार्थ से ही होता है।** यह क्या कहा? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, ज्ञायक भूतार्थ जिसे भगवान ने कहा है, उसे सम्यग्दर्शन में पाना-प्राप्त करना, वह भी पुरुषार्थ से होता है और उसमें स्थिर रहना, अन्दर जम जाना... आहाहा! आनन्दकन्द प्रभु में जम जाना, रम जाना, आगे बढ़ना। रमते-रमते आगे बढ़ जाना, अन्दर शुद्धि की वृद्धि करना। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यह **सब पुरुषार्थ से ही होता है।** वर्तमान प्रयत्न उस ओर ढलता है, है तो पुरुषार्थ परिणाम। भगवान आत्मा जो अपरिणामी स्वभावभाव में तो वे उन पुरुषार्थ के परिणाम का भी अभाव है। आहाहा! परन्तु वह पुरुषार्थ उग्र होकर स्वसन्मुख होता है, उससे एकदम केवलज्ञान हो जाता है। वास्तव में तो उस पुरुषार्थ से स्वभावसन्मुख की रमणता हुई, इसलिए पुरुषार्थ हुआ, मोक्ष हुआ, वह भी अपेक्षित बात है। बाकी मोक्ष होने के समय पूर्व की जो रमणता थी, उससे मोक्ष हुआ, ऐसा भी नहीं है। यह तो स्वरूप जो त्रिकाली है, उसका उग्र आश्रय लिया तो उसमें से मोक्ष होता है। आहाहा! मोक्षमार्ग से मोक्ष होता है, यह भी व्यवहार है। ऐसी बातें हैं। अरे! क्योंकि मोक्षमार्ग है—अन्तर दर्शन, ज्ञान, चारित्र - रमणता शुद्ध वीतरागी पर्याय का व्यय होता है, तब केवलज्ञानरूपी मुक्ति की पर्याय प्रगट होती है। व्यय में से कोई मुक्ति की—सिद्ध की पर्याय उत्पन्न नहीं

होती, वह तो अन्तर द्रव्य में से आती है। आहाहा! इस अपेक्षा से कथन है। इस अपेक्षा से कथन है। उस समय की पर्याय षट्कारक से परिणमित होकर प्रगट होती है। ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा!

सिद्धपर्याय, वह भी षट्कारक के परिणमन से (प्रगट होती है)। पर्याय कर्ता, पर्याय कार्य, पर्याय करण, पर्याय... आहाहा! ऐसा वीतराग के अतिरिक्त कहीं है नहीं। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न हुई है। पूर्व के मोक्षमार्ग से हुई है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! और द्रव्य से उत्पन्न हुई, ऐसा कहना, वह भी अपेक्षित बात है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी षट्कारक के कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण से उत्पन्न हुई है। आहाहा! परन्तु यहाँ...

आगे बढ़ना—सब पुरुषार्थ से ही होता है। व्यवहार.. परिणाम.. परिणाम.. शुद्धता बढ़ते-बढ़ते (पूर्ण होती है)। यद्यपि मोक्षमार्ग के परिणाम की शुद्धता द्रव्य के आश्रय से होती है। मोक्षमार्ग की पर्याय से मोक्ष नहीं होता। आहाहा! पर्याय का तो व्यय होता है। त्रिकाली भगवान के अवलम्बन से मोक्षपर्याय / सिद्धपर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! अब यह कहाँ.. सुनने को मिलता नहीं और सुनने को मिले, वह सब ऐसा (कि) यह करो.. यह करो.. यह करो.. यह राग करना, करना वह मरना है। सूक्ष्म बात है, भाई! राग करना, वह स्वरूप का स्वरूप नहीं है, वह चैतन्य का स्वरूप नहीं है। आहाहा! शुभराग करना, उस कर्तृत्वबुद्धि में आत्मा की पर्याय की शान्ति का नाश होता है। पर्याय का, हों! द्रव्य तो द्रव्य है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है, बापू!

पुरुषार्थ बाहर जाता है... क्या कहते हैं? देखो! जो कुछ पुरुषार्थ पुण्य और पाप के भाव में जाता है, अरे! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का भी बाह्य पुरुषार्थ है। क्योंकि बहिर्लक्षी भाव है। आहाहा! अरे! **पुरुषार्थ बाहर जाता है, उसे अन्तर में लाओ।** यह अपेक्षित बात है। बाहर जाता है, उस पुरुषार्थ को अन्तर में न ला सके, परन्तु यहाँ जाता है कि यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ, वह पुरुषार्थ भले वहाँ रहा परन्तु पुरुषार्थ को अन्तर में ले जा। आहाहा! अब ऐसी बातें। व्यापारी को निवृत्ति नहीं मिलती। बनिये को धन्धे के कारण, पूरे दिन पाप का धन्धा। अब सुनने को आवे, उसमें घण्टा भर मिले, उसमें ऐसी बात होवे तो उसे कहाँ जँचे? वह कहे व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो,

पूजा करो, मन्दिर बनाओ,... तब तो जँचे भी सही। अनादि से अज्ञान है, इसलिए। ऐई! प्रभु! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

जो पुरुषार्थ बाहर जाता है, उसे अन्तर में लाओ। यह शुभराग उत्पन्न होता है, वह वीर्य बाहर जाता है। सवेरे कहा था, शुभराग जो व्रत, तप, भक्ति का आता है, वह जीव नहीं, भगवान ने तो उसे अजीव कहा है। आहाहा! अब यहाँ लोग उसे धर्म कहते हैं। अरे! प्रभु.. प्रभु.. प्रभु..! क्या करे? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि जो पुरुषार्थ बाहर जाता है कि यह करूँ, यह करूँ, व्रत पालूँ, भक्ति करूँ, वह शुभभाव है। उस ओर का पुरुषार्थ अन्दर ले जा। आहाहा! ऐसी बात है।

आत्मा के जो सहज स्वभाव हैं, वे पुरुषार्थ द्वारा स्वयं प्रगट होंगे। भगवान का स्वरूप जो अनन्त वीर्य है, प्रभु में अनन्त बल पड़ा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, ऐसी अनन्त शक्तियों का भण्डार भगवान है, वह अन्तर के पुरुषार्थ से शक्ति बाहर व्यक्ति में आती है। शक्तिरूप है, वह व्यक्तरूप आता है। आहाहा! यह किस प्रकार की भाषा? आहाहा! लोग बेचारे मजदूरी करते हैं। यह शुभभाव की भी मजदूरी है। ऐसी बात है। आहाहा!

सहज स्वभाव हैं, वे पुरुषार्थ द्वारा स्वयं प्रगट होंगे। स्वाभाविक जो आत्मा, स्व-भाव। वस्तु जो भगवान आत्मा है, उसका स्व-भाव। अपना भाव जो अनन्त ज्ञान, दर्शन आनन्द, शान्ति—ऐसा जो स्व-भाव पुरुषार्थ द्वारा स्वयं प्रगट होंगे। अन्तर में पुरुषार्थ करने से स्वयं प्रगट होंगे। राग की मन्दता या शरीर की अनुकूलता की उन्हें सहायता नहीं है। आहाहा! पुरुषार्थ द्वारा स्वयं प्रगट होंगे। यह ३४३ (बोल पूरा) हुआ।

जब तक सामान्य तत्त्व—ध्रुव तत्त्व—ख्याल में न आवे, तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे और कहाँ से प्रगट हो ? इसलिए सामान्य तत्त्व को ख्याल में लेकर उसका आश्रय करना चाहिए। साधक को आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही—द्रव्यसामान्य का ही—ध्रुव तत्त्व का ही होता है। ज्ञायक का—‘ध्रुव’ का जोर एक क्षण भी नहीं हटता। दृष्टि ज्ञायक के सिवा किसी को स्वीकार नहीं करती—ध्रुव के सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती; अशुद्ध पर्याय पर नहीं, शुद्ध पर्याय पर नहीं, गुणभेद पर नहीं। यद्यपि साथ वर्तता हुआ ज्ञान सबका विवेक करता है, तथापि दृष्टि का विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी छूटता नहीं है।

पूज्य गुरुदेव का ऐसा ही उपदेश है, शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं, वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है ॥३४४॥

३४४ जब तक सामान्य तत्त्व... सामान्य तत्त्व अर्थात् क्या ? आहाहा ! अन्दर वस्तु जो ध्रुव... ध्रुव, उत्पाद-व्यय की पर्याय से भिन्न अन्दर ध्रुव एकरूप चीज को यहाँ सामान्य कहते हैं। पर्याय को विशेष कहते हैं। आहाहा ! उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् और सत् द्रव्यलक्षणं। सत्, वह द्रव्य का लक्षण, अन्दर वस्तु का स्वरूप। उसमें यहाँ कहते हैं, पर्याय जो है, वह तो विशेष है और त्रिकाली वस्तु जो है, वह सामान्य है। आहाहा ! यह भाषा और बात.. यह सामान्य तत्त्व कहो या ध्रुवतत्त्व (कहो)। ध्रुव, ध्रुव, ध्रुव भगवान, नित्य-नित्य—आदि-अन्तरहित चीज जो अन्दर है, परिणमन की पर्याय से भिन्न। आहाहा ! वह ध्रुवतत्त्व ख्याल में न आवे। वह ध्रुव वस्तु जब तक ख्याल में न आवे, आहाहा ! तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे... आहाहा ! ऐसी बात है। चाहे जितना जानपना किया हो, ग्यारह अंग की धारणा की हो.. आहाहा ! वह कोई चीज नहीं है। आहाहा !

ध्रुव ख्याल में न आवे... वह पर्याय ख्याल में आवे कि यह जानपना किया और मैंने माना है और ऐसा-ऐसा किया... आहाहा ! वह तो पर्याय ख्याल में आयी। उस पर्याय में त्रिकाली आत्मा नहीं है, वह तो अंश है। आहाहा ! ध्रुव तत्त्व, सामान्य तत्त्व, ज्ञायक भगवान आत्मा, छठी गाथा में जिसे ज्ञायक कहा, समयसार ग्यारहवीं गाथा में जिसे भूतार्थ कहा,

उसे यहाँ सामान्य ध्रुव कहा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे... ध्रुव प्रभु, नित्यानन्द प्रभु आत्मा; एक पर्याय के उत्पाद-व्यय के समीप में पूरा ध्रुव भगवान पड़ा है। अपना स्वरूप, हों! वह ख्याल में न आवे... आहाहा! वहाँ अन्दर में मार्ग कहाँ से सूझे, तो अन्तरंग मार्ग कहाँ से खिले, आहाहा! कहाँ से सूझे। आहा! और कहाँ से प्रगट हो? जो त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुवस्वरूप ख्याल में-ज्ञान में न आवे तो अन्दर का मार्ग कहाँ से सूझे? आहाहा! शुभाशुभभाव है, वह कोई मार्ग नहीं है। आहाहा! ध्रुवस्वरूप का ख्याल न आवे, तब तक अन्तर मार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह कहाँ से सूझे? आहाहा!

और कहाँ से प्रगट हो? ध्रुवस्वरूप भगवान का सन्मुख होकर ख्याल न आवे, आहाहा! तब तक शुद्धता कहाँ से प्रगटे। आहाहा! ऐसी बातें हैं। भाषा तो सादी है। वस्तु तो (गम्भीर है)।

इसलिए सामान्य तत्त्व को ख्याल में लेकर.. इस कारण से ध्रुव जो वस्तु भगवान आत्मा, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् में उत्पाद-व्यय परिणाम है और ध्रुव है वह त्रिकाली चीज है। आहाहा! उस त्रिकाली चीज का सामान्य का परिणाम में ख्याल करके, ख्याल तो परिणाम करता है न? आहाहा! सामान्य तत्त्व को ख्याल में लेकर उसका आश्रय करना चाहिए। निरन्तर ध्रुव, ध्रुव, वज्रबिम्ब प्रभु भगवान ध्रुव का आश्रय करना चाहिए। आहाहा! यह ध्रुव क्या होगा? वर्तमान पर्याय जो है न, पर्याय? उसके गहरे अर्थात् तल में अन्दर ध्रुव पड़ा है। तल में ध्रुव है; ऊपर है, वह तो पर्याय है।

मुमुक्षु: पर्याय में पर्याय नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री: पर्याय में पर्याय है, परन्तु ध्रुवतत्त्व पर्याय के तल में नीचे है। यहाँ तो ध्रुव की बात करनी है न? आहाहा! यह किस प्रकार की भाषा? भगवान त्रिलोक के नाथ सर्वज्ञ की यह वाणी है। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए सामान्य तत्त्व को ख्याल में लेकर उसका आश्रय करना चाहिए। यह क्या कहा? कि जो त्रिकाली ध्रुव है, उसका पर्याय में ख्याल लेकर... आहाहा! उसका आश्रय करना। ज्ञान हुआ हो तो आश्रय (होवे), ख्याल में चीज न आवे तो आश्रय

किसका करना ? ऐसा कहते हैं। वह चीज़ जो ध्रुव है, उसे ज्ञान की पर्याय में ख्याल में लेकर ध्रुव का आश्रय करना। आहाहा! ऐसी भाषा।

मुमुक्षु : ख्याल में लेना और आश्रय करना, दोनों एक साथ में नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों एक ही समय में हैं। परन्तु यह तो ख्याल में आया तो आश्रय करे। ज्ञान में ख्याल में आया कि यह ध्रुव। तो उसका आश्रय करना। समझाना किस प्रकार ? जो चीज़ ख्याल में न आवे तो उसका आश्रय किस प्रकार हो ? इसे बुलाओ। परन्तु वह चीज़ कौन है, यह जाने बिना बुलावे किसे ? समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। इसलिए बेचारे लोग राग के व्यवहार के रसिकों को यह बात अच्छी नहीं लगती। अनादि से व्यवहार का रस तो अनादि का है। आहाहा! शुभराग की क्रिया का रस और प्रेम तो अनादि का है। आहाहा! इसलिए—इस कारण से रागरहित चीज़ को ख्याल में लेकर उसका आश्रय कर। अब उसके आश्रय में रहे। आहाहा! है ? **उसका आश्रय करना...**

साधक को आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक... आहाहा! धर्मी जीव को, सम्यग्दृष्टि जीव को, साधक कहो या सम्यग्दृष्टि जीव कहो; उसे आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही है। ज्ञायक का ही आश्रय है, ज्ञायक का ही आश्रय है। पर्याय का आश्रय नहीं। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ध्रुव के आश्रय से प्रगट हुए, उसे—साधक को प्रारम्भ से पूर्णता—केवलज्ञान हो, तब तक एक ज्ञायक का ही आश्रय है। आहाहा! पर्याय का भी आश्रय नहीं। पर्याय हो, परन्तु आश्रय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव का ही रहता है। सम्यग्दर्शन से लेकर ठेठ केवलज्ञान होने तक ज्ञायक का ही आश्रय रहता है। आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें। अभी तो मस्तिष्क में बैठना कठिन। यह क्या कहते हैं यह ? क्या प्रकार यह ? ऐसा जैनधर्म होगा ? जैनधर्म में तो हमने सुना है कि छह काय की दया पालना, भक्ति करना, व्रत करना, यात्रा करना, मन्दिर बनाना और गजरथ निकालना... अरे! भगवान! सुन, भाई! यह सब क्रियाएँ तो पर की हैं और उनमें कदाचित् इसका भाव होवे तो शुभराग होता है। आहाहा!

यहाँ तो साधक को, धर्म को साधनेवाले साधक को आश्रय तो प्रारम्भ से ध्रुव का, ज्ञायक का होता है—ऐसा कहते हैं। जाननेवाला ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक का आश्रय प्रारम्भ से होता है। वह पूर्णता तक (होता है)। केवलज्ञान हो, तब तक

स्व का ही आश्रय रहता है। आहाहा! कहो, अजितभाई! यह तुम्हारे पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाया, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। अफ्रीका में मुमुक्षु मण्डल की ओर से पन्द्रह लाख का मन्दिर होता है। इस ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारस को मुहूर्त हुआ, खात-मुहूर्त। पन्द्रह लाख का, अफ्रीका में, हों! यहाँ के मुमुक्षु हैं, वहाँ साठ घर हैं। दो हजार वर्ष में वहाँ मन्दिर नहीं था—दिगम्बर मन्दिर। परन्तु उस मन्दिर की क्रिया तो जड़ की है तो होगी, परन्तु उसे बनानेवाले का शुभभाव है तो वह शुभभाव है, बस! उससे कोई धर्म है, ऐसा नहीं है। आहाहा! धर्मी को पहले से प्रारम्भ से ज्ञायक का आश्रय होता है। शुभभाव का आश्रय पहले से नहीं है। आहाहा!

प्रारम्भ से पूर्णता तक... ज्ञायक आनन्द प्रभु ध्रुव का आश्रय पहले से है और वह आश्रय पूर्णता तक रहता है। आहाहा! **द्रव्यसामान्य का ही...** द्रव्यसामान्य कहो, या ज्ञायक कहो या ध्रुव कहो। आहाहा! **ध्रुव तत्त्व का ही होता है।** देखो! ज्ञायक का ही कहो या द्रव्यसामान्य का कहो। लाईन की है न? एक ही अर्थ है, ऐसा। ज्ञायक का, त्रिकाली भगवान का आश्रय प्रथम से समकित्ती को-धर्मी को होता है और ज्ञायक का कहो, द्रव्यसामान्य का कहो, ध्रुवसामान्य जो त्रिकाली अथवा ध्रुव का कहो, तीनों एक ही हैं।

ज्ञायक का—‘ध्रुव’ का जोर एक क्षण भी नहीं हटता। आहाहा! धर्मी जीव को-समकित्ती को ज्ञायक का-ध्रुव का जोर एक क्षण भी नहीं हटता। अन्दर में झुकाव है, वह नहीं हटता—ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब सूक्ष्म, भाई! यह तो अपूर्व बात है, बापू! अनन्त काल में की नहीं। अनन्त काल, अनन्त काल व्यतीत हो गया। आहाहा! शास्त्र का ग्यारह अंग का ज्ञान किया, पंच महाव्रत पालन किये, नग्न दिगम्बर अनन्त बार हुआ, परन्तु ध्रुव चीज़ क्या है, उसका आश्रय नहीं लिया और वह आश्रय बिना सम्यग्दर्शनरूप धर्म की शुरुआत नहीं होती। आहाहा! **‘ध्रुव’ का जोर एक क्षण भी नहीं हटता।** चाहे तो समकित्ती ज्ञानी शुभभाव में आता है, परन्तु जो ध्रुव की ओर का जोर है, वह दृष्टि हटती नहीं है। आहाहा!

दृष्टि ज्ञायक के सिवा किसी को स्वीकार नहीं करती... सम्यग्दृष्टि.. आहाहा! ज्ञायक के अतिरिक्त—त्रिकाली भगवान ध्रुव के अतिरिक्त किसी को स्वीकार नहीं करती। आहाहा! यह लोगों को एकान्त लगता है। सम्यक् एकान्त है, भाई! तुझे खबर नहीं, बापू!

आहाहा! दृष्टि ज्ञायक के अतिरिक्त किसी को स्वीकार नहीं करती। दृष्टि, गुणभेद को स्वीकार नहीं करती। पर्याय को स्वीकार नहीं करती, निमित्त को स्वीकार नहीं करती। आहाहा! कहो पोपटभाई! यह तो चीख मचाये ऐसा है परन्तु अन्दर से चीख मारता नहीं.. आहाहा!

ध्रुव के सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती;... सम्यग्दृष्टि की जो दृष्टि है, वह तो ध्रुव के अतिरिक्त... आहाहा! किसी को गिनती नहीं है। अशुद्ध पर्याय पर नहीं,.. अशुद्ध पर्याय को नहीं। यह क्या कहते हैं? अशुद्ध पर्याय को ही नहीं। दृष्टि का विषय अशुद्ध पर्याय पर भी नहीं है। शुभभाव है, वह इसकी दृष्टि का विषय नहीं है। अशुद्ध कहो या पुण्य-पापभाव कहो। शुद्ध पर्याय भी नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान वीतरागी पर्याय अपूर्ण प्रगट हुई तो भी वह दृष्टि का विषय नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

धर्म की रीति

धर्म की जो रीति है, उसके बदले अन्य रीति से धर्म करना चाहे तो नहीं हो सकता। जैसे—किसी को हलुवा बनाना हो तो पहले उस की रीति जानना चाहिए। पहले आटे को घी में सेककर फिर उसमें शक्कर का पानी डाला जाता है; उसके बदले कोई आटे को घी में सेके बिना कच्चे आटे में पानी डालने लगे तो वह मूर्ख कहलायेगा, उसका हलुवा नहीं बन सकेगा। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म है; उसमें प्रथम सम्यक्श्रद्धा किये बिना चारित्र और व्रत-तप माने तो वह महामूढ़ है। प्रथम अन्तर में आत्मा की निश्चयश्रद्धा-ज्ञान को जमाये बिना एकाग्रता काहे में करेगा? सम्यग्दर्शन के बिना मात्र शुभभाव करके उसमें धर्म और मुनिपना मान लेगा तो मिथ्यात्व का ही पोषण होगा।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

आसोज कृष्ण-९, बुधवार, दिनाङ्क २५-१०-१९७८
वचनामृत-३४४ से ३४५ प्रवचन-१३०

वचनामृत ३४४, पहले से शुरू (करते हैं)। आधा चला था। जब तक सामान्य तत्त्व... जो वस्तु है चैतन्य आत्मतत्त्व, पर्याय से भिन्न—ऐसा जो सामान्य एक तत्त्व। विशेष कहा न? पर्याय विशेष है, उससे सामान्य भिन्न है। आहाहा! जब तक सामान्य तत्त्व—ध्रुव तत्त्व—ख्याल में न आये,.. ख्याल तो ज्ञान की वर्तमान पर्याय है, परन्तु उस ज्ञान की पर्याय में सामान्य ध्रुवतत्त्व का ज्ञान ख्याल में न आवे तो फिर वस्तु किस प्रकार कहना? क्या कहा?

मुमुक्षु : ख्याल अर्थात् निर्विकल्प ज्ञान या विकल्पवाला ज्ञान ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्प ज्ञान है परन्तु ज्ञान है, वह अन्दर जाने—इतनी बात। पश्चात् वह निर्विकल्प होता है। तब उसका आश्रय लेता है। आहाहा! आश्रय हो जाता है, परन्तु आश्रय लेता है, ऐसा कहने में आता है। सूक्ष्म बात, भाई! जब तक धारणा में चाहे जो ग्यारह अंग किये हों और धारणा में यह आया था परन्तु वास्तविक अनन्त बार कि यह आत्मा सामान्य है और ग्यारह अंग पढ़ा, उसमें नहीं आया था? परन्तु उसमें इसने पर्याय को अन्तर में आत्मज्ञान में झुकाया नहीं था। आहाहा! जहाँ वस्तु पड़ी है, सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण परमात्मस्वरूप कृतकृत्य है, परिपूर्ण है अनन्त गुण से भरपूर भगवान है। आहाहा! उसे ख्याल में न ले, तब तक उसका आश्रय नहीं कर सकता। आहाहा! ऐसी बात सम्प्रदाय में तो है नहीं, (इसलिए) कठिन पड़ती है। आहाहा!

तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे.. वस्तु है परमात्मस्वरूप आत्मा जिनस्वरूप है, उसका ख्याल न करे और ख्याल में न आवे, तब तक उसे अन्तरमार्ग की सूझ कैसे पड़े? ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! कथन तो किस प्रकार हो? ख्याल है, वह पर्याय है।

मुमुक्षु : किस गुण की ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानगुण की। परन्तु वह ख्याल यथार्थरूप से जब अन्तर को जानता है, तब वह सम्यग्ज्ञान पर्याय होती है। आहाहा! चाहे जितना ग्यारह अंग का धारणा (ज्ञान) किया, वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा! मात्र जानपना करके सन्तुष्ट हो गया कि अपने को कुछ (आता है)। आहाहा! और वांचन, मनन, चिन्तवन के विकल्प में रह गया। आहाहा!

मुमुक्षु : संस्कार तो पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कार तो कब कहलाये ? इसके ज्ञान में आवे तब, ख्याल करे तब, उसके संस्कार कहलाये। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! पक्ष हो, पक्ष परन्तु पक्षातिक्रान्त होवे, तब उसका यथार्थपना कहलाता है, ऐसी बात है। जब तक भगवान् पूर्णस्वरूप के ज्ञान की वर्तमान पर्याय में यह ध्रुव है, वह वर्तमान पर्याय में यह ध्रुव है, कायम शाश्वत् चीज़ है। यह तो भाषा तो दूसरी क्या हो ? कायम टिकती चीज़ है, यह भी एक विकल्प है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! मार्ग बहुत अलग है। आहाहा!

यह प्रभु अन्दर एक समय में सामान्य जो तत्त्व वर्तमान जो ध्रुव है, जिसे ध्रुव कहो या अखण्ड आत्मा कहो, परम स्वभाव पारिणामिकभाव कहो, अपारिणामिकभाव कहो। एक समय की पर्यायरहित जो आत्मा, उसे यहाँ सामान्य और ध्रुव अखण्ड कहने में आता है। आहाहा! वह ख्याल में न आये, तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे... अन्दर मार्ग कहाँ से सूझे ? बाहर से विकल्प किया करे दया, दान, व्रत, भक्ति, और इसके गुण-गुणी के भेद का चिन्तवन आदि... आहाहा! वह कोई वस्तु नहीं है। उस चिन्तवन के विकल्प से भी पार वस्तु अन्दर पड़ी है। उसे ख्याल में न ले... आहाहा! दूसरे का ख्याल चूककर यह ख्याल में न ले... आहाहा! पर्याय का ख्याल चूककर भी द्रव्य का ख्याल न करे। आहाहा! तब तक अन्दर मार्ग कहाँ से सूझे। आहाहा! और कहाँ से प्रगट हो ? आहाहा!

इसलिए सामान्य तत्त्व को ख्याल में लेकर... ऐसा क्या है यह ? यह तो कैसा मार्ग ? बापू! मार्ग तो प्रभु यह है। सर्वज्ञ वीतराग जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ ने कहा है, वह यह है। आहाहा! **इसलिए सामान्य तत्त्व को ख्याल में लेकर...** वर्तमान ज्ञान की पर्याय

को ध्रुव की ओर झुकाकर। यह भी एक अपेक्षा से (बात है)। बाकी तो पर्याय को झुकाऊँ, यह कहाँ भेद है ? परन्तु कथन क्या कहे ? भाई ! आहाहा ! यह पर्याय वहाँ अन्तर सामान्य -सन्मुख झुक जाती है, तब **उसका आश्रय करना...** (ऐसा कहा जाता है) और

साधक को आश्रय तो... आहाहा ! धर्मी जीव जो धर्मी है, सम्यग्दृष्टि है, जिसे चीज़ ख्याल में आयी है, उसका आश्रय लिया है, तब से शुरुआत से लेकर। ऐसी बातें अब। **प्रारम्भ से पूर्णता तक...** यह पूर्णस्वरूप भगवान, वह तो कृतकृत्य ही है, परन्तु पर्याय में उसका आश्रय लेकर, शुरुआत से। आहाहा ! **एक ज्ञायक का ही...** शुरुआत से लेकर ठेठ केवलज्ञान हो तब तक। आहाहा ! आठ वर्ष के राजकुमार... आहाहा ! जब आत्मा का ज्ञान होता है, अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा ! तब से वह साधक कहने में आता है। आहाहा ! उस साधक आत्मा ने पहले से स्व का आश्रय लिया है, ठेठ तक। आहाहा ! माता, जननी ! मुझे आज्ञा दे। मुझे आनन्द के धाम में जाना है। आहाहा ! यह स्थल नहीं, माता ! चक्रवर्ती का लड़का हो। आहाहा !

मुमुक्षु : बनिया के लड़के क्यों नहीं कहते ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिये के लड़के तो ठीक परन्तु यह तो बड़े ऐसा कि तीर्थंकर के पुत्र और चक्रवर्ती के पुत्र। आहाहा ! बनिये के पुत्र.. परन्तु यह तो जिसे सामग्री का पार नहीं। आहाहा ! वह कहता है, माता ! जननी ! मुझे आज्ञा दे, माँ ! हमारा आत्मा हमें आनन्दस्वरूप है, ऐसा ज्ञात हुआ है। आहाहा ! माता ! मुझे आनन्द के अतिरिक्त कहीं चैन नहीं पड़ता। अब हमारी रुचि कहीं नहीं जमती। आहाहा !

आहाहा ! यह आठ वर्ष के बालक राजकुमार हों। आहाहा ! एक मोरपिछी और कमण्डल छोटा सा (लेकर जंगल में चले जाते हैं)। उस जंगल में सिंह और बाघ गरजते हों। चले जाते हैं। अन्तर के आनन्द में अनुभव करते.. करते.. करते.. आहाहा ! जिन्हें बाह्य की चीज़ में कहीं आनन्द नहीं दिखता। जहाँ आनन्द मेरा नाथ प्रभु आनन्दस्वरूप है, उसे मैंने जगाया जगा है, और आनन्द मुझे अनुभव में आया, माँ ! अब मुझे अधिक आनन्द करने के लिये... आहाहा ! असंग का संग करने के लिये संग को छोड़ने के लिये छोड़ता हूँ। आहाहा !

मेरा प्रभु असंग है, जिसे राग का भी संग नहीं। आहाहा ! ऐसा जो असंग तत्त्व, वह

ख्याल में / ज्ञान में आया है, प्रभु! माता! अब मैं उसका उग्र आश्रय करने... आहाहा! जहाँ मनुष्यों का पदचाप नहीं, वहाँ हम चले जाएँगे। आहाहा! वहाँ जाकर भी हम तो अन्दर गुफा में चले जाएँगे। आहाहा! ऐसा जिसे आनन्द का स्वभाव धर्म की पहली सीढ़ी में सम्यग्दर्शन में जहाँ आनन्द का स्वाद आया। आहाहा! स्वाद है वह पर्याय है, परन्तु पर्याय है, वह द्रव्य-सन्मुख ढली है, इसलिए उसमें से आनन्द आया है। ऐसा जो भगवान आत्मा.. यह बात, प्रभु! वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्होंने पूर्ण सर्वज्ञदशा (प्रगट की है)। जैसा भगवान का सर्वज्ञस्वभाव, यह ध्रुव कहो या सर्वज्ञस्वभाव कहो... आहाहा! जिसने वर्तमान ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञस्वभाव भगवान ध्रुव है, सर्वज्ञस्वभाव... आहाहा! उसका जिसे ख्याल आ गया और उसे जिसने पकड़ा है। भाषा में क्या आवे? आहाहा! ऐसा जो सर्वज्ञस्वभाव ध्रुव नित्य है, प्रभु! वह सामान्यस्वभाव है। उसे वर्तमान पर्याय में उसे ख्याल में आने पर उसका आश्रय करता है। आहाहा! यह करना है।

मुमुक्षु : ख्याल में आया, यह आश्रय हुआ न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी ख्याल में लेकर आश्रय (करता है)। है तो यह, परन्तु ऐसे ख्याल में (लेता है)। भेद पाड़कर कथन किस प्रकार से करे? आहाहा! लक्ष्य में आया अर्थात् अन्दर आश्रय लिया, ऐसा। आहाहा! जो जानने में नहीं आया, उसका आश्रय क्या? ऐसा, इतना कहना है। ऐसा मार्ग है। अरे रे! जगत को सुनने को मिलता नहीं। बाहर में रुककर चला जाएगा जगत भटकने। आहाहा! कोई कुछ, कोई कुछ मानकर चले जाते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं साधक को आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही... ज्ञायक, ज्ञायक सर्वज्ञस्वभाव, ज्ञान का कन्द प्रभु, ज्ञान की ध्रुवता स्वभाव की... आहाहा! उसका ही आश्रय होता है अर्थात् द्रव्यसामान्य का ही... वस्तु जो सामान्य त्रिकाल है, वर्तमान पर्याय में, आश्रय लेनेवाली पर्याय है, वेदन पर्याय में आता है परन्तु पर्याय ऐसे आश्रय उसका-द्रव्य का करती है, मैं यह हूँ। आहाहा! साधक को आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त कहीं चैन नहीं पड़ता। समझ में आया? चैन पड़े, वह चीज़ जहाँ देखी है...

आहाहा! कहते हैं कि उसका आश्रय अब छोड़ता नहीं है। कब तक? आहाहा! पूर्ण केवलज्ञान न हो तब तक। आहाहा!

एक ज्ञायक का ही—द्रव्यसामान्य का ही—ध्रुव तत्त्व का ही... लाईन की है न? आहाहा! एक समय की पर्याय है, वह विशेष है और वस्तु है, वह शाश्वत एकरूप ध्रुव एकरूप सामान्य है। यह सामान्य और... सामान होगा? यह माल सामान। वह तो सामान कहलाता है। यह सामान्य। आहाहा! है वह माल सामान्य। उसका ही जोर होता है।

ज्ञायक का... ज्ञायक अर्थात् नित्य ध्रुव प्रभु का। जोर एक क्षण भी नहीं हटता। आहाहा! धर्मी को एक क्षण भी हटता नहीं। आहाहा! चौथे गुणस्थान में शुभभाव में हो तो भी उसे ध्रुव का आश्रय थोड़ा है। आहाहा! और पाँचवें गुणस्थान में अशुभभाव में हो... आहाहा! तथापि ध्रुव का आश्रय / स्थिरता विशेष है। वस्तु तत्त्व के आश्रय पर यहाँ वजन है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर में जब शुभभाव में हो, भक्ति आदि में (हो), तथापि उसे आश्रय अल्प है, स्थिरता थोड़ी है। आहाहा! यहाँ तो द्रव्य के आश्रय का जोर क्या है, ऐसा कहना है और पंचम गुणस्थान में सच्चा श्रावक जिसे कहते हैं, आत्मज्ञान होकर जिसे स्वरूप में थोड़ी स्थिरता बढ़ गयी है, उसे अशुभभाव हो, विषय-वासना, कमाना आदि का अशुभभाव हो, तथापि उस समय उसे अन्दर आश्रय विशेष है। आहाहा! स्थिरता विशेष है। अरे! यह तो कुछ... नवरंगभाई! अब इसमें कहाँ पानी, छनना-बानना कहीं रह गया। आहाहा! भगवान! तेरे घर की बात चलती है, प्रभु! आहाहा! तेरे घर में तो अनन्त आनन्द और शान्ति पड़ी है न, प्रभु! ध्रुवरूप से पड़ी है, हों! फिर हिलती-चलती नहीं। आहाहा!

धर्मी को क्षण भी दृष्टि वहाँ से हटती नहीं। आहाहा! दृष्टि ज्ञायक के सिवा किसी को स्वीकार नहीं करती... आहाहा! सम्यग्दृष्टि जो हुई, जिस दृष्टि ने द्रव्य को-आत्मा को पकड़ा... आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, ध्रुवस्वभाव के अतिरिक्त किसी को स्वीकार नहीं करती। आहाहा! ध्रुव के सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती;... वह स्वीकार नहीं करती, उसे लाईन करके स्पष्ट किया। ज्ञायक के अतिरिक्त किसी को स्वीकार नहीं करती अर्थात् क्या? आहाहा! कि ध्रुव के सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती;... आहाहा! अर्थात्?

अशुद्ध पर्याय पर नहीं,... अशुद्ध पर्याय को नहीं गिनती, शुद्ध पर्याय को नहीं गिनती। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि की पर्याय जो शुद्ध हुई, उसे भी दृष्टि स्वीकार नहीं करती। आहाहा!

निमित्त को तो स्वीकार नहीं करती, राग की अशुद्ध पर्याय को भी वह स्वीकार नहीं करती, शुद्धपर्याय प्रगट हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनन्द, यह स्वाद जो आनन्द का प्रगट है, उसे भी दृष्टि स्वीकार नहीं करती। आहाहा! ऐसा है। धर्म चीज़ बहुत अलौकिक है। आहाहा! लोगों ने तो सामान्य (कर डाली है)। व्रत करो और तप करना, अपवास करना, दान देना, यह करना... अरे भाई! यह तो सब विकल्प के परिणाम, भाव, राग के विकार के हैं। आहाहा! यहाँ तो स्वभाव की जहाँ दृष्टि है, वह परिणाम अशुद्ध आवे, परन्तु उसका स्वीकार उसे नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : कल आप कहते थे कि वे पुद्गल परिणाम हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से बात है? इसीलिए उसे पुद्गल परिणाम (कहा है क्योंकि) मेरे जीव का स्वभाव नहीं, इसलिए उसे स्वीकार नहीं करती। अरे! पर्याय तो उसकी निर्मल पर्याय है न! परन्तु दृष्टि के विषय में तो अकेला ज्ञायकपना ही तैरता है। आहाहा! ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. भगवान निश्चल, अविचल ऐसा जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, सामान्यभाव, एकरूप भाव, अपरिणामी भाव नहीं बदलती पर्यायवाला भाव।

मुमुक्षु : परमपारिणामिकभाव कहलाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परमपारिणामिक अर्थात् अपरिणामी। परमपारिणामिक का अर्थ परम सहजस्वभाव। परन्तु उसे जब ऐसा कहना हो कि अपरिणामी है, वह पर्याय में नहीं आता, पर्यायरूप वह परिणमित नहीं होता। उस पारिणामिकभाव को ही अपारिणामिक (अपरिणामी) कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बातें। अब इसमें कहाँ... आहाहा!

शुद्ध पर्याय पर नहीं, गुणभेद पर नहीं। भगवान आत्मा अनन्त गुणरूप है और आत्मा गुणी है-ऐसा भेद दृष्टि स्वीकार नहीं करती। आहाहा! क्योंकि गुण-गुणी का भेद (होवे तो) विकल्प उठता है। आहाहा! **गुणभेद पर नहीं। यद्यपि साथ वर्तता हुआ ज्ञान...** यहाँ तक तो कल आया था। परन्तु जो दृष्टि सम्यक्चैतन्य की, सम्यक् सत्यदृष्टि पूर्ण सत्य

को जहाँ स्वीकार किया है, ध्रुव का जहाँ स्वीकार हुआ है, ध्रुव का जहाँ सत्कार किया है, ध्रुव का जहाँ आदर किया है... आहाहा! ऐसी दृष्टि, आहाहा! वह तो पर्याय को शुद्धता को भी, गुणभेद को गिनती नहीं परन्तु वह साथ में हुआ ज्ञान... आहाहा! अरे रे! भाषा बहुत सादी परन्तु, बापू! भाव ऐसे हैं। दृष्टि-द्रव्यदृष्टि है न यह? यह तो भाई का नाम दिया है। यह (बहिन के) वचनामृत। वह भाई का द्रव्यदृष्टि सोगानी (का), द्रव्यदृष्टि, द्रव्यदृष्टि प्रकाश यह ग्रन्थ का नाम दिया है। पढ़ा है या नहीं? ...भाई! वह द्रव्यदृष्टि ही है यह।

भगवान अन्दर अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आनन्द के कस के मालवाला प्रभु है। आहाहा! अरे! प्रभु! यह तो अनन्त गुण का गोदाम! परन्तु गुण और गुणी का भेद भी जहाँ दृष्टि स्वीकार नहीं करती। आहाहा! उस दृष्टि के काल में जो सम्यग्ज्ञान हुआ... आहाहा! किसी समय ऐसा कहा जाता है कि दृष्टि कारण है और ज्ञान कार्य है। किसी समय ऐसा कहा जाता है कि ज्ञान कारण है और दृष्टि कार्य है। क्योंकि वह जाने ज्ञान न? आता है न? (गाथा) १७ में ऐसा आता है (कि) पहले ज्ञान और बाद में दृष्टि। आहाहा! और इस तत्त्वार्थसूत्र में तो पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (ऐसा लिया है)। आहाहा! वह क्यों? कि यह वस्तु है, वह ख्याल में आयी, तब प्रतीति हुई। प्रतीति कुछ जानती नहीं। प्रतीति तो 'है' इतना, प्रतीति निर्विकल्प होती है। जाना है ज्ञान ने कि अखण्ड ज्ञायक यह चैतन्यध्रुव है। आहाहा! इससे ज्ञान को कारण कहा जाता है और सम्यग्दर्शन कार्य कहा जाता है। परन्तु जब मूल दृष्टि के विषय की अपेक्षा चलती हो, तब दृष्टि का विषय ध्रुव है, उस काल में ज्ञान हुआ है; इसलिए दृष्टि कारण और ज्ञान कार्य—ऐसा पारस्परिक है। होते तो हैं साथ में। आहाहा!

यद्यपि साथ वर्तता... ऐसी भाषा है न? आहाहा! अब ऐसी बातें। प्रभु! तू अन्दर ऐसी चीज़ है। जो केवलज्ञान की पर्याय है, परन्तु उसे दृष्टि स्वीकार नहीं करती। आहाहा! क्योंकि पर्याय है, वह सद्भूत व्यवहारनय है। भगवान त्रिकाल प्रभु, जिसमें से पर्याय केवलज्ञान, परमात्मदशा आती है, ऐसा जो परमात्मस्वभाव, परम आत्मस्वभाव, परम स्वरूप स्वभाव आत्मा अर्थात् यहाँ स्वरूप, परमात्मस्वरूप, परमस्वरूप स्वभाव का जहाँ आश्रय लिया। तब वह दृष्टि हुई और सम्यग्दर्शन हुआ। अब उस समय जो ज्ञान हुआ है, (वह) स्व को जानता है, त्रिकाल को-ध्रुव को भी जानता है, वह ज्ञान गुणभेद को भी

जानता है, वह ज्ञान पर्याय को जानता है, वह ज्ञान अशुद्धता हो, उसे भी जानता है। आहाहा! ऐसा है। ऐसा धर्म कहाँ से निकाला? ऐसा (लोग) कहते हैं। बापू! धर्म यह है, भाई! आहाहा!

साथ वर्तता हुआ ज्ञान... भाषा ऐसी है न? सम्यग्दर्शन के साथ वर्तता हुआ ज्ञान सबका विवेक करता है,... अर्थात् सबको जानता है। पर्याय को पर्यायरूप से, गुण को गुणरूप से, भेद को भेदरूप से, राग को रागरूप से जानता है, बस! उसका जानने का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, इसलिए सब जानता है। आहाहा! मुझमें कमजोरी से अशुद्धता हुई है, उसे जानता है, उग्र पुरुषार्थ से जो शुद्धता प्रगट हुई है—पर्याय (प्रगट हुई है), उसे भी जानता है। दृष्टि का विषय तो वह कुछ है नहीं। आहाहा!

तथापि दृष्टि का विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है,... देखो! आया! आहाहा! अर्थात् कि ज्ञान द्रव्य को जाने, गुण को जाने, पर्याय को जाने, अशुद्धता को जाने। ऐसा होने पर भी, ऐसा। आहाहा! है न? तो भी अर्थात्... आहाहा! पर्याय जो अशुद्ध है, शुद्ध है, उसे ज्ञान जानता (होने) पर भी दृष्टि तो, दृष्टि का विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है,... आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह किस प्रकार की बातें? बेचारे फिर कुछ के कुछ मार्ग में चढ़ गये हैं। वीतराग का मार्ग नहीं जाना अरे! जिन्दगी ऐसी और उसमें यदि यह नहीं समझ में आया, दृष्टि नहीं हुई तो हो गया। कहाँ जाएगा?

ध्रुव को ध्येय में लिया नहीं और ध्येय बनाकर ध्यान में उसका विषय बनाया नहीं... आहाहा! तब तक इसे सम्यग्दर्शन नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन नहीं तो सम्यग्ज्ञान भी नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं तो चारित्र भी नहीं। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दर्शन में जो त्रिकाल को स्वीकार करता है, ऐसा जो पुरुषार्थ, उसकी अपेक्षा स्वरूप में रमणता का पुरुषार्थ तो अनन्त है, प्रभु! चारित्र अर्थात् कुछ यह क्रियाकाण्ड और महाव्रत के परिणाम ये कोई चारित्र नहीं हैं। आहाहा! ये सब डाक्टर रहे। यह इंजेक्शन दूसरे प्रकार का है। आहाहा!

तीन लोक का नाथ चैतन्य प्रभु, जो पुरुषार्थ से दृष्टि में आया, यद्यपि वह तो पुरुषार्थ का पिण्ड ही प्रभु तो है, यह पुरुषार्थ जो है, वह तो अल्प पर्याय है। आहाहा! परन्तु अल्प पुरुषार्थ में जो पूर्ण पुरुषार्थ जो दृष्टि में आया... आहाहा! समझ में आया? ऐसा होने पर भी

इसके साथ ज्ञान हुआ। ज्ञान ने जाना कि अशुद्धता है। आहाहा! ज्ञान तो उसे जाने कि पर्याय में राग का परिणमन है, उतना कर्ता मैं हूँ। आहाहा! क्योंकि परिणमना है। वह परिणमन, वह कर्ता, इतना ज्ञान जानता है, आहाहा! और जितना राग का भोक्ता है, उस काल में दुःख का वेदन (होता है), वह ज्ञान जानत है कि मैं भोक्ता हूँ। आहाहा! ऐसे ज्ञान में इतने सब भेद ख्याल में आने पर भी, दृष्टि का विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, शान्तिभाई! ऐसा है, बापू! कठिन बात है, भाई! लोग कहीं चढ़ गये हैं बेचारे। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रभु! उस समय भी अखण्ड की दृष्टि छूटी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि वहाँ ही है। पर्याय को जाने, अशुद्धता को जाने परन्तु दृष्टि तो वहाँ ज्ञायक पर ही है। आहाहा! क्योंकि दृष्टि सामान्य में परिणमित हो गयी है। श्रद्धारूप से है तो पर्याय परन्तु वह पर्याय त्रिकाल में परिणम गयी है। त्रिकाल में अर्थात् उसके आश्रय से। त्रिकाल तो त्रिकाल है। आहाहा! अब ऐसी बातें। भाई! धर्म कोई अलौकिक बात हैं। यह दया पालना और व्रत करना, अपवास करना, दान करना, वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो वस्तु जो त्रिकाल चैतन्यपिण्ड निष्क्रिय है, वह निष्क्रिय चीज़ है। उसमें हलन-चलन या परिणमना, वह उसमें है नहीं। आहाहा! उसमें तो यह सम्यग्दर्शन की पर्याय या केवलज्ञान की पर्याय निष्क्रिय तत्त्व में तो है नहीं। आहाहा! ऐसे तत्त्व को स्वीकार करनेवाली दृष्टि के साथ रहा हुआ ज्ञान सबको जानता है, तथापि उस दृष्टि का विषय अभेद है, वह हटता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बातें करना और समझ में आया? (ऐसा पूछना)। अरे! परिणाम और परिणामी के बीच भेद है, कहते हैं। आहाहा! यहाँ मुझे तो दूसरा कहना है। ज्ञान के परिणाम और दर्शन के परिणाम। आहाहा! एक दर्शन के परिणाम त्रिकाल को स्वीकार करे और ज्ञान के परिणाम इसको और उसको सबको स्वीकार करे। आहाहा!

पंच संग्रह में कहा है, अध्यात्म पंच संग्रह। दीपचन्दजी का किया हुआ है। ओहो! प्रभु! तेरी दर्शन की पर्याय-सर्वदर्शी पर्याय, वह सबको भेद किये बिना 'है' इतना देखती है। है, ऐसा भी नहीं, यह तो भाषा (क्या कहना)? यह है, यह भेद पड़ गया परन्तु महासत्ता

जैसी है, वैसा दर्शन-केवलदर्शन सत्ता का स्वीकार करता है। आहाहा! उस समय की केवलज्ञान पर्याय भेद कर-करके अनन्त आत्मायें, अनन्त गुण, अनन्त पर्यायें, अनन्त जड़, उनके गुण, उनकी पर्यायें, एक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद। आहाहा! इन प्रत्येक को वह केवलज्ञान की पर्याय भिन्न-भिन्नरूप से जानती है। उसे वहाँ अद्भुत कहा है। अद्भुत रस में। अध्यात्म पंच संग्रह है। अद्भुत प्रभु तेरी शक्ति है। आहाहा! तेरी एक ही पर्याय भिन्न-भिन्न एक-एक अंश को भिन्न करके जानती है और उसी समय की दर्शन पर्याय कुछ भी भेद किये बिना सत्ता एक है, इतना देखती है। आहाहा! प्रभु! तेरा अद्भुत रस है। ऐसा डाला है। अध्यात्म पंच संग्रह है न? आहाहा!

मुमुक्षु : दीपचन्दजी का।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दीपचन्दजी का। आहाहा! वह दृष्टि का विषय कभी नहीं छूटता। आहाहा! बहिन स्वयं बाद में जरा कहती है पूज्य गुरुदेव का ऐसा ही उपदेश है,... एक बात। शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं,... दो बात। वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है। तीन बात। आहाहा! वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। रसिकभाई! ऐसा सूक्ष्म है। यह ३४४ (बोल पूरा हुआ)। आधा तो कल चला था। आहाहा!

मोक्षमार्ग का स्वरूप संक्षेप में कहें तो 'अंतर में ज्ञायक आत्मा को साध।' यह थोड़े में बहुत कहा जा चुका। विस्तार किया जाय तो अनंत रहस्य निकले, क्योंकि वस्तु में अनंत भाव भरे हैं। सर्वार्थसिद्धि के देव तेतीस-तेतीस सागरोपम जितने काल तक धर्मचर्चा, जिनेन्द्रस्तुति इत्यादि करते रहते हैं। उस सबका संक्षेप यह है कि—'शुभाशुभ भावों से न्यारा एक ज्ञायक का आश्रय करना, ज्ञायकरूप परिणति करनी' ॥३४५ ॥

३४५, मोक्षमार्ग का स्वरूप संक्षेप में कहें... मोक्षमार्ग का स्वरूप। मोक्ष—परमानन्द की प्राप्त, वह मोक्ष। उसका जो मार्ग-रास्ता। उसमें चलने से मोक्ष मिले, ऐसा जो मार्ग, उसका जो स्वरूप। आहाहा! मोक्ष अर्थात् पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द और पूर्ण ज्ञान और पूर्ण शान्ति प्राप्त हो, वह मोक्ष। आत्मा का पूर्ण आत्मलाभ हो, उसका नाम मोक्ष।

आहाहा! उसका जो मार्ग, उसका जो स्वरूप, संक्षेप में कहें तो 'अंतर में ज्ञायक आत्मा को साध।' आहाहा!

भगवान ज्ञायकस्वरूप अन्दर विराजता है। आहाहा! जैसे चन्द्र शीतल छाया जिसकी है, पूर्ण शान्त शीतल, शीतल चन्द्रमा, वैसे भगवान अन्दर शान्त.. शान्त.. शान्त.. अकषाय स्वभाव का-शान्ति का भरपूर सागर। आहाहा! उसे साध। वह भगवान पूर्ण शान्ति का सागर है, उसे साध, बस! आहाहा! अनन्त काल में कभी किया नहीं और वर्तमान में यह बात तो पूरी गुप्त हो गयी है। आहाहा! सम्प्रदाय में यह बात है नहीं। जैन सम्प्रदाय में नहीं तो अन्य में तो कहाँ सब बातें करे। वे क्या कहलाते हैं? वह बाबा नहीं? क्या कहा? साँई बाबा। सब मिथ्यादृष्टि जीव हैं। उसे माननेवाले बनिये निकले हैं। वह रजनीश, रजनीश क्या कहलाता है? रजनीश। सब गप्प मारनेवाले हैं। आहाहा! अरे! यह बात तो श्वेताम्बर और स्थानकवासी में नहीं है। आहाहा! लोगों को बहुत कठिन पड़े, भाई!

मुमुक्षु : उसमें कोई गुप्त रीति से तो होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुप्त रीति से अज्ञान है, वहाँ मिथ्यात्व पड़ा है। कठिन बात है, बापू! स्थानकवासी और श्वेताम्बर गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं। अरे! प्रभु! यह बात तो कहाँ है? उनके कहे हुए शास्त्र हैं, वे गृहीत मिथ्यादृष्टि ने बनाये हैं। सर्वज्ञ का नाम देकर लोगों को ठगा है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बात है, भाई! उसके भाई को अभी... आहाहा! यह तो मार्ग, बापू! जिनेश्वर तीन लोक के नाथ महाविदेह में विराजते हैं। वह सब वाणी यह वाणी और बात है। आहाहा! वहाँ यह मार्ग चलता है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं मोक्षमार्ग का स्वरूप संक्षेप में कहें तो 'अंतर में ज्ञायक आत्मा को साध।' आहाहा! अन्दर में जो आत्मा ज्ञायक ध्रुव है, उसे साध। यह साध, वह मोक्षमार्ग है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें! भाई! मार्ग तो यह है, बापू! और यह मार्ग हुए बिना भव का निपटारा नहीं आयेगा। आहाहा! यह पढ़ा है या नहीं? रसिकभाई! पुस्तक पढ़ी है पूरी? कितनी बार? एक बार? आहाहा!

मुमुक्षु : आपका रूबरू जो स्पष्टीकरण होता है, वह हमसे नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भले। यह पढ़ा है या नहीं? इसे प्रेम है न? आहाहा! मोक्षमार्ग—परम आनन्द और परम अनन्त ज्ञान और पूर्ण शान्ति की प्राप्ति—ऐसा मोक्ष, उसका जो रास्ता। आहाहा! उस रास्ते में जाए तो वहाँ प्राप्त करे न? उसका जो रास्ता, मार्ग, पन्थ, मोक्ष का पन्थ। आहाहा! स्वरूप—उसके स्वरूप का, मोक्ष के पन्थ का, मोक्ष के मार्ग का, मोक्ष के रास्ते का स्वरूप यदि संक्षेप में कहें,... आहाहा! **‘अंतर में ज्ञायक आत्मा को साध।’** आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वरूप परमात्मा अन्दर विराजता है, भाई! उसे साध। उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, उसे साध। आहाहा! ऐसा है। **यह थोड़े में बहुत कहा जा चुका।** है? संक्षिप्त में कहें तो संक्षिप्त में यह सब कहा जा चुका है।

मोक्ष के मार्ग का-धर्म का जो रास्ता है, यदि उसका स्वरूप संक्षिप्त में कहें तो अन्दर में ज्ञायक आत्मा को साध। आहाहा! बहुत संक्षिप्त (भाषा)। भूतार्थ का आश्रय कहा न जो? तो आश्रय साध, पहले से ठेठ तक। आहाहा! भगवान अन्दर स्वरूप पूर्णानन्द का नाथ धर्मपिता, उनकी प्रजा का पिता यह आत्मा। आहाहा! ऐसा जो ज्ञायक, उसे साध तो मोक्षमार्ग की प्रजा प्रगट होगी। आहाहा!

इसमें कहीं कोई विद्वत्ता और बहुत जानपना हो तो ही हो, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! मात्र यह भगवान पूर्णानन्द है, इसकी अन्दर रुचि, विश्वास, भरोसा, प्रतीति आनी चाहिए। आहाहा! एक समय में इतना तत्त्व! जिसके समक्ष केवलज्ञान की पर्याय की भी कीमत नहीं, ऐसा यह तत्त्व—ज्ञायकतत्त्व। आहाहा! ऐसा जो ज्ञायकतत्त्व, उसे साध, यह परिणाम है। ज्ञायकतत्त्व, वह पारिणामिक सहज भाव ध्रुव त्रिकाल। उसे साध, यह परिणाम। समझ में आया? उसे साध अर्थात् उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान और रमणता, यह साध। ये तीन मोक्षमार्ग की पर्याय है। आहाहा! इसलिए लोग बेचारे सोनगढ़वालों के नाम से ऐसा कहते हैं। सब वहाँ के भोले लोग सुननेवाले रामजीभाई जैसे। अरे! हाँ, वह हाँ करे, ऐसा कहते हैं। अरे भगवान! प्रभु! तू क्या करता है? भाई! ऐसे बिना विचारे सिर पर कहे वह हाँ.. हाँ.. हाँ.. (करे)। तुमको सबको मूर्ख सिद्ध करते हैं, भोले। नवरंगभाई! सिर पर दीये रखे तो कहे हाँ। सुन न भाई! आहाहा!

मोक्षमार्ग का मार्ग संक्षेप में कहें तो ‘ज्ञायकभाव को साध।’ आहाहा! त्रिकाली जो भगवान आत्मा, उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, यह साध।

माणिक्यचन्द्रभाई ने सुना नहीं था। इनके पिता। आहाहा! देखा था, मैंने देखा था न, देखा था, पतला शरीर था। आहाहा! वह कहीं था नहीं, था नहीं। हमारे गुरु लो न सम्प्रदाय के वे हीराजी महाराज! आहाहा! लौकिक इतने सज्जन थे कि उन्हें ऐसा था। अरे रे! हम साधु, हमारे यह नहीं चलता, नहीं चलता। आहार-पानी लेने जाए तो पाँच-पाँच छह-छह कोस का विहार करके आये हों तो शिष्यों को न कहे, स्वयं जाए और वह भी खेद बिना जाए, हों! 'चूड़ा' जैसे (गाँव में) जाना। आहाहा! छह-छह कोस का विहार करके (आये हों तो भी कहे) मैं ले आऊँगा, हों! आहाहा! और क्रिया निर्दोष। उनके लिए पानी की बूँद बनायी हो (प्रासुक की हो) तो ले नहीं। आहाहा! तथापि यह तत्त्व क्या है, वह उन्हें कान में नहीं पड़ा था, प्रभु! अरे रे! और उनकी प्रसिद्धि स्थानकवासी में 'हीरा अटला हीर बाकी सूतरना फालका' ऐ तू एक हीरा पका है, बाकी तेरे समक्ष सब सूत के फालका ऐसा कहते। भाई। आहाहा!

और जब रास्ते में देह छूट गया, (संवत्) १९७४ के वैशाख कृष्ण ८। उन्हें ले गये, वहाँ चार कोस दूर गुजर गये। क्या कहलाता है? 'कांप' सुरेन्द्रनगर, सुरेन्द्रनगर ले गये। 'कांप' कहते थे। उनकी पालकी बनायी, हम पाँच कोस दूर थे, वे फिर आये, तब पालकी उठायी परन्तु पालकी उठायी... यह चैत्र कृष्ण नौ की बात है। चैत्र कृष्ण आठ को गुजर गये। वह पालकी उठाई, साध्वी रोवे, साधु रोवे, श्रावक रोवे, रायचन्द गाँधी जैसे पाँच-पाँच लाख, दस लाख के आसामी, पचास-पचास हजार की आमदनी, उस दिन की बात है, हों! संवत् १९७४ की बात है। वे रोवें। लकड़ियाँ उठाई, उसमें चन्दन की लकड़ियाँ होती हैं न? जलाने के लिए ले गये। आहाहा! सूखड़.. सूखड़..। हम गये और गये वहाँ पुकार-पुकार ऐसा... अरे! यह हमारा हीरा जाता है। ऐसे बेचारे रोवें, हों! इतना। परन्तु यह कान में नहीं पड़ा, हों!

मुमुक्षु :चकित हो गये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : चकित हो गये थे। श्वेताम्बर साधु (चकित हो गये) ऐसा गम्भीर पुरुष। दो-दो हजार लोगों में व्याख्यान दे परन्तु... पुंठुं रखे न? स्थानकवासी में। ऊँची नजर नहीं, इतनी उनकी कषाय की मन्दता और ब्रह्मचर्य का रंग। परन्तु यह बाह्य क्रियाकाण्ड है। आहाहा! यह आत्मा पर की दया पाले, वह धर्म, यह उनकी मान्यता। यह

कहते हैं कि पर की दया का भाव, वह राग है और वह स्वरूप की हिंसा है। अर र र! नवरंगभाई! बहुत विचार आता है अन्दर। अरे! प्रभु! ऐसे बेचारे... अरे रे! उन्हें यह बात कान में नहीं पड़ी।

मुमुक्षु : पहले आपको भी कहाँ था...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं था। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि मोक्षमार्ग का संक्षिप्त स्वरूप यदि परमात्मा ने कहा हो, त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर ने कहा हो तो अन्दर में ज्ञायक आत्मा को साध। आहाहा! गजब बात है। पर की दया पालना और सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य पालन करना, वह कुछ नहीं। वह तो सब क्रियाकाण्ड राग है। आहाहा! भगवान अन्दर विराजता है, चैतन्य नाथ सनाथ स्वरूप स्वयं है। आहाहा! परन्तु भगवान तू, हों! दूसरा भगवान नहीं।

यहाँ तो भगवान ही है त्रिकाल। यह वस्तु कृतकृत्य ही है। परिपूर्ण और भरपूर भगवानस्वभाव से भरपूर है। अरे रे! कैसे जँचे इसे? पामर के गज छोटे और परमात्मा के माप के गज बड़े। आहाहा! ऐसा है। अन्दर में, अन्दर में अर्थात् एक तो बाह्य में नहीं और अन्दर में भी पर्याय नहीं। ज्ञायक त्रिकाली भगवान परमानन्द का नाथ प्रभु है, उसे साध। आहाहा! उसे साधक का ध्येय बनाकर साध, बहुत संक्षिप्त। आहाहा! यह संक्षेप कहा जा चुका है। विस्तार करे तो क्या हो। विशेष बात करेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण-१०, गुरुवार, दिनाङ्क २६-१०-१९७८
वचनामृत-३४५ से ३४८ प्रवचन-१३१

३४५, मोक्षमार्ग का स्वरूप संक्षेप में कहें तो... मोक्ष अर्थात् परम अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति, पूर्ण गुण की (प्राप्ति) । जितनी शक्तियाँ हैं, उनकी पूर्ण पर्याय में प्राप्ति, उसका नाम मोक्ष है । उसका मार्ग । उस रास्ते में जाने से वह प्राप्त होता है, वह रास्ता । उसे यहाँ मार्ग कहते हैं । उसका स्वरूप । **मोक्षमार्ग का स्वरूप संक्षेप में कहें तो ' अंतर में ज्ञायक आत्मा को साध । '** आहाहा ! उसे निमित्त पर भी दृष्टि की जरूरत नहीं, राग पर दृष्टि की जरूरत नहीं, पर्याय ऊपर की जरूरत नहीं । वह ज्ञायक जो अनन्त गुण का एकरूप भगवान् द्रव्यस्वभाव, जिसे छठी गाथा में ज्ञायक कहा न ? ग्यारह में जिसे भूतार्थ कहा । वह ज्ञायक जो स्वरूप, द्रव्यस्वरूप, उसे साध । आहाहा ! अर्थात् ? द्रव्यस्वरूप है, उसमें दृष्टि को स्थापित कर । मैं तो परिपूर्ण कृतकृत्य द्रव्य हूँ, ऐसी दृष्टि का विषय उस दृष्टि को वहाँ रोक । आहाहा ! और वह ज्ञान, ज्ञायकस्वरूप जो भगवान्, उसका ज्ञान । पठन-बठन का ज्ञान, वह कोई ज्ञान नहीं । आहाहा ! शास्त्र के पठन का जो ज्ञान है, वह कोई ज्ञान नहीं । वह तो परलक्ष्यी उघाड़ का अभिमान हो जाए इसे कि मैं कुछ जानता हूँ, मुझे आता है । आहाहा ! वहाँ यह रुक गया है ।

यहाँ कहते हैं कि ज्ञायकस्वरूप को साध । जो ज्ञानस्वरूपी पुंज प्रभु, उसे साधन बनाकर पर्याय में उसे साध । आहाहा ! इस अपेक्षा से साधन करना । पर्याय साधन और वह साध्य । परन्तु पर्याय के ऊपर जब तक दृष्टि है, तब तक वह ज्ञायक को साध नहीं सकता । आहाहा ! चाहे तो शास्त्र का ज्ञान हो या देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग हो, चाहे तो नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा का विकल्प (हो), वह कोई ज्ञायक का साधन नहीं है । आहाहा !

बारह अंग में कहना हो तो यह कहना है । लाख, करोड़, अरब श्लोक हो, यह भगवान् ज्ञानमूर्ति प्रभु यह एक द्रव्यस्वभाव का साधन, उसे दृष्टि में लेकर साधे, वह दृष्टि,

ज्ञान और चारित्र वह मोक्ष का मार्ग है परन्तु वह ज्ञायक को साधने से प्रगट होता है। पर्याय को साधने से, राग को साधने से, वह प्रगट नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात भारी महँगी पड़े, भाई!

ज्ञायक भगवान आत्मा, भगवानस्वरूप कृतकृत्य ध्रुव को साध। उस ज्ञायक को ज्ञायक का स्वीकार कर। स्वीकार करनेवाली पर्याय है परन्तु पर्याय स्वीकार करती है कि मैं यह त्रिकाली ज्ञायक है, वह मैं हूँ। आहाहा! ऐसा लोगों को सूक्ष्म पड़ता है। मार्ग तो यह है, इसके बिना कोई इसका रास्ता नहीं है। आहाहा! यह भगवान परिपूर्ण कृतकृत्य भगवत्स्वरूप, ऐसा जो ज्ञायक भगवान आत्मा, उसे साध। आहाहा! अर्थात्? दृष्टि में उसे ध्येय बनाकर.. परन्तु दृष्टि और दृष्टि का ध्येय, यह तो समझण कहना, कैसे कहना? समझाना किस प्रकार? बाकी तो दृष्टि द्रव्य में अभेद होने पर... अभेद अर्थात्? द्रव्य-सन्मुख झुकने पर, यह बात है। अभेद करने से कहीं द्रव्य में पर्याय अभेद नहीं हो जाती। यह वस्तु जो है, उसमें पर्याय को उस ओर झुका, परन्तु पर्याय पर लक्ष्य रखकर झुकाये तो यह इसने झुकाया नहीं है। आहाहा!

पर्याय में खड़ा रहकर यह द्रव्य है, ऐसा साधे तो नहीं साधा जा सकता। आहाहा! जहाँ भगवान ध्रुव स्तम्भ है। आहाहा! वहाँ ही दृष्टि को स्थापित कर। ज्ञान की पर्याय को वहाँ अहंपना 'यह मैं हूँ' ऐसा स्थापित कर। यह मैं हूँ, ऐसे विकल्प की यहाँ बात नहीं है। आहाहा! निर्विकल्परूप से पर्याय को वहाँ स्थापित कर। ऐसी बातें हैं। पर्याय के ऊपर की दृष्टि तो अनादि काल की है, वह कहीं नयी बात नहीं है। पर्याय में ग्यारह अंग का ज्ञान हो, वह भी पर्याय है, उसके ऊपर की दृष्टि वह तो अनादि की है। आहाहा!

पर्याय में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प आवे और उस विकल्प को जो ज्ञान पर्याय जानती है, उस पर्याय के ऊपर भी यहाँ लक्ष्य नहीं है। आहाहा! भगवान ज्ञायक-स्वरूप प्रभु में दृष्टि स्थापित करने पर... भाषा क्या हो? ज्ञायक आत्मा को साध। अब ज्ञायक आत्मा और उसे साधना, परन्तु कथन क्या आवे? आहाहा! यह ज्ञायक है, इसलिए साधता हूँ, ऐसा भी वहाँ कहाँ विकल्प है? आहाहा! मोक्षमार्ग - यह ज्ञायकस्वरूप है, मोक्षस्वरूप ही है, उसके अवलम्बन से मोक्षमार्ग होता है। मोक्षस्वरूप है, उसके अवलम्बन से मोक्ष का मार्ग होता है, उसने ज्ञायक को साधा—ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

यह थोड़े में बहुत कहा जा चुका। आहाहा! विस्तार किया जाय तो अनंत रहस्य निकले,... क्योंकि प्रभु में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. भाव-गुण भरे हैं। उनका विस्तार किया जाए तो, भेद से कथन किया जाए तो पार न आवे। आहाहा! विस्तार किया जावे तो अनन्त रहस्य निकलते हैं। क्यों? अनन्त रहस्य क्यों निकलते हैं? **क्योंकि वस्तु में अनंत भाव भरे हैं।** आहाहा! भगवान आत्मा में, जिसे ज्ञायक कहते हैं, ध्रुव कहते हैं, सामान्य कहते हैं क्योंकि पर्याय है, वह तो विशेष है। आहाहा! उस सामान्य में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. जिसकी हद नहीं, जिसके अनन्त गुण का अन्तिम छोर नहीं है, ऐसे अनन्त गुण से भरपूर भगवान, उसे खिलावट करके समझाया जाए तो अनन्त प्रकार पड़ जाते हैं। समझ में आया? आहाहा!

अनन्त रहस्य निकले, **क्योंकि वस्तु में अनंत भाव भरे हैं।** आहाहा! **सर्वार्थसिद्धि के देव...** सर्वार्थसिद्धि के देव, जिनकी तेतीस सागर की आयु है। एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम काल जाता है। एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष होते हैं। आहाहा! ऐसे समकिति ज्ञानी (जिनकी) ध्रुव पर दृष्टि है। आहाहा! ऐसे जीव भी जितने काल तक धर्मचर्चा,... करे, उतना काल। आहाहा! तेतीस सागर तक। एक-एक मिनट में चर्चा करते तेतीस सागर तक चर्चा करें तो भी उन अनन्त गुणों का पार चर्चा में नहीं आता। आहाहा! ओहोहो! क्या भगवान गम्भीर! आहाहा! उसकी गम्भीर अनन्त शक्तियाँ प्रभु की, उन्हें साध। संक्षेप में तो यह है। विस्तार करने जाए तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुणों की व्याख्या होने पर तो अनन्त रहस्य आवें। आहाहा!

जिनेन्द्रस्तुति इत्यादि करते रहते हैं। तेतीस सागर तक, आहाहा! जिन्हें खाना नहीं, पीना नहीं, स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, धन्धा नहीं, दुकान चलाना नहीं। आहाहा! आहार के लिए नहीं चूल्हा करना। आहाहा! हजारों वर्ष में आहार के लिए कण्ठ में से अमृत झरे, ऐसा निवृत्तिमय जिनका जीवन, वे तैतीस सागर तक यह चर्चा करे, दूसरा तो है नहीं वहाँ। स्त्री नहीं, कुटुम्ब नहीं, धन्धा नहीं, आहार पकाना नहीं, आहार की सामग्री को मिलाना नहीं। आहाहा! ऐसे जीव तैतीस सागर तक धर्म की चर्चा करें तो पार आवे ऐसा नहीं है। आहाहा!

इत्यादि करते रहते हैं। उस सबका संक्षेप यह है कि—‘शुभाशुभ भावों से न्यारा...’ क्योंकि वे सब शुभभाव हैं। तैतीस सागर तक। आहाहा! भगवान ने कहा हुआ

आत्मा और उसके संग्रह में, उसके गर्भ में रहे हुए अनन्त गुण, उन अनन्त गुणों की चर्चा शुभभाव से करे, तथापि उससे भगवान न्यारा है अन्दर। आहाहा! न्यारा एक ज्ञायक का आश्रय करना,... ऐसे चर्चा के शुभभाव तैतीस सागर तक हैं, तथापि उसका-उस विकल्प का आश्रय नहीं करना, ऐसा कहते हैं। है भले गुणी के गुण की विशेषता के चर्चा के प्रकार परन्तु वे सब भेद हैं। वे सब शुभभाव का प्रकार है। आहाहा!

एक ज्ञायक का आश्रय करना,... भगवान एकरूप ज्ञायक है, उसका अवलम्बन लेना, ऐसा कहा जाता है। बाकी पर्याय को वास्तव में तो द्रव्य का अवलम्बन भी नहीं है। आहाहा! भाषा में क्या कहा जाए इसे? इसे ऐसे झुकाना और इसका अवलम्बन लेना, इसका आश्रय करना, इसे-ध्रुव को ग्रहण करना, ध्रुव को पकड़ना, ऐसी भाषा अनेक प्रकार से आवे परन्तु वस्तु तो स्थिति ऐसी है कि ऐसे भेदभाव के विकल्प से भी न्यारा एक ज्ञायक का आश्रय करना,... आहाहा!

ज्ञायकरूप परिणति करनी... परिणति करना, वह है। वह परिणति करना, वह भी कोई ज्ञायक द्रव्य करता नहीं है। ज्ञायक के लक्ष्य से वह परिणति करना, ऐसा कहने में आता है। परिणति होती है। द्रव्य वह परिणति नहीं करता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। परन्तु वह परिणति वहाँ होती है, उसे 'परिणति करना'—ऐसा उपदेश में आता है। आहाहा! पश्चात् भी परिणति करना है द्रव्य को—ऐसा नहीं है। यह परिणति तो उसका स्वभाव है, वह होगी ही। आहाहा! परिणति करूँ—यह भी अब वहाँ नहीं है। आहाहा! ऐसी वस्तु लोगों को बहुत महँगी पड़ती है। आहाहा!

ज्ञायकरूप परिणति करनी। ये सब भाव चाहे जितने विचार में, स्वाध्याय में ले परन्तु वह सब शुभभाव है। आहाहा! उसका हेतु उससे रहित ज्ञायकस्वभाव की सन्मुखता होने पर अथवा ज्ञायकपना, वह मैं हूँ, उतना वह मैं हूँ—ऐसा होने पर परिणति होती है। उसे परिणति करना, वह सार है। आहाहा! ऐसा है। ३४५ हुआ। बहुत सार है। ३४५ में। आहाहा!

बारह अंग में भी अनुभूति करने को कहा है न? परन्तु अनुभूति किसकी? द्रव्य की। अनुभूति है तो पर्याय। आहाहा! वह अनुभूति करूँ, ऐसा भी नहीं, परन्तु द्रव्य की दृष्टि से अनुभूति हो जाती है। आहाहा! कितने ही ऐसा कहते हैं कि सोनगढ़वालों ने समकित को बहुत सूक्ष्म कर डाला है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : महँगा कर डाला ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे ! बापू ! यह तो वस्तु ऐसी है न, प्रभु ! तू ऐसा कहता है तो ऐसी लज्जा हो ऐसा है, प्रभु ! आहाहा ! प्रभु स्वयं पूर्णानन्द से भरपूर भगवान है । ज्ञायक की परिणति जो होती है, वह भी जिसमें नहीं । आहाहा ! परन्तु ज्ञायक की दृष्टि के ध्येय से जो परिणमन होता है, उसे परिणति-परिणमन करना, परिणति (करनी), ऐसा कहा जाता है । आहाहा !

एक बार कहा था कि आत्मा में एक कर्तृत्व नाम का गुण है । यह भाव कहे न अनन्त ? कर्तृत्व नाम का एक गुण है, तो उस गुण का कार्य ? इस द्रव्य को पकड़ा तो उस गुण का कार्य निर्मल वीतरागी पर्यायभाव, उसका भाव या गुण या द्रव्य अभेद से कहा जाता है, कहा जाता है । यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि के परिणाम भाव हैं, उनका भावक उसमें एक भाव गुण है और कर्तृत्व नाम का गुण है, वह उसका भावक है । वह भावक होता है, ऐसा । यह तो ज्ञायक की दृष्टि होने पर इस गुण का भावकरूप से भाव उसका होता है । आहाहा ! समझ में आया ?

एक भाव नाम का उसमें गुण है कि इससे उसकी पर्याय भावरूप होने की वह होती ही है, उसे करूँ तो होती है, ऐसा वहाँ नहीं है । आहाहा ! ऐसी बातें । और कर्तृत्व नाम का उसमें गुण है कि जिससे ज्ञायक की जो सम्यग्दर्शन परिणति है, वह भाव है और उस भाव का भावक वह गुण है, उस गुण के धारक द्रव्य को दृष्टि में लिया, इसलिए परिणति भावकरूप हुए बिना नहीं रहेगी, ऐसा है ।

पूज्य गुरुदेव ने तो सारे भारत के जीवों को जागृत किया है । सैंकड़ों वर्ष में जो स्पष्टता नहीं हुई थी, इतनी अधिक मोक्षमार्ग की स्पष्टता की है । छोटे-छोटे बालक भी समझ सकें, ऐसी भाषा में मोक्षमार्ग को खोला है । अद्भुत प्रताप है । अभी तो लाभ लेने का काल है ॥३४६ ॥

३४६, यहाँ तो नाम लिया था । गुरुदेव ने तो सारे भारत के जीवों को जागृत किया है । यहाँ तो जागृत किया (कहा है परन्तु) बात ऐसी है । आहाहा ! सैंकड़ों वर्ष में

जो स्पष्टता नहीं हुई थी... वह बेचारा कहता है, भव्यसागर। यहाँ का साहित्य पढ़ा कि दो सौ वर्ष में ऐसी स्पष्टता नहीं हुई थी, ऐसा बेचारा कहता है। उसे तो यहाँ आना है परन्तु यहाँ हमारे अधिक रहने का नहीं है। हाँ भी किस प्रकार करना और ना भी किस प्रकार करना? बुलाते तो यहाँ है नहीं बुलाने का। यहाँ तो यह कहते हैं वे 'जिंजवा' और 'जिंजवा' को क्या कहते हैं? जिंजवा और इस बड़ोदरा को वह सब नजदीक है।

मुमुक्षु : पालेज....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है ही। परन्तु सब अब यहाँ तो यहीं रहने का है नहीं, इस हिसाब से होवे तो। तो अब आकर यहाँ करे क्या? साथ में तो रह सके नहीं वहाँ।

मुमुक्षु : बाद में तो वहाँ से तो वापस यहाँ आया जाए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कब कितने समय में आया जाए? महीना-डेढ़ महीना, दो महीना हो, कितना वह क्या खबर पड़े? जिंजवा है, बड़ोदरा है, पालेज है, बाद में और यहाँ आया जाए नहीं, फिर राजकोट या मुम्बई क्या हो, यह किसे (खबर है)? उस काल में होना होगा, वह होगा। आहाहा! उस काल में वह होनेवाली पर्याय होगी, उसके क्रमबद्ध में होगी, योग्यता से होगी। यह किसे है? कि जिसने ज्ञायक को दृष्टि में लिया है, उसके लिए यह है। आहाहा!

क्रमबद्ध कहो, योग्यता से होती है, उस समय उस योग्यता से। आहाहा! यह किसके लिए? जिसे ज्ञायक के अनन्त गुण भाव जो कर्तृत्व आदि पड़े हैं, उससे जो ज्ञायक की दृष्टि हुई है, उसे अब परिणमन करना, वह भी नहीं। वह होता है उसकी योग्यता के काल में उसके परिणाम। आहाहा! ज्ञान उन्हें जानता है। बहुत सूक्ष्म, भाई! परिणमन को भी द्रव्य तो करता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय तो परिणमन करे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय परिणमन करे, उसका काल है, इसलिए करे ऐसा। मैं करूँ तो (होती है) ऐसा नहीं। द्रव्य करता है, ऐसा नहीं परन्तु परिणमन करूँ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! दृष्टि पर्याय पर जाती है और परिणमन तो होता ही है, उसका स्वभाव है तो होता ही है वह। सूक्ष्म बात है, अन्तर कहाँ पड़ता है बड़ा? आहाहा!

छोटे-छोटे बालक भी समझ सकें... आहाहा! अब तो बालक भी प्रश्न करते हैं न कितने ही? 'करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख जो' लो! अपने हसमुखभाई का लड़का राजू है न? वह प्रश्न करता था, लो! लड़का अभी तो बारह वर्ष का। यह 'करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख' यह क्या? कहा अच्छा, बापू! प्रश्न तो अच्छा है... आहाहा! भगवान हैं न, बापू! अन्दर (भगवान है)। आहाहा! आत्मा भगवान विराजता है, आत्मा भगवानस्वरूप है। अरे! इसे क्यों सूझ नहीं पड़े? प्रभु! आहाहा! उसकी सम्हाल करने जाए और सूझ न पड़े, (ऐसा नहीं बनता)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, इतनी अधिक मोक्षमार्ग की स्पष्टता की है। छोटे-छोटे बालक भी समझ सकें ऐसी भाषा में मोक्षमार्ग को खोला है। अद्भुत प्रताप है। अभी तो लाभ लेने का काल है। ये बहिन के विनय के शब्द हैं। आहाहा!

मुझे कुछ नहीं चाहिए, एक शान्ति चाहिए, कहीं शान्ति दिखायी नहीं देती। विभाव में तो आकुलता ही है। अशुभ से ऊबकर शुभ में शुभ से थककर अशुभ में—ऐसे अनन्त-अनन्त काल बीत गया। अब तो मुझे बस एक शाश्वत शान्ति चाहिए।—इस प्रकार अनन्त में गहराई से भावना जागे और वस्तु का स्वरूप कैसा है उसकी पहिचान करे, प्रतीति करे, तो सच्ची शान्ति प्राप्त हुए बिना न रहे ॥३४७॥

३४७, मुझे कुछ नहीं चाहिए,... आहाहा! मुझे शास्त्र का ज्ञान भी नहीं चाहिए, आहाहा! मुझे राग भी नहीं चाहिए, मुझे कोई निमित्त प्राप्त करना, वह भी मुझे नहीं है। आहाहा! एक शान्ति चाहिए,... एक शान्ति चाहिए। कहीं शान्ति दिखायी नहीं देती। आहाहा! संयोग में दिखायी नहीं देती, राग में दिखायी नहीं देती, पर्याय में दिखायी नहीं देती। आहाहा! जहाँ शान्ति से भरपूर भगवान है, उस पर नजर पड़ती नहीं; इसलिए कहीं शान्ति दिखायी नहीं देती। आहाहा! वहाँ शान्ति का सागर भगवान है, शान्त.. शान्त.. अर्थात् अकषाय रस। आहाहा! अरे! इसे कहाँ मान और सम्मान। आहाहा! दुनिया हमको जाने और पहिचाने तो ठीक, यह सब वस्तु में कहाँ है? आहाहा!

सोगानी में एक आता है और मैं जानकर कहने जाऊँ कि मुझे यह है, ऐसी बात मुझमें नहीं है। आहाहा! आता है उसमें। आहाहा! दुनिया जाने या न जाने, मुझे क्या काम है? आहाहा! मेरी शान्ति चाहिए, वह मेरे द्रव्य में है ही। मेरी दृष्टि वहाँ पड़ी है, वहाँ से शान्ति मिलती है। आहाहा! उन्होंने दृष्टान्त नहीं दिया? जंगल में फूल हो, फूल। नवरंगभाई! पढ़ा है या नहीं?

मुमुक्षु : गुलाब के फूल का नाम

पूज्य गुरुदेवश्री : फूल हो, समुच्चय। वह सुगन्ध है, उसे कोई सूँघे तो ही सुगन्ध रहे? न सूँघे तो सुगन्ध चली जाएगी अन्दर से? आहाहा! इसी प्रकार जहाँ आत्मा का ज्ञान और दर्शन हुआ, उसे दूसरे जाने तो रहे? दूसरे उसे पहिचाने-स्वीकार करे तो रहे? आहाहा! वह तो सुगन्ध से भरपूर फूल है; इसी प्रकार भगवान अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति से भरपूर भगवान, वह भगवान ही है। उसे कोई जाने, इससे वहाँ शान्ति है? और शान्ति नहीं, ऐसा न जाने, इससे वहाँ शान्ति नहीं है-ऐसा है? आहाहा! समझ में आया?

कहीं शान्ति दिखायी नहीं देती। विभाव में तो आकुलता ही है। यह शुभ-अशुभभाव, इसमें तो आकुलता है। यह तो अपने सवरे आ गया। इनका दुःख में समावेश होता है। आहाहा! शुभभाव, अनाकुल आनन्द सुखरूप प्रभु से विरुद्ध दुःख में इनका समावेश होता है।

मुमुक्षु : यह तो पर्याय को दुःख नहीं होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायदृष्टि होवे तो दुःख। पर्याय स्वयं दुःखरूप नहीं है। द्रव्य का ज्ञान हुआ और पर्याय का ज्ञान करे, उसमें कुछ (दुःख नहीं है) परन्तु राग है, वह दुःखरूप है - ऐसा सवरे आया था न? यह शुभाशुभ दुःख में समावेश को प्राप्त होते हैं; इसलिए यह पुद्गल के विपाक से हुआ भाव... आहाहा! अजीब है। ऐसी बात। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, शान्ति कहीं नहीं है। इन पुण्य के परिणाम में भी शान्ति नहीं है। आहाहा!

अशुभ से ऊबकर शुभ में आवे... विषय-कषाय, व्यापार-धन्धे का भाव, वह सब अशुभभाव है। उसमें से ऊबकर... आहाहा! शुभ में (आवे)। श्रीमद् एक बार कहते हैं, अरे! ऐसे संयोग आते हैं (कि) धड़ के ऊपर सिर न रहे, ऐसा होता है। ऐई! ऐसी उपाधि संयोग। आहाहा! अस्थिरता का भाव है। आहाहा!

कहते हैं, इस अशुभ से ऊबकर शुभ में, शुभ से थककर अशुभ में—ऐसे अनन्त-अनन्त काल बीत गया। प्रभु! आहाहा! यह कर्मचक्र तो अनन्त बार हो गया है। आहाहा! अशुभभाव से थका, शुभ में आया; यहाँ से थका तो अशुभ में आया परन्तु थका तो अन्तर में गया, ऐसा नहीं। आहाहा!

ऐसे अनन्त-अनन्त काल बीत गया। अर्थात् शुभाशुभभाव को बदलते-बदलते शुभ में से अशुभ, अशुभ में से शुभ, यह तो कर्मचक्र अनन्त बार किया है। आहाहा! अब तो मुझे बस एक शाश्वत शान्ति चाहिए। ऐसा जिसे अन्तर में, दृष्टि में-अभिप्राय में जिससे भासित हो। आहाहा! दुनिया मानो, न मानो; दुनिया में गिनती में मेरी गिनती में गिना जाए या न गिना जाए, इस बात का मुझे काम नहीं है। आहाहा! मुझे तो बस एक शाश्वत शान्ति चाहिए। शाश्वत शान्ति। आहाहा!

वैसे तो शाश्वत् शान्ति तो ध्रुव आत्मा में है परन्तु वह चाहिए है, वह तो पर्याय में अन्दर प्रगट करना चाहिए। आहाहा! बस, एक शाश्वत् शान्ति (चाहिए)। अर्थात्? शुभाशुभभाव तो अशान्ति है, वहाँ विश्राम नहीं है, वह तो थकान है। आहाहा! अब मुझे तो एक शाश्वत् जो वस्तु है शाश्वत् शान्ति आत्मा, वह चाहिए। आहाहा! शाश्वत् शान्ति चाहिए। इस शाश्वत् शान्ति का अर्थ द्रव्यस्वभाव जो शान्तिस्वभाव से भरपूर है। शाश्वत् तो वह है न? पर्याय में शान्ति आवे, वह कहीं शाश्वत् नहीं है परन्तु शाश्वत् शान्ति से भरपूर, उसमें जहाँ इसका आदर होने पर पर्याय में शान्ति आती है। आहाहा! अब यह ऐसी बातें हैं।

अरे रे! जिन्दगी चली जाती है और ऐसा का ऐसा पाप में चला जाता है। आहाहा! और बहुत काल तो पाप में जाता है, २२-२२ घण्टे। एक-दो घण्टे कदाचित् वाँचन (करे) और सुने तो वह भी इसे कैसा सुनने को मिलता है! आहाहा! और अच्छा सुनने को मिले तो इतना पुण्य थोड़ा हो। आहाहा! यह उस अशुभ में से शुभ में आया, ऐसा परन्तु इससे वहाँ कहीं शान्ति नहीं है। आहाहा! वह भी अशान्ति है। आहाहा!

मुझे बस एक शाश्वत शान्ति चाहिए।—इस प्रकार अनन्त में गहराई से भावना जागे... यह पर्याय है। ऐसी अन्दर में गहराई से (अर्थात्) ध्रुव जहाँ है शान्ति गहरी, पर्याय के तल में नीचे गहरा पड़ा है। पर्याय के तल में अन्दर में पड़ा है, वहाँ भावना जागृत हो। अन्दर में गहराई से भावना जागृत हो, एकाग्रता जागे। त्रिकाली ज्ञायक भाव की भावना।

आहाहा! वह तो पर्याय है और वस्तु का स्वरूप कैसा है, उसकी पहिचान करे,... आहाहा! भगवान आत्मा में वस्तु है, उसमें अनन्त शान्ति आदि भरी हुई है। वस्तु है न? वस्तु है तो बसे हुए अनन्त गुण हैं। ऐसे वह शान्ति-आनन्द आदि से भरपूर तत्त्व है। इसमें उसकी भावना करने से... भावना अर्थात् विकल्प, ऐसा नहीं।

आता है न? 'आत्मभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान'—श्रीमद् में आता है परन्तु यह भावना अर्थात् अन्दर स्वरूप है, उसे पहिचानकर एकाग्र होना, वह भावना है। आहाहा! ऐसे रट रखे, (वह भावना नहीं)। आहाहा! एक आता है न, भाई! जयसेनाचार्य की टीका में श्रावक की बात (आती है) समकिति श्रावक है, अभी यह कहते हैं न लोग, कि अभी तो शुभयोग ही है। वहाँ तो ऐसा पाठ लिया है कि समकिति श्रावक है, वह जब सामायिक में बैठा हो, तब उसे आत्मभाव शुद्ध उपयोगरूपी भावना आती है। वहाँ भावना शब्द है, जयसेनाचार्य की टीका में समयसार (में है)। आहाहा! सामायिक तो उसे होती है। अभी भान भी नहीं और सामायिक.. सामायिक.. करके बैठे। उसे-अज्ञानी को सामायिक कैसी?

जिसे ज्ञायक समता का पिण्ड वीतरागस्वभावी दृष्टि में आया नहीं तो उसमें एकाग्रतारूप सामायिक कहाँ से आयी? सामायिक तो समता का लाभ, वीतरागता का लाभ है। उसे सामायिक है। वीतरागता का लाभ कब होगा?—कि वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा को उसने दृष्टि में पकड़ा हो, वहाँ स्थापित किया हो तो वहाँ स्थिरता होने पर उसे समता-वीतरागता आती है। आहाहा! यह तो सामायिक की, पाँच की और दस की... धूल में भी सामायिक नहीं। वहाँ अज्ञान है। ऐई! छोटाभाई! ऐसा काम है।

स्थानकवासी में तो सामायिक की और प्रौषध किये और प्रतिक्रमण किये। कहाँ थी सामायिक? आहाहा! अभी दृष्टि ही मिथ्यात्व है। आहाहा! सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भी अभी श्रद्धा जहाँ नहीं, आहाहा! वहाँ सामायिक कहाँ से आयी? राग की क्रिया का भाव, उसे तूने सामायिक माना, मिथ्यात्व से। आहाहा! प्रौषध लो न, यह प्रौषध कहते हैं न? पोसना, सबेरे उठकर जल्दी प्रौषध करे। हमारे (वीरजीभाई) पिता थे न? क्या नाम? ताराचन्दभाई। हम जब पहले (संवत्) १९८२ में गये तो आवे प्रौषध करने। जल्दी उठे, जल्दी आवे, परन्तु उस समय ऐसा कहा कि भाई! जितने मन-वचन-काया के शुभभाव

हैं, वे तो पुण्य-बन्ध का कारण है। १९८२ की बात है यह तो। कहा, देखो! तुम्हारा 'पुनातर' का किया हुआ ज्ञानसार।

मुमुक्षु : वे जामनगर के।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे जामनगर के कहा न। यह तुम्हारे पुनातर का किया हुआ, कहा। मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता से पुण्य बँधता है... ऐसा कहा। यह ख्याल नहीं उसे और तब वह इस क्रिया को भी धर्म माने और यह चलता सूत्र कहलाता। वह साधु को पढ़ावे, परन्तु नरम व्यक्ति। बापू! यह धर्म नहीं है। आहाहा! यह तो शुभभाव मन की सरलता का भाव शुभ होवे तो पुण्य बाँधे, नामकर्म बाँधे; धर्म-वर्म नहीं। फिर एकान्त में आये, कहा, महाराज! यह तो सब ऐसा होता है। होता है या नहीं होता, मार्ग तो यह है। फिर तो बेचारे वहाँ आये 'चेला' तीन कोस है और वहाँ रहने आये, सुनने के लिए आये। नरम व्यक्ति, परन्तु यह बात ही नहीं थी, वहाँ बेचारा क्या करे? आहाहा!

मुमुक्षु : यह बात आप सम्प्रदाय में करते, तब ऐसी स्पष्ट नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय तो धीरे-धीरे होवे न, तो भी तब कहा था कि भाई! यह मन, वचन और काया की सरलता... ऋजुपाक पाठ है, वह शुभभाव है, उससे नामकर्म बँधता है; धर्म नहीं। आहाहा! तब कहा था। उन्हें जरा कठिन लगा था, फिर अकेले एकान्त में आये। महाराज! इसमें आप बहुत कठोर (पढ़ते हो)। ये लोगों करते हैं, वह धर्म। धर्म-वर्म कहाँ था? कहा। यह प्रौषध किसे कहना? प्रौषध करने के लिए सवेरे में। प्रौषध तो जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसा जाना है, वह चना होता है, उसे पानी में डालो तो पुष्ट होता है; वैसे आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञायक है—ऐसा जिसने दृष्टि में, ज्ञान में जाना है, उसमें वह स्थिर हो वह प्रौषध है। वह उसने आत्मा का पोषण किया। ये तो बेचारे बाहर की क्रिया को मानते थे न! आहाहा! ऐसा पूरा सब उल्टा ही चला है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि अनन्त में गहराई से भावना जागे और वस्तु का स्वरूप कैसा है, उसकी पहिचान करे,... आहाहा! यह चैतन्यस्वरूप, चैतन्यस्वभाव, ज्ञायकभाव, भूतार्थभाव, सत्यार्थभाव का ज्ञान करे, उसका ज्ञान करे। आहाहा! उसे वर्तमान ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर ज्ञान करे। आहाहा! है? प्रतीति करे,... पहिचान करे और प्रतीति करे, ऐसा कहा बाद में। ज्ञायक चैतन्य रसकन्द प्रभु आत्मा, ध्रुव ज्ञानस्वभाव का पिण्ड प्रभु

आत्मा प्रज्ञाब्रह्म—प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान, ब्रह्म अर्थात् आनन्द। वह त्रिकाली ध्रुव। ज्ञान और आनन्द का रूप उसका—प्रभु का स्वरूप है। आहाहा! उसे जाने और उसे उसमें उसकी प्रतीति करे, तो सच्ची शान्ति प्राप्त हुए बिना न रहे। पश्चात् उसमें स्थिर हो। जाने और प्रतीति करे तो भी शान्ति का अंश आवे। समझ में आया? आहाहा!

जिसमें पूर्ण शान्ति.. शान्ति.. शान्ति (भरी है), उसमें यदि एकाग्र हो तो शान्ति पर्याय में आवे ही। उसे पहिचाने और प्रतीति करे तो पर्याय में शान्ति का अंश तो आवे ही। प्रतीति और ज्ञान की पर्याय के साथ स्वरूपाचरण की शान्ति साथ में आती ही है। आहाहा! अब ऐसी सब बातें।

मुमुक्षु : यह तो निवृत्त हो तो कर सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निवृत्त ही है, आत्मा निवृत्तस्वरूप ही है। कभी पर्याय में आया नहीं, विकल्प में तो आवे ही कहाँ से? आहाहा! पर्याय में निवृत्ति तो परिग्रहरहित है—ऐसा लिया है, पुरुषार्थसिद्धिउपाय में। परिग्रह की ममतारहित ही उसकी परिणति है। यह वहाँ पुरुषार्थसिद्धिउपाय में लिया है। पाँच महाव्रत की जहाँ व्याख्या की है न? पाँचवाँ महाव्रत अपरिग्रह लिया है, वहाँ परिग्रहरहित ही उसकी परिणति है। निवृत्तस्वरूप है। परिणति की बात, हों! यह तो त्रिकाल की बात है। आहाहा! वहाँ तो पाँच महाव्रत का वर्णन करना है न? आहाहा! महाव्रत है, वह तो विकल्प है परन्तु निवृत्तस्वरूप ही पूर्णानन्द शुद्ध है, उसे जानकर, प्रतीति करके उसमें स्थिर होवे तो उसे अपरिग्रहभाव ही प्रगट होता है। आहाहा! समाधिशतक में तो यहाँ तक कहा, मुनि ऐसा कहते हैं कि अरे रे! उपदेश देने का विकल्प आया, उन्माद है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो चारित्र का उन्माद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह चारित्र के उन्माद की वहाँ बात है न! वहाँ दर्शन का उन्माद कहाँ है? आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित है, आनन्द और शान्ति भी है। आहाहा! परन्तु जहाँ विकल्प आया कि उपदेश दूँ। यह कहते हैं, उन्माद है। आहाहा! राग है, वह रोग है, दुःख है। आहाहा! जिसे उपदेश के राग में रस चढ़ गया, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! वहाँ तो उन्माद कहा है। तत्त्वार्थसूत्र के पहले अध्याय में उन्माद कहा है, वह दृष्टि का उन्माद है। तत्त्वार्थसूत्र के... पहले (अध्याय में)

उन्माद कहा है, वह मिथ्यात्व का उन्माद, वह मिथ्यात्व का उन्माद है। यह उन्माद चारित्र के दोष का उन्माद है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि हम उपदेश देते हैं, उसमें हमें लाभ होगा। दूसरे धर्म प्राप्त करेंगे... दूसरे प्राप्त करें, न प्राप्त करें, वे उनसे प्राप्त करेंगे। ऐसी बातें हैं। मैं दूसरे को मोक्ष कराऊँ... आता है न बन्ध अधिकार में? बन्ध अधिकार में। आहाहा! मोक्ष तो उसका वीतरागभाव करेगा तो उससे होगा। तू उसे मोक्ष करा दे? आहाहा! ऐसा कटाकटी का मार्ग है। आहाहा!

सच्ची शान्ति प्राप्त हुए बिना न रहे। अर्थात् क्या कहा? कि अकषाय वीतरागबिम्ब प्रभु आत्मा अर्थात् शान्ति-शाश्वत् शान्ति का सागर प्रभु है, उसे पहिचाने और प्रतीति करे, उसे शान्ति आये बिना नहीं रहती। आहाहा! उसे पहिचाने और प्रतीति बिना शान्ति मानता है, वह तो राग में शान्ति मानी है। आहाहा! आहाहा! समझ में आया? ३४७ हुआ।

रुचि की उग्रता में पुरुषार्थ सहज लगता है और रुचि की मन्दता में कठिन लगता है। रुचि मन्द हो जाने पर इधर-उधर लग जाय, तब कठिन लगता है और रुचि बढ़ने पर सरल लगता है। स्वयं प्रमाद करे तो दुर्गम होता है और स्वयं उग्र पुरुषार्थ करे तो प्राप्त हो जाता है। सर्वत्र अपना ही कारण है।
सुख का धाम आत्मा है, आश्चर्यकारी निधि आत्मा में है—इस प्रकार बारम्बार आत्मा की महिमा लाकर पुरुषार्थ उठाना और प्रमाद तोड़ना चाहिए ॥३४८॥

३४८, रुचि की उग्रता में पुरुषार्थ सहज लगता है... क्या कहते हैं? वस्तु जो परमानन्द प्रभु ज्ञायकभाव, उसे पोषाण में, रुचि में लिया। आहाहा! उसे पुरुषार्थ सहज लगता है। उसकी ओर का झुका हुआ सहज पुरुषार्थ है। आहाहा! पर्याय में मैं पुरुषार्थ करूँ और ऐसा करूँ और वैसा करूँ, वह तो राग का पुरुषार्थ है। रुचि की उग्रता से पूर्णानन्द का नाथ ज्ञायकभाव, वह भाव जिसे पोषाण में आया, रुचि में आया... आहाहा! उसे पुरुषार्थ सहज लगता है। उस ओर का झुकाव (सहज लगता है)। अनन्त-अनन्त

पुरुषार्थ का पिण्ड प्रभु, उसकी रुचिवाले को उस ओर का प्रयत्न तो अनन्तवें भाग पुरुषार्थ है। वह तो त्रिकाली पुरुषार्थ का पिण्ड ही है, वीर्य का पूर्ण पिण्ड है। आहाहा! उसके ओर का पुरुषार्थ जो है, वह तो सहज होता है।

जैसे पुरुषार्थ नाम का गुण सहज है। आहाहा! इसी प्रकार यह गुणी ज्ञान की त्रिकाली वस्तु। आहाहा! उसकी रुचि में, रुचि में तो अनन्त वीर्य है, उसकी रुचि हुई है। भगवान आत्मा में अनन्त पुरुषार्थ है। जैसे अनन्त ज्ञान है, अनन्त सुख है, वैसे अनन्त वीर्य, अनन्त बल है। आहाहा! और उस अनन्त बल का रूप, अनन्त ज्ञान में उसका रूप भी है। आहाहा! उस रुचि की उग्रता से पुरुषार्थ सहज लगता है। त्रिकाली सहज स्वभाव की रुचि की उग्रता से पुरुषार्थ सहज लगता है। मैं ऐसा करूँ और करूँ उसमें नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बड़ा अन्तर।

और रुचि की मन्दता में कठिन लगता है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ जहाँ पोसाया नहीं और मन्दरूप से जरा पोसाया हो, उसे पुरुषार्थ सहज नहीं होता, उसे पुरुषार्थ कठिन लगता है। आहाहा! **रुचि मन्द हो जाने पर इधर-उधर लग जाये...** वस्तु का पोषण रुचि जो है, वह मन्द पड़ने पर अथवा उस ओर न रहने से, हटने से... आहाहा! इधर-उधर लग जाता है। शुभ और अशुभभाव में इधर-उधर चढ़ जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसा किस प्रकार का (उपदेश)? भाई! मार्ग तो वीतराग का यह है। अनन्त तीर्थकरों ने यह कहा है। वह यह है। रुचिस्वरूप जो भगवान पूर्ण की रुचि जहाँ मन्द पड़ जाती है अर्थात् विरुद्ध हो जाती है तो फिर इधर-उधर चढ़ जाता है। या शुभभाव में और या अशुभभाव में, वाँचन में और अमुक में लाभ होगा, ऐसे चढ़ जाता है। आहाहा!

तब कठिन लगता है... इधर-उधर चढ़ गया हो, तब अन्तर का पुरुषार्थ कठिन लगता है। **और रुचि बढ़ने पर सरल लगता है।** आनन्द का नाथ भगवान ज्ञायक की रुचि जहाँ बढ़ी, उग्र हुई, तब वह बढ़ने पर सहज लगता है। आहाहा!

स्वयं प्रमाद करे तो दुर्गम होता है... प्रमाद करे तो दुर्गम होता है। **और स्वयं उग्र पुरुषार्थ करे तो प्राप्त हो जाता है।** आहाहा! **सर्वत्र अपना ही कारण है।** इसमें कोई कारण कर्म हटे तो हो और अमुक होवे तथा अमुक होवे, ऐसा है नहीं। विशेष कहा जाएगा...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण-११, शुक्रवार, दिनाङ्क २७-१०-१९७८
वचनामृत-३४८ से ३५० प्रवचन-१३२

(वचनामृत) ३४८, अन्तिम पेराग्राफ है। है न? सुख का धाम आत्मा है,... है? ३४८ का एक पेराग्राफ हो गया है। भाई! हिन्दी है, हिन्दी? आहाहा! सुख का धाम प्रभु आत्मा है; उसके अतिरिक्त कहीं सुख नहीं है। नहीं संयोग में सुख; नहीं रागादि, दया, दान के परिणाम में सुख; नहीं एक समय की पर्याय में सुख। क्योंकि अनादि की अज्ञान पर्याय है। आहाहा! जिसे सुख चाहिए हो अर्थात् धर्म चाहिए हो; वह तो आत्मा सुखधाम है, वहाँ उसे नजर करनी पड़ेगी। आहाहा! ऐसी बात है। यह तुम्हारे पैसा-फैसा में सुख नहीं है, ऐसा कहा। भटक मरता है जहाँ और तहाँ, अमेरिका और अमुक। आहाहा! इसे प्रतिकूल हो गया था... ऐसा सुना था।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा.... आहाहा! जिसे सुख चाहिए हो अर्थात् जिसे दुःख का नाश करना हो, अर्थात् जिसे परिभ्रमण का कारण दुःख है, अज्ञान है, कषायभाव है, उसका नाश करना, यह तो नास्ति से बात है; परन्तु जिसे सुख चाहिए हो, आनन्द चाहिए हो, शान्ति चाहिए हो; अनन्त काल में एक समय भी जिसने शान्ति और सुख को प्राप्त नहीं किया। अनन्त बार दिगम्बर जैन साधु हुआ, पंच महाव्रत (पालन किये), 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' परन्तु वह तो पाप-परिणाम दुःखरूप। पंच महाव्रत के, अट्टाईस मूलगुण के दुःखरूप परिणाम हैं। उसमें आया है या नहीं?

**मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ;
पै निज आतम ज्ञान विना, सुख लेश न पायौ।**

आहाहा! आत्मा में आनन्द और सुख भरा है। सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! वह सुख का धाम है। श्रीमद् में भी आता है - 'स्वयं ज्योति सुखधाम।' श्रीमद् का आधार

सोगानी में आता है, ऐसा कि—‘शुद्धबुद्ध चैतन्यघन स्वयं, ज्योति सुखधाम, बीजुं कहीए केटलु कर विचार तो पाम।’ आहाहा! नहीं सुख पैसे में; नहीं सुख इज्जत में; नहीं सुख स्त्री के विषय में; वहाँ सर्वत्र दुःख है। आहाहा! नहीं सुख पंच महाव्रत के परिणाम में। ऐसा है। उसमें सब दुःख है, कहते हैं, प्रभु! आहाहा!

सुख का स्थान, सुख का धाम, सुख का ठिकाना... आहाहा! यह आत्मा है। आश्चर्यकारी निधि आत्मा में है... आहाहा! है? आत्मा में आश्चर्यकारी निधि है, प्रभु! तूने तुझे देखा नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय के समीप में पूरा आत्मतत्त्व पड़ा है। राग तो भिन्न रहा, परन्तु एक समय की जो पर्याय है, वह वर्तमान प्रगट अंश (है), उसके समीप में, अन्तर में आत्मतत्त्व है, वह सुख का धाम है। आहाहा! वह स्वयं ज्योति सुखधाम। वह सुख की निधि आत्मा में है। आश्चर्यकारी निधि भगवान आत्मा में है। आश्चर्यकारी! आहाहा! जिसमें एकाग्र होने पर चैतन्यतत्त्व जो आनन्दस्वरूप प्रभु है, उसके सन्मुख होकर एकाग्र होने पर, जैसे बिजली का करंट लगे, वैसे आनन्द की झनझनाहट अन्दर से आती है। समझ में आया? अर र! ऐसी बातें। बेचारे लोगों को (सत्य) मिला नहीं, क्या करे?

आश्चर्यकारी निधि... दूसरा आश्चर्य तुझे लगता है कि यह शरीर रूपवान और पैसा पच्चीस करोड़ और धूल करोड़, उसे आश्चर्यकारी नहीं कहा, भाई! वे तो दुःखकारी-दुःख के निमित्त हैं। आहाहा! पुण्य के परिणाम भी आश्चर्यकारी नहीं हैं। भगवान आत्मा की निधि आश्चर्यकारी निधि है-भण्डार... आहाहा! वह तो महानिधान है। अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना है, अतीन्द्रिय वीतरागस्वभाव की खान है। आहाहा!

इस प्रकार बारम्बार आत्मा की महिमा लाकर... ऐसे बारम्बार आत्मा के स्वभाव की महिमा अन्तर में लाकर पुरुषार्थ उठाना और प्रमाद तोड़ना चाहिए। यह बात है, भाई! अन्तर में भगवान जहाँ निधान, अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर उछलता है। आहाहा! राग की एकताबुद्धि में वह इसे सूझता नहीं है अथवा एक समय की पर्याय में प्रेम के कारण, उसकी आड़ में निधान भगवान इसे नजर में नहीं पड़ता। आहाहा! ऐसा कठिन लगे।

मुमुक्षु : दर्द भी कठोर है तो इलाज भी कठोर ही होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..! आहा..! यह वस्तु ही है। विरेचन नहीं। यह तो सीधा

सत् महासत्, महा अस्तित्वरूप, आनन्दरूप प्रभु-यही वस्तु है। उसकी अन्तर में दृष्टि करके स्वीकार करना, तब इसे दशा में आनन्द की झलक आवे, वह सुखी है; बाकी सब पैसेवाले, धूलवाले तथा राजा, सेठ और देव, वे सब बेचारे दुःखी हैं। ऐई! चिमनभाई! बेचारे होंगे सब? शास्त्र में तो भगवान ने ऐसा कहा है, वे वरांका हैं। वरांका अर्थात् भिखारी है। माँगते हैं कि यह लाओ, यह लाओ, यह लाओ, पैसे लाओ, स्त्री लाओ, इज्जत लाओ, हमारी कोई कीमत - कोई माने, वह लाओ। कोई हमें बढ़ा ठहरावे, ऐसा लाओ। भिखारी है। ऐसी बातें हैं। गोदिकाजी! आहाहा!

तेरा नाथ गोद में विराजता है, अन्दर आनन्दस्वरूप प्रभु। एक समय में पूर्ण आनन्द से भरपूर, अतीन्द्रिय सुख का स्थान-धाम, उसमें पके तो सुख पकता है। उसमें पके तो दुःख पके - ऐसा वह आत्मा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। अरे रे! क्या कहें?

महिमा लाकर पुरुषार्थ उठाना... अन्तर में वीर्य, 'वी'-विशेष 'र' अर्थात् प्रेरना, ऐसे पुरुषार्थ को अन्दर में प्रेरना। आहाहा! यह कहीं साधारण बात नहीं है। यह भाषा से कुछ पार पड़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! जिसकी पर्याय में वी, विशेष र -प्रेरना इर्य स्वरूप शुद्धानन्द प्रभु में वीर्य को झुकाना और प्रमाद तोड़ना। तोड़ना, यह तो नास्ति से, परन्तु यह होता है तो प्रमाद टूट जाता है। आहाहा! ऐसा है। अब अभी वह श्रुतसागर तो ऐसा कहते हैं, अभी तो पंचम काल में शुभयोग ही होता है। अरे रे! प्रभु! प्रभु तू क्या कहता है यह? भाई!

मुमुक्षु : अभी अर्थात् पंचम काल में?

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल (कहा है)। अभी ऐसा नहीं कहा। पंचम काल में शुभयोग ही होता है, अरे रे! प्रभु!

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्यदेव को भी नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुन्दकुन्दाचार्य (ऐसा नहीं कहा परन्तु) पंचम काल में शुभयोग ही होता है, बस! एक ही बात दी है। अर रर! तुमने पढ़ा नहीं, भाई! जैन गजट या उसमें कहीं है। अरे रे! यह (मुनि) जैसे ऐसा कहें? अरे रे! प्रभु! लज्जा आवे ऐसा है। आहाहा!

आनन्द का धाम प्रभु उस शुभयोग में मिलता होगा? आहाहा! वह तो अन्दर में

परिणाम शुद्ध होकर अन्दर में एकाग्र होता है। आहाहा! तब उसे आत्मा की प्राप्ति होती है। वास्तव में तो उस ओर का ध्यान जमता है। आहाहा!

द्रव्यसंग्रह में कहा है न? ४७ गाथा, ४ और ७, 'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।' ४७ गाथा है। आहाहा! 'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।' दो प्रकार का जो मोक्षमार्ग है, वह ध्यान में प्राप्त होता है। यह क्या कहते हैं यह? आहाहा! भगवान जो आनन्द का धाम ज्ञायकस्वभाव, उसमें उसकी धुन-एकाग्रता जमे, वह तो ध्यान है। उसमें अन्तर के स्वरूप में एकाग्रता का ध्यान (होवे), उसमें दोनों मोक्षमार्ग होते हैं। अर्थात्? जितना स्वभाव के आश्रय से निर्मलता प्रगट हुई, वह तो निश्चयमोक्षमार्ग और बाकी ध्यान में भी राग शेष रह गया, उसे उपचार से व्यवहारमार्ग व्यवहार से कहने में आया। है नहीं। आहाहा! यह कोई पठन से प्राप्त हो या शास्त्र के ज्ञान से प्राप्त हो, ऐसी यह चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

शास्त्र का ज्ञान तो बहिर्लक्षी क्षयोपशम है और जहाँ दृष्टि ही वहाँ है, उसे तो जैसे-जैसे क्षयोपशम बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अहंपना-अभिमान भी बढ़ता जाता है क्योंकि इस ओर तो है नहीं। कठिन बात हैं, प्रभु! आहाहा! जहाँ उस शास्त्र के ज्ञान का क्षयोपशम है, वहाँ अहंपना स्थापित किया है। यहाँ अहं चिदानन्द (आत्मा में नहीं तो क्षयोपशम पर्याय में अहंपना स्थापित किया हुआ है)। बात तो ऐसी है, प्रभु! आहाहा! उसने भगवान को राग की एकता में छिपा दिया है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा... अरे! आठ वर्ष की बालिका भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है। वह अन्तर ज्ञायकस्वभाव में ध्यान में उसे ध्येय बनाकर... यह समझाना क्या? यह ध्यान और उसका ध्येय-ऐसे दो भेद भी वहाँ नहीं हैं। उस ध्यान का उसे विषय बनाकर... यह वहाँ उसमें-शब्द में है। अध्यात्म तरंगिणी, संस्कृत। अध्यात्म तरंगिणी है न? संस्कृत में है। 'ध्यान विषये कुरु...' ऐसे दो-तीन जगह है। है, सब है न ख्याल। अर्थात्? कि तेरी वर्तमान पर्याय के ध्यान में उसे विषय बना। ज्ञायक त्रिकाल आनन्द का नाथ सुखधाम.. आहाहा! तो वहाँ तुझे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति प्राप्त होगी। बाकी राग अबुद्धिपूर्वक रहेगा, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप कहा जाता है। आहाहा! ऐसा है।

चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थकर जैसे 'यह राज्य, यह वैभव—कुछ नहीं चाहिए' इस प्रकार सर्व की उपेक्षा करके एक आत्मा की साधना करने की धुन में अकेले जंगल की ओर चल पड़े! जिन्हें बाह्य में किसी प्रकार की कमी नहीं थी, जो चाहें वह जिन्हें मिलता था, जन्म से ही, जन्म होने से पूर्व भी, इन्द्र जिनकी सेवा में तत्पर रहते थे, लोग जिन्हें भगवान कहकर आदर देते थे—ऐसे उत्कृष्ट पुण्य के धनी सब बाह्य ऋद्धि को छोड़कर, उपसर्ग-परिषहों की परवाह किये बिना, आत्मा का ध्यान करने के लिए वन में चले गये, तो उन्हें आत्मा सबसे महिमावन्त, सबसे विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा और बाह्य का सब तुच्छ भासित हुआ होगा, तभी तो चले गये होंगे न? इसलिये, है जीव! तू ऐसे आश्चर्यकारी आत्मा की महिमा लाकर, अपने स्वयं से उसकी पहिचान करके, उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ कर। तू स्थिरता-अपेक्षा से बाहर का सब न छोड़ सके तो श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़! छोड़ने से तेरा कुछ नहीं जायेगा, उल्टा परम पदार्थ-आत्मा-प्राप्त होगा ॥३४९॥

३४९, अरे! आहाहा! जिसे अन्तर आनन्द का नाथ, जिसे विस्मय लगा है, अतीन्द्रिय आनन्द की आश्चर्यकारिता में चक्रवर्ती,... आहाहा! छह खण्ड के धनी, छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक। बलदेव और तीर्थकर जैसे 'यह राज्य, यह वैभव—कुछ नहीं चाहिए'... आहाहा! मेरा नाथ आनन्दस्वरूप है, मुझे तो वह चाहिए। तीर्थकर को आनन्द का भान तो था और वे चक्रवर्ती थे—शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ। मुझे कुछ नहीं चाहिए। चक्रवर्ती का राज नहीं, स्त्री नहीं, कुछ नहीं। आहाहा!

इस प्रकार सर्व की उपेक्षा करके... पर के ओर की उपेक्षा अर्थात् उदासीनता हुई। आहाहा! एक आत्मा की साधना करने की धुन में... आहाहा! उन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का आश्रय लगा होगा न? तब तो यह सब आश्रयपना छोड़कर अन्दर में जाने को वनवास में चले जाते हैं। आहाहा! जो मखमल की रजाईयों में सोते हुए, जिनकी सोलह-सोलह हजार देव सेवा करे। आहाहा! वे वन में चले जाते हैं। आश्चर्यकारी भगवान आत्मा देखा है, उसे जाना है, उसे साधने जाते हैं न। आहाहा!

एक आत्मा की साधना, एक आत्मा की साधना... वह अनेकपना जो है, वह सब... आहाहा! उसे छोड़कर, उपेक्षा करके एक आत्मा की साधना करने की धुन में अकेले जंगल की ओर चल पड़े! आहाहा! यह कोई अतीन्द्रिय आनन्द की विस्मयता अन्दर जानी है, उसमें स्थिरता के लिए चल निकले हैं। आहाहा! जिन्हें छियानवें-छियानवें हजार स्त्रियाँ, एक स्त्री की हजार देव सेवा करें, (तथापि) यह नहीं, यह नहीं। मेरा नाथ अन्दर है। अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत है, उसमें से आनन्द का झरना झरता है, वहाँ मुझे अधिक आरूढ़ होना है। आहाहा!

बहुत बार तो कहते हैं, सम्प्रदाय में भी कहते थे। उत्तराध्ययन का चौदहवाँ अध्ययन है। तब सभा में हजारों लोग आते थे (संवत्) १९७४ से यह चलता है। आहाहा! ६० वर्ष हुए। व्याख्यान में हजारों लोग, उस दिन से। ६० वर्ष से यह व्याख्यान चलता है। १९७४ से यह २०३४। बोटोद में तीन सौ घर। हजार, पन्द्रह सौ लोग व्याख्यान में, हों! लोग उपाश्रय में तो समाते नहीं, गली में भर जाए। एक दृष्टान्त है वहाँ, भले बनाया हुआ, परन्तु... एक ब्राह्मण के लड़के हैं। दोनों दीक्षा लेना चाहते हैं। माता के निकट आज्ञा माँगते हैं। जननी! शरीर की जननी, आता है न उसमें? प्रवचनसार, तीसरे भाग में (चरणानुयोगसूचक चूलिका में यह वर्णन आता है) वहाँ आज्ञा माँगते हैं। तीसरे भाग में आता है। तब कहाँ (प्रवचनसार देखा था)? १९७८ के पहले की ये बातें हैं। आहाहा!

माता! मुझे आज्ञा दे, माँ! मेरा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर मुझे ज्ञात हुआ है। माता! मुझे उसमें जाना है, रमना है। आहाहा! भाई! तू यह अभी मखमल के (बिस्तर में) ओढा है, आहाहा! संगमरमर के मकान, स्फटिक रत्न के मकान। रावण को स्फटिक रत्न के मकान (महल) थे। चक्रवर्ती के पुत्र को स्फटिक के मकान। आहाहा! माँ! एक बार आज्ञा दे। मेरा आत्मा, मुझे आनन्द का स्वाद अनुभूति में आया है। उस स्वाद के आस्वादन के लिए, माता! आज्ञा दे।

‘अजैव धम्ममं पडिवज्जयामो’ तब चलता था, हजार-पन्द्रह सौ (लोगों की सभा में)। माता! हम आज ही चारित्र-शान्ति अंगीकार करेंगे। ‘जई पुवनानपुणं भवामो’ माता! जिसे अंगीकार करने से हम फिर से भवधारण नहीं करेंगे। माता! तुझे रोना हो तो रो ले परन्तु अब हम दूसरी माता नहीं करेंगे। आहाहा! यह स्फटिक रत्न के महल में से भी

निकलकर, हजारों-छियानवें हजार स्त्रियों में से निकलकर... आहाहा! तब कोई विस्मय लगा होगा, तब निकले होंगे न? आहाहा! ऐई! गोदिकाजी! सत्तर लाख का तो यह तुम्हारा मकान है। कैसा? आमोदवाला रमणीकभाई! भाई कहते थे न कि दो व्यक्ति आनेवाले हैं। कौन आये? रमणीकभाई और दूसरा कौन? शान्तिभाई जवेरी। ठीक। यह बड़ोदरा का भाई कह गये। दशमीं का मुहूर्त है, यहाँ से पंचमी को उठना पड़ेगा, एक दिन अहमदाबाद और फिर वहाँ। छठम् को यहाँ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा न मैंने, मगसर शुक्ल दसमी को दीक्षा को ६६ वर्ष लगते हैं। यद्यपि वह स्थानवासी की दशम थी और लौकिक नौवीं थी। उन लोगों की तिथि सामने होती है न? नौवीं थी। नौवीं और रविवार, (संवत्) १९७० के मगसर शुक्ल नौ को रविवार। यह तो दशम। मुझे तो दूसरा कहना है कि वहाँ आगे आनेवाले हैं न? भाई! उन्हें -रमणीकभाई को एक मकान सत्तर लाख का है, रहने का। उसमें हम उतरे थे न वहाँ मुम्बई, सत्तर लाख का मकान समुद्र के किनारे है। एक मकान ऐसा तो दूसरे बहुत हैं। पैसा बहुत, बड़ा करोड़पति है। उस बंगले में उतरे, साथ में समुद्र है, समुद्र में मैंने ऐसे नजर की, वहाँ बगुले घूमते थे, बगुले।

भाई! कहा, ये बगुले कहाँ तक जाते होंगे? महाराज! बीस-बीस मील तक मछलियाँ खाने जाते हैं। उसका बँगला सत्तर लाख का एक। ऐसे तो बहुत मकान हैं। बड़ा गृहस्थ है और पाँच-छह करोड़ रुपये। आहाहा! वह बँगला, वह बँगला नीचे कोई आधार नहीं, वृक्ष बैठने का नहीं। बीस-बीस मील तक चले जाएँ, मछलियाँ पकड़ने। अर र र! यह दशा! और उसे फिर मरकर नरक में जाना। आहाहा! ऐसा मूल्यवान मनुष्य देह मिला, उसमें यदि यह काम नहीं किया तो यह दशा होनेवाली है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, धुन में अकेले जंगल की ओर चल पड़े! वहाँ तो कहा है, सर्वविशुद्ध अधिकार में, प्रवचनसार में चरणानुयोग में आज्ञा माँगता है, परन्तु आज्ञा दे तो निकलना, ऐसा कुछ है नहीं। है उसमें? परन्तु यह तो एक व्यवहार से माँगे, उसमें कोई वैरागी जीव हो तो उसे लागू पड़ जाए और फिर वह भी साथ में निकल जाए, ऐसा। नहीं तो कोई प्रतिबन्ध हो कि यह आज्ञा दे तो निकलना, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! है, उसमें

लिखा है। चरणानुयोग (सूचक चूलिका अधिकार में लिखा है) प्रवन्सार। जयचन्द्रजी पण्डितजी ने (लिखा है) है, खबर है। है, सब-सबमें है। आहाहा!

हम तो हमारे आनन्द का धाम भगवान... आहाहा! जिसमें अतीन्द्रिय.. अतीन्द्रिय.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आनन्द पड़ा है और जिसमें अनन्त.. अनन्त.. गुण हैं, उस प्रत्येक गुण में वापस आनन्द का रूप है। आहाहा! आता है न? प्रत्येक गुण में एक गुण का रूप है, एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। गुण भले उसमें नहीं होते। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण के अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द स्वतन्त्र एक गुण दूसरे गुण में जाए नहीं परन्तु उसका रूप आवे। इस ज्ञान में भी अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द, दर्शन में अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द आहाहा! चरित्र में अनन्त आनन्द, स्वच्छता में अनन्त आनन्द, प्रभुता में अनन्त आनन्द, जीवत्वशक्ति में अनन्त आनन्द। आहाहा! ऐसे अन्दर कर्ताशक्ति में अनन्त आनन्द। आहाहा! कर्तृत्वशक्ति का कहा था, आया था? आज नहीं आया था। भावकभाव कहा है न? ३२वीं गाथा में भावकभाव (कहा है)। वह कर्म का भावक और विकारी भाव एक भावकभाव ऐसा है और ३६ गाथा में भी यह कहा है, भावकभाव मोह को कहा है। मुझे मोह नहीं है। परन्तु यहाँ भावकभाव दूसरे प्रकार से है।

आत्मा में एक कर्तृत्व नाम का गुण है, जिसमें अनन्त-अनन्त गुण का रूप है। आहाहा! ऐसा कर्तागुण.. आहाहा! निर्मल वीतरागी आनन्द की पर्यायरूपी भाव का वह कर्तागुण भावक है। ऐसे गुलांट है। कर्म भावक और विकारीभाव भाव्य / भावकभाव। यहाँ गुलांट खाते हैं। गुलांट समझ में आती है? आहाहा! भगवान आत्मा में एक कर्तृत्व नाम का ऐसा गुण है और ऐसे गुण का (रूप) अनन्त गुण में भी कर्तृत्व है। आहाहा! ऐसे जो निर्मल वीतरागी पर्यायरूपी भाव, उसका वह गुण भावक है। आहाहा! कर्म का अभाव हुआ; इसलिए यह भाव हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा!

क्योंकि उसमें-प्रभु में अभाव नाम का एक गुण है और अभाव गुण में इस कर्तृत्व का रूप है। इससे उस अभावरूप से आत्मा अपने कारण से राग के अभावरूप परिणमता है। आहाहा! और उसके भाव के वर्तमान भावगुण का निर्मल वीतरागी पर्याय जो भाव, वह भाव होता ही है। जिसने द्रव्य को पकड़ा, उसे उस भाव का भाव, उस समय परिणमता ही है। उस भाव का भाव जो है, भावक गुण का भाव, उसका भावक-उस भाव का भावक

भावगुण है। कर्तृत्वगुण का भावकभाव, उसका कर्तृत्वगुण भावक है। ज्ञानगुण की निर्मल पर्याय का भाव, उसका ज्ञानगुण कारक है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह तो दो-चार उतारे, ४७ में ऐसा है, अनन्त में ऐसा है। आहाहा!

भगवान में अनन्त गुण निर्मल पर्याय के भावकरूप भाव हों, ऐसे गुण अन्दर पड़े हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा को साधने, आहाहा! भावक होकर भाव आनन्द का आवे, वह आनन्द का भाव पर्याय में उसका भावक-करनेवाला भावक आनन्दगुण है। आहाहा! पूर्वपर्याय भी नहीं, निमित्त नहीं, संयोग का अभाव नहीं। आहाहा! केवलज्ञान का भाव, उसका भावक वह ज्ञानगुण अन्दर है। पूर्व का मोक्षमार्ग है, इसलिए केवलज्ञान हुआ, यह तो व्यवहार से समझाया है। आहाहा! समझ में आया? पूर्व की पर्याय से उत्तर पर्याय होती है, यह तो व्यवहार से समझाया है। दोनों का ज्ञान कराने के लिए (समझाया है)। बाकी बाद की जो केवलज्ञानरूप पर्याय जलहल ज्योति एक समय में (प्रगट हुई), उस भाव का भावक तो ज्ञानगुण है। उस भाव के भावक में कर्तागुण है, वह कर्तारूप होकर केवलज्ञान का कार्य होता है। आहाहा!

ऐसा भगवान जो अनन्त गुण का धाम, कहते हैं, उस एक आत्मा की साधना करने की धुन में अकेले जंगल में चल निकले। जहाँ गरम-गरम कड़ाही और आहाहा! अरे! कड़ाही कहाँ... चक्रवर्ती कहो न, चक्रवर्ती को बत्तीस ग्रास का आहार। तीर्थकर हो, चक्रवर्ती हो या अकेले चक्रवर्ती हो, १६-१७-१८ तीर्थकर चक्रवर्ती हैं न? बत्तीस ग्रास, एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक पचा न सकें, ऐसा उनका आहार। आहाहा! जिस एक ग्रास में अरबों रूपयों की भस्म पड़ी हो। हीरा और माणिक की भस्म करके घी के अन्दर डालकर और गेहूँ डालकर, गेहूँ (ने घी) पिया हो और वह भी एक उसका अधिकारी हो, बारह महीने में एक दिन हुकम करने का अवसर आवे। ऐसा भोजन करने का। वह कैसा भोजन होगा? अधिकारी। पकानेवाला नहीं, पकानेवाला रसोईया अलग, परन्तु पकानेवाले को एक दिन बारह महीने में एक अधिकारी हो, बारह महीने तक निश्चित किया हो कि इस दिन यह बनाना है। आहाहा! उस ग्रास के आहार के करनेवाले चल निकले। उस आनन्द का ग्रास लेने, घूँट लेने चल निकले। आहाहा!

वह विस्मयकारी क्या होगा? भाई! आहाहा! जिसके एक ग्रास की अरबों की

कीमत हो। सब भस्म हैं न? जिसका ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक पचास न सकें, ऐसा आहार। आहाहा! पुण्य का योग होता है, वह होता है, परन्तु उस ग्रास को छोड़कर... आहाहा! ताजा गर्म मिलता आहार, उसे (छोड़कर) चल निकले। ठण्डा और साधारण क्या मिले, वह कहाँ इसे पूछने जाए। भिक्षार्थ गये और जो हो (वह ले लेवे)। आहाहा! अन्दर में आनन्द की विस्मयता लगी है, उस आनन्द का उग्र स्वाद लेने के लिए जंगल में चल निकले हैं। वहाँ कोई सेवा, चाकरी करनेवाला भी नहीं है। वह कैसा? यहाँ कहना है कि उस आनन्द का स्वाद आया, उसकी विस्मयता को साधने के लिये जिसने यह सब उपेक्षा कर डाली है। आहाहा!

जिन्हें बाह्य में किसी प्रकार की कमी नहीं थी, जो चाहें वह जिन्हें मिलता था,... ऐसा भोजन, रानियाँ, मकान, स्फटिक के मकान (महल)... आहाहा! जन्म से ही, जन्म होने से पूर्व भी, इन्द्र जिनकी सेवा में तत्पर रहते थे,... चक्रवर्ती और तीर्थकर दोनों हैं न? १६-१७-१८। आहाहा! लोग जिन्हें भगवान कहकर आदर देते थे—ऐसे उत्कृष्ट पुण्य के धनी सब बाह्य ऋद्धि को छोड़कर, उपसर्ग-परिषहों की परवाह किये बिना,.. आहाहा! जंगल में जाऊँगा, वहाँ सर्प, सिंह और बाघ क्या होंगे? सोने की जगह कहाँ होगी? आहाहा!

उस लड़की का नहीं आया? समाचार-पत्र में आया था न? समाचार-पत्र में आया था। बम्बई से प्लेन उड़ा, वह आगे जाकर टूट गया। बहुत लोग थे। टूट गया, सब मर गये, एक लड़की थी १७ वर्ष की -१८ वर्ष की जर्मनी की, वह जंगल में बेहोश हो गयी। जंगल वह सैकड़ों सर्प, बाघ, सिंह, जहरीले चूहे, बिच्छु, यह सब। गिरा वहाँ सब मर गये, उसके माँ-बाप साथ में थे। पूरा प्लेन। स्वयं बेहोश हो गयी। आहाहा! अरे! नीचे धरती, ऊपर आकाश और जाना कहाँ? ऐ भाई! पैर में कीड़े पड़े, ग्यारह दिन तक रही। समाचार-पत्र में आया था, ग्यारह दिन तक उस जंगल में कोई मनुष्य नहीं। सर्प, जहरीले चूहे, बिच्छु पूरे शरीर को काटकर सोजिश हो गयी। ग्यारह-ग्यारह दिन रही। आहाहा! बारहवें दिन जंगल में एक झोंपड़ी मिली, वहाँ खड़ी रही। अरे! यह कौन है इस झोंपड़ी में? वहाँ वे शिकारी आये। अरे! माँ, बहिन! यहाँ तुम कहाँ? पूरे शरीर में कीड़े, पैर में से कीड़े निकलें। ईयल समझे जीवांत, कीड़े। ऐसा पूरा शरीर (हो गया)। आयुष्य है न। आहाहा! अब उस जंगल में क्या होगा? ऐसे जंगल में सन्त चल निकलते हैं। आहाहा!

यहाँ तो साता की एक सुविधा जहाँ टूटे तो इसे अच्छा नहीं लगता। आहाहा! सवेरे गर्म पानी चाहिए और साबुन से (नहावे), श्रृंगार करने को दर्पण में देखे, छोटा दर्पण होवे न। बड़ा होवे, तब तो ऐसा दिखे। छोटे दर्पण में ऐसे-ऐसे पागल की तरह देखे। अरे! वह देखनेवाले चल निकले, बापू! आहाहा! उसका दर्पण भवन तो पूरा बड़ा होता है। उसमें तो पूरा दिखता है। बड़ा चक्रवर्ती का। उसे छोटा दर्पण नहीं होता। उसे दर्पण भवन है न, आता है न? वे चल निकले, बापू! आहाहा!

यहाँ तो आत्मा का आनन्द आश्चर्यकारी क्या होगा? कि उसके आश्रय के लिए यह सब छोड़कर चल निकले, बापू! आहाहा! लोग जिन्हें भगवान कहकर आदर देते थे.. उपसर्ग-परिषहों की परवाह किये बिना, आत्मा का ध्यान करने... आहाहा! वन में चले गये,... बापू! प्रभु! वह भगवान की जाति कितनी निधि और विस्मयकारी होगी! भाई! यह अज्ञान टालकर भान हो, तब इसे खबर पड़ती है। समझ में आया? जिसके आगे इन्द्र के इन्द्रासन भी तुच्छ लगते हैं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुख का धाम, जिसने पुरुषार्थ से पकड़ा है। आहाहा! व्यवहार के राग से नहीं। आहाहा! वे अपने स्वरूप को साधने (चल निकले)। सम्यग्दर्शन तो है, ज्ञान तो है, विस्मयता तो अनुभव की है। अब विशेष स्वाद के लिए... आहाहा! वन में चले गये, तो उन्हें आत्मा सबसे महिमावन्त,... सर्व से महिमावन्त, संयोगों से महिमावन्त, भिन्न, पुण्य-पाप के परिणाम से भिन्न, महिमावन्त। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्य-पाप की महिमा....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे भी धूल भी नहीं। पुण्य-पाप की महिमा जिसने छोड़ दी है। आहाहा!

महिमावन्त, सबसे विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा... आहाहा! उन्हें आत्मा सर्व से महिमावन्त, सर्व से विशेष आश्चर्यकारी, सर्व से खास विशेष आश्चर्यकारी। आहाहा! लगा होगा और बाह्य का सब तुच्छ भासित हुआ होगा, तभी तो चले गये होंगे न? भाई! तू विचार तो कर, बापू! अन्दर आत्मा कौन है, ऐसा कहते हैं। आत्मा महाआश्चर्यकारी निधान भगवान है। आहाहा!

इसलिए, हे जीव! तू ऐसे आश्चर्यकारी आत्मा की महिमा लाकर,... यह सारांश

तो यहाँ लेना है। आहाहा! अन्दर ऐसा आश्चर्यकारी प्रभु... निधान पड़ा है। आहाहा! आश्चर्यकारी आत्मा की महिमा लाकर, अपने स्वयं से उसकी पहिचान करके,... अपने से, स्वयं अपने से पहिचान कर। भगवान बतावे और गुरु बतावे, वे तो बताते हैं। चलना तो इसे (पड़ेगा)। आहाहा! स्वयं से उसकी पहिचान करके,... स्वसंवेदन ज्ञान से उसे जानकर। आहाहा! स्वयं से अर्थात् वह। ऐसा कहकर क्या कहा है कि वे विकल्प और राग और व्यवहार था, इसलिए उनसे यह पहिचाना गया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह पढ़ा है या नहीं हसमुखभाई ने? पोपटभाई ने तो चार बार पढ़ा था, ऐसा सुना था। आहाहा!

यह तो इसमें अमृत के रत्न के ढेर पड़े हैं। यह पुस्तक तो ऐसी कोई बाहर आ गयी है! आहाहा! जिसके एक-एक बोल में महिमावन्त तत्त्व को प्रसिद्ध किया है। आहाहा! भगवान! तेरे पैसे और इज्जत और शरीर तो कहीं रह गये, भाई! चक्रवर्ती के राज की भी जिसे विस्मयता छूट गयी। यहाँ विस्मय लगा होगा, तब छोड़ी होगी न? आहाहा! उसका खिंचाव तो यहाँ खिंचाव हुआ, तब वह छूटा न। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भगवान की अनन्त आनन्द की महिमा उसे प्रगट पर्याय में भासित हुई है। 'सर्व गुणांश, वह समकित' कहा है न? आहाहा!

जितनी संख्या में अमाप... अमाप... अनन्त की संख्या में गुण हैं, वे अन्तर के ध्यान में विकल्प तोड़कर स्थिर हुआ... आहाहा! तब उसकी पर्याय में जितने गुण हैं, उन प्रत्येक का अंश व्यक्तरूप से-प्रगटरूप से वेदन में आया? भले उसे नाम न आता हो। आहाहा! परन्तु जितने गुण हैं—अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त का कहीं अन्त नहीं। आहाहा! जैसे क्षेत्र का कहीं अन्त नहीं। क्षेत्र का कहाँ अन्त है? आकाश कहाँ पूरा हुआ? नास्तिक भी एक विचार करे तो उसे ख्याल आवे जरा। यह चौदह ब्रह्माण्ड तो असंख्य योजन में है। पश्चात् खाली.. खाली.. खाली.. आकाश.. आकाश.. आकाश.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त को अनन्त के साथ वर्ग करे और जो संख्या आवे तो भी उसका-आकाश का अन्त नहीं है। आहाहा! उसके प्रदेश से भी -अन्तरहित क्षेत्र के प्रदेशों से भी भगवान में अनन्त गुण उससे अनन्त गुणें हैं। यह तो क्या है वह!! आहाहा! उसकी थाह लेने जाए, तब उसकी निर्विकल्प दशा हो जाती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी पहिचान स्वयं से कर।

उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ कर। आहाहा! तू स्थिरता-अपेक्षा से बाहर का सब न छोड़ सके तो श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़! आहाहा! सब मेरा नहीं, मुझमें नहीं। राग के विकल्प से लेकर पूरा चक्रवर्ती का राज, इन्द्र का (इन्द्रासन) मुझमें नहीं है, ऐसे श्रद्धा से तो छोड़। स्थिरता करके अस्थिरता से भले न छूटे। आहाहा!

इसमें जरा सिद्धान्त है। स्थिरता-अपेक्षा से बाहर का सब न छोड़ सके... उसका आसक्ति का विकल्प रहे परन्तु श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़! तीन लोक का नाथ मेरा (उसका मुझे) आदर है, मुझे कोई रागादि मुझमें है नहीं। आहाहा! जिससे भक्ति का भाव उठे भगवान का, अरे! तीर्थकरगोत्र का भाव उठे, वह भी मेरा नहीं, श्रद्धा में छोड़ दे। आहाहा!

भावपाहुड़ में तो ऐसा भी कहते हैं, सम्यग्दर्शनसहित ऐसी भावना भावे, ऐसा आता है। भावपाहुड़ है न? सोलहकारणभावना भावे, पंच महाव्रत की भावना आता है न? यह अशुभ से बचने के लिए वह भाव आवे, इस अपेक्षा से बात है। आहाहा! भावपाहुड़ में यह बहुत आया है। पच्चीस भावना और अमुक ऐसा आया है। वह तो अशुभ से छूटने को उस समय का ऐसा भाव आता है। इस अपेक्षा से बात की है। आहाहा! अस्थिरता का भाव होता है परन्तु श्रद्धा में उसे छोड़ दे। एक बार सब (छोड़ दे) इतना विकल्प जो तीर्थकरगोत्र का है, वह भी मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! यहाँ तो (स्त्री को) अर्धांगना (कहते हैं) मैं और आधा और आधी स्त्री, दो होकर एक अंग। प्रभु! तू कहाँ गया? आहाहा!

स्थिरता-अपेक्षा से बाहर का सब न छोड़ सके... विकल्प हो। श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़! आहाहा! छोड़ने से तेरा कुछ नहीं जायेगा, उल्टा परम पदार्थ-आत्मा-प्राप्त होगा। श्रद्धा में से विकल्प का-राग का अंश चाहे जो हो, उसे अन्दर से छोड़, तुझे भगवान प्राप्त होगा। आहाहा! ऐसा है। आहाहा! उसमें आता है न

लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुण्यों मैं,
काहु के कहे अब कबहु न छूटे, लोकलाज सब डारी,
जैसे अमली अमल करत समये लाग रही ज्युं खुमारी।

आहाहा! अफीम पीनेवाला अमल को अमल चढ़ने पर खुमारी चढ़ जाती है। इसी तरह मेरा नाथ! हमारी दृष्टि में आया, उसका यश सुना, देखा, खुमारी चढ़ गयी। आहाहा! सम्यग्दर्शन की खुमारी चढ़ गयी। काहु के कहे अब कबहु न छूटे, लोकलाज सब डारी,

दुनिया क्या कहेगी ? उसके घर में रही दुनिया । आहाहा !

यहाँ कहते हैं, श्रद्धा में से राग से लेकर सब छोड़ । अरे ! पर्याय का अंश है, उसे श्रद्धा में से छोड़ । पर्याय का अंश है, पर्यायबुद्धि है । आहाहा ! श्रद्धा की अपेक्षा से श्रद्धा त्रिकाल को स्वीकार करती है । आहाहा ! इस अपेक्षा से तू सबको छोड़ । पर्याय का अंश वह भी मैं नहीं, राग मैं नहीं, यह नहीं । आहाहा ! अरे ! यह क्षयोपशमभाव, वह भी मैं नहीं । उसे छोड़ । आहाहा ! ज्ञान का क्षयोपशमभाव है न, उस समय ? तथापि श्रद्धा में से छोड़ । आहाहा ! श्रद्धा तो त्रिकाली ज्ञायक को स्वीकार करती है न ! वह सब दृष्टि में से छोड़ । आहाहा ! कहो, ज्ञानचन्दजी ! ऐसी बातें हैं । सम्प्रदाय की दृष्टि में यह लोगों को कठोर पड़े । यह तो अनादि की है, वैसी दृष्टि सम्प्रदाय में है । आहाहा ! कठिन बात ! ३४९ (बोल पूरा हुआ) ।

जीवों को ज्ञान और क्रिया के स्वरूप की खबर नहीं है और 'स्वयं ज्ञान तथा क्रिया दोनों करते हैं' ऐसी भ्रमणा का सेवन करते हैं । बाह्य ज्ञान को, भंगभेद के प्रश्नोत्तरों को, धारणाज्ञान को वे 'ज्ञान' मानते हैं और परद्रव्य के ग्रहण-त्याग को, शरीरादि की क्रिया को, अथवा अधिक करें तो शुभभाव को, वे क्रिया कल्पते हैं । 'मुझे इतना आता है, मैं ऐसी कठिन क्रियाएँ करता हूँ' इस प्रकार वे मिथ्या सन्तोष में रहते हैं ।

ज्ञायक की स्वानुभूति के बिना 'ज्ञान' होता नहीं है और ज्ञायक के दृढ़ आलम्बन द्वारा आत्मद्रव्य स्वभावरूप से परिणमित होकर जो स्वभावभूत क्रिया होती है उसके सिवा 'क्रिया' है नहीं । पौद्गलिक क्रिया आत्मा कहाँ कर सकता है ? जड़ के कार्यरूप तो जड़ परिणमित होता है; आत्मा से जड़ के कार्य कभी नहीं होते । 'शरीरादि के कार्य मेरे नहीं हैं और विभाव कार्य भी स्वरूपपरिणति नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ'—ऐसी साधक की परिणति होती है । सच्चे मोक्षार्थी को भी अपने जीवन में ऐसा घुँट जाना चाहिए । भले प्रथम सविकल्परूप हो, परन्तु ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिए । पश्चात् जल्दी अन्तर का पुरुषार्थ करे तो जल्दी निर्विकल्प दर्शन हो, देर करे तो देर से हो । निर्विकल्प स्वानुभूति करके, स्थिरता बढ़ाते-बढ़ाते, जीव मोक्ष प्राप्त करता है ।—इस विधि के सिवा मोक्ष प्राप्त करने की अन्य कोई विधि नहीं है ॥३५०॥

३५०, जीवों को ज्ञान और क्रिया के स्वरूप की खबर नहीं है... आहाहा! और 'स्वयं ज्ञान तथा क्रिया दोनों करते हैं' ऐसी भ्रमणा का सेवन करते हैं। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान करे और राग की क्रिया करे तो मानो हम कुछ करते हैं। आहाहा! जीवों को ज्ञान और क्रिया के स्वरूप की खबर नहीं है और 'स्वयं ज्ञान तथा क्रिया दोनों करते हैं' ऐसी भ्रमणा का सेवन करते हैं। आहाहा! बाह्य ज्ञान को, भंगभेद के प्रश्नोत्तरों को, धारणाज्ञान को वे 'ज्ञान' मानते हैं.. आहाहा! बाह्य ज्ञान, वह शास्त्र का ज्ञान, शब्द ज्ञान है। बन्ध अधिकार में (आता है)। वह शब्द ज्ञान है। नव तत्त्व है वह। श्रद्धा में नव तत्त्व, वह नव तत्त्व है; वह शब्द ज्ञान है और छह काय के जीव की दया पालने का भाव है, वह छह काय के जीव हैं। वे छह काय के जीव पर हैं। बन्ध अधिकार में लिया है। आहाहा! उस बाह्य ज्ञान को... कुछ शास्त्र का ज्ञान वाँचन.. वाँचन.. वाँचन.. और धारणा.. धारणा.. धारणा.. धारणा.. और गहराई में तो यह होता है कि कोई पूछे तो तुरन्त आवे, कहना आवे। आहाहा! वह भी कहीं रुका हुआ है न? आहाहा! बाह्य ज्ञान को, भंगभेद के प्रश्नोत्तरों को,... भंगभेद के नय और न्याय तथा निक्षेप को.. ओहोहो! १३वीं गाथा में कहा है न? नय-निक्षेप-प्रमाण से (जानना) परन्तु वह भी वहाँ अभूतार्थ है। आहाहा! धारणाज्ञान को वे 'ज्ञान' मानते हैं.. जानपना धारणा हुई न? इसका ऐसा है और इसका ऐसा है और इसका ऐसा है, उसे वे ज्ञान मानते हैं कि हमें ज्ञान हुआ। कठिन काम है। आहाहा!

और परद्रव्य के ग्रहण-त्याग को, शरीरादि की क्रिया को,... आहाहा! अथवा अधिक करें तो शुभभाव को, वे क्रिया कल्पते हैं। लो! आहाहा! 'मुझे इतना आता है, '... दूसरे को कहाँ आता है? मुझे इतना आता है। एकदम कोई पूछे तो शीघ्र जवाब दे दूँ, ऐसा है और वैसा है। 'मैं ऐसी कठिन क्रियाएँ करता हूँ' इस प्रकार वे मिथ्या सन्तोष में रहते हैं। परन्तु वास्तविक आत्मा का ज्ञान नहीं करते! विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण-१२, शनिवार, दिनाङ्क २८-१०-१९७८
वचनमृत-३५० प्रवचन-१३३

वचनमृत ३५०, उसका दूसरा पैराग्राफ है। एक पैराग्राफ हो गया है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। आहाहा! ज्ञायक की.. जो भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप त्रिकाल, उसकी स्वानुभूति के बिना... उसकी स्व अनुभूति, स्व का अनुभव, उसके बिना 'ज्ञान' होता नहीं है... आहाहा! ज्ञान क्रिया किसे कहना, यह बात है। पहले कलश में आया है न? राजमलजी की टीका। यह जीव पुद्गल को जाने, धर्मास्ति को जाने, अधर्मास्ति को जाने, आकाश को जाने, काल को जाने और संसारी जीव को जाने, तो वे पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल और संसारी जीव में सुख भी नहीं और उन्हें ज्ञान भी नहीं। आहाहा! स्वभाव है ज्ञान, वह यहाँ अभी नहीं लेना है।

संसारी जीव को और धर्मास्ति, अधर्मास्ति आकाश और पुद्गल—शरीर, वाणी आदि में ज्ञान भी नहीं और उन्हें सुख भी नहीं। उन्हें जाननेवाले इस जीव को भी पुद्गल को जाने, शरीर, कर्म, धर्मास्ति, आकाश, काल, संसारी जीव निगोद अनन्त हैं, ऐसा जाने तो जाननेवाले को भी ज्ञान और सुख नहीं है। यह अनन्त निगोद आदि संसारी जीव हैं, उन्हें ज्ञान नहीं, पर्याय में सुख नहीं। आहाहा! परन्तु छह काय के जीव को जाने संसारी, संसारी जीव को जाने, उस जाननेवाले को भी ज्ञान और सुख नहीं। आहाहा! ज्ञान तो कब होवे और सुख कब होवे? वह यह बात चलती है। आहाहा!

ज्ञायक की अनुभूति बिना ज्ञान नहीं होता... आहाहा! छह काय के जीव हैं और संसारी निगोद अनन्त जीव हैं, अनन्त परमाणु हैं और अनन्त स्कन्ध हैं, जो चीज़ वह जानता है, उसे ज्ञान, सुख नहीं है और जो उसे जानता है, उसे भी ज्ञान और सुख नहीं है, वह तो परलक्ष्यी ज्ञान (इन्द्रियज्ञान है)। आहाहा! चन्दुभाई! सूक्ष्म बातें हैं। ज्ञान और सुख किसे होता है? कि भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप जो त्रिकाली है, उसकी

अनुभूति हो, स्व-अनुभूति / स्व का अनुभव हो, उसे ज्ञान होता है, उसे सुख होता है। ऐसी बात है, प्रभु! बहुत कठिन बात। यह ग्यारह अंग पढ़ जाए और यह समयसार आदि सब शास्त्र पढ़कर पढ़ जाए भले परन्तु वह कहीं ज्ञान नहीं है। आहाहा! तथा उसे सुख भी नहीं है।

ज्ञान उसे कहते हैं, ऐसा परमात्मा कहते हैं, वह यहाँ कहा जाता है। आहाहा! भगवान् ज्ञायक ज्ञानस्वभाव से भरपूर समुद्र के सन्मुख होकर उसकी स्वानुभूति हो। स्व अर्थात् ज्ञायक की अनुभूति अर्थात् स्वस्वरूप है, उसे अनुसरकर अनुभव हो कि यह आत्मा है, उसे ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! ज्ञानचन्दजी!

पहले श्लोक में है। राजमल जी की टीका में (है)। 'नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते' यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, वह यह बात है। समझ में आया? आहाहा! पर का-शास्त्र आदि का ज्ञान करे, छह काय के जीव हैं, उनका ज्ञान करे, अनन्त निगोद के जीव संसारी हैं, ऐसे अनन्त दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय संसारी जीव है, उन्हें ज्ञान और सुख नहीं है। उन्हें जाननेवाले जीव को भी ज्ञान और सुख नहीं है, क्योंकि वह तो परद्रव्य का ज्ञान और परद्रव्य का उसका झुकाव है। आहाहा!

ज्ञान तो उसे कहते हैं... आहाहा! अरे! जगत कहाँ-कहाँ अटकता है। कहीं शास्त्र का जानपना हुआ, वहाँ अटका कि मैं कुछ जानता हूँ, मुझे कुछ आता है, वह भी पर में अहंरूप से अटका है। आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि प्रभु आत्मा जो चैतन्य ज्ञानरस और ज्ञानस्वभावस्वरूप है, उसके सन्मुख होकर, इन शास्त्र आदि का ज्ञान है, उससे विमुख होकर... आहाहा! धारणा में ज्ञान किया कि ऐसा, ऐसे और इसका ऐसा और आत्मा ऐसा है, गुण ऐसे हैं... आहाहा! वह धारणा का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं है। आहाहा! वास्तव में तो ऐसी बात है कि स्व चैतन्यमूर्ति का स्वसन्मुख का ज्ञान नहीं, वहाँ परसम्बन्धी का जितना क्षयोपशम ज्ञान खिला, उतना वहाँ अहंपना उसमें खिलता है, यह मैं हूँ—ऐसा (होता है)। मुझे बहुत आता है, मैं बहुत क्षयोपशमवाला हूँ।

मुमुक्षु : सीधा कहलाये या बिगड़ा कहलाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिगड़ा है। सीधा है कब ? आहाहा! यह शास्त्र का जानपना

पढ़कर किया, यह समयसार पुस्तक का पढ़कर किया, लो! परन्तु वह तो परलक्ष्यी ज्ञान, वह परसत्तावलम्बी ज्ञान, इसे उसमें अहंपना आवे कि यह मुझे कुछ आया... आहाहा! वह तो मिथ्यात्व का सेवन करता है। सूक्ष्म बात है, भाई! अन्तर का मार्ग कोई अलग प्रकार का है। इस एक लाईन में इतना है।

ज्ञायक की स्वानुभूति... जो प्रभु सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु है, आत्मा सर्वज्ञस्वरूपी है। यह सर्वज्ञस्वरूपी है, वह ध्रुव है; उस ध्रुव का अनुभव पर्याय में होना। आहाहा! सर्वज्ञस्वरूपी, ज्ञ-स्वरूपी, ज्ञानस्वरूपी, सर्वज्ञस्वरूपी ध्रुव प्रभु है, उसका उसके सन्मुख होकर राग की एकता टूटकर (ज्ञान होना, वह ज्ञान है)। आहाहा! यह शास्त्र का पठन है, उसकी भी एकता टूटकर... ऐसी बातें हैं, बापू! मार्ग कोई अलग प्रकार है, भाई! आहाहा! अनन्त काल में अनन्त भव किये, मुनिव्रत लिया, ग्यारह अंग अनन्त बार पढ़ा, नव पूर्व की लब्धि हुई परन्तु वह कुछ ज्ञान नहीं है। आहाहा!

जिस ज्ञान में स्व अनुभव न हो... आहाहा! वह ज्ञान नहीं है। आहाहा! वह ज्ञान भव को नहीं छेदता। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्य का कन्द प्रभु चैतन्यरत्नाकर अनन्त-अनन्त चैतन्य की जाति के स्वभाव से भरा हुआ, उसके सन्मुख होकर, पठन के ज्ञान से भी विमुख होकर... आहाहा! कठिन है, हसमुखभाई! टाईल्स में बड़ी धमाधम (करे)। टाईल्स में ऐसे छॉटे न वह उसकी कुछ? भिन्न-भिन्न क्या कहलाता है कुछ? उसे छॉटे, देखा है न हमने वहाँ। जामनगर में एक बड़ा व्यापारी है न, वहाँ एक बार दूध पिया था। (वहाँ) ऐसी टाईल्स के प्रकार अमुक-अमुक छॉटे हुए ऐसे रंग करने के लिए, आहाहा! उसका ज्ञान भी अज्ञान है, कहते हैं। तुम्हारे तो बड़ा टाईल्स का धन्धा है, थान में। हम वहाँ उतरे थे न। आहाहा! कहते हैं कि टाईल्स का ज्ञान, मेट्रिक का ज्ञान, एल.एल.बी. का ज्ञान, डॉक्टर!

मुमुक्षु : मैं रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाद में आता था, अभी आता है न। यह बी.ए. का ज्ञान, इन रामजीभाई का। प्रवीणभाई! ये दोनों डॉक्टर बैठे, बड़े डॉक्टर हैं, ये तीनों डॉक्टर हैं। आहाहा! तीनों राजकोट के हैं, नहीं? राजकोट है न? राजकोट के हैं। अभी मुम्बई हैं। आहाहा! यह डॉक्टर का ज्ञान, वकालात का ज्ञान, बेरिस्टर का ज्ञान... अरे! शास्त्र का ज्ञान,

आहाहा! वह भी ज्ञान नहीं, प्रभु! वह तो परलक्षी परसत्तावलम्बी उघाड़, वह तो बन्ध का कारण है, प्रभु! यह तो बहुत कठिन बात है, नाथ! आहाहा!

ज्ञायक की स्वानुभूति के बिना 'ज्ञान' होता नहीं है... अब क्रिया, और ज्ञायक के दृढ़ आलम्बन द्वारा... भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, ज्ञायकस्वभाव के दृढ़ आलम्बन बिना आत्मद्रव्य स्वभावरूप से परिणमित होकर... ज्ञायक के दृढ़ आलम्बन द्वारा आत्मद्रव्य... आहाहा! स्वभावरूप से परिणमित होकर जो स्वभावभूत क्रिया होती है, उसके सिवा 'क्रिया' है नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप और उपवास वह क्रिया, क्रिया आत्मा की नहीं है। आहाहा! ज्ञायक के दृढ़ आलम्बन द्वारा... प्रभु! अन्दर चैतन्यरत्नाकर भगवान पूर्ण पड़ा है, प्रभु! आहाहा! समुद्र है, समुद्र, स्वयंभूसमुद्र। आहाहा! जिसमें एक समय की पर्याय भी नहीं, ऐसा स्वयंभू भगवान आत्मा के अवलम्बन से आत्मद्रव्य स्वभावरूप से परिणमे। स्वभावरूप से। उस शुद्धचैतन्यघन के आनन्द के स्वभावरूप से परिणमे, उस क्रिया के अतिरिक्त यह क्रिया दूसरी है नहीं आत्मा में। यह ज्ञानक्रियाभ्यम् मोक्ष।

यह बात सम्प्रदाय में एक बार चली थी, (संवत्) १९९० के वर्ष। चोटीला में रतनचन्दजी एक शतावधानी स्थानकवासी में थे, उनके गुरु थे। बहुत बड़ी उम्र ८५ वर्ष की, तब थी, हों! फिर तो बहुत वर्ष रहे। बहुत दीक्षा पचपन वर्ष की या इतनी तो कुछ दीक्षा थी। हम तो सम्प्रदाय में भी ऐसे स्थानकवासी के साधु थे (तो भी) साथ में नहीं उतरते थे, क्योंकि मैं किसी को नहीं मानता था परन्तु तब इकट्ठे उतरे। वृद्ध थे, गुलाबचन्दजी थे। तुम पहचानते हो? नहीं। तुम तो कमाने में पड़े थे। लींबड़ी के एक रतनचन्दजी शतावधानी थे, उनके गुरु गुलाबचन्दजी थे। वे इकट्ठे हुए वहाँ मुझे बहुत करके (संवत्) १९८२ के चातुर्मास में वढ़वाण आना हुआ। वे वहाँ चोटीला में थे और मैं राजकोट से यहाँ आया। बहुत प्रसन्न हुए, साथ में उतरे। कभी उतरते नहीं थे। हम कभी स्थानकवासी साधु को साधु नहीं मानते थे, सम्प्रदाय में भी (नहीं मानते थे)। साथ में उतरे तो बहुत प्रसन्न हुए। फिर तो बेचारे बोले, महाराज! हमारे लिए आहार लेने जाएँ, वह तुम नहीं लो, परन्तु तुम्हारे लिए यह आम का रस है, वहाँ होगा कुछ, थोड़ा ले आऊँ, आप लोगे? दीक्षा बहुत बड़ी ५५-६० वर्ष की। लाओ, कहा लाओ, हों! फिर प्रश्न उठा कि शास्त्र में ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष कहा है न? आहाहा! यह १९८२ के वर्ष की बात है। ५२ वर्ष हुए न? मैंने कहा, भाई!

ज्ञानक्रियाभ्यामं किसे कहना ? इस शास्त्र का जानपना और राग की यह क्रिया, वह नहीं। बाद में सुनते थे, बेचारे सुनते थे। मुझसे तो सम्प्रदाय में सब डरते थे। आहाहा!

मुमुक्षु : सबकी क्रिया खोटी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! बेचारे ने नरम होकर (पूछा), हों! तब क्या स्वरूप है? कहा, यह नहीं। शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं और यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम वह क्रिया नहीं। तब (क्या स्वरूप है)? आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान है और आत्मा में रमणता होना, वह क्रिया है। यह तो १९८२ के वर्ष की (बात है)। अरे! यह कहाँ है? बात ही नहीं, बात है ही नहीं सम्प्रदाय (में)। आहाहा! हाँ किया, हों! हाँ किया। बात तो सत्य लगती है परन्तु उसने बेचारे ने ऐसा भी कहा, शास्त्र में प्रतिमा है, हों! अब यह स्थानकवासी मानते नहीं। इसलिए यह कहा कि है। हमें भी जिन्दगी शंका में ही गयी है, शंका में अर्थात्? यदि शिष्य पढ़ेंगे और मूर्ति तो हमें गुरु नहीं मानेंगे। वे बेचारे वृद्ध थे। अरे! क्या जहाँ-जहाँ सम्प्रदाय में सपडाये गये, वहाँ-वहाँ पकड़ा गये।

..... जिस कुल में जन्मा और जिसका वास हुआ, उसका इसने माना। फिर दूसरा क्या सत्य है, इस बात की कोई खोज नहीं होती। कहा, ज्ञान क्रिया का अर्थ यह है, भाई! आहाहा! आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु चिदानन्द घन है, उसका ज्ञान होना, आत्मा का ज्ञान होना, वह आत्मज्ञान। आत्मज्ञान न? शास्त्रज्ञान, वह ज्ञान नहीं है। यह तो आत्मज्ञान। अतः आत्मा जितना अन्दर आनन्दकन्द प्रभु पूर्णानन्द है, उसका उसके सन्मुख होकर ज्ञान होना, वह ज्ञान और उसमें रमणता, स्वरूप में रमणता होना, वह चारित्र और क्रिया है। यह सब तुमने माना, वह नहीं, कहा। बेचारे कहते थे, हाँ किया, परन्तु फिर बाद में जब परिवर्तन करके चोटीला गये, गाँव में थे परन्तु आ नहीं सके। क्या करे बेचारे? बाड़ा छोड़कर आना, कठिन बाड़ा छोड़ना। गृहस्थ को भी सम्प्रदाय में से, जिस सम्प्रदाय में जन्में उसमें से छोड़ना कठिन पड़ता है। आहाहा!

इसका यह कहा न? वहाँ थे। भव्यसागर साधु है, देखो न! जालना में। वे आना चाहते हैं, दिगम्बर, बीस वर्ष की दीक्षा और आशुकवि - शीघ्र कवि हैं। यहाँ बहुत आना चाहते हैं। यहाँ का पढ़कर उन्होंने कहा कि ओहोहो! मार्ग तो स्वामीजी! आप जो कहते हो, वह बात है। हम साधु नहीं हैं परन्तु आ किस प्रकार (सकते हैं)? अब बारम्बार

लिखते हैं, हमें यहाँ बुलाओ। हम तो किसी को बुलाते नहीं और किसी को लिखते भी नहीं या पत्र (पत्र-व्यवहार) भी नहीं करते। यहाँ कौन यह जोखिम करे? ऐई! यहाँ तो उसे जिम्मेदारी से आना हो वह आवे, बापू! उदयपुर में तीन स्थानकवासी तेरापन्थी की आर्जिकाएँ थीं। जहाँ उतरे, वहाँ उतरी थीं। बड़े गृहस्थ थे, मैं उतरा वहाँ बंगला बड़ा था। गृहस्थ यहाँ का मुमुक्षु था। वहाँ रात्रि को सुनने के लिए (आते थे)। दिन में चरणवन्दन करे। महाराज! हमने आपका पढ़ा है, हमें बहुत रुचता है। महाराज! हमें सोनगढ़ बुलाओगे? हम किसी को बुलाते नहीं, कहा। यहाँ आओ और यहाँ आकर गौशाला भरार्यें यहाँ तो। कितने का रामजीभाई करे? किसका? आहाहा! वे बहुत बेचारे क्या करे?

इसके अतिरिक्त हैदराबाद में स्थानकवासी पंजाब की तीन आर्जिकाएँ थीं। दो-तीन मील दूर (थीं)। कहलवाया, महाराज! हमें दर्शन करना है। आपका साहित्य पढ़ा है। हम वहाँ आवें तो हमें रोटियाँ नहीं मिलेंगी। इसलिए आप दर्शन देने आओ। परन्तु मुझे शरीर अब बहुत घूमने का काम नहीं करता। दिखाव अच्छा लगता है परन्तु घूमने का काम बहुत नहीं हो सकता। भोजन साधारण और अब नब्बे वर्ष हुए। गर्भ के नब्बे चलते हैं। यह कितना काम करे? कहा, भाई! हम दर्शन देने नहीं आ सकेंगे। ऐसे कितनों को ऐसा लगा है कि बात तो यह कोई दूसरी है। यह चलता है, इससे प्रकार अलग लगता है। बापू! सब खबर है, बापू! यहाँ तो। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष। लोग ऐसा मानते थे कि यह छह काय के जीव हैं और यह हैं, उनका ज्ञान करना और उनकी दया पालना, व्रत पालना, यह ज्ञान क्रिया। ऐ... डॉक्टर! यहाँ कहते हैं, यह क्रिया और ज्ञान जो लोग मानते हैं, वह नहीं। भगवान आत्मा आनन्द का नाथ अन्दर पूर्णानन्द प्रभु है, उसे शास्त्र के ज्ञान से भी विमुख होकर और चैतन्यस्वरूप भरपूर भगवान के सन्मुख होकर जो अनुभव हो, उसे ज्ञान कहते हैं।

और ज्ञायक के दृढ़ आलम्बन द्वारा आत्मद्रव्य स्वभावरूप से परिणमित होकर... चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ, आहाहा! उसके दृढ़ अवलम्बन से आत्मद्रव्य स्वभाव शुद्धचैतन्य निर्मल शुद्धरूप परिणमे। आहाहा! जो स्वभावभूत क्रिया होती है... क्या कहा?

मुमुक्षु : दृढ़ शब्द से अधिक क्या कहना चाहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दृढ़, वह इस ओर की दृढ़ता, ज्ञान हुआ है, वह इस ओर की दृढ़ता में स्थिर होता है, ऐसा। दृढ़ अवलम्बन करके स्थिर होता है। क्रिया कहनी है न? राग नहीं, निमित्त नहीं, शरीर नहीं, मन नहीं। भगवान आत्मा ज्ञायक का दृढ़ अवलम्बन। अवलम्बन उसका है। राग का नहीं, पर्याय का नहीं। बहुत स्पष्टीकरण करने पर कठिन पड़े ऐसा है। आहाहा!

अकेला चैतन्य ज्ञायक का सूर्य-चन्द्र ध्रुव प्रभु अन्दर विराजता है। आहाहा! उसका दृढ़ अवलम्बन लेकर, कठोर अवलम्बन। आहाहा! **आत्मद्रव्य स्वभावरूप से परिणामित होकर...** भगवान आत्मा का स्वभाव तो शुद्ध है, पवित्र है, आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। इस प्रकार पर्याय में स्वभावरूप परिणमे। आहाहा! यह **क्रिया होती है, उसके सिवा 'क्रिया' है नहीं।** इसके सिवाय की क्रिया आत्मा की है ही नहीं। आहाहा! पैराग्राफ ऐसा आया है। आहाहा!

पौद्गलिक क्रिया आत्मा कहाँ कर सकता है? आहाहा! यह जो वाणी होती है, शरीर चलता है, वह क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा! पैर को आत्मा ऐसे हिला सकता है, यह तीन काल में नहीं। आहाहा! और पैर जो चलते हैं, वे जमीन को स्पर्श कर चलते हैं, यह नहीं। यह तो कोई बात! ये पैर जमीन को स्पर्श ही नहीं सकता, क्योंकि पैर की पर्याय और इसकी पर्याय दोनों के बीच अभाव है। आहाहा! यह पैर की जो क्रिया है, वह इसे स्पर्शकर नहीं होती तथा वह आत्मा से नहीं होती। आहाहा! उसकी क्रिया आत्मा नहीं करता।

जड़ के कार्यरूप तो जड़ परिणामित होता है;... आहाहा! यह भाषा भी उसके कारण से होती है, आत्मा भाषा नहीं कर सकता। अरे रे! हम ऐसा बोले और हमने ऐसा समझाया और भाषा के अभिमानी, वे मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! क्या कहा?

मुमुक्षु : बहुत जजों को समझाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : जजों को समझाया, वह सब मिथ्यात्व में गया। इनकी स्वयं की बात की है और उस लड़के को पाप करके पढ़ाया, सुमन को पैंतीस हजार खर्च करके। वहाँ अकेला पाप किया है।

मुमुक्षु : अभी वर्णन तो वचनामृत का होता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वचनामृत का नहीं, आत्मा का होता है । वह तो जड़ है । आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! यह जड़ की परिणति है, यह कहीं आत्मा की नहीं । आहाहा ! और वाणी होती है, वह आत्मा की क्रिया नहीं । अरे ! यह तो एक ओर रहो, अब विशेष आता है । **जड़ के कार्यरूप तो जड़ परिणमित होता है; आत्मा से जड़ के कार्य कभी नहीं होते ।** आहाहा ! यह बोले, चले, और हिलावे (वह आत्मा नहीं करता) ।

मुमुक्षु : रोटी के टुकड़े करके मुँह में रखे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल हराम है । रोटी के टुकड़े करता हो तो । आहाहा ! यह दाँत उसे स्पर्श नहीं करता, रोटी के टुकड़े होते हैं उन्हें । उन रोटी के टुकड़ों की पर्याय पृथक् पड़ने का उनका काल है, इसलिए भिन्न पड़ते हैं, दाढ़ से नहीं और आत्मा से तो नहीं, नहीं और नहीं । ऐसी बातें हैं । दुनिया से अलग प्रकार है । आहाहा !

‘जड़ भावे जड़ परिणमे’ उसमें आत्मा को क्या ? भाई ! यह तुझे खबर नहीं । आँख की पलक फिरती है, वह जड़ की क्रिया है, आत्मा नहीं कर सकता । आहाहा ! क्योंकि वह अजीव पदार्थ है । उसका परिणमन का कार्य वह अजीव से होता है । उस कार्यरहित जड़ नहीं कि तू उसका कार्य करे । आहाहा ! मार्ग बहुत (सूक्ष्म है) । यहाँ तो पर की दया पाल सकता हूँ, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है । आहाहा ! ऐई ! यहाँ तो जड़ तक आया । अब अन्दर में ।

जड़ के कार्यरूप तो जड़ परिणमित होता है; आत्मा से जड़ के कार्य कभी नहीं होते । ‘शरीरादि के कार्य मेरे नहीं हैं...’ शरीर हिले, चले, बोले वाणी... आहाहा ! वे मेरे कार्य नहीं हैं क्योंकि वे तो परमाणु के कार्य हैं, जड़ के कार्य हैं । अब इससे आगे ‘विभाव कार्य भी स्वरूपपरिणति नहीं है,...’ आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह विभाव परिणति है... आहाहा ! वह स्वरूप परिणति नहीं, वह भगवान आत्मा की क्रिया नहीं । आहाहा ! ऐसा है । अरे ! इसने कहाँ सुना है ? आहाहा ! तत्त्व जो भिन्न है, उस भिन्न तत्त्व को भिन्न क्या करे ? आहाहा !

समयसार तीसरी गाथा में यहाँ तक कहा, प्रत्येक पदार्थ में अपने जो अनन्त गुणोंरूपी धर्म हैं, उन्हें वह पदार्थ चुम्बन करता है, स्पर्श करता है परन्तु दूसरे पदार्थ को

एक पदार्थ स्पर्श नहीं करता। भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! यह हाथ है, वह यहाँ इसे स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह परमाणु जो हाथ के एक-एक रजकण के हैं, उनके अनन्त धर्म हैं, धर्म अर्थात् उसके गुण, उसकी पर्याय। उसे वह पदार्थ चुम्बन करता है, स्पर्श करता है, छूता है परन्तु अन्य पदार्थ की पर्याय को वह अन्य पदार्थ चुम्बन नहीं करता। आहाहा! अग्नि में यह हाथ ऐसे दिखाई दे और उष्ण हो तो अग्नि ने हाथ को स्पर्श किया ही नहीं है। क्योंकि अग्नि की पर्याय और इस शरीर की पर्याय, दोनों के बीच अत्यन्त अभाव है। समझ में आया ?

यह (यहाँ) कहते हैं कि जड़ के तो कार्य आत्मा के नहीं, यह लिखना और नामा लिखना और यह बोलना, यह सब कार्य जड़ का है, परन्तु 'विभाव कार्य भी स्वरूपपरिणति नहीं है,...' दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प जो है, वह स्वरूपपरिणति—आत्मा की परिणति नहीं है। वह तो विभाव, विकार, चाण्डालीनि की परिणति है। आहाहा! अपने आप पड़ जाए और ऐसा का ऐसा समझ गया, ऐसा माने। भाई! मार्ग दूसरा, बापू! एक भी लाईन, उसका भाव समझना वह बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

'विभाव कार्य भी...' भी क्यों लिया ? वे जड़ आदि के कार्य तो नहीं, तथा विभाव कार्य भी इसके नहीं, ऐसा। एक के नहीं कहे तब इसके भी नहीं। आहाहा! अक्षर-अक्षर में (मर्म है)। अक्षर बेकार नहीं है। आहाहा! 'विभाव कार्य भी...' अर्थात् कि शरीरादि के कार्य तो आत्मा के नहीं, वाणी के नहीं, स्त्री कुटुम्ब के नहीं। आहाहा! परन्तु 'विभाव कार्य भी स्वरूपपरिणति नहीं है,...' आहाहा! 'मैं तो ज्ञायक हूँ'... मैं तो जानने-देखनेवाला ज्ञाता चैतन्यसूर्य, चैतन्य चन्द्र हूँ। आहाहा! जगत की चीज़ परज्ञेयरूप से और मैं उसका ज्ञाता, वह पररूप से है। आहाहा! मैं मेरा ज्ञाता और मैं मेरा ज्ञेय-जाननेवाला, यह निश्चय है। आहाहा! समझ में आया ?

'विभाव कार्य भी स्वरूपपरिणति नहीं है,...' यह विकल्प उठा है दया का, दान का, उसका यह संसार के कार्य के लिए जो विकल्प उठता है, कमाने का, भोग का, विषय का, स्त्री-पुत्र सम्हालने का वह तो पाप, वह तो पाप की परिणति है परन्तु यहाँ तो धर्म के नाम से दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम उठें... आहाहा! वह भी स्वरूप की परिणति नहीं है। वह विभाव परिणति है। आहाहा! ज्ञानी को होता है, परन्तु वह ज्ञानी उसे हेयरूप से

जानता है। आहाहा! एक चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वही उपादेय है। आदरणीय और सत्कार-स्वीकार करनेयोग्य होवे तो वह चैतन्यमूर्ति भगवान है। आहाहा! इसके सिवाय की क्रियाएँ जो यह सिद्ध पूजा और भक्ति पूजा और कर्मदहन की पूजा और अमुक पूजा और अमुक पूजा तथा बारह व्रत में इसकी दया पालन की और इसकी दया पालन की, यह सब विकल्प है। आहाहा! ये विभाव कार्य यह स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य, इसकी दशा नहीं है। आहाहा!

ऐसी साधक की परिणति होती है। धर्म का साधक जीव जो है... आहाहा! ज्ञायकस्वरूप जिसकी दृष्टि में आया है और जिसका परिणमन निर्मल हुआ है, ऐसा जो धर्मी सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान से लेकर। आहाहा! वह साधक है, चौथे से बारहवें तक (साधक है), परन्तु उस साधक की ऐसी परिणति होती है। आहाहा! यह तो पुस्तक बाहर आ गयी है। बहुत पढ़ते हैं, यह तो वेदान्ती भी पढ़ते हैं। सादी भाषा गुजराती। आहाहा! परन्तु इसके भाव...

मुमुक्षु : आपके पास से समझना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात, सूक्ष्म बात, भगवान! क्या कहें? आहाहा! इसमें जो भाव कहना चाहते हैं, वह समझना, स्वयं से समझना, पर से नहीं। आहाहा! गुरु कहते हैं, वह इसे समझने में आवे, वह भी परलक्ष्यी ज्ञान है। बात तो ऐसी है। इसका स्वज्ञायकमूर्ति भगवान ऐसा अकेला ज्ञान का पिण्ड पूरा है। जैसे चैतन्य प्रकाश और शीतलता का पिण्ड चन्द्र है; वैसे भगवान आत्मा ज्ञान और शान्ति का पिण्ड अन्दर प्रभु है। आहाहा! उसका ज्ञान सन्मुख होकर हो, वह ज्ञान और उसमें दृढ़तारूप से स्थिर होना, वह चारित्र - यह क्रिया। आहाहा! भाषा तो सादी परन्तु, बापू! भाव कोई अलग प्रकार के हैं। समझ में आया?

ऐसी साधक की परिणति होती है। सच्चे मोक्षार्थी को... सच्चे मोक्षार्थी को (अर्थात् कि) ऐसे कल्पित हम मोक्ष के अर्थी हैं, कल्पना करता है परन्तु वस्तु की स्थिति अन्दर नहीं है। आहाहा! बहुत-बहुत शल्य अन्दर होते हैं। जानपने के शल्य-अभिमान, बाहर का जाना और यह पढ़ा और इससे हम ऐसे दुनिया को कह सकते हैं। अरे! प्रभु! यह सब अभिमान है, बापू! आहाहा! ऐसी बात है।

भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारे सन्मुख देखकर तुझे जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान नहीं

है। तेरी अन्तरवस्तु के सन्मुख देखकर जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान है। आहाहा! यह तीन लोक के नाथ ऐसा पुकारते हैं, जिनेश्वरदेव! आहाहा! वे तो झपट मारे ऐसे, आहाहा! कर्म ने आड़ा... आता है न? स्थानकवासी स्तुति बोले, 'कर्म से राजा, कर्म से रंक, कर्म ने डाला आड़ा अंक' थोड़ा बोले पहले, स्तुति पाँच मिनट (चले), फिर व्याख्यान शुरू करे। सुननेवाले को खबर (नहीं होती)। बनिये सब कठिनता से मजदूरी करके आये हों। बड़ी मजदूरी।

मुमुक्षु : सेठाई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठाई किसकी? हेठाई है। ऐई! आहाहा! बड़ा मजदूर है। वे मजदूर हैं, वे तो आठ से बारह (ऐसे) चार घण्टे काम करते हैं और उन चार घण्टों में भी वापस एकाध दो बार पेशाब करने जाए, और कोई ऐसा ढीला देखे तो हाथ में कलश लेकर दस्त को जाए और आधा समय व्यतीत करे। और यह तो भाईसाहब... दो से छह वापस (मजदूरी करे)। पहले आठ से बारह, पश्चात् दो से छह। उसमें भी एकाध बार गप्प मारे। यह तो देखा है न। एकाध बार दो बार पेशाब करने जाए, उसमें बीस, दस मिनट, पाव घण्टा निकाल डाले, मुझे ठीक नहीं है, मैं दस्त करने जाता हूँ, दस्त (करने जाता हूँ), न हो तो भी जरा... यह बनिया मजदूर सबेरे उठे छह बजे से वह चार बजे से रात्रि को नौ बजे तक। बड़ा मजदूर। ऐ चिमनभाई!

हमारे घर में ऐसा कहता था, कुँवरजीभाई को कहता था। (भागीदार) दुकान चलाते थे। बुद्धि थोड़ी थी परन्तु पुण्य था। आमदनी बहुत होती, दो-दो लाख की वार्षिक आमदनी। पहले जब कहा था, तब थोड़ी थी। (संवत्) १९६६ के वर्ष, १९६६ के वर्ष। दो दुकानें थी न! एक दुकान में मैं और उनका बड़ा भाई भागीदार तथा एक दुकान में मेरा बड़ा भाई और वे दोनों भागीदार। परन्तु मैं तो पहले से भगत कहलाता था, इसलिए (मेरे सामने कोई बोलता नहीं था)। कुँवरजीभाई! यह क्या करते हो पूरे दिन? गाँव में एक साधु आवे तो निवृत्ति नहीं, रात्रि को आठ बजे जाए। मैंने बहुत कहा। १९६६ का वर्ष। कितने वर्ष हुए? १९६८। याद रखो! कहा, तुम मानो हम बनिया हैं, इसलिए माँस और शराब खाते (पीते) नहीं, इसलिए नरक में तो नहीं जाओगे परन्तु याद रखो यहाँ मनुष्य होने के योग्य तुम नहीं लगते तथा देव होने के योग्य नहीं। तुम्हारे लिए एक ढोर की गति है, कहा।

१९६६ में कहा था। पशु होने का -वक्रता का पार नहीं होता। पूरे दिन राग.. राग.. राग.. राग.. राग.. राग..। वक्रता करके आड़ा तिर्यच होगा, वहाँ जाना पड़ेगा। आहाहा! एकाध-दो घण्टे सुनने आवे तो मानों पुण्य हो, पुण्य। धर्म तो वहाँ कहाँ है? और बाईस घण्टे का पाप। ऐरण की चोरी और सुई का दान। आहाहा! भाई! तेरा पुण्य का भी उद्धार नहीं होगा इसमें तो। आहाहा! ऐई!

मुमुक्षु :कितने घण्टे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापार के लिए कितने घण्टे हैं, ऐसा बाँधता है यह? परदेश में जाकर, स्त्री, पुत्र, परिवार सब छोड़कर कितना समय परदेश में रहूँ, छह महीने, बारह महीने, ऐसा कहते हैं? पैसे करोड़ों हो गये। ये सब अजितभाई और सब वहाँ परिवार छोड़कर वहाँ परदेश में रहे। देखो! बड़े पैसेवाले हो गये। यहाँ कहाँ था? यहाँ तो साधारण था। वहाँ तो साठ-सत्तर लाख हो गये। ऐसे तो करोड़पति बहुत हैं वहाँ अपने। धूल में भी नहीं। परन्तु उसमें है क्या? वहाँ अवधि बाँधता है? कि मुझे पाँच लाख होवे तो बस! ऐई!

हमारे वह आया है या नहीं? हसमुखभाई आया है न? है न? कहाँ है? यह बैठे। हमारे हसमुखभाई गाँधी बोटद के सम्प्रदाय के हैं। हम वहाँ के थे न! वहाँ के हैं। ४२ वर्ष की उम्र है। मुम्बई में दुकान दो-तीन लाख की आमदनी की लोहे की (दुकान) स्वयं ने की हुई, जमायी हुई। जमायी हुई तो कहलाती है, पुण्य के कारण (जमी हुई)। दो-तीन लाख की आमदनी, दो छोटे भाईयों को शामिल रखा। डेढ़ वर्ष, दो वर्ष पहले कह दिया, भाई! अपने तीन भाई हैं, उसमें तीसरा भाग मुझे दो, अब मुझे दुकान नहीं आना है। मुझे दुकान नहीं करना है, नहीं चलाना है। तीसरा न दो तो चौथा भाग दो। ४२ वर्ष की उम्र है। एक लड़की तेरह वर्ष की और लड़का बारह वर्ष का है। बस! भाई ने पाँच लाख दिये। दुकान बन्द करके सामने देखना नहीं। ४२-४३ वर्ष के।

यहाँ तो पचास-पचास लाख, साठ लाख (होवे) तो निवृत्त नहीं। पचपन वर्ष हो तो नौकरी में से भी बाहर करते हैं। यहाँ तो साठ होवे तो भी निवृत्त नहीं होता, मजदूर। ऐ चिमनभाई! और वह भी यह स्वयं अभी अकेला व्यक्ति है। पूरे दिन वाँचन और बस पाँच लाख का एक महीने का पाँच हजार ब्याज आता है, वह सब शास्त्र में और गरीबों को दे

देता है। यहाँ आया है, आठ दिन से है। अभी बारह दिन रहेगा। शनिवार, रविवार को कायम आता है। भावनगर है। लोगों को शर्म आवे ऐसा है यह। आहाहा!

मुमुक्षु : इसीलिए तो आप कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! अब तू यह सब मजदूरी छोड़ और आत्मा के सन्मुख की कुछ क्रिया कर। भाई! तुझे जन्म का अन्त लाना हो तो, भव का अन्त लाना हो तो। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा में प्रभु! अनन्त निगोद के भव उसके गर्भ में पड़े हैं, नाथ! तुझे खबर नहीं। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा, जैसे यह ज्ञान हुआ और यह मुझे ज्ञान हुआ, यह मिथ्याश्रद्धा है, इसमें अनन्त गर्भ है, जन्म-मरण का गर्भ अनन्त हो, वे पड़े हैं, बापू! भाई! क्या हो? आहाहा! यहाँ कहते हैं...

मुमुक्षु : उसकी मजदूरी उत्साह से करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्साह से करता है, करता है न पूरा। आहाहा! अधिक और ग्राहक मिला हो और पाँच, दस हजार की आमदनी होती हो, महिलाएँ ऐसी मिल गयीं बेचारी साधारण सब (तो) एक समय का दो समय कर डाले। लड़का आवे (और कहे कि) बापूजी! समय हो गया। (तो कहे) रहने दे, मैं बाद में आऊँगा। भरवाड़ की महिलाएँ ऐसी आयी हों, कपड़े का व्यापार ठीक हो और उसमें पाँच हजार की आमदनी होगी दो-तीन घण्टे में, इतना सब (माल) लेने आये हैं। चाय भी रख दे और निश्चित बेला भी छोड़ दे, ऐसा बनिया है। ऐ.. चिमनभाईभाई! यह सब जाना है न। ऐसा ही है। आहाहा! अरे! मेरा क्या होगा? भाई! मैं यहाँ से कहाँ जाऊँगा? कोई सामने आयेगा नहीं, भाई! अकेला तू आया और अकेला जाएगा और अकेला रहेगा। आहाहा!

यहाँ साधक को... आहाहा! **सच्चे मोक्षार्थी को...** 'सच्चा' शब्द क्यों प्रयोग किया? ऐसे तो कहे, हम धर्म करते हैं और हम तो ऐसा करते हैं। सब कल्पना का अन्दर अभिमान होता है। सच्चा मोक्ष का अर्थी, मुझे संसार से छूटना है। अरे रे! परिभ्रमण कर-करके कचूमर निकल गया। आहाहा! यहाँ अरबोंपति हो, वह मरकर, आहाहा! बकरी के गर्भ में बच्चा हो। ऐसे पाप माँस के, शराब के न हो तो वह वहाँ जानेवाले हैं सब बहुत। आहाहा!

सच्चे मोक्षार्थी को भी... अर्थात् ऐसे साधक की तो परिणति ऐसी होती है परन्तु अब **सच्चे मोक्षार्थी को भी...** ऐसा लिया। है न 'भी'? ऐसी बात वहाँ कोई तुम्हारे मिले ऐसा नहीं है, कलकत्ता में और क्या कहलाता है? मुम्बई! आहाहा! अपने मण्डल के प्रमुख हैं। यह साथ में (बैठे वे) इनके मन्त्री हैं। इनके पिता पोपटभाई को प्रमुख ठहराया था। गुजर गये, अब यह प्रमुख है। आहाहा! किसका प्रमुख? भाई! प्र-मुख—विशेष मुख्य। प्रमुख तो भगवान आत्मा, जिसकी मुख्यता में पड़ा हो जिसे। जिसकी दृष्टि में पर्याय की भी कीमत नहीं, राग की और पैसे की तो कीमत कहाँ गयी? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को तो उसे राग आवे दया, दान का, उसकी कीमत नहीं है, धूल मिले, चक्रवर्ती का राज (मिले), उसकी कीमत नहीं है। आहाहा! दया, दान के शुभभाव वाँचन-श्रवण में आवे, उसकी भी कीमत नहीं है। आहाहा! अरे! पवित्र परिणति प्रगट हो, उसकी भी ज्ञानी को कीमत नहीं है; कीमत तो द्रव्य की है। कठिन काम है, भाई! यह तो चलता विषय नहीं न जगत में, इसलिए लोगों को (कठिन पड़ता है) वस्तु तो अनादि से ऐसी ही है। आहाहा!

सच्चे मोक्षार्थी को भी... अर्थात् साधक तो ऐसा होता ही है परन्तु मोक्ष का अर्थी सच्चा हो, उसे **अपने जीवन में ऐसा घुँट जाना चाहिए**। आहाहा! जैसे इसकी माँ की अंगुली में होवे यह और दो-पाँच हजार लोगों में माँ आगे चली गयी और अंगुली से लड़की छूट गयी, फिर उसे पूछे तू कहाँ का? कहाँ की लड़की तू? मेरी माँ। तेरा नाम क्या? मेरी माँ। तेरी कोई सहेली या उसका कुछ नाम? मेरी माँ, बस। माँ, वह माँ, मेरी माँ किया करे। और मैंने तो वहाँ नजरो से देखा है। पोरबन्दर में उपाश्रय के पास एक लड़की खो गयी और लोग पूछने लगे तो एक ही बात करे। यह किस गली की है तो वहाँ ले जाएँ। वह तो एक ही (रटन करे) तेरी सखी कौन? मेरी माँ, मेरी माँ, बस। आहाहा! इसी प्रकार सच्चे मोक्षार्थी को मेरा भगवान आत्मा ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक घोंटना चाहिए। ऐसा है, प्रभु! आहाहा!

अपने जीवन में ऐसा घुँट जाना चाहिए। भले प्रथम सविकल्परूप हो,... पहले रागमिश्रित विचाररूप भले हो। आँगन में मन के सम्बन्ध से, राग के सम्बन्ध से भले ऐसा विचार हो, सविकल्प अर्थात् रागमिश्रित विचार। **भले प्रथम सविकल्परूप हो, परन्तु**

ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिए। ऐसा पक्का निर्णय करना कि ज्ञायक मेरा नाथ प्रभु ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक। आहाहा! उसका इसे रटन और घोंटन (हो जाना चाहिए)। भले इसे विकल्प सहित ऐसा हो।

पश्चात् जल्दी अन्तर का.. है ? पुरुषार्थ करे... पहले विकल्प से निर्णय करे, मेरा नाथ प्रभु चैतन्यमूर्ति ज्ञायक है, वह मैं हूँ और मुझे वहाँ जाना है, मुझे ऐसा रहना नहीं इसमें। आहाहा! पश्चात् जल्दी अन्तर का पुरुषार्थ करे तो जल्दी निर्विकल्प दर्शन हो,... यह विकल्प टूटकर स्वानुभूति हो। पहले जो स्वानुभूति कही वह। आहाहा! आनन्द का अनुभव हो। विकल्पसहित किया और पश्चात् (विकल्प) तोड़कर अन्दर अनुभव करे तो अतीन्द्रिय आनन्द का वहाँ स्वाद आवे। इसका नाम सम्यग्दर्शन और सच्चा ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! बहुतों का तो अन्दर से पानी उतर जाए ऐसा है। आहाहा! बापू! मार्ग अलग, भाई! आहाहा!

निर्विकल्प दर्शन हो,... अर्थात् विकल्प अर्थात् रागमिश्रित विचार था, वह स्वरूप की दृढ़ता में अन्दर गया। आहाहा! घर में प्रविष्ट हुआ। आहाहा! 'अब हम कबहूँ न निज घर आये, पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये।' मैं पुण्यवाला और दयावाला और मैंने भक्ति की, मैंने व्रत पालन किये, यह किया और... पर घर की बातों में अभिमान चढ़ गया प्रभु तुझे। आहाहा! परन्तु 'अब हम कबहूँ न निज घर आये' चैतन्यमूर्ति स्वधाम आत्मा में एक समय भी आया नहीं। आहाहा!

आज तो भक्ति में आया था। सन्तोषभाई ने एक नहीं गाया था? बहिन के उसमें है, उसमें। आहाहा! अन्तर के आनन्द के अनुभव में से विकल्प आता है बाहर, भक्ति का दया का विकल्प आता है तो अरे रे! हम कहाँ परदेश में आ चढ़े? है न? पहले गया न? अब आयेगा? कितने में? ४०१ आया। आया, यही आया, ४०१ बोल है। है? पहली लाईन यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। आहाहा! ४०१ की तीसरी लाईन। जो रागादि विकल्प आवे दया, दान, व्रत का भी (आवे), वह हमारा देश नहीं है, नाथ! आहाहा! अरे रे! हम परदेश में आ पड़े।

मुमुक्षु : परदेश में तो बहुत रुपये कमावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं कमाता। परदेश है ही कहाँ ? यह तो राग, वह परदेश है। आनन्द का नाथ शुद्ध चैतन्यमूर्ति, वह इसका स्वदेश है। आहाहा ! है ?

हमारा देश नहीं है। इस परदेश में हम कहाँ आ चढ़े ? यहाँ हमें सुहाता नहीं है। धर्मी को, राग में आया, परन्तु कहता है, हमको इसमें सुहाता नहीं है। आहाहा ! भक्ति का, दया का, दान का, वाँचन का, कहने का विकल्प आया परन्तु भाई ! हमें यहाँ सुहाता नहीं है, यह हमारा देश नहीं है। आहाहा ! है ? यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्य आदि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है... मेरा परिवार तो अन्दर में ज्ञान, दर्शन, आनन्द वर्तता है। आहाहा ! वह हमारा स्वदेश है। हम अब उस स्वरूप स्वदेश की ओर जा रहे हैं। हमें त्वरा से हमारे मूल वतन में जाकर... यह मूल वतन है। आहाहा ! ज्ञाता-दृष्टा भगवान बैठा है, वह इसका मूल वतन है। विकल्प में, व्यवहार, दया, दान के विकल्प में आना, यह इसका मूल वतन नहीं है। आहाहा ! उसके बदले यहाँ तो अभी बाहर में, यह मेरा देश और यह मेरा काठियावाड़, यह मेरी स्त्री, और यह मेरा पुत्र... मर गया। मार डाला आत्मा को। आहाहा !

आया है न, पहले नहीं आया ? कलश-टीका में आया है। जीव को मरणतुल्य कर डाला है। कलश टीका में है। इन जीवों ने मरणतुल्य कर डाला है। तीर्थकर के उपदेश के सिवाय यह भ्रान्ति टले, ऐसा नहीं। आहाहा ! कलश-टीका में है। समझ में आया ? आहाहा ! चैतन्य जीवनज्योति आनन्द का नाथ, उसका स्वीकार न होकर, इन पुण्य-पाप के परिणाम का स्वीकार होकर प्रसन्न हो, उसमें चैतन्य के स्वभाव की अस्ति को मार डाला, उसे मरणतुल्य कर डाला। आहाहा ! यह तीर्थकर त्रिलोकनाथ के वचन के सिवाय, उपदेश के सिवाय, उनके भाव के सिवाय यह भ्रान्ति मिटे, ऐसी नहीं है। आहाहा ! उसमें-कलश टीका में है। आहाहा !

अब यहाँ अपने आ गया न ? थोड़ा है वह। ३५० न ? आहाहा ! देर करे तो देर से हो। थोड़ी बात है, परन्तु अब बाद में विशेष कहेंगे... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

आसोज कृष्ण-१३, रविवार, दिनाङ्क २९-१०-१९७८
वचनमृत-३५० से ३५२ प्रवचन-१३४

३५१, ३५०वाँ अभी ऊपर का थोड़ा फिर से लेते हैं, थोड़ा। निर्विकल्प स्वानुभूति करके,... है न? आहाहा! प्रथम में तो इसे मन के संग से, विकल्प से ऐसा निर्णय अन्दर करना कि मैं ज्ञायक हूँ, शुद्ध हूँ, अभेद हूँ - ऐसा इसे विकल्पसहित निर्णय (करना चाहिए)। तब वहाँ आगे इन्द्रियों का विषय रुक जाता है। मात्र मन के विषय में, अन्तर में मन के विकल्प में ऐसा निर्णय (करे, तब) इन्द्रिय के विषय का लक्ष्य उस समय छूट जाता है। विकल्पसहित निर्णय करने में भी वह कोई वास्तविक वस्तु नहीं है। आहाहा! परन्तु वह पहले आता है। पाँचों इन्द्रियों के ओर के झुकाव की लक्ष्यदशा छोड़कर अन्दर का मन का एक विकल्प है, इतना भाग अन्दर रह जाता है। उससे... आहाहा! चैतन्य आनन्दनाथ प्रभु अभेद ज्ञायकस्वरूप है, उसका विकल्प अर्थात् रागमिश्रित विचार में निर्णय आवे परन्तु ऐसा निर्णय होवे कि जो पुरुषार्थ अन्तर में करे तो उसका विकल्प टूटकर निर्विकल्पदशा होती है। आहाहा! तब उसे धर्म / सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! लाख शास्त्र जाने हों, करोड़ जाने हों सब, वह कुछ काम वहाँ नहीं करते।

मात्र मन के सम्बन्ध से... आहाहा! मन के सम्बन्ध में इन्द्रियों का सम्बन्ध तो रुक गया अन्दर, उस मन के संग से राग का विकल्प है, परन्तु उस द्वारा आँगन में, आँगन में, आँगन में खड़े रहकर; चैतन्यद्रव्य में खड़े रहकर नहीं, यह विधि। आँगन में खड़े रहकर भगवान् द्रव्यस्वभाव; जैसे जवाहरात की दुकान से भरे हुए जवाहरात हो, वैसे इस आँगन में आकर निर्णय करे कि इसमें यह जवाहरात है। इसी प्रकार भगवान् आत्मा अनन्त-अनन्त जवाहरात आनन्द के सागर से भरपूर भगवान्... आहाहा! अनन्त चैतन्यरत्न से, जवाहरात से भरपूर प्रभु है। आहाहा!

मेरा प्रभु वह इतना इतना है कि द्रव्य के स्वभाव की कीमत के समक्ष सिद्ध की

पर्याय की भी कीमत नहीं है। आहाहा! आज तो खेमचन्दभाई को देखकर (ऐसा लगा)... आहाहा! ख्याल तो था कि असाध्य होंगे। सुनने का तो प्रसंग नहीं (बने) परन्तु अब देखो तो सही वैराग्य, आहाहा! ऐसे पड़े हैं। दस मिनिट लोगों ने बुलाया, महाराज आये हैं। आहाहा! ऐसी स्थिति, बापू! आहाहा! अब वहाँ उसे करना क्या रहे? पहले से ऐसी स्थिति न हो (कि) वह तो जड़ है, मिट्टी है, अनन्त परमाणु है। एक-एक परमाणु कैसे परिणामे, वह तो स्वतन्त्र उसकी पर्याय का जन्मक्षण होगा, उत्पत्ति का-पर्याय का उत्पत्ति काल होगा, तब होगी। तू उसकी सम्हाल कर तो रहे, ऐसा है नहीं। आहाहा!

इसलिए शरीर सम्बन्धी की पाँच इन्द्रियाँ, हैं न? (समयसार गाथा) ३१ में (कहा है कि) शरीर को प्राप्त पाँच इन्द्रियाँ, ऐसा पाठ है। आहाहा! वे जड़, वे इन्द्रियाँ शरीर के परिणाम को प्राप्त हैं। आहाहा! उनसे भगवान, अन्दर परिणाम राग के भले हों परन्तु राग की भूमिका में ऐसा निर्णय प्रथम स्वलक्ष्य करने के लिए ऐसा होता है कि यह प्रभु पूर्णानन्दनाथ मोक्षस्वरूप ही है। मुझे मोक्ष करना है, वह पर्याय में मोक्ष करना है। आहाहा! मात्र मोक्ष अभिलाष-आता है न? श्रीमद् में आता है। बात-शब्द थोड़े, परन्तु बापू! उनके भाव (बहुत गम्भीर)।

अभी परलक्षी विकल्प की श्रद्धा में भी यह आना चाहिए कि यह परिपूर्ण कोई महाप्रभु है, कोई तत्त्व है, मुक्तस्वरूप है, बन्धरहित है। ऐसा अन्तर में मन के संग से भूमिका में, पर्याय में खड़ा ऐसा निर्णय करे। वह निर्णय करने में, परन्तु बाद में उसे तोड़कर स्वरूप में जाना है, यह लक्ष्य वहाँ है। आहाहा! ऐसी कठिन बात, भाई! अरे! अनन्त काल तो इसने व्यतीत किया। शास्त्र के ग्यारह अंग पढ़े हैं, करोड़ों-अरबों-अरबों श्लोक कण्ठस्थ किये। उनमें इसे यह बात नहीं आयी थी? आहाहा! परन्तु यह अन्दर जो मेरी चीज प्रभु पूर्ण है, परमात्मा कहते हैं, ऐसा यहाँ है—ऐसा विकल्प से निर्णय करे।

पहले आ गया है इसमें। भले प्रथम सविकल्परूप हो,... ऊपर आ गया है। परन्तु ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिए। कि पश्चात् जल्दी अन्तर का पुरुषार्थ करे... आहाहा! तो जल्दी निर्विकल्प दर्शन हो,... आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : जल्दी अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जल्दी, अब इसका अर्थ ऐसा एकदम। अर्थात् क्या ? यह प्रश्न क्या ? विकल्प से अन्दर निर्विकल्प होना है, उसके लिए विकल्प किये हों और तुरन्त विकल्प तोड़कर अन्तर में जाना। जल्दी अर्थात् क्या ? तुरन्त आवे वह तो।

मुमुक्षु : जरा भी समय गँवाये बिना।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुरन्त में। परन्तु यह तो जल्दी का अर्थ यह दुनिया नहीं करती ? यह काम जल्दी करो, इसका अर्थ क्या ? यहाँ आओ, अन्दर में जाओ, प्रभु ! आहाहा ! जहाँ भगवान पूर्णानन्द का सागर विराजता है, वहाँ जा। उस विकल्प को भी तोड़कर वहाँ जा, तब निर्विकल्परूप से परिणति हो, उसका नाम इसकी धर्म की शुरुआत की दशा कहा जाता है, बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा ! समझ में आया ?

देर करे तो देर से हो। देखा ? यह क्या कहा ? कि विकल्प से अन्दर में निर्णय किया। इन्द्रियों के विषय बन्द करके अर्थात् कि भगवान की वाणी सुनना और भगवान को देखना, वह भी बन्द करके। आहाहा ! इन्द्रियों को बन्द करना अर्थात् भगवान तीर्थकर हैं, उनकी वाणी, वह प्रतिमा और वे सब इन्द्रिय है। इन्द्रिय (अर्थात्) यही इन्द्रिय, ऐसा नहीं। यह जड़ इन्द्रिय है, यह मिट्टी शरीरपरिणाम को प्राप्त, (समयसार गाथा) ३१ में (ऐसा कहा है) और खण्ड-खण्ड इन्द्रिय एक-एक विषय को बतलानेवाली अर्थात् ज्ञान को खण्ड-खण्ड बतलानेवाली, वह इन्द्रिय। वह इन्द्रिय और देव-गुरु और शास्त्र; स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, ये सब इन्द्रियाँ हैं—ऐसा कहते हैं। क्योंकि इन्द्रिय का विषय है, वह इन्द्रिय है। आहाहा ! यह पुस्तक है, वह इन्द्रिय है। इसका लक्ष्य वहाँ जाता है, वह इन्द्रिय का लक्ष्य जाता है न ? अर्थात् विषय है, वह स्वयं इन्द्रिय है, ऐसा कहते हैं। साक्षात् भगवान भी इन्द्रिय है। इस जीव अनीन्द्रिय की अपेक्षा से (इन्द्रिय है)। आहाहा ! यह सब पृष्ठ पढ़ना, वह भी इन्द्रिय का लक्ष्य है। आहाहा ! ऐसा है। अलग बात है, प्रभु ! हीराभाई ! यह पैसे की अपेक्षा अलग बात है। आहाहा !

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं, वह बात यहाँ आयी है कि इन्द्रियाँ अर्थात् यह जड़ इन्द्रियाँ शरीरपरिणाम को प्राप्त; भावइन्द्रिय जो ज्ञान का क्षयोपशम का वर्तमान विकास जो खण्ड-खण्ड ज्ञान को बतलावे, वह इन्द्रिय और उसका विषय देव-गुरु और शास्त्र तथा पृष्ठ पुस्तक सब, उन्हें भी परमात्मा इन्द्रिय कहते हैं। भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और यह

(उसका विषय)। आहाहा! उसका विषय बन्द करके मात्र मन के विषय में जुड़ान करके, उस विकल्पसहित का (निर्णय)। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द है, उसे ये विषय बन्द हुए परन्तु मन का विषय अभी रह गया। वास्तव में तो वह भी इन्द्रिय है। आहाहा! वह भावेन्द्रिय है न? आहाहा! परन्तु उसके विकल्प में निर्णय करके... प्रभु! ऐसा अवसर कब मिलेगा? भाई! आहाहा!

आहाहा! ऐसे जीते जी असाध्य हो जाए, आठ-आठ दिन असाध्य रहे। अरे रे! यह तो असाध्य है, परन्तु जिसे साध्य जो आत्मा लक्ष्य में, दृष्टि में नहीं, वे सब असाध्य हैं। प्रवीणभाई! जो इन इन्द्रिय के विषयों में ज्ञान पड़ा है, वह भी असाध्य है। आहाहा! भगवान ज्ञायकमूर्ति जो साध्य करना चाहिए, उसे न करके, उसे मन का ज्ञान और जानपना तथा राग में रुक गया... आहाहा! वह स्वरूप से असाध्य है। आहाहा! उस स्वरूप को साध्य करने के लिए मन के विकल्प को अन्दर से, यह परमात्मस्वरूप है, ऐसा अन्दर में (निर्णय करे), यह बात कहीं साधारण नहीं है। विकल्प से निर्णय करे, वह भी... तथापि वह वस्तु नहीं है। विकल्प से निर्णय है, वह कोई वस्तु नहीं है, धर्म नहीं है। आहाहा! परन्तु इतना विकल्प अन्दर सब रुककर मन के सम्बन्ध में अन्दर... आहाहा! विकल्प में ऐसा निर्णय करे, वह अन्दर कि यह ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्ण है, जिसमें राग तो नहीं परन्तु यह विकल्प जो मैं निर्णय करूँ, वह विकल्प उसमें नहीं। ऐसी बात है, भाई! उसे छोड़कर, विकल्प में निर्णय किया, अब तुरन्त ही इस ओर आ जाए, कहते हैं। अन्तर में जाने के लिए विकल्प का निर्णय था, वहाँ रुकने के लिए नहीं था। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यही करने को अन्दर में जाने के लिए यह तो एकदम निर्णय विकल्प से न हो तो निर्विकल्प एकदम नहीं हो सकता क्योंकि वीतराग जो सर्वज्ञ परमेश्वर आत्मा कहते हैं और जगत के जीव कहते हैं, उनमें क्या अन्तर है, ऐसा अन्तर का निर्णय करने को इसे विकल्प से (निर्णय करता है)। आहाहा!

वस्तु एक। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण जिसके, अनन्त की संख्या को अनन्त गुणा करे, अनन्त को अनन्त गुणा एक बार करो, बाद में संख्या आवे, उसे इतनी संख्या से दूसरी बार करे, फिर जो संख्या आवे, उसे इतनी बार तीसरी बार करे। इस प्रकार अनन्त बार करे तो भी आत्मा के गुणों का माप उस अनन्त में नहीं आता। आहाहा! ऐसा जो

परमात्मा, उसे बाहर का जानपने का भी लक्ष्य छोड़कर, कि हमको यह सब आया है और हमने जाना है, यह सब ठीक है, यह सब जाना है, वह सब है इन्द्रियज्ञान है, वह कहीं (आत्मज्ञान नहीं है)। आहाहा! इसे अनीन्द्रिय ऐसा जो भगवान, अनन्त गुण का सागर, वहाँ निर्विकल्प दृष्टि करने को पहले यह भाव आता है, पश्चात् तुरन्त ही कोई छोड़कर निर्विकल्प होता है। कोई देर करे तो देर से हो।

निर्विकल्प स्वानुभूति करके,.. आहाहा! यह विषय कहीं वाणी का नहीं है, यह कुछ जानपना किया, उसका यह विषय नहीं है। आहाहा! निर्विकल्प—राग के सम्बन्ध के सम्बन्ध को तोड़कर; तोड़कर यह भी नास्ति से है परन्तु ज्ञायकस्वभाव परमात्मस्वरूप को उसके घर में जाने में एकाग्र हो। आहाहा! इस प्रकार से निर्विकल्प होकर अर्थात् सम्यग्दर्शन प्राप्त करके। आहाहा! ऐसी बातें। **स्थिरता बढ़ाते-बढ़ाते,..** आहाहा!

मुमुक्षु : प्राप्त होने के बाद की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्राप्त होने के बाद की बात है। वस्तु, ज्ञान की पर्याय में वस्तु ज्ञेयरूप हुई। क्या कहा? जो ज्ञान की पर्याय का विकास अंश है, उसमें जो पर का ज्ञेय होता था, वह मिथ्या था। आहाहा! उसे स्व का ज्ञेय पर्याय में (करने को), जिसकी जो पर्याय है, उसे लक्ष्य में लेने को... आहाहा! जिसने पर्याय में ज्ञानस्वरूपी भगवान अनन्त गुण का पिण्ड को जिसने ध्येय बनाकर निर्विकल्पता की, तब वह धर्म को प्राप्त हुआ और समझा, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : बारम्बार समझने जैसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह फिर से कहा, बापू! कल कहा था। यही विधि है। दूर आता है न?

स्थिरता बढ़ाते-बढ़ाते,.. आहाहा! अतीन्द्रिय के नाथ भगवान में अनुभव होने के पश्चात् अतीन्द्रिय आनन्द में स्थिरता बढ़ाने पर, आतमराम अन्तर में रमते-रमते... आहाहा! जो अभी अस्थिरता थी, विकल्प से निर्णय किया, निर्विकल्प अनुभव हुआ, तथापि अभी अस्थिरता का रागभाग था, उसे अब स्वरूप में, जो स्वरूप ज्ञान में ज्ञात हुआ है, उसमें स्थिरता करके। आहाहा! वह **स्थिरता बढ़ाते-बढ़ाते, जीव मोक्ष प्राप्त करता है।** आहाहा! कहो! सुजानमलजी! ऐसा है, प्रभु! आहाहा!

यह आनन्द का नाथ सागर जहाँ अनुभव में आया, अनुभव में अर्थात् उसका अनुभव हुआ। इस पर्याय में वह चीज़ आती नहीं। आहाहा! जैसे बिजली का करंट लगे, वैसे पर्याय में उसका ज्ञान हो, वहाँ आनन्द की झनझनाहट आती है। आहाहा! उसे यहाँ निर्विकल्पदशा अथवा उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! और उस सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी जो वस्तु ज्ञान में प्रत्यक्ष ज्ञात हुई है, उस ज्ञानानन्दस्वभाव में स्थिरता... स्थिरता.. स्थिरता जमते-जमते मोक्ष हो जाता है। आहाहा! यह मोक्ष का उपाय है। है ?

इस विधि के सिवा... है ? इस विधि के सिवा मोक्ष प्राप्त करने की अन्य कोई विधि नहीं है। आहाहा! अरे रे! जगत कहाँ खड़ा है, कहाँ स्वयं मानता है। आहाहा! व्रत, तप, भक्ति और यह राग। पढ़कर शास्त्र का ज्ञान करना, वह भी राग। शास्त्र का ज्ञान करना, वह ज्ञान भी पराधीन, परसत्तावलम्बी (होने से) वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा! क्योंकि यदि बन्ध का कारण न हो तो उसमें से कुछ अबन्ध का अंश आना चाहिए। उस अबन्ध का अंश इस शास्त्रज्ञान-पढ़ने से नहीं आता। आहाहा!

अबन्धस्वरूप अर्थात् मुक्तस्वरूप भगवान के आश्रय से, उसके अवलम्बन से उसमें अहंपना जमने से आनन्द की दशा आती है। उसे यहाँ धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म की शुरुआत यहाँ कहने में आती है, बाकी सब बातें हैं। आहाहा! पश्चात् स्वरूप जैसा जाना है-पूर्ण आनन्दकन्द प्रभु (जाना है), उसमें रमने से, जमने से, चरना, चरना अर्थात् रमना। जैसे पशु चरता है न? तो वस्तु को चरता है न? घास को या ढेले को? आहाहा! उसी प्रकार अन्दर आनन्द का नाथ (है), उसके आनन्द का भोजन करे, चरे। अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करे, उसका नाम आत्मा की स्थिरता कहने में आती है। आहाहा! वह करने से, इस विधि से मोक्ष प्राप्त करने की यह विधि है, अन्य कोई विधि नहीं है। आहाहा! इतने शब्दों में इतना भरा है।

किसी भी प्रसंग में एकाकार नहीं हो जाना। मोक्ष के सिवा तुझे और क्या प्रयोजन है? प्रथम भूमिका में भी 'मात्र मोक्ष-अभिलाष' होती है।

जो मोक्ष का अर्थी हो, संसार से जो थक गया हो, उसके लिए गुरुदेव की वाणी का प्रबलस्रोत बह रहा है, जिसमें से मार्ग सूझता है। वास्तव में तो अन्तर से थकान लगे तो, ज्ञानी द्वारा कुछ दिशा सूझने के बाद अन्तर ही अन्तर में प्रयत्न करने से आत्मा मिल जाता है ॥३५१॥

३५१। किसी भी प्रसंग में एकाकार नहीं हो जाना। आहाहा! संयोग के किसी प्रसंग में—स्त्री, कुटुम्ब में प्रसंग आया हो, वहाँ भी एकाकार नहीं हो जाना। देव-गुरु और शास्त्र की भक्ति का प्रसंग आया हो, वहाँ भी एकाकार नहीं हो जाना। आहाहा! मोक्ष के सिवा तुझे और क्या प्रयोजन है? यदि तुझे धर्म और धर्म का फल चाहिए हो तो। धर्म वह मोक्षमार्ग और फल वह मोक्ष। आहाहा! यदि तुझे मोक्ष के सिवा कोई प्रयोजन है? प्रथम भूमिका में भी... यह श्रीमद् का शब्द है। 'मात्र मोक्ष-अभिलाष' होती है। आता है न? श्रीमद् में आता है। मात्र मोक्ष-अभिलाष। कोई स्वर्ग और पुण्य और यह मिले तथा दुनिया जाने और दुनिया मुझे माने और मुझे कुछ आता है, इस क्षयोपशमवाला हूँ, ऐसा दुनिया माने, यह सब मिथ्या भ्रमणा है। आहाहा!

'मात्र मोक्ष-अभिलाष'... मोक्ष अर्थात् परम अतीन्द्रिय आनन्द का आत्मलाभ अर्थात् मोक्ष। परम अतीन्द्रिय आनन्द का आत्मलाभ, इसका नाम मोक्ष। बनिये, 'लाभ सवाया' लिखते हैं। लिखेंगे न दीवाली के दिन? लाभ सवाया। परन्तु किसका लाभ। धूल का? आहाहा! भगवान तीन लोक का नाथ, आनन्द का सागर, जिसे ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ। आहाहा! वह जहाँ कोई भी प्रसंग में हो तो उस पर में एकाकार नहीं होता। आहाहा! कोई भी प्रसंग में... आहाहा! उपदेश का प्रसंग हो और उपदेश का भी विकल्प हो... आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें शब्दों में तो नहीं, परन्तु विकल्प है, उसमें एकाकार नहीं

होना क्योंकि वह चीज़ भिन्न है। आहाहा! उपदेश के प्रसंग में भी विकल्प में एकाकार नहीं होना। आहाहा! कोई प्रसंग में कहा है न? वह भी प्रसंग है न! आहाहा!

मुमुक्षु : उपदेश की अभिलाषा करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के उपदेश की अभिलाषा करना, वह भी राग है, नुकसान का कारण है।

मुमुक्षु : मोक्ष की अभिलाषा करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष की अभिलाषा-इच्छा भी नुकसान का कारण है।

यहाँ तो मोक्ष की भावना को अभिलाषा कहने में आया है। आहाहा! दूसरा क्या है? मोक्ष की इच्छा है, वह भी मोक्ष को रोकती है। आहाहा! वास्तव में तो वस्तु की दृष्टि होने पर, अनुभव होने पर, साधक होने पर उसे मैं मोक्ष करूँ, ऐसा भी उसकी भावना में नहीं है। कर्ताबुद्धि नहीं है। मैं ज्ञायक त्रिकाल हूँ, उसमें स्थिरता होने का प्रयत्न करता है और मोक्ष की पर्याय तो उस काल में, होने के काल में हो ही जाएगी। सम्यग्दर्शन हुआ और आत्मा का हुआ, पश्चात् मैं यह करूँ, इस परिणाम के परिणाम करूँ, ऐसी बुद्धि उसे नहीं है। ऐसी सूक्ष्म बात, बापू!

इस परिणाम को करूँ, यह बुद्धि नहीं है। क्योंकि वह परिणाम उस काल में जो होनेवाला है, वह होगा ही, ऐसा होगा ही, उसकी योग्यता से होगा, क्रमबद्ध में होगा, उसकी दृष्टि कहाँ है? ज्ञायक पर दृष्टि है। समझ में आया? उसे परिणाम करना, इस पर दृष्टि नहीं है। ऐसा गजब मार्ग, भाई! अरे रे! परिणाम को करूँ, तो ऐसा करूँ, वहाँ बुद्धि जाती है परन्तु परिणाम, वह स्वभाव जो परमस्वभाव, उसका अनुभव और दर्शन हुआ तो उसकी दृष्टि का जोर तो द्रव्य के ऊपर ही रहता है। परिणाम ऐसे करूँ और ऐसे न करूँ, यह बात नहीं रहती। क्योंकि वस्तु में एक भाव नाम का गुण है। जैसे ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है, शान्तिगुण है—शान्ति अर्थात् चारित्र / वीतरागता। इसी प्रकार एक भाव नाम का गुण है कि जिस गुण की वर्तमान पर्याय गुण के कारण होवे ही। ऐसा करूँ तो हो, यह प्रश्न ही वहाँ नहीं है। भाव, सैंतालीस शक्ति है न? आहाहा! कठिन बातें, बापू! बहुत (कठिन) भाई!

यह भाव नाम का गुण और गुण का धारक गुणी, उसकी जो दृष्टि में अनुभव हुआ, उससे उस भाव नामक गुण के कारण वर्तमान पर्याय होगी ही। होगी उसे करूँ, यह बात रहती नहीं। ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? अथवा जीव में एक क्रिया नाम का गुण है। उस गुण के धारक गुणी को दृष्टि में लिया, इससे उस भाव के कारण षट्गुण की विकृत अवस्था जो होती है, उससे रहित परिणमन होगा ही। भाव और क्रिया दो गुण हैं न! आहाहा! गजब काम किया है। सैंतालीस शक्ति का वर्णन गजब है। आहाहा!

यह भगवान आत्मा जहाँ दृष्टि में आया, तब उसके गुण भी इसकी प्रतीति में आये। वस्तु की प्रतीति निर्विकल्परूप से हुई, तब गुण की भी प्रतीति इकट्टी भेद से नहीं परन्तु आयी। तो जो गुण अन्दर में भाव और क्रिया नामक दो गुण हैं कि जो इस षट्कारक का विकृतरूप से परिणमन होता है, उससे रहितपना होना, ऐसा एक उसका गुण है। उसे रहित करना है, ऐसा नहीं। समझ में आया? और एक गुण ऐसा है कि भगवान आत्मा के षट्गुण जो निर्मल हैं—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—इन गुण का धारक द्रव्यस्वभाव जहाँ दृष्टि में आया, इससे षट्गुण की शक्ति के कारण निर्मल परिणति क्रमबद्ध में होगी ही। ऐसा है, चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं जरा। धारावाही परिणमन होगा ही। उसे ऐसे करूँ, उस परिणाम को और यह करूँ, इस परिणाम को, (ऐसा नहीं है) ऐसी बात है। आहाहा! होता है, उसे करना वह क्या? क्या कहा, समझ में आया? हीराभाई! सूक्ष्म है, बापू! वस्तु ऐसी है। आहाहा!

जहाँ भगवान अनन्त-अनन्त परिणाम और गुण का पिण्ड प्रभु, ऐसे जो गुणी को अन्तर में निर्विकल्परूप से सम्यग्दर्शन में, अनुभव में, प्रतीति में वस्तु आयी है, अब तो उसे जो परिणाम जिस समय के जो होनेवाले हैं, उस गुण के कारण होंगे ही। आहाहा! कठिन बात है, हों! आहाहा! यह तो ज्ञाता-दृष्टा रहकर... ज्ञाता-दृष्टा रहूँ, यह भी नहीं। वह ज्ञाता-दृष्टा हो गया। समझ में आया? आहाहा! अरे!

यह यहाँ कहते हैं, किसी भी प्रसंग में एकाकार नहीं हो जाना। उस-उस काल में, वह-वह परिणाम अपने द्रव्य के लक्ष्य से होता है तो पर के साथ वह कहीं एकाकार किसी प्रसंग हो—भक्ति का हो, वांचन का हो, श्रवण का हो, (उसमें एकाकार नहीं होना)। आहाहा! इन्द्र समकिति, एकावतारी है। पहले देवलोक का इन्द्र, वह जब अष्टाह्निका में

नन्दीश्वरद्वीप जाता है, (जहाँ) भगवान की रत्न की प्रतिमाएँ हैं, उनके सन्मुख वह घूँघरू बाँधकर नाचता है परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ नहीं है। वह ऐसा दिखायी दे कि मानो भक्ति का उत्साह है, परन्तु अन्दर उत्साह स्वभाव-सन्मुख है। उसे लोग नहीं देख सकते। आहाहा! समझ में आया? जिसे जाना और देखा, वहाँ प्रयत्न हुए बिना रहता ही नहीं। प्रयत्न करना, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है।

प्रथम भूमिका में भी 'मात्र मोक्ष-अभिलाष' होती है। आहाहा! जो मोक्ष का अर्थी हो,... परम अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति—आत्मलाभ—उसका जो अर्थी हो। संसार से जो थक गया हो,... इन शुभाशुभभाव से जिसे थकान लगी हो। आहाहा! जिसे शुभ-अशुभभाव में दुःख दिखायी देता हो। ऐसी बात है। उसके लिये... बहिन ने यहाँ की बात की है। गुरुदेव की वाणी का प्रबलस्रोत बह रहा है, जिसमें से मार्ग सूझता है। उसे ख्याल करे तो इसे मार्ग सूझे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : गुरु सूझाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूझाते हैं, यह सब बातें। ऐसा भी नहीं कहा। वाणी का प्रबलस्रोत बह रहा है, इतना। आहाहा! जिसमें से मार्ग सूझता है। वास्तव में तो अन्तर से थकान लगे तो, ज्ञानी द्वारा कुछ दिशा सूझने के बाद... आहाहा! शुभ-अशुभ में अव्यक्तरूप से भी दुःख लगे, आहाहा! व्यक्तरूप से तो आनन्द का अनुभव हो, तब शुभभाव में दुःख दिखता है। आहाहा! वास्तव में तो अन्तर से थकान लगे तो, ज्ञानी द्वारा कुछ दिशा सूझने के बाद... देखा? लक्ष्य किया, लक्ष्य बताया। 'शास्त्र लक्ष्य बताकर अलग रहते हैं।' चलना तो इसे है। आहाहा! अन्तर ही अन्तर में प्रयत्न करने से आत्मा मिल जाता है। आहाहा! भगवान परमात्मस्वरूप विराजमान है, उसका भान हुआ और अब अन्तर में प्रयत्न करते-करते वह प्रभु उसे मिल जाता है। आहाहा! ३५२ (बोल पूरा हुआ)।

मुमुक्षु : ऐसा प्रयत्न करना या ऐसा प्रयत्न सहज होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुरुआत की बात कही न, यह शुरुआत की। यह प्रयत्न चलता है, उसे करूँ—ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। थोड़े में शब्द फेर से बड़ा फेर। आहाहा! मैं प्रयत्न करूँ, यह तो इसकी परिणाम पर बुद्धि रही। इस पर्याय में प्रयत्न करूँ, पर्याय में प्रयत्न करूँ, यह तो बुद्धि पर्याय में रही। द्रव्य में खड़ा नहीं रहा, वह तो पर्याय

में खड़ा रहा। आहाहा! पर्याय अर्थात् एक अंश है, उसमें खड़ा रहा परन्तु महाप्रभु पूर्ण है, वहाँ खड़ा नहीं रहा। आहाहा! ऐसी बात है।

‘द्रव्य से परिपूर्ण महाप्रभु हूँ, भगवान हूँ, कृतकृत्य हूँ’ ऐसा मानते होने पर भी ‘पर्याय में तो मैं पामर हूँ’ ऐसा महामुनि भी जानते हैं।

गणधर भी कहते हैं कि ‘हे जिनेन्द्र! मैं आपके ज्ञान को नहीं पा सकता। आपके एक समय के ज्ञान में समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनन्त पर्यायें ज्ञात होती हैं। कहाँ आपका अनन्त-अनन्त द्रव्य-पर्यायों को जाननेवाला अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान! आप अनुपम आनन्दरूप भी सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! इसी प्रकार अनन्त गुणों की पूर्ण पर्यायरूप से आप सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हो। आपकी क्या महिमा करें? आपको तो जैसा द्रव्य, वैसी ही एक समय की पर्याय परिणमित हो गयी है; मेरी पर्याय तो अनन्तवें भाग है।’

इस प्रकार प्रत्येक साधक, द्रव्य-अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी, पर्याय-अपेक्षा से—ज्ञान, आनन्द, चारित्र, वीर्य इत्यादि सर्व पर्यायों की अपेक्षा से—अपनी पामरता जानता है ॥३५२॥

३५२, ‘द्रव्य से परिपूर्ण महाप्रभु हूँ,...’ आहाहा! वस्तु से तो परिपूर्ण महाप्रभु हूँ। यह कैसे जँचे? आहाहा! जो चीज़ देखी नहीं, जानी नहीं, उसे ऐसा प्रभु है। परन्तु पहले अनुमान से तो (निर्णय) करे कि जो कुछ पर्याय अल्प है, जिस भूमिका में से खड़ी होती है, वह भूमिका कितनी है। दृढ़ ध्रुव है, वह परिपूर्ण परमात्मा है। आहाहा! ‘द्रव्य से परिपूर्ण महाप्रभु हूँ, भगवान हूँ,...’ आहाहा! लो! यह धनतेरस आयी, लक्ष्मी पूजन। मैं महाप्रभु हूँ। आहाहा! ऐसा मानते होने पर भी... कृतकृत्य हूँ... तीन बोल लिये। वस्तु से परिपूर्ण अर्थात् महाप्रभु हूँ। आहाहा! भगवान हूँ, मैं वस्तु से तो भगवान हूँ। चीख मचावे। आहाहा! रजनीश भगवान कहलाता है न?

मुमुक्षु : वह तो पर्यायरूप से कहता है; यह तो द्रव्य की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में, यही कहता हूँ। उसे कहाँ खबर है? अभी कोई कहता था कि मोरारजी ने उसका विरोध किया है। क्योंकि वह पहले से कहता है, सम्भोग में ब्रह्मानन्द का अंश है। अर र र! प्रभु! प्रभु! तू यह क्या करता है? विषय की इच्छा हो तो उसे वह कार्य कर लेना कि जिससे वह इच्छा टूट जाए। अरे रे! यह उसके-देसाई के पढ़ने में आया। सम्भोग में भी... अर र! विषय के भोग में भी ब्रह्मानन्द का अंश है वहाँ। अर र! प्रभु! प्रभु! जहर है, काला नाग है भोग का भाव। यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि ज्ञानी को तो-धर्मी को तो शुभभाव आवे, वह काला नाग दिखता है। उसके बदले अशुभ तो महा जहर है।

मुमुक्षु : परदेश में आये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बहिन ने कहा है। आहाहा! अरे रे! मेरा देश तो आनन्द का सागर (है)। यह शुभविकल्प आवे—पढ़ने का, कहने का (तो ऐसा लगता है), अरे! हम परदेश में कहाँ आ पहुँचे? आहाहा! इस शुभराग में हमारा परिवार नहीं है, यह हमारा वतन नहीं है। आहाहा! चिमनभाई! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर जहाँ अनुभव में आया स्वदेश; यह राग है, वह आवे, परन्तु वह परदेश... परदेश... परदेश। आहाहा! हमारे स्वदेश में तो आनन्द, शान्ति, ज्ञान, श्रद्धा, वीर्य आदि अनन्त गुण पड़े हैं, वह हमारा देश और वह हमारा परिवार। आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार की तो बात ही क्या करना? वे तो कहीं परवस्तु; उन्हें और तुझे तो कोई सम्बन्ध नहीं। उनके खातिर तो बेचारा मर जाए, उनका करने के खातिर। आहाहा! स्त्री, पुत्र का व्यवस्थित करने को, मदद करे... मर गये, मार डाला। आहाहा!

मुमुक्षु : ठगों की टोली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठगों की टोली, परन्तु उस ठगों की टोली को ठग होकर ठगाने देता है। अपने करना चाहिए। लड़के कमजोर पड़े, व्यवस्थित काम न करे तो अपने को उन्हें अपना अनुभव देना चाहिए और लाईन पर चढ़ाना चाहिए। ऐसे मूढ़ मिथ्यादृष्टि इस प्रकार से जीवन खो जाता है। आहाहा! यह तो दुनिया से भारी अन्तर, भाई! यह तो यह तो बात ही अलग रह गयी, परन्तु अन्दर में राग होता है.... आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि मैं द्रव्य से तो परिपूर्ण हूँ, भगवान हूँ, महाप्रभु हूँ, कृतकृत्य हूँ – ऐसा मानता होने पर भी, पर्याय से तो मैं पामर हूँ। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन आदि पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय तो केवलज्ञान की पर्याय के अनन्तवें भाग है। वह तो पामर है। आहाहा! धर्म की पर्याय प्रगटी, वह पामरता है, पूर्ण केवल (ज्ञान) की पर्याय कहाँ और कहाँ यह सम्यग्दर्शन की पर्याय! आहाहा!

स्वामी कार्तिकेय में तो ऐसा कहा है कि धर्मी साधक आत्मज्ञान और अनुभव हुआ, (वह) साधक अपनी पर्याय को तृणतुल्य मानता है। भगवान वस्तु को महाप्रभु मानता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की पर्याय प्रगट हुई, जो अलौकिक, (किसी) काल में नहीं हुई ऐसी, परन्तु उस पर्याय को पर्याय की अपेक्षा से पामर मानता है। मैं पामर हूँ। आहाहा! मेरा प्रभु तो पूर्ण है, द्रव्य तो परिपूर्ण भगवान है, परन्तु पर्याय से मैं पामर हूँ। आहाहा! कहाँ भगवान (की) केवलज्ञान की पर्याय और कहाँ यह पर्याय! आहाहा! यहाँ तो जरा शास्त्र की जानकारी का ज्ञान-धारणा हुआ, वहाँ ऐसा हो जाता है कि ओहोहो! दूसरों की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ गये। आहाहा! वह तो शास्त्र का ज्ञान, वह कुछ ज्ञान नहीं, वह तो अज्ञान है। आहाहा! वह परसत्तावलम्बी जानपना है। आहाहा!

भगवान चैतन्य महाप्रभु के आश्रय से-स्पर्श कर जो सम्यग्ज्ञान का कण आनन्द लेता प्रगट होता है, अतीन्द्रिय आनन्द लेता प्रगट होता है, उस ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? तथापि वह अतीन्द्रिय आनन्द लेती वह ज्ञानपर्याय प्रगटे तो भी समकिति धर्मी अपने प्रभु को पूर्ण जानता है, पर्याय से मैं पामर हूँ—ऐसा जानता है। अरे रे! मुझे अभी बहुत पूरा करना है। करना है, इसका अर्थ कि अभी पूरा होना है। भाषा क्या (कहे)? उपदेश की भाषा... दूज उगी उसे पूर्णिमा होना है। दूज में पूर्णिमा आयी नहीं। इसी प्रकार सम्यग्दर्शनरूपी दूज अन्दर से खिली, वहाँ पूर्णिमा नहीं वहाँ आगे। ऐसे पूर्ण हूँ, पर्याय में पामर हूँ। यह अपूर्णता, सर्वज्ञ की अपेक्षा से है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। 'पर्याय में तो मैं पामर हूँ' ऐसा महामुनि भी जानते हैं। महामुनि जिन्हें तीन कषाय का अभाव, जिन्हें प्रचुर आनन्द के संवेदन की आनन्द की मोहर-छाप आयी है। मुनिपना अर्थात् प्रचुर आनन्द के स्वाद की-आनन्द की मोहर-छाप अन्दर पड़ी है। आहाहा! ऐसे प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवी सन्त... आहाहा! ऐसा जानते हैं कि मैं तो पर्याय से

पामर हूँ। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द की दशा सम्यग्दर्शन में प्रगट हुई, चारित्र में निर्विकल्प आनन्द की प्रचुर वेदनदशा हुई। सम्यग्दर्शन में प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द नहीं है, थोड़ा आनन्द है और मुनि हैं, जिन्हें सच्चा सन्त कहते हैं, उन्हें प्रचुर अर्थात् बहुत अतीन्द्रिय आनन्द ऐसे उछल गया है। पूर्णिमा की बाढ़ आती है; ऐसे उन्हें पाँचवें, छठवें में ऐसी बाढ़ अन्दर आयी है। आहाहा! पाँचम, छठ... आहाहा! परन्तु पूर्णिमा की पूर्ण बाढ़ अभी नहीं आयी। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! 'पर्याय में तो मैं पामर हूँ' ऐसा महामुनि भी जानते हैं। आहाहा!

गणधर भी कहते हैं कि 'हे जिनेन्द्र! मैं आपके ज्ञान को नहीं पा सकता।' आहाहा! कहाँ केवलज्ञान! आहाहा! तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक समय में जाने। उस पर को जाने—ऐसा कहना, वह भी असत् व्यवहार है। बाकी पर्याय में इतनी ताकत कि पर्याय, पर्याय को जाने। आहाहा! ऐसा है। वे भी ऐसा कहते हैं कि हे प्रभु! मैं आपके ज्ञान को नहीं पा सकता। आपके एक समय के ज्ञान में समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनंत पर्यायें ज्ञात होती हैं। सर्वज्ञस्वभाव भगवान आत्मा का, वह जब पर्याय में सर्वज्ञपना प्रगट होता है, प्राप्त की प्राप्ति है, वह बाहर आती है। आहाहा! वह एक समय की पर्याय अपने द्रव्य-गुण और दूसरी पर्यायों और अपनी पर्यायों को भी जानती है। एक समय की पर्याय, त्रिकाली द्रव्य-त्रिकाली गुण, वर्तमान अनन्त पर्यायें उन्हें और अपनी पर्यायें, सबको जानती है और अनन्त द्रव्य, गुण-पर्यायवाला लोकालोक दूसरा, वह भी एक समय की पर्याय जानती है। आहाहा!

कहाँ आपका अनंत-अनंत द्रव्य-पर्यायों को जाननेवाला अगाध ज्ञान... आहाहा! गणधरदेव ऐसा कहे, जिन्हें बारह अंग और चौदहपूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में होती है। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि प्रभु! कहाँ आपका कहाँ आपका अनंत-अनंत द्रव्य-पर्यायों को जाननेवाला अगाध ज्ञान,... द्रव्य-पर्यायों को जाननेवाला अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान! आहाहा! आप अनुपम आनन्दरूप भी सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। आप अनुपम आनन्दरूप से भी सम्पूर्णरूप से परिणमित हो गये हैं। ज्ञानरूप से तो हैं, परन्तु आनन्दरूप से भी सम्पूर्णरूप से परिणमित हो गये हैं, ऐसा। यह समझ में आया? अगाध ज्ञान कहा न पूर्ण पहले? परन्तु आप अनुपम आनन्दरूप भी... ज्ञान की

पर्याय में तो पूर्णरूप से परिणमित हुए हो, परन्तु आनन्द में भी परिपूर्णरूप से परिणमित हुए हो, ऐसा। आहाहा! आप अनुपम आनन्द... पहले ज्ञान की साथ में बात की, पश्चात् आप अनुपम आनन्दरूप भी सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! ऐसे दो (की) तुलना की। आहाहा! मुनि को आनन्द तो है। सच्चे सन्त, उन्हें जैन साधु कहते हैं, जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ पर्याय में आयी हो, बाढ़। आहाहा! लहरें उछलती हो अतीन्द्रिय आनन्द की जिन्हें, परन्तु वह अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु! आपको पूर्ण ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान! आपको पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! इसी प्रकार अनन्त गुणों की पूर्ण पर्यायरूप से आप सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हो। यह तो दो की बात की है कि आपका ज्ञान पूर्ण और मेरी पर्याय कहाँ! आपका पूर्ण आनन्द और मेरा अल्प आनन्द कहाँ! ऐसे अनन्त गुण की पर्याय की पूर्णता आपकी और मेरे अनन्त गुण की पर्याय की अपूर्णता। आहाहा! दो गुणों की व्याख्या की। समझ में आया? आहाहा! कहाँ प्रभु! आपकी अनन्त दर्शनशक्ति और कहाँ मेरी अल्प दर्शनशक्ति! कहाँ प्रभु आपका पूर्ण वीर्य, मेरा अल्प वीर्य पर्याय में! आहाहा! कहाँ आपका कर्ता नाम का गुण कार्य में परिपूर्ण परिणमित हो गया, मेरा कर्ता गुण कार्य में अभी अल्परूप से परिणमा! ऐसे सब (गुण) लेना। आहाहा!

परिणमित हो गये हो। आपकी क्या महिमा करें? आपको तो जैसा द्रव्य, वैसी ही एक समय की पर्याय परिणमित हो गई है;... जैसा द्रव्य परिपूर्ण है, वैसी पर्याय भी एक समय की परिपूर्ण हो गयी है। मेरी पर्याय तो अनन्तवें भाग है। आहाहा! इस प्रकार भगवान की पर्याय के साथ (तुलना करते हुए) अपने को पामर जानते हैं। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण-१४, सोमवार, दिनाङ्क ३०-१०-१९७८
वचनामृत-३५२ से ३५३ प्रवचन-१३५

३५२, अन्तिम पैराग्राफ इस प्रकार प्रत्येक साधक,... अर्थात् ? गणधर भी अपने आत्मा की पर्याय में अपूर्णता देखकर केवलज्ञान की पर्याय के समक्ष मैं पामर हूँ, (ऐसा जानते हैं) । आहाहा ! यद्यपि द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव तो महाप्रभु कृतकृत्य भगवन्तस्वरूप ही है । जो दृष्टि का विषय है, वह तो महाप्रभु चैतन्यस्वभाव ध्रुव सामान्य असली एकरूप, वह तो प्रभु और पूर्ण है । दृष्टि तो पूर्ण को स्वीकार करती है परन्तु पर्याय में जितनी अपूर्णता है, उसे ज्ञान जानता है कि मेरी पर्याय में... कहाँ सर्वज्ञ की पर्याय, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त प्रभुता की पूर्णता ! जैसी पूर्ण शक्ति और स्वभाव है, ऐसा सर्वज्ञ भगवान को पूर्ण पर्याय अनन्त गुण की पूर्ण पर्याय होकर परिणमित हो गयी है । मेरी पर्याय तो पामर है । आहाहा ! यह आया है अन्तिम ।

मेरी पर्याय तो अनन्तवें भाग है । अन्तिम शब्द था । है न उसमें ? है उसमें ? इसमें पृष्ठ में अन्तर है । पुरानी प्रति, (नयी प्रति) । इस प्रकार प्रत्येक साधक,... अर्थात् जिन्हें सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है और साधक अर्थात् पर्याय की साधकदशा में वर्तते हैं । आहाहा ! उनका ध्येय तो द्रव्य का तो परिपूर्ण भगवान है । सम्यग्दृष्टि साधक को भगवान परिपूर्ण वस्तु है, वही उसकी दृष्टि का विषय है । आहाहा ! तथापि पर्याय में साधक, द्रव्य-अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी,... आहाहा ! वस्तु तो मैं चैतन्य महाप्रभु भगवानस्वरूप कृतकृत्य हूँ, मेरे स्वरूप में कुछ करना बाकी है, ऐसा है नहीं । आहाहा ! यह सम्यग्दर्शन का विषय, धर्म की पहली सीढ़ी.. आहाहा ! उसका विषय द्रव्य-अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी,... आहाहा ! चीख पुकार मचावे । भगवान आत्मा !

मुमुक्षु : आज होगा भगवान आत्मा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आज नहीं, वह तीनों काल भगवान है। आहाहा! भाई! इसे खबर नहीं। निगोद के जीव में गया न पर्याय में, ज्ञान के अनन्तवें भाग का भाग खुला रहा, तथापि वस्तु तो भगवानस्वरूप ही है। आहाहा! और सिद्ध की पर्याय होवे तो भी वह वस्तु है, वह तो भगवान परिपूर्ण स्वरूप ही है। आहाहा! यह अनन्त-अनन्त पर्याय, प्रत्येक गुण की पूर्ण अनन्त पर्याय प्रगट हुई। ज्ञान की अनन्त, दर्शन की अनन्त, आनन्द की अनन्त, वीर्य की अनन्त, जीवत्वशक्ति की अनन्त, चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख की अनन्त, कर्ता, कर्म, करण शक्ति की अनन्त, अनन्त पर्याय भगवान को प्रगट हुई है परन्तु उनके समक्ष मैं (पामर हूँ)। आहाहा!

मेरा स्वभाव तो भगवानस्वरूप ही है, द्रव्य-अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी, पर्याय-अपेक्षा से—ज्ञान, आनन्द, चारित्र, वीर्य इत्यादि सर्व पर्यायों की अपेक्षा से—अपनी पामरता जानता है। आहाहा! दृष्टि ऐसा माने, ज्ञान ऐसा जाने। आहाहा! दृष्टि-श्रद्धा और ज्ञानगुण दो स्वरूप आत्मा में है। उसमें श्रद्धागुण की पर्याय, वह त्रिकाली भगवानस्वरूप हूँ, ऐसा माने और ज्ञानगुण की पर्याय त्रिकाल भगवान स्वरूप है, ऐसा जाने, तदुपरान्त पर्याय में पामर हूँ, ऐसा जाने। ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा!

तीन लोक का नाथ अनन्त-अनन्त गुण की परिपूर्णता से भरपूर प्रभु है। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव अर्थात् साधक जीव अपने को द्रव्य-अपेक्षा से तो भगवान मानता होने पर भी,... ऐसा होने पर भी, पर्याय-अपेक्षा से... आहाहा! भले चार ज्ञान खिले हों। आहाहा! चारित्र की दशा, आनन्द की रमणता की भी छठे गुणस्थान के योग्य खिली हो, तथापि वह ज्ञान और आनन्द और चारित्र वीर्य इत्यादि सर्व पर्याय की अपेक्षा से अपनी पामरता जानता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई!

सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव अनादि-अनन्त परमपारिणामिक-भाव में स्थित है। मुनिराज ने (नियमसार के टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने) इस परमपारिणामिक भाव की धुन लगायी है। यह पंचम भाव पवित्र है, महिमावन्त है। उसका आश्रय करने से शुद्धि के प्रारम्भ से लेकर पूर्णता प्रगट होती है।

जो मलिन हो, अथवा जो अंशतः निर्मल हो, अथवा जो अधूरा हो, अथवा जो शुद्ध एवं पूर्ण होने पर भी सापेक्ष हो, अधुव हो और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान न हो, उसके आश्रय से शुद्धता प्रगट नहीं होती; इसलिये औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, औपशमिकभाव और क्षायिकभाव अवलम्बन के योग्य नहीं हैं।

जो पूरा निर्मल है, परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है, ध्रुव है और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय है—ऐसे अभेद एक परमपारिणामिकभाव का ही—पारमार्थिक असली वस्तु का ही—आश्रय करने योग्य है, उसी की शरण लेने योग्य है। उसी से सम्यग्दर्शन से लेकर मोक्ष तक की सर्व दशाएँ प्राप्त होती हैं।

आत्मा में सहजभाव से विद्यमान ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण भी यद्यपि पारिणामिकभावरूप ही हैं तथापि वे चेतनद्रव्य के एक-एक अंशरूप होने के कारण उनका भेदरूप से अवलम्बन लेने पर साधक को निर्मलता परिणमित नहीं होती।

इसलिए परमपारिणामिकभावरूप अनन्तगुण-स्वरूप अभेद एक चेतनद्रव्य का ही-अखण्ड परमात्मद्रव्य का ही-आश्रय करना, वहीं दृष्टि देना, उसी की शरण लेना, उसी का ध्यान करना, कि जिससे अनन्त निर्मल पर्यायें स्वयं खिल उठें।

इसलिए द्रव्यदृष्टि करके अखण्ड एक ज्ञायकरूप वस्तु को लक्ष्य में लेकर उसका अवलम्बन करो। वही, वस्तु के अखण्ड एक परमपारिणामिक-भाव का आश्रय है। आत्मा अनन्त गुणमय है परन्तु द्रव्यदृष्टि गुणों के भेदों का ग्रहण नहीं करती, वह तो एक अखण्ड त्रैकालिक वस्तु को अभेदरूप से ग्रहण करती है।

यह पंचम भाव पावन है, पूजनीय है। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सच्चा मुनिपना आता है, शान्ति और सुख परिणमित होता है, वीतरागता होती है, पंचम गति की प्राप्ति होती है ॥३५३॥

३५३। अहो! सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव... भगवान् आत्मा चैतन्यदेव सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार... आहाहा! जिसके अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्द गुणे कर डालो तो भी, अनन्त का अन्त न आवे, ऐसे सब गुण से परिपूर्ण भगवान् है। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन का विषय है। धर्म की पहली सीढ़ी। सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव... भगवान् आत्मा, आहाहा! अनादि-अनन्त... जिस वस्तु की सत्ता अनन्त गुणसम्पन्न प्रभु, उसकी आदि नहीं तथा उसका अन्त नहीं। आहाहा! ऐसा अनन्त गुण का भण्डार भगवान् परमपारिणामिकभाव में स्थित है। आहाहा! अधिकार तो बहुत (गम्भीर) आया।

परमपारिणामिक अर्थात् सहजस्वभाव, जिसे कर्म के निमित्त की अपेक्षा नहीं और जिसे कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं। आहाहा! राग में कर्म के निमित्त की अपेक्षा है। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक में निमित्त के अभाव की अपेक्षा है। वह पर्याय में है, वस्तु में कोई अपेक्षा भाव या अभाव की नहीं है। आहाहा! ओहोहो! ऐसा जो भगवान् परमपारिणामिकभाव। पारिणामिक क्यों (कहा)? सहजस्वभाव है, इसलिए (कहा)। नहीं तो है तो वह अपारिणामिकभाव। चन्दुभाई! अब ऐसी बातें। त्रिकाल आनन्द और इत्यादि अनन्त गुणों का रूप जो वस्तु है और उसका गुण जो सत्व, सत्व, सत् का सत्व, वह परमपारिणामिकभाव से-पारिणामिक अर्थात् सहजस्वभावभाव से, तथापि वह अपारिणामी है। आहाहा! अरे! परन्तु यह क्या? परमपारिणामिकस्वभावभाव जो वस्तु है, वह पलटती नहीं, बदलती नहीं। पलटे और बदले तो पर्याय। वस्तु जो है परमस्वभावभाव, तो उसे पारिणामिक कहा परन्तु वह पारिणामिक है, वह परिणमता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! जो ज्ञान की वर्तमान पर्याय का विषय है, वह तो परमपारिणामिकस्वभावभाव अर्थात् नहीं पलटता अपारिणामिकस्वभावभाव है। आहाहा!

पारिणामिकभाव को अपारिणामिक कहना। यह क्या है? पारिणामिक तो क्यों कहा? कि सहजस्वरूप त्रिकाल पड़ा है, इसलिए पारिणामिक कहा और उसे अपारिणामिक क्यों कहा? कि वह पलटता नहीं, पर्याय में आता नहीं, इसलिए उसे अपारिणामिक कहा। अभी ऐसी वस्तु। अरे रे! आहाहा! वह परमपारिणामिकभाव से स्थित है। ऐसा क्यों कहा? परमपारिणामिकभाव? ऐसे तो आत्मा में राग-द्वेष होते हैं, उन्हें यह पारिणामिकभाव कहा

है, परमपारिणामिक नहीं। आत्मा में केवलज्ञान होता है, उसे भी पारिणामिकभाव कहा है। है क्षायिक, परन्तु वह त्रिकाली पारिणामिकभाव की पर्याय है, इसलिए उसे पारिणामिक कहा, परन्तु वस्तु है, वह परमपारिणामिकभाव है। अरे.. अरे.. ! ऐसी भाषा और यह अब। समझ में आया ?

परमपारिणामिकभाव में स्थित है। भगवान आत्मा तो परम सहजस्वभाव से त्रिकाली ध्रुव शाश्वत् नित्यानन्द प्रभु ध्रुवरूप से, नहीं पलटता वह वस्तु पारिणामिकभाव, ऐसा अपारिणामिकरूप से रहा है। आहाहा! भाई! मार्ग कोई अलग चीज़ है। ऊपर से थोड़ा-बहुत जान जाए और जाना कि मुझे आया। आहाहा! ये शास्त्र का ज्ञान हुआ, उसमें जिसे त्रिकाली ज्ञायकभाव की खबर नहीं, वह उसका अहंपना यहाँ छोड़कर वहाँ अहंपना करता है। आहाहा!

जैसे-जैसे उस क्षयोपशमज्ञान का (उघाड़) बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अज्ञानी को अहंपना बढ़ता जाता है क्योंकि वह परलक्ष्यी ज्ञान शास्त्र का पढ़ा और सब ख्याल में आया। आहाहा! परमपारिणामिकभाव से हूँ, ऐसा ज्ञान में भी उसे लक्ष्य में आया, धारणा ज्ञान में (लक्ष्य में आया)। सूक्ष्म बात है। परन्तु वह लक्ष्य पर की ओर के लक्ष्यवाला ज्ञान है। आहाहा! ऐसे तो करोड़ों, अरबों श्लोकों का-शास्त्रों का ज्ञान किया, पढ़ा और वाँचन किया और उसे ऐसा भी हो गया कि अब मुझे कुछ ज्ञान हुआ है। यह मिथ्या अभिमान है। समझ में आया ? क्योंकि परमस्वभावभाव का अवलम्बन लेकर जो ज्ञान होना चाहिए, वह आया नहीं और मात्र यह पढ़-पढ़कर, वाँच-वाँचकर ज्ञान आया, वह तो परलक्ष्यी क्षयोपशमभाव है। वह भी वास्तविक ज्ञान नहीं। अरे रे! ऐसी बातें। जैसे पंच महाव्रत और अट्टाईस मूलगुण के परिणाम, वे कुछ चारित्र नहीं हैं; इसी प्रकार जहाँ शास्त्र के ज्ञान के प्रश्नोत्तर सीखे और प्रसन्न-प्रसन्न हो गया कि ओहोहो! मुझे तो अब बहुत आ गया है।

मुमुक्षु : वह तो बैरिस्टर कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान का बैरिस्टर कहलाये। यहाँ तो दूसरी बात है, बापू!

मुमुक्षु : लोग तो पण्डित कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल लोग तो पण्डित कहे। पागल लोग तो पागल को पण्डित कहे। अरे! प्रभु! आहाहा! दुनिया को कहाँ पागलपने का भान है कि क्या चीज़ है ?

आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि परमपारिणामिक रहा हुआ भगवान आत्मा... आहाहा! मुनिराज ने (नियमसार के टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने) इस परमपारिणामिक भाव की धुन लगायी है। नियमसार में। आहाहा! मेरा नाथ परमस्वभावभाव, उसमें क्षायिकभाव भी नहीं। आता है न? भाई! क्षायिकभाव—केवलज्ञान-केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसी जो दशा, वह मेरे स्वरूप में नहीं है। आहाहा! क्योंकि वह तो एक पर्याय है। आहाहा! मेरा प्रभु तो उस क्षायिक की पर्याय से भी पार-भिन्न पूर्ण है। देवीलालजी! ऐसी बातें हैं, बापू! सब बातें (कठिन)। आहाहा! ऐसा अनादि काल से इसने अभिमान ही अभिमान में जिन्दगी बितायी है। आहाहा!

परमपारिणामिकभाव, जिसे नियमसार में प्रत्येक गाथा में गाया है। यह बहिन याद करके कहती हैं। आहाहा! शुद्धभाव अधिकार की पहली ३८ गाथा। 'जीवादिबहिर्तत्त्वं हेयम्' एक समय की पर्याय है, चाहे तो केवलज्ञान की हो, चाहे तो संवर-निर्जरा की हो, चार ज्ञान की हो परन्तु वह पर्याय है, वह हेय है। आहाहा! 'जीवादिबहिर्तत्त्वं' अर्थात् उसकी पर्याय लेना, हों! वहाँ जीव अर्थात् जीवद्रव्य नहीं लेना। एक समय की पर्याय (लेना)। भले फिर पूर्ण पर्याय मोक्ष की हो, केवल (ज्ञान) की (हो)। आहाहा! परन्तु वह 'बहिर्तत्त्वं' है। आहाहा!

केवलज्ञान भी बाह्यतत्त्व है। उपादेय अपना 'अप्पणो अप्पा'—अन्तरःतत्त्व, वह क्या? उस केवलज्ञान की पर्याय को बहिर्तत्त्व कहा। आहाहा! जब आत्मा के अतिरिक्त दूसरे बाह्यतत्त्व हैं, उन्हें बहिर्तत्त्व कहते हैं, तब इसकी राग-द्वेष की पर्याय होती है, उसे अन्तःतत्त्व कहते हैं। जब राग-द्वेष की पर्याय को बहिर्तत्त्व कहते हैं, तब ज्ञान की पर्याय को अन्तःतत्त्व कहते हैं। अब वह ज्ञान की पर्याय भी जब बहिर्तत्त्व है... आहाहा! तब पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्तःतत्त्व है कि जिसमें क्षायिक की पर्याय का भी अभाव है। आहाहा! सूक्ष्म बातें, भाई!

जैनदर्शन वीतराग का तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। प्रभु स्वयं सूक्ष्म है न! उसकी पर्याय सूक्ष्म है तो फिर पर्याय से पार भगवान तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। आहाहा! पर्याय के गहरे अन्तर में जो तल में ध्रुव है... पर्याय है, वह तो ऊपर तैरती है। केवलज्ञान की पर्याय और सर्वज्ञ की पर्याय भी ऊपर तैरती है। उसका जो तल है अविनाशी परमस्वभावभाव, वह तो पर्याय

से गहरे अन्दर में है। आहाहा! क्या होगा वह? आहाहा! जैसे पाताल में गहरे-गहरे जाने पर पानी होता है, वैसे एक समय की पर्याय से गहरे अन्दर में जाने पर पाताल कुआँ जो भगवान है, वह परमपारिणामिकस्वभाव से है। आहाहा!

इस परमपारिणामिकभाव की धुन लगायी है। परम शब्द क्यों प्रयोग किया? कि उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और उदय को भी पारिणामिकभाव कहा जाता है। पर्याय है, इस अपेक्षा से, परन्तु वह नहीं। यहाँ तो त्रिकाली परमभाव। सादी भाषा में आया है न बहिन का? पहला शब्द आता है 'जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाए?' यह भाषा। वह ध्रुव, जागता जीव चैतन्य पारिणामिकस्वभाव से जीवन्त अर्थात् ध्रुव है न। आहाहा! वह कहाँ जाए? ऐसा निर्णय करती है वह पर्याय। आहाहा! वह त्रिकाल परमपारिणामिकभाव एकरूप त्रिकाल पड़ा है। ध्रुवबिम्ब! उसकी आचार्य / मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव ने धुन लगायी है।

यह पंचम भाव पवित्र है,... अर्थात् त्रिकाली द्रव्यस्वभाव पंचम भाव, ध्रुवभाव, वह पवित्र है। **महिमावन्त है।** आहाहा! उसकी महिमा क्या कहना! जिसकी, सिद्ध की पर्याय की महिमा से भी जहाँ अनन्तगुनी जिसकी महिमा है। आहाहा! ऐसा जो परमस्वभावभाव त्रिकाली भगवान आत्मा ध्रुव, वह महिमावन्त है। **उसका आश्रय करने से...** आहाहा! यह शास्त्र भाषा प्रयोग की है। 'भूदत्थमस्सिदो...' उसे पकड़ने से, पर्याय को उसके सन्मुख ले जाने से, ऐसे अनेक प्रकार से भाषा आती है, परन्तु वास्तव में तो वर्तमान पर्याय का उसमें अहंपना कर दिया जाए...।

जो ऐसे बाह्य के क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय में अहंपना है कि यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह मुझे हुआ है। आहाहा! वह अहंपना गुलाँट खाकर परमस्वभाव का महाभण्डार, जिसमें सिद्ध की पर्याय तो प्रगटी, ऐसी तो अनन्त पर्याय का पिण्ड एक ज्ञान में है। भगवान को अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, ऐसे अनन्त आनन्द की अनन्त पर्यायें तो एक आनन्दगुण में है। श्रद्धा / क्षायिक समकित की पर्याय जो प्रगट हुई, ऐसी तो अनन्त पर्यायें श्रद्धागुण में अन्दर है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है।

यह पंचम भाव पवित्र है,... उसका आश्रय करने से... अर्थात् उसका अवलम्बन लेने से, अर्थात् उसमें अहंपना / मेरापना मानने से। यह पर्याय मैं नहीं; मैं तो यह त्रिकाली

ज्ञायक / ध्रुव हूँ। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! एकदम पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा! अनन्त काल का अनजाना मार्ग, उसे जानने में लेना, वह बापू! महा.. आहाहा! अनन्त पुरुषार्थ है। आहाहा!

उसका आश्रय करने से शुद्धि के प्रारम्भ से... अर्थात्? उसका आश्रय करने से जो सम्यग्दर्शन की शुद्धि-पर्याय प्रगटी, उस शुद्धि की शुरुआत से सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई, वह शुद्धि है, आनन्द की साथ में पर्याय प्रगट हुई, शुद्ध है। धर्म की पहली श्रेणी की (पर्याय)। आहाहा! समुद्र जैसे ज्वार में-पर्याय में आता है न? बाढ़ में। क्या कहलाता है वह? किनारे बाढ़ में। इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त गुण का भण्डार का जहाँ स्वीकार होकर आश्रय लिया, उसकी पर्याय में शुद्धि की बाढ़ आती है, ज्वार आता है। अरे रे! यह क्या होगा यह? यह शुद्धि की शुरुआत वहाँ से होती है। आहाहा! बाकी लाख शास्त्र पढ़े और लाख-करोड़ तपस्या और अपवास करे, उसमें शुद्धि नहीं होती।

मुमुक्षु : शास्त्र पढ़ना या नहीं पढ़ना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ना-बढ़ना वह तो स्वलक्ष्य से पढ़ना, यह कहने में आता है। प्रवचनसार में आता है न? ज्ञेय अधिकार पूरा होकर जब ज्ञान अधिकार (चालू होता है, वहाँ आता है)। स्वलक्ष्य रखकर करना।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह स्वलक्ष्य रखकर पढ़ना। आहाहा! ध्येय तो द्रव्य का रखना। वहाँ, ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म कठिन बात। ऐसे तो शास्त्र में बुद्धि जाती है, उसे व्यभिचारिणी कहा है। ऐई! पद्मनन्दिपंचविंशति में (ऐसा कहा है)। आहाहा!

मुमुक्षु : यह सुनकर शोर मचाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शोर मचाते हैं। क्या करे? यह तो कहा था न? वह उज्जैनवाला आया था न? सत्यन्धर सेठी। कहा, यह कहा है ऐसा, देखो! बाहर का सुधार करते हैं और लोगों को ऐसा करते हैं, इसलिए सुधार के लिए उसमें-धर्म में चढ़ गया। धूल में भी नहीं, कहा। यहाँ तो शास्त्रज्ञान जो शास्त्र की ओर की बुद्धि ढलती है, वह स्वलक्ष्य छोड़कर (बाहर ढलती है), वह व्यभिचारिणी है। आहाहा! गजब बात है।

ऐसा भगवान त्रिलोकनाथ अकेला शुद्ध चैतन्य का पिण्ड पवित्र प्रभु, उसके आश्रय से, उसके लक्ष्य से, उसे ध्येय में लेने से, वर्तमान पर्याय तो उसे ध्यान का विषय बनाकर... आहाहा! जो शुद्धि प्रगट होती है... ऐसी बातें हैं। उस शुद्धि की शुरुआत है। वह प्रारम्भ से लेकर पूर्णता... ठेठ केवलज्ञान की पर्याय, द्रव्य के आश्रय से होती है। ऐसा कहा जाता है कि मोक्षमार्ग से मोक्ष होता है, वह भी व्यवहार है। मोक्षमार्ग है, वह मोक्ष का कारण है। यह तो पूर्व पर्याय को उसके बाद की पर्याय का कारण कहना, वह व्यवहार है। वास्तव में तो केवलज्ञान की पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यय होता है और त्रिकाली द्रव्य के उग्र आश्रय से जो केवलज्ञान होता है, वह द्रव्य के आश्रय से होता है, उस मोक्षमार्ग के आश्रय से कहीं मोक्ष नहीं होता। अब ऐसी बातें। कहीं भी सुनना कठिन पड़े।

यहाँ कहा न? उसका आश्रय करने से शुद्धि की शुरुआत से लेकर पूर्णता (तक)। उसका आश्रय करने से पूर्णता (होती है)। शुरुआत शुद्धि से लेकर पूर्णता तक। आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन और अनन्त आनन्द जो परिपूर्ण है, वह भी भगवान पूर्णानन्द के नाथ के आश्रय से होते हैं। समझ में आया?

जो मलिन हो,... अब कहते हैं कि जो मलिन हो, उसके आश्रय से शुद्धि प्रगट नहीं होती। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव मलिन है। उस मलिन के आश्रय से शुद्धता प्रगट नहीं होती। **अथवा जो अंशतः निर्मल हो,..** जो अंश निर्मल हो, अन्दर सम्यक् आत्मा के आश्रय से निर्मल पर्याय हुई, उसके आश्रय से निर्मलता नहीं होती। समझ में आया? **जो अंशतः निर्मल हो, अथवा जो अधूरा हो,...** जिस पर्याय में अभी अपूर्णता है, चार ज्ञान और चौदह पूर्व का ज्ञान पर्याय में हो, वह भी अधूरा है। उसके आश्रय से भी शुद्धता प्रगट नहीं होती, नहीं बढ़ती। कहो, हीराभाई! ऐसी हीरा की बात है। यह चैतन्य हीरा है वह। आहाहा!

जो अधूरा हो, अथवा जो शुद्ध एवं पूर्ण होने पर भी सापेक्ष हो,... आहाहा! केवलज्ञान शुद्ध और पूर्ण है, तथापि वह सापेक्ष है। कर्म के अभाव की अपेक्षा अथवा पूर्व के मोक्षमार्ग से हो, वह अपेक्षा है। वह भी उसके आश्रय से शुद्धि नहीं रहती। आहाहा! ऐसी बातें हैं। त्योहार के दिनों में ऐसी बात आयी है। आहाहा! **अधुव हो और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान न हो,...** आहाहा! पर्याय अधूरी हो और त्रिकाली सामर्थ्यवाली जो

वस्तु न हो। आहाहा! कठिन बातें, बापू! वह उसे—सम्यग्दर्शन (तक) पहुँचना, वह कोई अलौकिक बातें हैं, भाई! आहाहा! बहुत सूक्ष्म है। अभी तो यह चलता नहीं, इसलिए लोगों को (नया लगता है)। आहाहा! बड़ा अधिकार आया है, भाई! खानियाचर्चा है न? उसका अधिकार आया है। खानियाचर्चा में तो पूर्व पक्षवाले ऐसे करते हुए, उत्तर पक्षवाले ऐसा कहते हैं। अर्थात् सोनगढ़ के पक्षवाले निमित्त को अकिंचित् कहते हैं और वे कहते हैं कि अभूतार्थ और भूतार्थ दोनों है। यह वाले कहते हैं कि निमित्त अभूतार्थ है। अरे! प्रभु! कुछ सुनी नहीं वस्तु। लाख निमित्त हो नहीं... धर्मास्तिकायवत् निमित्त कहा है न? ३५ गाथा (इष्टोपदेश) हो, धर्मास्तिकाय निमित्त परन्तु इस जीव को धर्मास्तिकाय चलाता है, (ऐसा बिल्कुल नहीं है)। स्वयं अपने से गमनरूप परिणमता है, तब उसको निमित्त कहने में आता है। आहाहा! निमित्त को सहायक माने तो निमित्त कहना, ऐसा वे कहते हैं। बड़ा लेख आया है। अरे रे!

प्रभु! द्रव्य की तो क्या बात करनी परन्तु उसकी पर्याय भी जिस समय में जिस काल में जो जन्मक्षण है, उस काल में वह होगी। वह होगी जन्मक्षण अर्थात् उत्पत्ति का काल है, इसलिए होगी; निमित्त आया, इसलिए होगी (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! सूक्ष्म बातें बापू! अभी तो यह चलता नहीं न! आहाहा! जीव की जिस समय में जिस प्रकार से जो पर्याय जिस काल में होनेवाली है, उस काल में वह स्वयं से होगी; फिर भले सामने निमित्त हो। आहाहा! धर्मास्तिकाय गति में निमित्त है परन्तु गति स्वयं करे और पर्याय हो, तब उसको निमित्त कहने में आता है। इसलिए निमित्त ने गति करायी है, यह अकिंचित्कर है। अब यह तो बड़ा लेख एक व्यक्ति का (लेख आया है)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं शुद्ध एवं पूर्ण होने पर भी सापेक्ष हो,... पर्याय केवलज्ञान, केवलदर्शन। आहाहा! अध्रुव हो और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान न हो,... आहाहा! उसके आश्रय से शुद्धता प्रगट नहीं होती;... आहाहा! क्षायिक समकित हो परन्तु उसके आश्रय से नवीन पर्याय प्रगट नहीं होती। निश्चय से तो उस क्षायिक समकित की पर्याय और केवलज्ञान की पर्याय को तो परद्रव्य कहा है। सूक्ष्म बातें हैं। अर्थात्? कि जैसे परद्रव्य में से अपनी नयी निर्मल पर्याय नहीं आती, वैसे निर्मल पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती। नयी पर्याय जो धर्म की बढ़े, वह आत्मा के आश्रय से आती है। अरे.. अरे..! अब ऐसी

बातें। आहाहा! इसलिए उसे... आहाहा! पर्याय को परद्रव्य कहा गया है। संवर-निर्जरा की पर्याय, मोक्ष के कारणरूप पर्याय को परद्रव्य कहा है। आहाहा! भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु के आश्रय से जो प्रगट पर्याय होती है, उस पर्याय के आश्रय से नयी पर्याय नहीं होती, इसलिए उस पर्याय को भी परद्रव्य कहा है। त्रिकाली भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, शुद्ध चैतन्यघन ध्रुव को स्वद्रव्य कहा है। आहाहा! समझ में आया ?

अध्रुव हो... अर्थात् पर्याय हो। **और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान न हो,**... केवलज्ञान भी अध्रुव है न! अरे! अपने नीचे क्षायिक लो, क्षायिक समकित, चारित्रदशा— आत्मा के आनन्द की रमणता, अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति का आनन्द, परन्तु वह भी अपूर्ण है और उसमें त्रिकाली सामर्थ्यपना नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? उसके आश्रय से नयी पर्याय नहीं होती। आहाहा!

उसके आश्रय से शुद्धता प्रगट नहीं होती; इसलिए... अब देखो! यह कारण देते हैं। यह नियमसार की बात है। **औदयिकभाव,**... अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, वह उदयभाव है। आहाहा! उसके अवलम्बन से धर्म प्रगट नहीं होता, उसके अवलम्बन से शुद्धि प्रगट नहीं होती, एक बात। **क्षायोपशमिकभाव,**... पर्याय में ज्ञान का क्षयोपशम हुआ, सच्चा, हों! सच्चा। पर के लक्ष्यवाला ज्ञान, वह तो नहीं परन्तु भगवान आत्मा चिदानन्द की लहर से भरपूर प्रभु को अवलम्ब कर जो सम्यग्ज्ञान हुआ, वह ज्ञान क्षयोपशम है। आहाहा! उसके आश्रय से भी नयी धर्म की (दशा) प्रगट नहीं होती। आहाहा! समझ में आया ? तथा **औपशमिकभाव...** दर्शनमोह और चारित्र का उपशम हुआ, ऐसी निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, उसके आश्रय से भी धर्म नहीं होता। आहाहा! धर्म की पर्याय के आश्रय से धर्म नहीं होता।

मुमुक्षु : मुँहपत्ती बाँधे और....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुँहपत्ती होवे, वे तो सब कुलिंगी हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! श्वेताम्बर और स्थानकवासी तो भगवान ने तो उन्हें—कुन्दकुन्दाचार्य ने... नगगोमोक्ष सब उन्मार्ग है, जैनमार्ग ही नहीं, (ऐसा कहा है)। बहुत कठिन, ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य अष्टपाहुड़ में कहते हैं। आत्मा विकल्परहित, नगनदशा, उसका भान और शरीर की नगनदशा, ऐसे नगन को मोक्ष कहा है। **शेषा उणमग्गा**—वस्त्रसहित और रागसहित जो धर्म

मानते हैं, वे सब उन्मार्गी हैं, जैनमार्गी नहीं। मानो, न मानो मार्ग यह है। रसिकभाई! यह सब बहुत तो स्थानकवासी होकर आये हैं न। भगवान! क्या कहें? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, औपशमिकभाव जो प्रगट हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शान्त.. शान्त.. शान्त.. उसके आश्रय से भी नया धर्म / शुद्धि नहीं बढ़ती। आहाहा! और क्षायिकभाव अवलम्बन के योग्य नहीं हैं। क्षायिकभाव-समकित हो। आहाहा! उसका अवलम्बन भी योग्य नहीं है; अवलम्बन तो त्रिकाली का लेने योग्य है। ऐसी बातें हैं। ऐसा मार्ग कहाँ से निकाला? एक व्यक्ति ऐसा कहता है। सोनगढ़वालों ने नया मार्ग निकाला। अरे! नया नहीं, प्रभु! तूने सुना नहीं है। आहाहा! यह मार्ग अनादि का है, तीर्थकर अनादि से यह कहते हैं। भगवान में यह वर्तता है—वहाँ महाविदेह में यही वर्तता है। आहाहा! समझ में आया?

औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, औपशमिकभाव और क्षायिकभाव... चार भाव पर्याय है, वह पर्याय अवलम्बन के योग्य नहीं हैं। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु ध्रुव हलचलरहित, पर्याय के परिणमन की हलचलरहित, ऐसा त्रिकाली स्वभावभाव ही अवलम्बन करनेयोग्य है। तब यह विवाद उठे, तो फिर मूर्ति का अवलम्बन क्या? स्थानकवासी ऐसा कहते हैं। भाई! वह अलग वस्तु हुई। द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हो, परन्तु जिसमें अभी अपूर्णता है, उसे ऐसा व्यवहार आये बिना नहीं रहता। वह व्यवहार शुभभाव आवे, तब पर के प्रति लक्ष्य जाता है। समझ में आया? परन्तु वह भाव शुभ है, उस शुभ के निमित्त में वह अवलम्बन भी है परन्तु उससे शुभ प्रगटा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान के दर्शन से शुभ प्रगट हुआ है, ऐसा नहीं है। शुभ प्रगट हुआ है, वहाँ यह दर्शन करता है, ऐसी बात है।

मुमुक्षु : शास्त्र में तो ऐसा आता है कि भगवान की प्रतिमा....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह है, वह और कठिन काम। दस हजार केवलियों की अपेक्षा एक तीर्थकर का माहात्म्य विशेष है। निमित्त की अपेक्षा से, हों! व्यवहार की (बात है)। ऐसे दस हजार तीर्थकरों की अपेक्षा एक प्रतिमा की महिमा विशेष है। बात कठिन पड़े, बेचारे साधारण लोग अभी। दीपचन्द्रजी पंचसंग्रह में कहते हैं, यह अपेक्षा से कहा है क्योंकि है तो व्यवहार, हों! पुण्य। तीर्थकर को देखे तो भी पुण्य, केवली को देखे तो (पुण्य), प्रतिमा को (देखे तो भी पुण्य)। भगवान तीर्थकर है, वे एक स्थान में नहीं रह

सकते, भिन्न-भिन्न स्थान में रहते हैं और प्रतिमा तो एक स्थान में चौबीस (घण्टे) जिनबिम्ब है, इस अपेक्षा से कहा होगा, ऐसा मैंने कहा। ऐई! परन्तु है तो वह शुभभाव, हों! वहाँ उसके अवलम्बन से धर्म हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

एक बार कहा नहीं था? कि क्षायिकभाव और क्षयोपशमभाव,... भगवान की प्रतिमा के अवलम्बन से शुद्धता प्रगट नहीं होती। वह तो शुभभाव आवे, तब उसका अवलम्बन कहने में आता है। आहाहा! उससे शुद्धता प्रगट नहीं होती। ये कहते हैं वे लोग। धवल में आता है, जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत और निकाचित कर्म का नाश होता है। आता है न? धवल में आता है। वे जितने जिनबिम्ब, वह जिनबिम्ब नहीं, वह तो निमित्त है, जिनबिम्ब यह। यह लिया है। निमित्त से कथन है। ऐसा जिनबिम्ब देखा, देखने पर उसे अपना जिनबिम्ब ऐसा निष्क्रिय है, (ऐसा दिखायी दिया)। शशीभाई! आहाहा! ऐसा है। जिन सो ही है आत्मा।

**घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन,
मत-मदिरा के पान सो, मतवाला समझे न।**

‘घट घट अन्तर जिन बसे’ जहाँ भगवान अन्दर आत्मा जिन बसता है अन्दर, वह पुण्य-पाप के भाव से और पर्याय से पार इसकी जिन वस्तु है। आहाहा! अब तो बहुत वर्ष हो गये। ४४ वाँ चातुर्मास चलता है, परिवर्तन को। अब तो खुल्ला रखना चाहिए कि भाई! यह है। किसलिए परिवर्तन किया? कारणवश किया होगा न? पहले तो भड़के आवे यहाँ (तो)। हाय.. हाय..! कुछ खबर नहीं होती।

यहाँ कहते हैं, वह अवलम्बन पर्याय का नहीं। उसके अवलम्बन से शुद्धता प्रगट हो, ऐसा नहीं है परन्तु शुभभाव होवे, तब उसका निमित्त अवलम्बन कहने में आता है। ऐसा है। यहाँ तो परमात्मा की बात (चलती है)। नियमसार में तो ‘शुद्धभाव अधिकार’ है न? शुद्धभाव। शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, परमपारिणामिकभाव को वहाँ शुद्धभाव कहा है। उस शुद्धभाव में तो क्षायिकभाव भी नहीं, इसलिए क्षायिकभाव का भी अवलम्बन नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें। यहाँ तो अभी शुभभाव दया, दान, व्रत और पूजा-भक्ति है, उनसे धर्म होता है। अरे! धूल भी नहीं, मर जाएगा। समझ में आया? आहाहा!

जो पूरा निर्मल है,.... अब प्रभु आत्मा, ध्रुव.. ध्रुव परमपारिणामिकभाव। जो पूरा निर्मल है, परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है,.... जिसे किसी निमित्त के अभाव की भी अपेक्षा नहीं। क्षायिकभाव में तो कर्म के निमित्त के अभाव से क्षायिक कहने में आता है। यह परमस्वभावभाव जो नित्यानन्द प्रभु है, इसे कोई अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा! परमनिरपेक्ष है। इतने विशेषण हुए, पूरा निर्मल, पूरा निर्मल है, त्रिकाल, परिपूर्ण प्रभु है, परमनिरपेक्ष है, परमस्वभावभाव, स्वयं ध्रुव है और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय है... आहाहा!

त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय है—ऐसे अभेद एक परमपारिणामिकभाव का ही... ऐसा अभेद, जिसकी पर्याय का भी जिसमें भेद नहीं। आहाहा! क्षायिकभाव भी भेदरूप है। भगवान त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह अभेदस्वरूप है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी भेदरूप है, एक अंश है न? और जो भगवान आत्मा, वह तो त्रिकाली एकरूप अभेद है। आहाहा! ऐसे अभेद एक... वह पर्याय आदि अनेक थे। अभेद एक परमपारिणामिकभाव का ही... एकान्त हो गया। कथंचित् पारिणामिकभाव का और कथंचित् पर्याय का (आश्रय), ऐसा नहीं है। आहाहा! एक परमपारिणामिकभाव का ही—पारमार्थिक असली वस्तु का ही... अर्थात् कि यह लाईन (—) की है न? सामर्थ्यवान है, इसकी लाईन की है कि ऐसे अभेद एक परमपारिणामिकभाव का 'ही' अब इसका वापस लाईन करके (अर्थ किया) अर्थात् कि पारमार्थिक असली वस्तु का ही... आहाहा! अर्थात् कि आश्रय करने योग्य है,.... आहाहा! पूरा निर्मल है त्रिकाल, परिपूर्ण है त्रिकाल, परम निरपेक्ष है—किसी की अपेक्षा जहाँ नहीं है, ध्रुव है, त्रिकालिक परिपूर्ण सामर्थ्यवन्त है, ध्रुव। ऐसे अभेद एक परमपारिणामिकभाव का 'ही' आश्रय करनेयोग्य है अर्थात् पारमार्थिक असली वस्तु का 'ही' (आश्रय करनेयोग्य है)। आहाहा!

अब वह असली चीज़ क्या है, उसकी अभी खबर नहीं होती। सब खेल पर्याय में किये, एक समय की पर्याय में सब क्रीड़ा। ग्यारह अंग का ज्ञान और महाव्रत-फहाव्रत सब समय की पर्याय, पर्याय है अंश। उसके समीप में अन्दर गहरा महाप्रभु ध्रुव है। आहाहा! उसका तो कभी लक्ष्य और आश्रय किया नहीं। इसे ख्याल में आया नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय की समीप में इस ओर अन्तर भगवान पूर्ण वस्तु है कि जिसमें एक समय की पर्याय का भी अभाव है। आहाहा! ऐसे त्रिकाली द्रव्य का ही आश्रय करने योग्य है।

उसी की शरण लेने योग्य है। अरिहन्ता शरणम्, सिद्धा शरणम्, केवली पण्णत्तो धम्मो शरणम्। यह धर्म शरण, वह तो और पर्याय हो गयी। अरिहन्त, सिद्ध का शरण, वह तो परद्रव्य का हो गया। अरिहन्ता शरणम्, सिद्धा शरणम्, साहू—वे तो परद्रव्य हो गया। केवली पण्णत्तो धम्मो शरणम्। भगवान ने वीतरागपर्याय को धर्म कहा है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो उसका भी शरण नहीं। त्रिकाली ज्ञायकभाव का शरण लेने योग्य है। आहाहा! मांगलिक की व्याख्या में भी अलग चीज़ है।

उसी से सम्यग्दर्शन से लेकर... त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द के आश्रय से सम्यग्दर्शन की शुद्धि की प्रथम सिद्धि से मोक्ष तक की सर्व दशाएँ प्राप्त होती हैं। आहाहा! बहुत सरस अधिकार (बोल) है। विशेष कहा जाएगा, लो....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अनादिकालीन सनातन दिगम्बर जैनपंथ

अनादि से ऐसा एक ही प्रकार का सनातन दिगम्बर जैन पंथ चल रहा है, वही परम सत्य है। उसका विरोध करके कोई ऐसा कहे कि 'पहले व्यवहार और फिर निश्चय'—तो वह जैनमार्ग को नहीं जानता। मोक्षमार्ग में पहले व्यवहार और फिर निश्चय यानी व्यवहार करते-करते निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट हो जायेगा—ऐसा मानना तो व्यवहारमूढ़ता है। दिगम्बर सम्प्रदाय में रहकर भी जो ऐसा मानता है कि व्यवहार करते-करते उससे निश्चय प्रगट हो जायेगा; तो वह भी विपरीत मान्यता की पुष्टि करनेवाला मिथ्यादृष्टि है, उसे दिगम्बर मत की खबर नहीं है। दिगम्बर नाम धारण करके भी जो जीव, व्यवहार पर जोर देता है—व्यवहार के अवलम्बन से लाभ होना मानता है—वह जीव वास्तव में दिगम्बर सिद्धान्त को नहीं मानता; किन्तु उसका विरोधी है। दिगम्बर नाम धारण करके भी वह विपरीत मत की ही पुष्टि करता है।

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

आसोज कृष्ण-१५, मंगलवार, दिनाङ्क ३१-१०-१९७८
वचनामृत-३५३ से ३५४ प्रवचन-१३६

(वचनामृत बोल) ३५३ का चौथा पैराग्राफ है। आत्मा में... है ? क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा में सहजभाव से विद्यमान... स्वभाविक ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण भी... अर्थात् क्या कहते हैं 'भी' में ? कि त्रिकाली ज्ञायकभाव द्रव्य तो पारिणामिकभाव से है। उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है और पहले से—शुरुआत से ठेठ की पूर्णता किसके अवलम्बन से होती है, उसकी बात चलती है। आहाहा! भगवान आत्मा वस्तु है, अनन्त गुण का एकरूप ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, उसे यहाँ पारिणामिकभाव अर्थात् कि परिणमता नहीं, इसलिए अपारिणामिकभाव से उसे कहा गया है। आहाहा!

ये पारिणामिकभाव से तो हैं, परन्तु कहते हैं कि उनमें रहे हुए, सहजभाव से रहे हुए ज्ञान, त्रिकाली ज्ञान, त्रिकाली दर्शन, त्रिकाली चारित्र, त्रिकाली आनन्द इत्यादि अनन्त गुण, वे भी यद्यपि पारिणामिकभावरूप ही हैं... क्या कहते हैं ? आहाहा! किसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है, किसके आश्रय से—अवलम्बन से सम्यग्दर्शन की—धर्म की शुरुआत होती है और किसके आश्रय से पूर्णता होती है ? तो कहते हैं कि वस्तु जो सहजस्वभाव उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, उदय जो पर्याय है, अवस्था है; उससे रहित त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्यकन्द, ज्ञायकभाव की ध्रुवता, वह द्रव्य, वह द्रव्य है; वह पारिणामिकभाव से है, उसे कोई अपेक्षा नहीं कर्म के निमित्त की या कर्म के निमित्त के अभाव की। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा-वस्तु—एक समय की पर्याय रहित, त्रिकाली जो ज्ञायक है, वह पारिणामिकभाव से है और उसका ही आश्रय करने से शुरुआत से—धर्म से, सम्यक्त्व से लेकर केवलज्ञान की उत्पत्ति उसके आश्रय से होती है। तब कहते हैं कि

उसमें पारिणामिकभाव से गुण भी हैं न? आहाहा! भगवान आनन्दकन्द प्रभु में ज्ञानादि अनन्त गुण हैं न! वे पारिणामिकभाव से हैं, तो उनका आश्रय लेना या नहीं? आहाहा! बात बहुत (अच्छी आयी है)। दिवाली के बड़े अच्छे दिन हैं, अच्छी बात आयी है। आहाहा!

मुमुक्षु : दिवाली के योग्य ही आयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : योग्य आयी है। अरे! भगवान का आज मोक्ष है। आहाहा! तू मोक्षस्वरूप है। आहाहा! 'तू है मोक्षस्वरूप'—पारिणामिकभाव—स्वभाव, वह मोक्षस्वरूप है। आहाहा! वह पारिणामिकस्वभाव से वस्तु है, जिसमें पर्याय का भी अभाव है। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो दशा, उससे रहित वह ज्ञायक पारिणामिकस्वभावभाव ध्रुव है। उसका ही आश्रय करने से धर्म की शुरुआत होती है, ऐसा है।

मुमुक्षु : परम सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम सत्य है ऐसा। बापू! आहाहा! इसे भले विशेष ज्ञान न हो, परन्तु यह वस्तु है पूरी पूर्ण प्रभु, उसमें इसकी रुचि और झुकाव जाना चाहिए। आहाहा! उसके आश्रय से ही आत्मा को शान्ति मिलती है, सम्यग्दर्शन मिलता है, चारित्र मिलता है, उसके आश्रय से केवलज्ञान मिलता है। तब कहते हैं कि उसके आश्रय से मिलता है, वह पारिणामिकभाव वस्तु है, तो उसमें जो गुण हैं, वे भी पारिणामिकभाव से हैं, तो उन गुणों का आश्रय लेना या नहीं? नहीं। भेद है, कहते हैं। कहा न? **अनन्त गुण भी...** ऐसा आया न? 'भी', यह तो एक शब्द—शब्द की कीमत है न यहाँ! आहाहा!

सहजात्मस्वरूप, द्रव्यस्वरूप वह तो पारिणामिक सहज स्वभाव से है, इसलिए उसका आश्रय लेते ही धर्म की शुरुआत से—सम्यग्दर्शन से—लेकर पूर्णता उसके अवलम्बन से होती है। तब कहते हैं कि परन्तु उसमें जो गुण हैं, वे भी पारिणामिकभाव से हैं। समझ में आया? ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभु—ये सब गुण जो हैं, वे पारिणामिकभाव से हैं।

तथापि यद्यपि पारिणामिकभावरूप ही हैं, तथापि वे चेतनद्रव्य के एक-एक अंशरूप होने के कारण... आहाहा! भगवान आत्मा... सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! जिसकी महिमा करनेयोग्य है, वह चीज पारिणामिक सहज स्वभाव से वस्तु है, परन्तु

उसमें गुण भी पारिणामिकभाव से है, परन्तु गुण है, वह द्रव्य का एक-एक अंश है। भले वे पारिणामिकभाव से हो। आहाहा! यह क्या ऐसी व्याख्या? ऐसी बात है, प्रभु!

इसके धर्म को प्रगट करने के लिए निमित्त के अवलम्बन की तो आवश्यकता नहीं, राग के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं, पर्याय के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं। अब यहाँ तो कहते हैं कि गुण के, भेद के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। लोगों को कठिन पड़ता है। वस्तु ऐसी है, प्रभु! आहाहा! यह जिन, 'घट-घट अन्तर जिन बसे' जिन प्रभु द्रव्यस्वभाव, वह जिन प्रभु है। आहाहा! उसका ही आश्रय करने से धर्म की शुरुआत से लेकर पूर्णता उसके आश्रय से प्रगट होती है। तब कहे, परन्तु उसमें अनन्त गुण रहे हैं, वे भी पारिणामिकभाव से हैं। भले हो, परन्तु वे उस द्रव्य का एक-एक अंश है। ज्ञान भी द्रव्य का एक अंश, दर्शन भी एक अंश; भले पारिणामिकभाव से (हो)। आनन्द भी द्रव्य का एक अंश। आहाहा! मोटाणी! ये सब सूक्ष्म बातें हैं। वस्तु ऐसी है, भाई! क्या हो? आहाहा!

चेतनद्रव्य के एक-एक अंशरूप होने के कारण उनका भेदरूप से अवलम्बन लेने पर... आहाहा! अलिंगग्रहण में भी कहा न? १८वें बोल में। गुण विशेष के ग्रहणरूप, इसका जिसमें अभाव है; गुण विशेष का ग्रहण करना, इसमें जिसका अभाव है। उस लिंग से, गुणविशेष के लिंग से वह ग्रहण नहीं हो सकता। आहाहा! अलिंगग्रहण का १८वाँ बोल है। सब व्याख्यान हो गये हैं। कोई आज पूछता था कि प्रकाशित हुए या नहीं? भाई! मुझे कुछ खबर नहीं। व्याख्यान हो गये हैं, अलिंगग्रहण के ४७ शक्ति और ४७ नय के सब हो गये हैं और यह बहिन के चलते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन। आहाहा! तेरी प्रभुता का पार नहीं - ऐसा जो द्रव्य, वह क्या है? आहाहा! एक समय की जो पर्याय है, उससे रहित जो द्रव्य। यहाँ नय का द्रव्य लेना है, हों! नय का द्रव्य (लेना है); प्रमाण का द्रव्य नहीं। आहाहा! अर्थात् क्या? कि जो निश्चयनय है, वह त्रिकाली परमानन्द जो त्रिकाली और पर्याय को जानता है, ऐसे प्रमाणज्ञान, उसका यह (नय) एक भाग है। यह निश्चयनय भी उसका एक भाग है, व्यवहार भी उसका एक भाग है। आहाहा! वह प्रमाणज्ञान जो पर्याय में... है तो प्रमाणज्ञान, वह पर्याय, परन्तु प्रमाणज्ञान है, वह त्रिकाली द्रव्य को भी जानता है, निश्चय

का जो विषय है, उसे भी लक्ष्य में रखता है और तदुपरान्त वर्तमान पर्याय को भी लक्ष्य में लेता है। इन दोनों को मिलाकर जाने, उसे प्रमाण कहते हैं। परन्तु प्रमाण में भी निश्चय जो द्रव्य का आश्रय है, वह बात उसमें रहती है। प्रमाण ने कहीं उसका निषेध किया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या कहा यह? आहाहा! वस्तु जो भगवान् आत्मा अन्तर जो ज्ञायक त्रिकाली ध्रुव अपना परमात्मस्वरूप, उसे जो नय अर्थात् ज्ञान का अंश जो उसे जाने - उसे (अर्थात्) द्रव्य को, ध्रुव को, द्रव्य कहते हैं। है तो वह प्रमाण के भाग का एक भाग, परन्तु वह बड़ा भाग है।

मुमुक्षु : आस्रव अधिकार में उसे ही नय कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भेद है न? प्रमाण में दो आये न? दो आये तो वह प्रमाण स्वयं सद्भूतव्यवहार का विषय है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! जो नय में दो आये, त्रिकाली भी आया और वर्तमान आया तो दो आये। आहाहा! नय प्रकरण में तो यह बात ली है कि जिसमें पर्याय का निषेध न हो, वह पूज्य नहीं है। आहाहा! प्रमाण पूज्य नहीं है। दोनों मिलाता है न? दूसरी चीज़ को। त्रिकाली ज्ञायक को भी दृष्टि में लिया, उसे स्वीकारता है और वर्तमान अंश को भी स्वीकारता है। दो अंश पूरे पूरे हुए तो वह पूज्य क्यों नहीं?— कि नहीं। उसमें पर्याय का निषेध नहीं और पर्याय के निषेध बिना द्रव्य का आश्रय नहीं होता। आहाहा! ऐसा नवरंगभाई! अरे! बनियों को ऐसा मिला, बनिये-व्यापार आदि से निवृत्त नहीं, ऐसा कहते हैं। बेचारे जापानवाले ने ऐसा कहा। सुना न? लालचन्दभाई! जापानवाले ने नहीं कहा था? स्वयं इतिहासिक दोनों हैं—पिता-पुत्र। बड़ा इतिहासिक। जापान, बड़ा इतिहासिक, लाखों पुस्तकें पढ़कर उसने ऐसा कहा—जैनदर्शन, जैनधर्म अनुभूति है। दया, दान और व्रत, भक्ति के परिणाम, वह जैनदर्शन नहीं, वह वीतरागदर्शन नहीं। आहाहा! उसने (ऐसा कहा), हों! उस इतिहासिक ने पढ़-पढ़कर, उसने इतिहासिक होकर निकाला हो, तथापि उसने वापस कहा—परन्तु ऐसा धर्म बनियों के हाथ आया और बनिये व्यापार के व्यवसाय में से निवृत्त नहीं होते, इसलिए कब ऐसा अनुभूति का निर्णय करे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसने लिखा है। समाचार पत्र में आया है। बड़ा इतिहासिक है जापान में। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जो त्रिकाली वस्तु है, वह क्या है? वह द्रव्य है, पारिणामिकभाव

से है, सहज स्वरूप से अनादि-अनन्त है। अनादि-अनन्त—ऐसा कहना, वह भी भेद से कथन है, परन्तु वर्तमान ही ध्रुव है। समझ में आया? एक समय में ही वह ध्रुव है, उसे यहाँ द्रव्य कहकर उसे निश्चयनय का विषय कहा और उसके ही आश्रय से आत्मा को धर्म होता है, बाकी धर्म की कोई दूसरी पद्धति है नहीं। तब? जब उसके आश्रय से, पारिणामिकभाव कहकर तुमने धर्म होता है, ऐसा कहा, तो आत्मा में तो अनन्त गुण हैं, वे भी साथ ही पारिणामिकस्वभाव से है। वे कोई उपशमभाव से, क्षायिकभाव से, उदयभाव से नहीं हैं। आहाहा! अब यह ऐसा मार्ग। वे पारिणामिकभाव से है, यह बात तो हम भी मानते हैं, कहते हैं। परन्तु वे द्रव्य का-पदार्थ का एक अंश है। एक.. एक.. एक.. एक.. एक.. एक.. अंश है। अनन्त अंश का एकरूप वह द्रव्य है। द्रव्य में वह अंश का भेद नहीं है। आहाहा! इसलिए अलिंगग्रहण के १८ (बोल) में कहा, गुण विशेष से जिसका ग्रहण नहीं। अर्थात्? गुण विशेष के लिंग से ग्रहण नहीं। अर्थात्? ज्ञान, दर्शन आदि जो गुण हैं, वे भेदरूप लिंग है, उस लिंग से ग्रहण नहीं (होता) - ऐसा कहते हैं। आहाहा! अलिंगग्रहण है न? मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा! यह तो भगवान की कॉलेज है। कितना ही पढ़ा, जाना हो तो फिर यह सार समझ में आवे। आहाहा!

मुमुक्षु : अंक पढ़ने की पाठशाला कौन सी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अंक पढ़ने की यह पाठशाला नहीं। है तो यह अकेला पढ़ने की यह पाठशाला। अकेला अर्थात् द्रव्य। परन्तु अकेला अर्थात् यह द्रव्य, गुण और पर्याय और सब भेद तथा नव तत्त्व के भेद, यह पहले इसे ख्याल में आना चाहिए; तो इसे द्रव्य क्या कहलाता है, इसे ख्याल में आवे। आहाहा!

इसलिए कहते हैं, वे चेतनद्रव्य के एक-एक अंशरूप होने के कारण उनका भेदरूप से अवलम्बन लेने पर... वस्तु भगवान परमस्वभावभाव एकरूप चीज़ में रहे हुए अनन्त गुण, वे भेदरूप हैं, उन्हें अवलम्बन लेने पर साधक को निर्मलता परिणामित नहीं होती। धर्मी को-धर्मसाधक को भेद के लक्ष्य से निर्मलता प्रगट नहीं होती। अभेद त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से निर्मलता / धर्म की दशा प्रगट होती है। अरे रे! अब ऐसी बातें। समझ में आया? आहाहा! पर्याय में शास्त्र का ज्ञान हो, उसके अवलम्बन से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। अरे! शास्त्रज्ञान नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन—ज्ञान आदि की पर्याय हो... आहाहा!

उसके अवलम्बन से निर्मलता पर्याय प्रगट नहीं होती। आहाहा! यह १८ में यह आया, १९वें में यह आया। पर्याय विशेष जिसे ग्रहण नहीं, १८वें में गुण विशेष जिसे ग्रहण नहीं। वह लिंग है, वह भेद भी लिंग है, उससे पकड़ में आवे, ऐसा आत्मा नहीं है। आहाहा! तथा पर्याय विशेष से भी ग्रहण हो, ऐसा आत्मा नहीं है। आहाहा! तथा २०वें बोल में तो ऐसा भी कहा कि दृष्टि का विषय सामान्य उसकी दृष्टि में है, तथापि अनुभव की दशा द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आलिंगन नहीं करती। रात्रि में कहा था न? रजनीश का नहीं कहा? रजनीश ने... अर.. र..! गजब किया है, प्रभु! तारणस्वामी में जैन था। अरे रे! वह तो कहता है कि जगत के जीव एक-दूसरे को आलिंगन करें, चुम्बन करें तो मैं प्रसन्न होऊँ। अर..र..! प्रभु! क्या यह मार्ग है? भाई! तू यह कहाँ ले गया? रात्रि को नहीं थे, सो गये थे, चन्दुभाई! भाई को पूछा था। कहा, भाई आये नहीं? कि नहीं, सो गये हैं। रात्रि में, रात्रि में यह बात (की थी)। रजनीश का बड़ा लेख था। पहले से कहता है न! सम्भोग में ब्रह्मानन्द है। अर..र..! प्रभु.. प्रभु! क्या करता है? भाई! आत्मा के सम्भोग में आनन्द है या स्त्री को भोग में आनन्द है? तू यह क्या कहता है? और इससे जगत के प्राणी पर को अवलम्बन और चुम्बन को भूल गये हैं, वह ऐसा कहता है। अर..र..! अरे भाई! पर का अवलम्बन और चुम्बन का भाव तो पाप है परन्तु कदाचित् ब्रह्मचर्य पालन करे, शरीर से अवलम्बन और चुम्बनरहित, तो भी वह एक शुभभाव है। आहाहा! वह कुछ धर्म नहीं है। आहाहा! यह क्या कहते हैं?

यह पुण्य-पाप के अधिकार में आता है न? निश्चयनय पकड़ा है, वह कहता है कि हमको यह नहीं चलता, यह हमारे नहीं चलता, विषय-भोग नहीं चलते, अमुक नहीं चलता। जो चाण्डाल में से ब्राह्मण हुआ, था तो चाण्डाल, परन्तु ब्राह्मण के (घर में बड़ा हुआ) वह कहे, हमारे यह नहीं चलता, हमारे यह नहीं चलता। ऐसे हमारे अब्रह्म नहीं चलता, झूठ बोलना नहीं चलता, अमुक नहीं चलता, ऐसा भाव भी एक शुभराग है। अर..र..! ऐई! है? पुण्य-पाप के अधिकार में शुरुआत में है। आहाहा! हमारे विषय नहीं चलते, हमारे स्त्री का संग नहीं होता, वह भाव भी शुभ है, कहते हैं। तो उसके बदले यह संग का अवलम्बन और चुम्बन.. अरे! प्रभु!

एक द्रव्य अपने अनन्त गुण की पर्याय को चुम्बन करता है। सामान्य कहना है न

जहाँ-वहाँ। स्वयं द्रव्य वस्तु है प्रभु, वैसे परमाणु वस्तु है। प्रत्येक पदार्थ अपनी शक्ति अर्थात् गुण और उसकी पर्याय को छूता-स्पर्श करता है। पूरा द्रव्य समुच्चय, हों! अभी बात है न! परन्तु दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, तीन काल में चुम्बन नहीं करता। आहाहा! (समयसार) तीसरी गाथा में आता है। आहाहा!

यहाँ तो अब उससे आगे ले जाना है। आहाहा! पर को चुम्बन करे और आलिंगन करे तो मैं प्रसन्न होऊँ, दुनिया ऐसा करे। अरे रे! प्रभु.. प्रभु..! भगवन्त! यह तूने क्या किया? आहाहा! यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि पर का चुम्बन और उसमें तो राग है, पाप है, जहर है परन्तु हमें ब्रह्मचर्य में यह विषय नहीं चलते, ऐसा जो भाव भी एक शुभभाव, वह जहर है। आहाहा!

यहाँ तो वह भाव शुभ-अशुभ से रहित, वर्तमान पर्याय नहीं, त्रिकाली वस्तु जो है... आहाहा! ज्ञायक चैतन्यद्रव्य जो प्रभु एकरूप स्वरूप है, उसके आश्रय से ही धर्म की शुरुआत है। बाकी तीन काल में दूसरा कोई रास्ता नहीं है। तब कहे, परन्तु उसमें गुण रहे हैं, वे भी उसी जाति और पारिणामिक जाति के हैं। भले हो, परन्तु वह द्रव्य का अंश है। एक-एक ऐसे अनन्त अंश हैं। इसलिए भेदरूप से अवलम्बन लेने से साधक अर्थात् धर्मी जीव को निर्मलता परिणामित नहीं होती। आहाहा! यहाँ तो अभी दया, दान और व्रत, तप यात्रा करे, वह धर्म। कहीं उलझ गये। आहाहा! अरे प्रभु! जिनेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा का यह हुकम है कि गुणभेद का अवलम्बन करने से भी साधक को निर्मल दशा नहीं बढ़ती। आहाहा! भले निर्मल दशा स्व के अवलम्बन से हो, पश्चात् भी उसे भेद के अवलम्बन से निर्मलता नहीं बढ़ती। आहाहा! भेद के लक्ष्य से तो राग होता है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी बातें।

इसलिये परमपारिणामिकभावरूप... परमपारिणामिकभावरूप, अनन्तगुण-स्वरूप... अनन्त गुणभेदरूप नहीं, अनन्त गुणस्वरूप भगवान आत्मा अनन्त गुणस्वरूप। आहाहा! **अभेद...** अनन्त गुणस्वरूप, परमपारिणामिकभावरूप, परमस्वभावभावरूप, अनन्त गुणस्वरूप अभेद, जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं, ऐसी अभेद वस्तु। आहाहा! एक। वे अनन्त गुण हैं, वे तो अनन्त, अनेक हो गये। यह तो एकरूप प्रभु अन्दर है। आहाहा!

एक चेतनद्रव्य का ही... एक चेतनद्रव्य का ही। अभी जिसे द्रव्य-गुण-पर्याय की

खबर नहीं। कहो! ऐसी बात है, प्रभु! कठिन तो है, भाई! परन्तु वस्तु इसके घर की है, इसके घर में है। है, उसे प्राप्त की प्राप्ति करनी है। आहाहा! एक चेतनद्रव्य का ही... तीन विशेषण प्रयोग किये हैं। परमपारिणामिकभावरूप अनन्तगुणस्वरूप अभेद एक... आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा चैतन्यद्रव्य अर्थात् पदार्थ अर्थात् कि अखण्ड परमात्मद्रव्य का ही... ऐसा वापस यह लाईन (—) करके इसका ही अर्थ किया। अखण्ड परमात्मद्रव्य प्रभु स्वयं। परमात्माद्रव्य स्वयं, हों! परम आत्मद्रव्य, परम स्वरूपद्रव्य। आहाहा!

द्रव्य का ही-आश्रय करना,... आहाहा! वहीं दृष्टि देना,... भगवान परमस्वभावभाव त्रिकाली एकरूप वर्तमान में एकरूप है। आहाहा! भूत में था और वर्तमान में है और भविष्य में होगा, ऐसे भेद (नहीं)। यहाँ तो वर्तमान में एक ध्रुव है। आहाहा! वहीं दृष्टि देना,... आहाहा! अर्थात् दृष्टि को वहाँ रोकना। आहाहा! त्रिकाली परमस्वभावभाव, वहाँ दृष्टि को रोकना क्योंकि स्थिर है, वहाँ दृष्टि रुकेगी। जो अस्थिर है, पर्याय कम्प है-परिणमन है, वहाँ दृष्टि नहीं स्थिर होगी। समझ में आया? आहाहा! ऐसी भाषा और ऐसा भाव। चिमनभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा!

भगवान का मोक्ष का दिन है न यह! यह तो मोक्ष की बातें हैं। भगवान ने मोक्ष कैसे किया? कि पारिणामिकस्वभाव के आश्रय से किया। मोक्षमार्ग के आश्रय से मोक्ष नहीं, ऐसा कहते हैं। मोक्षमार्ग तो पूर्व की पर्याय है, उसके कारण बाद की पर्याय (मोक्ष की हुई), ऐसा आता है। निमित्त-नैमित्तिक के (कथन से ऐसा आता है)। जैनतत्त्व मीमांसा में आता है। उपादान पर्याय है। निमित्त कारण है और उपादेय उसका (उपादान का) कार्य है, बाद की पर्याय। वह तो अभी उसे पर से भिन्न पाड़ने की बातें की, परन्तु यहाँ तो वह पूर्व की पर्याय कारण है और बाद का कार्य है, यह नहीं। यहाँ तो वर्तमान जो कार्य है, वह त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से कारणरूप परमात्मा, कारणपरमात्मा स्वयं है, उस कारणपरमात्मा के आश्रय से ही वर्तमान पर्याय का कार्य होता है। आहाहा!

यह प्रश्न हुआ था। जामनगरवाले अपने भाई त्रिभुवन का। वहाँ रहते हैं न? तुम्हारे राजकोट रहते हैं। उन्होंने प्रश्न किये, दो-तीन वर्ष हुए। कि कारणपरमात्मा कहते हो और कार्य न आवे तो उसका क्या अर्थ? कारणपरमात्मा कहो, कारणपरमात्मा त्रिकाल है। कार्य नहीं आता, कारण है और कार्य नहीं आता तो कारणपरमात्मा (क्या)? परन्तु कारणपरमात्मा

है, यह स्वीकार किसने किया ? माने बिना यह है, ऐसा किसने माना ? आहाहा ! जिसे, त्रिकाली कारणपरमात्मा कहो, परमस्वभावरूप कहो, द्रव्य कहो । आहाहा ! ऐसा जिसने पर्याय में माना, उसका पर्याय का कार्य निर्मल आये बिना रहता ही नहीं । आहाहा ! समझ में आया ?

उसी की शरण लेना,... आहाहा ! ठीक । भगवान का शरण, अरिहन्त का शरण, सिद्ध का शरण, साधु का शरण आता है न मांगलिक में ? वह तो व्यवहार की व्याख्या है । आहाहा ! समझ में आया ? वह नहीं था, भाई ! जब हमारा चातुर्मास था न उस दीवानपरु में, दीवानपरु नहीं, क्या कहलाता है वह ? दीवानपरु, दीवानपरु ? कोठारिया के नाके ? क्या कहलाता है ? सदर... सदर... । सदर में चातुर्मास था न ? तब एक फौजदार थे न, भाई ! नहीं ? गौशाला में रहते थे बड़े जयचन्द पोंदार । तब वे बीमार बहुत थे इसलिए गौशाला में रहते थे । फिर वहाँ (कहे), मुझे दर्शन करना है महाराज के । गये । मांगलिक सुनाओ । फिर सुनाया । फिर कहे, महाराज ! यह मांगलिक अर्थात् क्या ? होशियार व्यक्ति था परन्तु अन्त में उसे रक्त गर्म हो गया । बैठा था, मरने की तैयारी । मुश्किल से रात्रि निकाली ।

मांगलिक अर्थात् अरिहन्ता मंगलम्, सिद्धा मंगलम्, यह मांगलिक व्यवहार है । 'केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं...' यह पर्याय है, वह भी व्यवहार है । वे तीन तो द्रव्य हुए । उसमें वह पर्याय धर्म हुई । मांगलिक तो परमात्मा आत्मा शरण आया न ? उसका कारण जो त्रिकाली है, वह मांगलिक है, वह शरण है, वह उत्तम है । आहाहा ! आत्मा मांगलिक, आत्मा शरण और आत्मा उत्तम । आहाहा ! ऐसी बातें हैं ।

एक किसी का पत्र आया है, कच्छ में से । बहुत पढ़ा है, अन्यमति है । तुम्हारा कोई पुस्तक पढ़कर मुझे बहुत प्रमोद आया है और ऐसा है । सब मान्यता झूठी, एक-एक लिखा है । ऐसा होवे और ऐसा होवे और आस्रव में ऐसा है, दुःखी को ऐसी मदद करनी और अमुक को ऐसा करना । बड़ा पम्पलेट है । आहाहा ! अरे ! कौन मदद करे ? और कौन करे ? उनके आश्रम में पैसे हों लाखों, करोड़ों तो गरीबों में देना चाहिए, ऐसे काम लेना चाहिए । कौन दे, ले ? बापू ! आहाहा ! यहाँ तो अन्दर में राग होता है, वह भी शरण नहीं है । अरे ! पर्याय होती है, वह भी शरण नहीं है । आहाहा ! पलटती—स्थिर नहीं रहती, वह पर्याय शरण कैसे ? जो स्थिर बिम्ब पड़ा है, ऐसे जागता जीव खड़ा है न ध्रुव, खड़ा है स्थिर ।

आहाहा! उसकी शरण ले, यह मांगलिक है और यह उत्तम है। अरे.. अरे..! ऐसी बातें हैं। उसी का ध्यान करना,... पर्याय का नहीं, गुणभेद का नहीं, देव-गुरु-शास्त्र का नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्यसंग्रह में ऐसा आता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बात। वह तो पहले यह विकल्प आवे, यह बतलाया है। वह तो ज्ञानार्णव में ऐसा आता है और पहले यह ऐसा आत्मा, चिन्तवन करना और ऐसा, कमल को चिन्तवन करना और भगवान आत्मा ऐसा है, वह तो एक अशुभ से बचने पहले आता है, इतनी बात है। उस ज्ञानार्णव में ध्यान का बड़ा अधिकार है, सब खबर है न! द्रव्यसंग्रह में है अन्तिम (गाथाओं में)। यह तो पहले विकल्प आता है, वह कोई वास्तविक वस्तु नहीं है। मात्र यह चीज़ क्या है? सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कही है, वह (वस्तु) क्या है? और अज्ञानी ने (जो कल्पित किया है), वह क्या है? उसका विवाद टालने के लिए वह द्रव्य और गुण का ज्ञान पहले विकल्प से आता है परन्तु वह कोई चीज़ नहीं है। उससे क्या? आता है न? कर्ता-कर्म (अधिकार)। आहाहा!

मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, अभेद हूँ, एकरूप हूँ—ऐसा जो विकल्प उठा, उससे क्या? उसमें आत्मा का कल्याण कहाँ आया? ऐसा कहते हैं। आहाहा! वैसे विकल्प को छोड़कर.. भाई! यह तो अलग चीज़ है, बापू! आहाहा! ऐसा जो भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसी की शरण लेना, उसी का ध्यान करना,... आहाहा! उसमें दृष्टि देना, उसका आश्रय करना। आहाहा!

कि जिससे अनन्त निर्मल पर्यायें स्वयं खिल उठें। आहाहा! ध्यान की पर्याय में द्रव्य को ध्येय बनाने से, पर्याय में अनन्त गुण की निर्मल पर्याय विकसित-खिल उठती है। आहाहा! जैसे कमल खिलता है, वैसे द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेने से अनन्त गुण की पर्याय, पर्याय में-अवस्था में खिल निकलती है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। समझ में आया?

कि जिससे... कि जिससे अर्थात् ऐसी दृष्टि दे, द्रव्य का-त्रिकाली का आश्रय करे, शरण ले। आहाहा! और उसका ध्यान करे तो अनन्त गुण की पर्याय खिल निकलती है। आहाहा! जो शक्तिरूप से संग्रहालयरूप से है, उस संग्रहालय के स्वभाव की दृष्टि करने से पर्याय में वह शक्ति खिल निकलती है। आहाहा! राग खिल निकले, यह नहीं - ऐसा

कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन भी अनन्त गुण का अंश जो 'सर्व गुणांश, वह समकित'— है न? सर्व गुणांश, वह समकित अर्थात् दृष्टि वहाँ देने से अनन्त गुण की पर्याय व्यक्तरूप से खिल निकलती है। आहाहा! मोटाणी! ऐसी बातें हैं। वहाँ कहीं मुम्बई-बुम्बई में कहीं.. आहाहा! सूझ पड़े ऐसा नहीं यह कहीं। सूझ तो अन्दर पड़े ऐसा है। आहाहा! इसलिए द्रव्यदृष्टि करके, अखण्ड एक ज्ञायकरूप वस्तु को लक्ष्य में लेकर... बहुत सार आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : आज का दिन भी ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिन भी बड़ा। भगवान मोक्ष पधारे। आहाहा! दिन तो जो है, वह है। भगवान का आत्मा जो है, वह बड़ा है। आहाहा!

इसलिए द्रव्यदृष्टि करके... सोगानी के पुस्तक का नाम 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' दिया है न? उसमें तो यहाँ तक कहा, पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो, मैं तो जो हूँ, वह हूँ। परिणाम हो गये परन्तु मैं तो हूँ, ऐसा रहा हूँ। अपेक्षा से द्रव्य का जोर है। उसे लोगों ने निश्चयाभास करके निकाल डाला। क्या करे?

एक ज्ञायकरूप वस्तु को लक्ष्य में लेकर उसका अवलम्बन करो। वही, वस्तु के अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव का आश्रय है। उसका आश्रय, लक्ष्य करो, उसका अवलम्बन करो। वही,.. अवलम्बन-त्रिकाली द्रव्य का अवलम्बन लक्ष्य में लो, वही, वस्तु के अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव का आश्रय है। आश्रय की व्याख्या की है। आहाहा! है या नहीं? जब्बूभाई है? आहाहा! एक कपूरभाई आते हैं, वे सब आंकड़िया के हैं न! त्रिकाली-एक समय में रहा हुआ त्रिकाली ध्रुव। आहाहा! अभेद एक, ऐसी दृष्टि देने से पर्याय में, शक्तियों का जो संग्रह है, उसकी पर्याय में व्यक्तता, प्रगटता अनन्त गुण का अंश प्रगट होता है। आहाहा!

आत्मा अनन्त गुणमय है परन्तु द्रव्यदृष्टि गुणों के भेदों का ग्रहण नहीं करती,... आहाहा! ग्यारहवीं गाथा और छठी गाथा है। सादी गुजराती भाषा में है। आहाहा! एक बार मध्यस्थ होकर पढ़े तो एक बार तो इसका पानी उतर जाए कि बात हमने जो जानी है, वह सब अलग, यह कुछ अलग है। आहाहा!

मुमुक्षु : पानी उतर नहीं जाए, पानी बराबर चढ़ जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी उतरता जाए, अभी समझे तब उतर जाए। यह समझा है, ऐसा माना है, इसलिए इसे नहीं उतरता। हमें समझने में आया है, हम समझते हैं, उसे पानी नहीं उतरता। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! आहाहा! हमने कुछ जाना नहीं, हमें आता नहीं, हम तो भगवान त्रिलोकनाथ की शरण लेते हैं—ऐसा जब करेगा, तब इसे अज्ञान का पानी उतर जाएगा और ज्ञान का खिलेगा। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! समझ में आया ?

यह पहले आ गया है। हमको आता है, इस क्षयोपशम की हूंफ (मान) में चढ़ जाएगा तो मर जाएगा, हाथ नहीं आयेगा। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! यह क्या चीज़ है ? आहाहा! और बाहर प्रसिद्धि कि दूसरे जाने, उसका अभिमान छोड़ देना, भाई! यह पहले आ गया है। आहाहा! हमें आता है, ऐसा जगत जाने तो बाहर तो प्रसिद्ध हों कि इसे आता है। यह सब बात छोड़ देना, प्रभु! उसमें कुछ दम नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तु जो द्रव्य है, उसकी शरण में निर्मल दशा प्रगट होती है। परन्तु द्रव्यदृष्टि गुणों के भेदों का ग्रहण नहीं करती, वह तो एक अखण्ड त्रैकालिक वस्तु को अभेदरूप से ग्रहण करती है। आहाहा! समझाना क्या ? यह अभेद है, उसे ग्रहण करता हूँ, ऐसा भी कहाँ है ? समझ में आया ? समझाना किस प्रकार ? आहाहा! यह अभेद है और ग्रहण करता हूँ, वह पर्याय में खड़ा-खड़ा अभेद है—ऐसा माने, वह भी दृष्टि मिथ्यात्व है। पर्याय में खड़ा, ऐसे, पर्याय में खड़ा है और यह द्रव्य अभेद है, यह द्रव्य अभेद है, ऐसा (करता है)।

मुमुक्षु : पर्याय में खड़ा है अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवरी : खड़ा है अर्थात् वहाँ रहा है। पर्याय पर तो दृष्टि वहाँ है। वह पर्यायदृष्टि। भाषा की है। यह सोगानी में भी आता है। पर्याय में खड़े-खड़े यह द्रव्य है, अभेद है, (ऐसा करे तो) वह तो वह का वही है, अनादि की दशा है, वही है। आहाहा! द्रव्य में खड़ा (रहे), जा वहाँ। आहाहा! वीतरागमार्ग, बापू! अखण्ड एक त्रिकाली वस्तु को, त्रिकाली को अर्थात् वर्तमान है, वह कायम रहनेवाला ऐसा, तीनों काल रहनेवाला है, इसलिए भेद है, ऐसा नहीं। आहाहा!

वर्तमान समय में जो ध्रुव है, अभेद है, त्रिकाल रहनेवाला है, वह तो कायम इस एक ही समय में त्रिकाल रहनेवाला है, ऐसी वह चीज़ है। त्रिकाल अर्थात् ऐसे भूत (काल) में रहा और भविष्य में रहेगा और ऐसे भेद डाले तो वह वस्तु में कहाँ है। आहाहा! यह प्रभु का मार्ग है शूरों का, कायर का वहाँ काम नहीं है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : शूरवीर होने के लिए शूरवीर की सभा में बैठना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! भगवान के हजार नाम आते हैं न? एक हजार आठ (नाम आते हैं), उनमें एक नाम आता है। भगवान ध्यान करते थे, प्रभु महावीर प्रभु, ध्यान में बैठे थे वहाँ शंकर और पार्वती आये। एक हजार आठ नाम में है। आशाधर ने यह बहुत बाहर प्रसिद्ध नहीं किया। आये और डिगाने लगे। स्वयं पार्वती के उसमें हो गये थे न, इसलिए ऐसा कि यह और (कौन)? परन्तु ऐसे ध्यान में मस्त थे कि जिन्हें डिगा नहीं सके, नम्रीभूत हो गये। आहाहा! एक हजार आठ में नाम में यह आता है। ऐसे बहुत हैं। एक हजार आठ नाम हैं, ऐसे तो प्रभु के अनन्त नाम हैं। भगवान में अनन्त गुण हैं और अनन्त गुण के नाम उन्हें पड़ते हैं। आहाहा! वह भी नाम का भेद भी जिसका / दृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! अरे! आठ वर्ष के बालक और हजार योजन के तिर्यच बड़े लम्बे, वह भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं तो अभेद की त्रिकाली की दृष्टि करते हैं, तब प्राप्त करता है। ऐसा है।

यह पंचम भाव पावन है,... यह त्रिकाली जो सहज स्वरूप भगवान पंचम भाव। चार भाव जो उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, वह पर्याय है और यह है वह परम पावन स्वभाव है। आहाहा! पूजनीय है। एक त्रिकाली ज्ञायकभाव द्रव्यस्वभाव, वह पूजनीय है। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है,... आहाहा! सच्चा मुनिपना आता है,... सच्चा विशेषण लगाया है। जिसे सच्चा मुनिपना कहते हैं, वह इस त्रिकाली पंचमभाव के आश्रय से आता है। आहाहा! 'सच्चा' शब्द प्रयोग किया है न! ऐसा द्रव्यलिंग पड़ता है और अट्टाईस मूलगुण (पालन करता है), वह कहीं मुनिपना नहीं है। आहाहा! ऐसे ये श्वेताम्बर वस्त्रसहित कहते हैं, वह तो द्रव्यलिंग भी नहीं है, वह इसमें आयेगा। सूक्ष्म बात तो है, भाई! आहाहा!

शान्ति और सुख परिणमित होता है,... भगवान त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से (परिणमित होता है)। पर्याय को जहाँ उसके सन्मुख किया। वह पर्याय जो विमुख थी और

परसन्मुख थी। आहाहा! लक्षण की पर्याय ने लक्ष्य को पकड़ा अर्थात् वहाँ दृष्टि स्थिर हुई। आहाहा! तब उसे शान्ति और सुख होता है। आहाहा! वीतरागता होती है,... त्रिलोकनाथ द्रव्यस्वभाव, परमपारिणामिकस्वभाव एक समय की क्षायिक पर्याय से भी भिन्न भगवान.. आहाहा! उसके आश्रय से शान्ति, उसके आश्रय से सुख होता है। वीतरागता उसके आश्रय से होती है, पंचम गति की प्राप्ति भी उसके आश्रय से होती है। बहुत सरस अधिकार है। यह भगवान मोक्ष पधारे, वे भी उसके आश्रय से प्राप्त हुए हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ३५३ हुआ। अब जरा यह...

तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है, ऐसा गुरुदेव ने युक्ति-न्याय से सर्व प्रकार स्पष्टरूप से समझाया है। मार्ग की खूब छानबीन की है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्मा का शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रताप से इस काल सत्यरूप से बाहर आया है। गुरुदेव की श्रुत की धारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरने का मार्ग बतलाया है। प्रवचन में कितना मथ-मथकर निकालते हैं! उनके प्रताप से सारे भारत में बहुत जीव मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। पंचम काल में ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ, वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवन में सब उपकार गुरुदेव का ही है। गुरुदेव गुणों से भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमल की सेवा हृदय में बसी रहे ॥३५४॥

तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है... आहाहा! तीर्थंकर सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ने प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है, ऐसा गुरुदेव ने युक्ति-न्याय से सर्व प्रकार स्पष्टरूप से समझाया है। आहाहा! दिगम्बर धर्म, वह सत्य है; बाकी कोई धर्म सत्य है ही नहीं।

मुमुक्षु : प्रत्येक धर्मवाले ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दुनिया प्रत्येक कहे, उसमें क्या ? नास्तिक ऐसा कहता है कि हम जानते हैं, वह सत्य है। आहाहा!

युक्ति से और न्याय से-लॉजिक से सिद्ध किया है—ऐसा कहते हैं। वह भी सर्व प्रकार से स्पष्टरूप से। आहाहा! बापू! यह दिगम्बर धर्म, वह कोई पक्ष नहीं है; यह वस्तु का स्वरूप है। आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसके अवलम्बन से वीतरागता प्रगट हो, वह दिगम्बर धर्म है। अथवा चारों अनुयोगों का सार वीतरागता है। (पंचास्तिकाय) १७२ गाथा। वीतरागता सार प्रगट कैसे हो?—कि द्रव्य के आश्रय से प्रगट होती है। यह बात दिगम्बर में ही है। समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर धर्म, वह कोई पक्ष नहीं है। यह वस्तु का स्वरूप ही दिगम्बर जैन जिनस्वरूप आत्मा है। उसके अवलम्बन से वीतरागता प्रगट हो, यह चारों अनुयोगों का तात्पर्य है। तो वीतरागता हो - वह कब?—कि त्रिकाली द्रव्य का आश्रय ले तब। अर्थात् चारों अनुयोगों का 'द्रव्य का आश्रय ले'—यह कहना है, भाई! आहाहा! वे कहते हैं न? चरणानुयोग में ऐसा कहा है, अमुक में (ऐसा कहा है)। लाख कहा, अब सुन न! मोक्षमार्गप्रकाशक तो ऐसा कहता है (कि) द्रव्यानुयोग की दृष्टि हुए बिना चरणानुयोग और करणानुयोग को यथार्थरूप से नहीं समझ सकता। आता है न? आहाहा! यहाँ तो यह भी वह नहीं। चारों ही अनुयोगों में... पंचास्तिकाय की १७२ गाथा कही कि सूत्र तात्पर्य तो प्रत्येक गाथा में कहा, परन्तु पूरे शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। वीतरागता है, वह पर्याय है। वह वीतरागपर्याय कहाँ से प्रगट होती है?—कि त्रिकाली वीतरागस्वरूप है, उसके आश्रय से। इसलिए चारों अनुयोग (में) 'द्रव्य का आश्रय ले तो (वीतरागता) हो, यह कहना है। आहाहा! यह बात तो दिगम्बर में है, अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

मार्ग की खूब छानबीन की है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त,... सब बात हो गयी है। उसके सामने अब यह सब चर्चा चलती है। हस्तिनापुर में शिक्षण-शिविर निकाला है। एक ज्ञानमति आर्यिका है। यहाँ के विरोध का। अरे! पुण्यवन्त है और चारों अनुयोग पढ़े हैं, तो बातें करे। यहाँ कहते हैं उपादान-निमित्त,... वहाँ अभी चर्चा चलती है। हो गयी वहाँ। उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, इन चार की बातें सोनगढ़ से विरुद्ध की। निमित्त बिना उपादान में कार्य होता ही नहीं। (ऐसा उनको कहना है।)

यहाँ तो कहते हैं कि प्रत्येक पर्याय ज्ञेय की... (प्रवचनसार) १०२ गाथा। ज्ञेय,

जितने छह द्रव्य हैं, उनकी जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह जन्मक्षण, उसकी उत्पत्ति-काल है। निमित्त के कारण नहीं। उसका—पर्याय का उत्पत्ति-काल ही है। फिर भले निमित्त हो, परन्तु निमित्त से उसमें कार्य हुआ, उत्पत्ति हुई है (—ऐसा नहीं है)। (निमित्त) अकिंचित्कर है। बन्ध अधिकार में २६७ (गाथा में) आया है कि तू अध्यवसान करे कि इसे बन्ध हो; अध्यवसान करे कि इसे मोक्ष हो, परन्तु तेरे अध्यवसाय से वहाँ होगा सार्थक? तेरा अध्यवसाय निरर्थक है। उसकी अज्ञानदशा से वह बन्ध को प्राप्त होगा और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और वीतराग पर्याय से मोक्ष होगा। वह तो उसकी पर्याय से होगा। तुझसे होगा? आहाहा!

उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्मा का शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रताप से इस काल सत्यरूप से बाहर आया है। गुरुदेव की श्रुत की धारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरने का मार्ग बतलाया है। लो! यह बहिन कहती है। प्रवचन में कितना मथ-मथकर निकालते हैं! उनके प्रताप से सारे भारत में बहुत जीव मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। आहाहा! पंचम काल में ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ, वह अपना परम सद्भाग्य है। ऐसा कहती हैं, लो! आहाहा! जीवन में सब उपकार गुरुदेव का ही है। गुरुदेव गुणों से भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमल की सेवा हृदय में बसी रहे। आहाहा! ऐसे निर्मान के बहिन के वचन हैं। विशेष कहा जाएगा। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल-१, बुधवार, दिनाङ्क ०१-११-१९७८
वचनमृत-३५५ से ३५६ प्रवचन-१३७

तरने का उपाय बाहरी चमत्कारों में नहीं रहा है। बाह्य चमत्कार साधक का लक्षण भी नहीं है। चैतन्य चमत्कारस्वरूप स्वसंवेदन ही साधक का लक्षण है। जो अन्तर की गहराई में राग के एक कण को भी लाभरूप मानता है, उसे आत्मा के दर्शन नहीं होते। निस्पृह ऐसा हो जा कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए, अन्य कुछ नहीं चाहिए। एक आत्मा की ही लगन लगे और अन्तर में से उत्थान हो तो परिणति पलटे बिना न रहे ॥३५५ ॥

वचनमृत ३५५। ३५४ हो गया है। तरने का उपाय बाहरी चमत्कारों में नहीं रहा है। कोई चमत्कार बाहर में दिखाये। वाणी का, लेखन का कि ओहोहो! यह तो भारी लेखक है, यह भारी (जोरदार) भाषण करनेवाला है। इस चमत्कार से कहीं आत्मा का वेदन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? इससे लक्ष्मी मिली, महाराज के चरण हुए तो लक्ष्मी मिली - सब खोटी बात है। वह चमत्कार यही नहीं, वस्तु नहीं। बापू! आहाहा! लड़के नहीं थे और लड़के हुए, नौ लड़कियों के ऊपर एक लड़का हुआ और ऐसा हुआ और वैसा (हुआ)। ये सब चमत्कार लेते हैं न? वह जादूगर नहीं? साईबाबा।

मुमुक्षु : लड़की और लड़के को मार डालकर जीवित करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब गप्प ही गप्प। कौन मार डाले? वह बेचारा के। लाल जादूगर कहता था न! वहाँ राजकोट आया था। पाँच-पाँच हजार रुपये रात्रि के लेता था। एक बार तीन लाख लिये थे। जापान में बताया था। वह कहे, हमारा ढोंग है, महाराज! वह तो बेचारा स्पष्ट कहता था। मेरे पास दूसरा क्या है? कि ढोंग है, महाराज हमारा। मैंने कहा - मर जाओगे, यह पुण्य के कारण पैसे-बैसे (दिखते हैं)। इसमें मर जाओगे। आहाहा!

दुनिया तो महिमा करे कि ओहोहो! मार डाला स्त्री को, (लड़की को), लड़की वापस आयी। कौन मारता था? हाथ की चालाकी। आहाहा! यह जादूगर कोई चीज़ नहीं है। ऐसा चमत्कार कि इससे यह ऐसा आया और महाराज का आना हुआ, साधु आये, भगवान की प्रतिमा में से ऐसे पानी झरा आँख में से। सर्वत्र ढोंग-ढोंग है। उसके साथ सम्बन्ध क्या है? आहाहा! बाहर के चमत्कार से कोई तरने का उपाय नहीं है, बापू! आहाहा!

बाह्य चमत्कार साधक का लक्षण भी नहीं है। आहाहा! अज्ञान वस्तु है। आहाहा! बारह अंग का अन्तर्मुहूर्त में पारायण कर डाले, ऐसी जीव की एक दशा हो, तो वह कुछ विशेष नहीं है, वस्तु नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : अभव्य को भी होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभव्य को अमुक शैली होती है। उसे बारह अंग नहीं होते। नव पूर्व तक होते हैं। आहाहा! विभंग (ज्ञान) होता है, सात द्वीप सात समुद्र देखे, वह कुछ विशेष नहीं है, वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा!

चैतन्य चमत्कारस्वरूप स्वसंवेदन ही साधक का लक्षण है। आहाहा! चैतन्य का चमत्कार भगवान आत्मा स्वसंवेदन—अपने आनन्द के वेदन में आवे। आहाहा! अनन्त काल से जो राग का वेदन है, उससे छूटकर अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वसंवेदन, वह चैतन्य का चमत्कार है। आहाहा! समझ में आया? **चैतन्य चमत्कारस्वरूप स्वसंवेदन...** क्या? कैसा? **चैतन्य चमत्कारस्वरूप स्वसंवेदन...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, वह चैतन्य का चमत्कार है। जो पर्याय में कभी नहीं था, उस पर्याय में स्वसंवेदन आया तो पूरा द्रव्यस्वभाव कैसा है, उसके अनुभव में आया। आहाहा! वह है जगत में, बापू! आहा! **जो अन्तर की गहराई में राग के एक कण को भी लाभरूप मानता है,...** वेदान्त में भी अनुभव, अनुभव करोगे, ऐसा कहते हैं लोग। वे लोग, हमें अनुभव हुआ, अनुभव (हुआ, ऐसा कहते हैं)। अनुभव अर्थात् बाहर से ऐसा भास होवे, बाकी मूल अनुभव नहीं।

मुमुक्षु : आत्मा के स्वरूप में ही अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा बड़ा अन्तर। वहाँ तो हमारे पालेज में तो बहुत था, वहाँ तो हमारे एक ग्राहक ही ऐसा था बड़ा। ब्राह्मण बड़ा पूरा सबका गुरु हमारा ग्राहक था। बस,

सब एकरूप वेदन, एकरूप आत्मा का अनुभव हो। धूल में भी अनुभव नहीं।

मुमुक्षु : ब्राह्मण....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहते हैं न, वे लोग। दरबार! तुम्हारे वेदान्त में यह सर्वत्र यह ऐसा बहुत होता है। ऐसा अनुभव हुआ। मैंने साक्षात् आत्मा को जाना, सर्वव्यापक है। यह सब चमत्कार अज्ञान का है। आहाहा!

मुमुक्षु : अज्ञान का भी चमत्कार ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अज्ञान का यह चमत्कार है। आहाहा!

यहाँ तो अन्तर की गहराई में राग के एक कण को भी... आहाहा! आत्मा अनन्त गुण का धनी और उसमें अनन्त गुण—ऐसा गुण—गुणी के भेद का जो विकल्प उठता है, वह भी राग है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? देवजीभाई! गहराई में राग से लाभ माने, आहाहा! उसे आत्मा के दर्शन नहीं होते। आहाहा!

वेदान्त में तो ऐसा बहुत है, हमें अनुभव हुआ, ऐसा हुआ, वैसा हुआ। आहाहा! मोरबी के पास गाँव नहीं था? वहाँ गये थे न? कौन सा गाँव? मोरबी की इस ओर एक गाँव। गरासिया के मकान में उतरे थे। 'सनाला' नहीं, इस ओर... 'टंकारा', वह बड़ा गाँव, यह तो छोटा गाँव है। गरासिया का बड़ा मकान है और वह ऐसा मानता है कि हमें तो अनुभव हुआ है। बाबा बहुत रहते थे। वहाँ हम उतरे थे। व्याख्यान सुनने बैठा था। बातें (सब ऐसी करे?) आहाहा! ऐसा है और वैसा तथा ऐसा है। भ्रमणा हो गयी, भ्रमणा।

अन्तर का वेदन जो है, उसकी दशा अन्दर से बदल जाती है। आहाहा! चैतन्यस्वभाव जो आनन्द का सागर प्रभु, आहाहा! उसका अन्तर का वेदन। इस राग के कण से भी लाभ माने तो उसे वह वेदन नहीं होगा। आहाहा! पर मैं कहीं भी सुखबुद्धि पुण्यपरिणाम में रह गयी, (तो) उसे पवित्र प्रभु है, उसके दर्शन नहीं होंगे।

मुमुक्षु : पुण्य में तो न हो परन्तु रुपये का ढेर।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये के ढेर में धूल में क्या उसमें? वह तो पुण्य हो तो होते हैं। आहाहा! ढेर (होवे) उसमें इसके पास क्या आया? इसके पास तो ममता आयी। यह पैसा मेरा, ऐसी ममता (आयी)। पैसा तो धूल जड़ है। जड़ कहाँ इसके पास आता है? धूल

भी नहीं जड़ में। आहाहा! करोड़पति हैं सब बहुत। दुःखी हैं वे तो इसके कारण... आहाहा! इसके कारण अर्थात्? वह दुःख में निमित्त है। वह वस्तु कहीं दुःख का कारण नहीं है, वस्तु तो ज्ञेय है। चाहे तो कैसी भी अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। उसमें अनुकूल या प्रतिकूल कोई वहाँ छाप लगायी है अन्दर? वे जगत की चीजें तो ज्ञेय है। उन्हें अज्ञानी प्रतिकूल मानकर द्वेष करे, अनुकूल मानकर राग करे। वह तो मानकर राग करे। वह कहीं वस्तु अनुकूल-प्रतिकूल नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : दवा अनुकूल नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा अनुकूल किसे कहना? आहाहा! वह विकल्प आवे। मुनिपना दवा आदि। भिक्षा में जाए तो साथ में दे परन्तु वह तो आहार का राग / विकल्प उठा है, उसका वह ज्ञाता है, कर्ता नहीं। आहाहा! यह आयेगा अभी। ३५६, ३५६ में। मुनिदशा अर्थात् क्या, बापू! यह तो अभी तो... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **अन्तर की गहराई में राग के एक कण को...** कण-अंश। आहाहा! मेरा ज्ञान, मुझे जानपना (हुआ है) उस चीज को बताऊँ तो मुझे पास करे, ऐसा भी एक राग का कण अन्दर है। आहाहा! अभिमान है वह राग। मुझे लोग पहिचानें, मुझे गिनती में गिनें। आहाहा! वह भी राग का कण है। आहाहा! उसे भी अपना माने, उसे बिल्कुल आत्मदर्शन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! चमत्कार का सब डाला है, देखो न!

निस्पृह ऐसा हो जा... निस्पृह ऐसा हो जा, कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए... देखा! अस्तित्व आया न? पर्याय का अस्तित्व है, वह अंश है और इसका अस्तित्व वह कायम त्रिकाली ध्रुव अस्तित्व है। आहाहा! पर्याय का जो अस्तित्व है, वह तो एक समय का अस्तित्व है, वह तो नाशवान है और भगवान का जो अस्तित्व है, अपनी ध्रुवसत्ता, चैतन्यस्वभाव की सत्ता त्रिकाल ध्रुव, वर्तमान, हों! आहाहा! उसका अस्तित्व ही मुझे चाहिए, बस; दूसरा कुछ नहीं चाहिए। नहीं चाहिए मान, दुनिया मुझे माने या न माने, यह मुझे नहीं चाहिए। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

सोगानी ने एक बार लिखा है, भाई! है न? द्रव्यदृष्टि (प्रकाश) में। (किसी ने)

कहा कि भाई! आपको (समकित) हुआ तो महाराज को कहो। जाओ न, कहो न। वे कहते हैं, मेरी प्रकृति में यह भाव नहीं है। मैं जाकर कहूँ (मुझे समकित हुआ है) और मुझे ऐसा होता है, यह मेरी बात में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? है उसमें—द्रव्यदृष्टि प्रकाश में है। तुम वहाँ जाकर कहो न किसी को कि मुझे ऐसा है। यह मुझे मेरे स्वभाव में यह बात ही नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि निस्पृह ऐसा हो जा... आहाहा! मुझे अपना अस्तित्व ही... सत्ता-त्रिकाली सत्ता भगवान पूर्ण ब्रह्म परमात्मस्वरूप का अस्तित्व, वही अस्तित्व, वही मुझे चाहिए है। आहाहा! चाहिए है, यह तो श्रद्धा और ज्ञान की पर्याय कहती है। परन्तु चाहिए क्या है? मेरा पूर्ण अस्तित्व है वह (चाहिए)। ऐसा जानता है और मानता है कौन? पर्याय। आहाहा! ३२० गाथा में आता है न? कि क्षयोपशम जो अनुभव हुआ, वह भी खण्ड-खण्ड ज्ञान है, उसका ध्यान ज्ञानी नहीं करते। आता है न? ३२० अन्तिम।

विवक्षित एकदेश शुद्धनयाश्रित यह भावना अर्थात् परिणति। उसमें रही हुई आंशिक शुद्धिरूप परिणति। निर्विकार स्वसंवेदन लक्षण क्षायोपशमिक ज्ञान, ज्ञान यहाँ डाला है। पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान है। यद्यपि एकदेश वृत्तिरूप है। निर्मल एक अंश प्रगट रूप है—सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि; तो भी ध्याता पुरुष ऐसा ध्याता है कि आहाहा! धर्मी ऐसा ध्याता है और ध्यान करता है कि आहाहा! जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। आहाहा! निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि हुआ, तथापि ध्याता उसका ध्यान नहीं करता, कहते हैं। आहाहा! ध्येय तो त्रिकाली निरावरण भगवान सकल अविनाशी... आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! दुनिया की झंझट से तो छूट जाए परन्तु इस प्रगट हुई निर्मल दशा का भी जिसे ध्यान नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भगवान सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ, ऐसा धर्मी ध्येय का / द्रव्य का ध्यान करता है। आहाहा! प्रगट हुई दशा का भी उसे अवलम्बन नहीं है; अवलम्बन तो त्रिकाली का है। आहाहा! आहाहा! है न वहाँ?

यह यहाँ है। मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए,... समझाने में तो यह मेरा अस्तित्व है, ऐसा भी वहाँ कहाँ है? परन्तु वर्तमान पर्याय के अस्तित्व को त्रिकाल अस्तित्व में जोड़

देता है। अर्थात् उसे मेरा अस्तित्व ही चाहिए, यह भाव उसमें आया। आहाहा! ऐसा मार्ग है। समझ में आया? प्रभु! यह तो तेरे घर की बात है, नाथ! आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा पूर्ण सत्ता के अस्तित्व से शाश्वत् विराजमान प्रभु है। आहाहा!

बहिन की सादी भाषा का अर्थ पहला अक्षर वह आया है न? 'जागता जीव खड़ा है न।' अब तो छोटे-छोटे लड़के भी बोलते हैं। वह लड़का नहीं तुम्हारा मोरबी का? वांकानेर.. वांकानेर, छोटा है न भानेज? वजुभाई का भानेज लड़की का लड़का आया था न? होशियार है। बहुत बोलता है। 'जागता जीव खड़ा है न!' अभी तो चार-पाँच वर्ष की उम्र होगी, पाँच, छह वर्ष की। उसकी माँ के साथ आया था। 'जागता जीव खड़ा है न।' कहा, वाह! वांकानेर के नहीं? अरे! आहाहा!

जागता जीव अर्थात् ज्ञायकभाव ध्रुव है न! खड़ा अर्थात् ध्रुव। हिन्दी में इसका अर्थ ऐसा कर डाला है, ज्ञायकभाव विद्यमान है न। उसकी अपेक्षा ज्ञायकभाव खड़ा है न! ऐसी भाषा चाहिए। चैतन्य महासत्ता जागृतस्वरूप ध्रुव है न! खड़ा है न! वह महाअस्तित्व है न! आहाहा! महासत्ता है न! वही चीज मुझे चाहिए। आहाहा! देवजीभाई! ऐसा कहाँ तुम्हारे यहाँ कहीं नहीं था।

मुमुक्षु : कहीं कभी सुना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही नहीं। लोग भाग्यशाली हैं। यह वस्तु। आहाहा! क्या हो? बापू!

मुमुक्षु : हमारा भाग्य है कि सुनने को मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी योग्यता होती है। आहाहा!

मेरा अस्तित्व अर्थात् उस पर्याय का अस्तित्व, वह नहीं। पर्याय का अस्तित्व तो, 'मेरा अस्तित्व त्रिकाल है' ऐसा वह स्वयं स्वीकारता है। आहाहा! अगमगम्य की बातें हैं। आहाहा! **मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए,...** ओहोहो! मुझे इज्जत चाहिए, मान चाहिए, यह चाहिए, पुण्य चाहिए और राग का कण भी मुझे भला लगता है, यह वस्तु उसमें नहीं है। आहाहा! अस्तित्व तो जड़ का भी है, परन्तु यहाँ मुझे मेरा अस्तित्व चाहिए। यह सब क्यों पड़ा है? परमाणु आदि दूसरे द्रव्यों का भी अस्तित्व तो है, वह भी शाश्वत् अस्तित्व है और दूसरे आत्माओं का भी अस्तित्व-सत्ता तो है, परन्तु यहाँ तो मुझे मेरा अस्तित्व, मुझे

मेरा अस्तित्व। आहाहा! महासत्तारूप अस्तित्व, जिसमें अनन्त-अनन्त गुण गम्भीर गुण पड़े हैं, ऐसे भेदरूप नहीं; एकरूप अस्तित्व है, वह मुझे चाहिए। आहाहा!

अन्य कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! अन्दर में ऐसी भावना प्रगट हो, तब उसे आत्मा हाथ आवे। आहाहा! अच्छा अधिकार है। सवेरे बहुत अच्छा था। नूतन वर्ष है न यह? भगवान! पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। यहाँ तो अभी मैं दूसरों को मार सकता हूँ, थप्पड़ मारूँ, यह करूँ, यह करूँ... अरे रे! शरीर की इन्द्रियों से मैं स्त्री का भोग कर सकता हूँ। अरे.. प्रभु.. प्रभु! यह क्या है? तेरी जड़ की पर्याय को (शरीर की पर्याय को) तो चैतन्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! तेरी जड़ की (का आशय) यहाँ शरीर आदि। पर के शरीर की पर्याय को तो यह शरीर स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा!

इस जीभी को भी आत्मा स्पर्श नहीं करता और जीभ यह दाल-भात-रोटी आती है, उन्हें ये जीभ स्पर्श नहीं करती।

मुमुक्षु : जीभ में तो जीव है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीभ से जीव भिन्न है। यह अपने आ नहीं गया? द्रव्येन्द्रिय का यह (जीव) स्वामी नहीं कि द्रव्येन्द्रिय द्वारा रस को चखे। आहाहा! ऐसे यह द्रव्येन्द्रिय का स्वामी नहीं कि यह द्रव्येन्द्रिय द्वारा स्वयं भाषा बोले। आहाहा! ऐसे पर का स्वामी नहीं कलम का और शीशपेन का कि जिससे यह लिखे। आहाहा! समझ में आया? यह तो, भाई! अलग प्रकार है। इसमें कहीं मिठास.. (पर में है ही नहीं)।

मुमुक्षु : समझ में आये ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझ में आये, ऐसा ही यह है।

मुमुक्षु : हमारे साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलान खाये ऐसा है, बापू! तुम कौन हो? तुम आत्मा हो, प्रभु! तू तो आत्मा है न, प्रभु! तेरे साथ मिलान न खाये तो कहीं जड़ के साथ मिलान खायेगा? आहाहा! (समयसार की) ७२ गाथा में तो भगवानरूप से ही बुलाया है। पुण्य और पाप हैं, वे अशुचि हैं, मैल है, प्रभु! भगवान आत्मा पवित्र और निर्मलानन्द है न, प्रभु! आहाहा! सन्तों की भाषा और सम्बोधन तो देखो!

भगवान आत्मा (शब्द सुनकर) चिल्लाहट मचाते हैं। वह एक बार यहाँ से सुनकर गया था कहीं। कि वहाँ तो भगवान आत्मा कहते हैं। अरे! भगवान अभी होगा ? अरे! प्रभु! क्या कहता है ? बापू! तीनों काल में प्रभु तो भगवान ही है, भाई! तुझे पता लगा नहीं। आहाहा! तुझे पर्याय में उसका भान, भास नहीं आया। वह तो भगवन्तस्वरूप ही है। आहाहा! यहाँ से सुनकर कोई गया था। वहाँ तो भगवान आत्मा करते हैं। भगवान आत्मा कैसा ? अरे रे! यहाँ तो आचार्य तो पहले से कहते हैं, पुण्य-पाप अशुचि है, भगवान आत्मा तो निर्मल है। पुण्य-पाप के भाव जड़ (हैं और) प्रभु चैतन्य समुदाय, इस चैतन्यस्वभाव का पिण्ड प्रभु तो है। पुण्य-पाप के भाव दुःखरूप; भगवान तो आनन्दस्वरूप है। तीन बार तो भगवानरूप से इसे... आहाहा! बुलाते हैं। आहाहा!

एक बार कहा नहीं था ? बहुत वर्ष की (संवत्) १९६३ की बात है, १९६३। कितने वर्ष हुए ? ७१। बड़ोदरा में झूठा केस चलता था। अफीम का झूठा केस। उसमें फुरसत हुए। तब तो माल लेने गया था, माल लेने। १९६३ के वर्ष की बात है या १९६४ (की) होंगी। रात्रि में गये, वहाँ एक अनुसूईया का नाटक था। वह महिला.. आहाहा! अनुसूईया यो की यों विवाह किये बिना स्वर्ग में जाती है, स्वर्ग में इनकार किया ' अपुत्रस्य गति नास्ति ' जिसके पुत्र नहीं है, उसकी गति अच्छी नहीं होती, बाद में श्रद्धा करनेवाला चाहिए। यह तुम्हारे में ऐसा आता है। पूर्व पूर्व... (तुम्हारा) आहाहा! नीचे बैठ गयी कि क्या करूँ ? नीचे जा, उसे वरण कर। एक अन्धा ब्राह्मण (था), उससे विवाह किया, उसके लड़का हुआ, लड़का लेकर आयी... आहाहा! ऐसे झूले में (झुलाते हुए कहती है), बेटा! निर्विकल्पो-तू निर्विकल्प है। लालचन्दभाई! ऐसा तो नाटक में था। यहाँ तो सम्प्रदाय में यह बात नहीं मिलती। अर र र!

मुमुक्षु : लोरियाँ ऐसी थीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोरियाँ। अपने बन्ध अधिकार में निर्विकल्प आता है न। भाई! अन्त में आता है। यह चार याद है। बाकी का इतना सब (याद नहीं है)। बहुत वर्ष हो गये, परन्तु इतनी बात रह गयी। आहाहा! माल लेने गये थे। रात्रि में समय मिला, नाटक देखने गये। बड़ोदरा की बात है। निर्विकल्पो! उदासीनो! आहाहा! बेटा! तू पर से उदास, तेरा आसन तो सत्ता की शुद्धता में तेरा आसन है। आहाहा! शुद्धोसि, बुद्धोसि। तू शुद्ध है, चैतन्य

का पिण्ड है। आहाहा! ऐसा तो वहाँ नाटक में कहा जाता था। चिमनभाई! यहाँ तो अभी सम्प्रदाय में कहे, ऐसा होगा? अभी निर्विकल्प? अरे! तीनों काल निर्विकल्प है, सुन न! यह यहाँ कहते हैं, मुझे तो मेरी अस्ति निर्विकल्प शुद्ध, पर से उदास, उसका आसन है; रागादि पर में उसकी बैठक है ही नहीं। आहाहा! भगवान की बैठक तो रागादि में और पर में है ही नहीं। यह तो उसकी बैठक तो ध्रुवधाम में उसकी बैठक है। समझ में आया? यह ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! नया वर्ष है, ऐसी वस्तु। आहाहा! वर्ष चले जाते हैं। यह यहाँ ४४वाँ वर्ष है। यहाँ यह वर्ष ४४वाँ लगा है। फाल्गुन कृष्ण तीन (को) ४५ होंगे, यहाँ आये हुए। आहाहा!

अन्य कुछ नहीं चाहिए। कुछ अर्थात्? आहाहा! राग का कण और उससे पुण्य बँधे और मुझे स्वर्ग मिले या शुभभाव से तीर्थकरगोत्र बाँधूँ, यह कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! **एक आत्मा की ही लगन लगे...** आहाहा! शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. ऐसा भगवान शान्त, शान्तरस का पिण्ड। ऐसी आत्मा की 'ही'। पर्याय की नहीं, राग की नहीं, निमित्त की नहीं, बाह्य के किसी चमत्कार की नहीं।

और अंतर में से उत्थान हो... ऐसी आत्मा की ही रटन लगे। आहाहा! **और अंतर में से उत्थान हो तो परिणति पलटे बिना न रहे।** आहाहा! परिणति स्वज्ञेय—सन्मुख होकर पलटे बिना रहती ही नहीं। आहाहा! परिणति में रागरहित परिणति हुई हो और अन्दर प्राप्त न हो, ऐसा नहीं होता। आहाहा! चैतन्यस्वभाव महाप्रभु को प्राप्त करने की रागरहित परिणति हो और उससे प्राप्त न हो, (ऐसा) होता ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परिणति...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात भी यहाँ हुई। राग के कण का भी जिसे रस नहीं है, तब परिणति का रस आया। आहाहा! स्व के आश्रय से। यह सूक्ष्म बात तो है। आहाहा! अरे! भव के अन्त... चौरासी के अवतार कर-करके थका नहीं। थकान लगती नहीं। किया है, यह किया करता है, शुभाशुभभाव किये हैं, वह किया करता है। जो किया है, वह किया करता है। शुभाशुभभाव तो अनन्त बार किये, अनन्त काल से किये। आहाहा! अनन्त-अनन्त काल व्यतीत हुआ तो उसमें से आधे भाग में शुभभाव और आधे भाग अशुभ में।

वास्तव में तो ऐसा हुआ है। शुभ-अशुभ, शुभ-अशुभ चक्र है ही न! आहाहा! निगोद में भी है। निगोद के जीव में भी क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ, क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ (चला ही करता है)। भगवान अविकारी स्वभाव शुद्ध चैतन्य दृष्टि में नहीं आवे, तब तक शुभाशुभ के चक्र में तो शुभ में आधा काल गया, आधा अशुभ में गया। आहाहा! यह क्या कहा? अनादि-सान्त जो अभी तक का काल... आहाहा! उसका आधा काल शुभ में गया और आधा काल अशुभ में गया। आहाहा! बराबर है ?

मुमुक्षु : आधा अर्थात् पचास प्रतिशत जाता होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, शुभ होता और अशुभ होता है, क्षण-क्षण में शुभ-अशुभ होते हैं। ऐसा ही हुआ है न, शुभ और बाद में अशुभ; अशुभ, बाद में शुभ, शुभ, बाद में अशुभ। दो भाग पड़ गये। एकरूप नहीं रहा तो दो भाग पड़ गये। आहाहा! यह तो फूलचन्दजी ने कर्म में से निकाला है कि भाई! शुभ और अशुभ दोनों तो निगोद के जीव को भी है। यह उन्होंने पहले निकाला। फूलचन्दजी को कर्म का अभ्यास बहुत है। इसका अर्थ कि क्षण में निगोद के जीव जो अभी निकले नहीं, त्रस हुए नहीं। इतने सब निगोद के जीव, जिन्हें त्रसपना पावे तो चिन्तामणि रत्न जैसा है, ऐसा कहा है। छहढाला में, छहढाला है न? त्रसपना, हों! त्रसपना। आहाहा! तो चिन्तामणि रत्न मिले, वैसे त्रसपना मिला, ऐसा कहते हैं। आहाहा! छहढाला में है। है किसी को कण्ठस्थ ?

मुमुक्षु : 'दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि त्यों पर्याय लहि त्रस तणी' (पहली ढाल, काव्य ५)

पूज्य गुरुदेवश्री : दुर्लभ लहि... त्रसपना चिन्तामणि समान। हाँ, यह। आहाहा! त्रस के लिए ऐसा चिन्तामणि जैसा कहा तो प्रभु! इस मनुष्य की बात क्या करना? आहाहा! वह किसके लिए? आत्मा के सत् को प्राप्त करने के लिए। अस्तित्व कहा न? आहाहा! शुभाशुभ के परिणाम का चक्र, उसे छोड़कर एक आत्मा की ही लगन लगे और अंतर में से उत्थान हो... अन्दर में से पुरुषार्थ जगे तो परिणति पलटे बिना न रहे। आहाहा! ३५५ (बोल पूरा हुआ)।

मुनिराज का निवास चैतन्य देश में है। उपयोग तीक्ष्ण होकर गहरे-गहरे चैतन्य की गुफा में चला जाता है। बाहर आने पर मुर्दे जैसी दशा होती है। शरीर के प्रति राग छूट गया है। शान्ति का सागर उमड़ा है। चैतन्य की पर्याय की विविध तरंगे उछल रही हैं। ज्ञान में कुशल हैं, दर्शन में प्रबल हैं, समाधि के वेदक हैं। अन्तर में तृप्त-तृप्त हैं। मुनिराज मानों वीतरागता की मूर्ति हों, इस प्रकार परिणमित हो गये हैं। देह में वीतरागदशा छा गई है। जिन नहीं परन्तु जिनसरीखे हैं ॥३५६ ॥

अब कहते हैं, आहाहा! मुनिराज का... आहाहा! मुनिराज ऐसे होते हैं कि मुनिराज का निवास चैतन्य देश में है। भगवान आत्मा चैतन्य देश पूर्णानन्द का नाथ स्वदेश, उसमें उनका-मुनि का वास है। आहाहा! राग और शरीर में उनका वास नहीं है। सम्यग्दृष्टि को उसका वास है, परन्तु उसे शुभविकल्प अधिक आते हैं और इन्हें विकल्प थोड़े (आते हैं)। यद्यपि छठे गुणस्थान का काल है, उससे सातवें का आधा है और सातवें से छठे का दुगना है, तो उसमें छठे में प्रमाद का विकल्प होता है, परन्तु कहते हैं कि हम तो स्वदेश में बसते हैं। आहाहा!

मुनिराज का निवास चैतन्य देश में है। यह क्या होगा? आहाहा! चैतन्य जिसका बादशाह, उसका देश चैतन्यस्वभाव। आहाहा! उपयोग तीक्ष्ण होकर गहरे-गहरे... आहाहा! मुनिराज का उपयोग तो सूक्ष्म होकर, तीक्ष्ण अर्थात् सूक्ष्म। आहाहा! उपयोग अर्थात् जानने-देखने का वर्तमान उपयोग। आहाहा! तीक्ष्ण अर्थात् सूक्ष्म होकर। गहरे-गहरे चैतन्य की गुफा में चला जाता है। आहाहा! देखो! यह मुनिपना। अरे रे! सुनने को मिलता नहीं, इसे मुनि होना कहाँ से? जालना में अभी भव्यसागर दिगम्बर साधु है। बीस वर्ष की दीक्षा, बड़े कवि हैं। यहाँ का पढ़कर उनसे कहा, उनका पहले पत्र आया तब, हम मुनि नहीं हैं। तुम जो कहते हो, वह वस्तु अभी हमारे में नहीं है। हमारे तो नहीं परन्तु हिन्दुस्तान में कोई मुनि है ही नहीं। ऐसा बेचारे ने कहा। आहाहा!

भाई! मुनिपना किसे कहना? स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी में तो मिथ्यात्वभाव है। वे मुनि कहते हैं, सब मिथ्यादृष्टि है। कारण कि उसमें वस्तुतत्त्व का विरुद्ध ही है, तत्त्व की

दृष्टि का विषय उसमें है ही नहीं परन्तु दिगम्बर में जो है, वह भी जो बाह्य लिंग और अट्टाईस मूलगुण कदाचित् हों, वे अट्टाईस मूलगुण भी अभी तो निर्दोष नहीं हैं।

यह तो अट्टाईस मूलगुण निर्दोष हो, नग्न-दिगम्बर दशा हो और अन्तर के उपयोग को अन्तर में ले जाने... आहाहा! गहरे-गहरे अर्थात् पर्याय के समीप में अन्तर में है, वहाँ ले जाने पर। आहाहा! पर्याय को ऐसे बाहर ले जाने से राग होता है। पर्याय को उसके-ध्रुव के तल में ले जाने से... आहाहा! उसे चैतन्य की गुफा में उपयोग चला जाता है। (समयसार) ४९ में कहा नहीं था? गिरि गुफा। आहाहा! भगवान आत्मा निर्विकल्प समाधि आनन्दरूप दशा, वह गिरि गुफा, यह पर्वत की गुफा, उसमें वह चला जाता है। आहाहा! पहले सम्यग्दर्शन की बात की। अब यह मुनिपने की दशा की। आहाहा! बापू! मुनि किसे कहना? आहाहा!

गहरे-गहरे चैतन्य की गुफा में चला जाता है। बाहर आने पर मुर्दे जैसी दशा होती है। आहाहा! विकल्प आता है, तब विकल्प से मर गये हैं। जीवित ज्योति जो अन्दर है, अन्दर में जाने से जागृत रहते हैं और राग में आते हैं तो मुर्दे जैसी दशा हो जाती है। आहाहा! सुनने में बराबर है? ...भाई! तो ठीक। आहाहा! बाहर आने पर... आहाहा! पहले आ गया है अपने। बहिन में बताया था न? आ गया न? आनन्द के देश में से बाहर जहाँ विकल्प आये, चाहे तो दया का, दान का, लिखने का, बोलने का, अरे रे! हम तो बाहर देश में चले गये। अरे! हमारा देश रह गया। आहाहा! जहाँ मेरा देश और परिवार है, वहाँ तो आनन्द और ज्ञान और चारित्र तथा वीतरागता, वह मेरा देश है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, बाहर में विकल्प में आने पर मुर्दे जैसी दशा होती है। आहाहा! जिन्हें विकल्प में आने में उत्साह उड़ गया है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। बाहर आने पर मुर्दे जैसी दशा होती है। शरीर के प्रति राग छूट गया है। देहातीत भगवान आत्मा की उग्र आनन्द की दशा मुनि को हुई है, इसलिए उस देह का राग छूट गया है। शान्ति का सागर उमड़ा है। आहाहा! शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. आहाहा! ऐसी जो शान्ति का सागर, प्रभु, शान्ति का पूर्ण अस्तित्व, वह आत्मा। आहाहा! ऐसा शान्ति का सागर मुनि को है न? समकृति को थोड़ी शान्ति होती है। पाँचवीं गाथा में कहा न? प्रचुर स्वसंवेदन। मुनि हैं, उन्हें प्रचुर आनन्द का वेदन है। आहाहा! आनन्द का-अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन है, उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा!

चैतन्य की शान्ति का सागर उमड़ा है। आहाहा! चैतन्य की पर्याय की विविध तरंगे उछल रही हैं। आहाहा! पर्याय में आनन्द, ज्ञान और शान्ति की विभिन्न तरंगें-पर्यायें उछलती हैं। आहाहा! जैसे समुद्र के किनारे जैसे उसकी बाढ़ आवे—उछले; वैसे जिनकी पर्याय में शान्ति, आनन्द आदि उछलते हैं। आहाहा! चैतन्य की पर्याय की विविध तरंगे... अर्थात् पर्याय में विभिन्न तरंगें। ज्ञान की, शान्ति की, स्वच्छता की, प्रभुता की, श्रद्धा की, आनन्द की इत्यादि अनन्त पर्यायें जिन्हें प्रगट उछलती हैं। अरे! ऐसा मुनिपना।

ज्ञान में कुशल हैं,... सन्त, अपने ज्ञान-आनन्दस्वरूप ज्ञान में कुशल हैं। आहाहा! दर्शन में प्रबल हैं,... दर्शन में प्रबल हैं। जोरदार श्रद्धा और दर्शन का उपयोग प्रबल जोरदार है। आहाहा! समाधि के वेदक हैं। लोगस्स में आता है 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु'। लोगस्स में। उन्हें भी अर्थ की खबर नहीं होती। 'समाहिवर' - समाधि क्या होगी? अन्तर में आनन्द की लहर उठे और शान्त.. शान्त.. शान्त.. जिनके शरीर में शान्ति की झलक दिखायी दे। आहाहा! एक बार आया है न इसमें? कि जैसे पिता की झलक पुत्र में होती है। आता है न? अणसार। अणसार को क्या कहते हैं? आकृति। पिता की आकृति होती है न? आकृति, ऐसा उसके पुत्र में दिखता है।

मुमुक्षु : हिन्दी में ऊणियारो कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊणियारो, हाँ वह। इसी प्रकार सर्वज्ञ परमात्मा जिनदेव पिता के मुनि पुत्र हैं, उनका ऊणियारा (झलक) उनमें आती है कि शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति। आहाहा! समकित में भी शान्ति का अंश होता है, विशेष नहीं। क्योंकि चक्रवर्ती के राज में पड़ा हो, दिखायी दे। आहाहा! क्षायिक समकित श्रेणिक राजा। हजारों राजा चँवर ढोलते थे। हुकम करे कि ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो, तथापि वे ज्ञाता-दृष्टा थे, परन्तु शान्ति विशेष नहीं थी और मुनि को तो शान्ति का सागर उछला है। आहाहा! एक कषाय का जहाँ नाश हो, अनन्तानुबन्धी का (नाश हो), वहाँ समकित को शान्ति आती है। मुनि को तो तीन कषाय का नाश (हुआ है)। इतनी शान्ति अन्दर से उछलती है। आहाहा!

उस शान्ति का सागर समाधि के वेदक हैं। अन्तर में तृप्त-तृप्त हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति के वेदन से तृप्त-तृप्त हैं। आहाहा! दृष्टान्त आता है न? अलिंगग्रहण का, नहीं? अरस, अरूप.. ४९ (गाथा)। जैसे ब्राह्मण लड्डू खाकर जैसे इस

तरह चलता है। आता है और ऐसा आता है। पहले आता था, इसमें नहीं डाला। मन्थर हुआ, बाहर निकलना (रुचे नहीं)। जैसे ब्राह्मण ने दो-तीन चूरमा के लड्डू खाये हों और ऊपर मूली के कान्दा खाये हों, फिर ऐसे मदमस्त चलता है। आहाहा! इसी प्रकार आनन्द का नाथ पर्याय में इतना आनन्द आ गया है, आनन्द की मदमदस्तता में वह चलता है। आहाहा! ऐसी दशा है, भाई! उसे मुनि कहते हैं, बापू! आहाहा! वह अन्तर में तो तृप्त-तृप्त है।

मुनिराज मानों वीतरागता की मूर्ति हों... ऐसा यहाँ लिखा है। उसमें झलक लिखा है। अरिहन्तदेव की झलक, पिता की झलक जैसे पुत्र में दिखती है, वैसे (इनमें) झलक (दिखती है)। आहाहा! मुनि मानों वीतरागता की मूर्ति हों... आहाहा! जिनबिम्ब हो गया। भगवान (आत्मा) जैसे जिनस्वरूप है, वैसा पर्याय में जिनबिम्ब हो गये। आहाहा! इस प्रकार परिणमित हो गये हैं। इस प्रकार वीतराग की दशारूप से हो गये हैं, परिणम गये हैं। आहाहा! देह में वीतरागदशा छा गई है। उसमें नहीं आता?

उपशम रस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां

उपशम रस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां

क्या कहलाता है? जिनेन्द्र स्तवनावली, उसमें आता है। आहाहा! अन्दर में अकषाय के ढाले ढल गये हैं। आहाहा! अकषाय परिणति के ढाले... आहाहा! मुनिराज को ढले हैं, हो गये हैं। जिन नहीं परन्तु जिनसरीखे हैं। भले अभी जिन-केवलज्ञानी नहीं, परन्तु जिनसरीखे हैं। आहाहा! जिन नहीं परन्तु जिनसरीखे हैं। उन तुलसी में ऐसा आता है कि ये मुनि सब जिन जैसे हैं। यह उन्हें कुछ लगा, अन्तर थोड़ा तो लगा, भाई! ऐसा रहने दो। परन्तु दूसरा सब लौकिक। मुनि जिनसरीखे हैं। परन्तु वे कौन जिनसरीखे? आहाहा!

अभी तो राग की क्रिया मैं करता हूँ, कर्ता होता है, शरीर की क्रिया मैं करता हूँ, बोल सकता हूँ, ऐसा तो मिथ्यात्वभाव पड़ा है। आहाहा! वहाँ फिर जिनसरीखे कहाँ से आये? जिन तो चौथे गुणस्थान को भी जिन कहा जाता है। यह तो जिनेन्द्रदेव वीतराग की यह मूर्ति है। वह भी जिनवर, जिन चौथे से है, मुनि भी जिनवर हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! अब ऐसी बातें। देह में रहे हैं, हिलें-चलें, आहार-पानी लें। आहाहा!

तथापि कहते हैं कि जिनसरीखे हैं, भाई! उस क्रिया को मत देख, वह तो ऊपरी सब जड़ की क्रिया है। अन्तर का भगवान आत्मा अन्दर गहरे-गहरे द्रव्य के स्वभाव में

उनका जुड़ान पड़ा है। आहाहा! पूरा द्रव्यस्वभाव जिन्होंने हिला डाला है। आहाहा! उन्हें जिन नहीं परन्तु जिनसरीखा कहा जाता है। आहाहा! ३५६। कठिन बात है।

सम्यग्दृष्टि को भी जिन कहा जाता है। इससे एक अपूर्वकरणवाले को भी जिन कहने में आता है। वहाँ अकेला कर्म का.... शुद्धात्म के सन्मुख झुकाव है न... निर्जरा, परन्तु वहाँ अभी संवर नहीं; और यहाँ संवरपूर्वक निर्जरा को वास्तविक निर्जरा कहने में आता है। आहाहा! शुद्धात्मा में अन्दर स्थिर होता है, उतनी तो संवरदशा है और तदुपरान्त उस काल में शुद्धि की उत्पत्ति हुई है, वह संवर और शुद्धि की वृद्धि हो, वह निर्जरा।

निर्जरा के तीन प्रकार हैं। एक कर्म निर्जरित हो, उसे निर्जरा कहा जाता है, असद्भूतव्यवहारनय से। एक अशुद्धता टले, उसे अशुद्ध निश्चयनय से निर्जरा कहा जाता है। एक शुद्धि की वृद्धि हो, उसे निर्जरा कहा जाता है। निर्जरा के तीन प्रकार। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध परिपूर्ण है, उसे गहरे-गहरे जाकर जिसने तल लिया है। आहाहा! उसकी परिणति में शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शुद्ध उपयोग की वृद्धि हुई है, शुद्ध की। उसे भी यहाँ एक अपेक्षा से निर्जरा कहा है। अपने अस्तित्व की, जितना अपना अस्तित्व है, उसमें पर्याय में बढ़ रहा है, शुद्धि की वृद्धि (हो रही है), उसे निर्जरा कही है। अशुद्धता खिरती है, वह तो अशुद्धनय के व्यवहारनय से उसे कहा जाता है। उस अशुद्ध को टालता है, यह भी वस्तु में नाममात्र है। यह आ गया है न? (समयसार) ३४ गाथा में (आ गया है)। आत्मा राग को टालता है, नाश करता है, वह नाममात्र आत्मा में है। आहाहा! मात्र भगवान आत्मा अपने शुद्धोपयोग से जहाँ अन्दर जाता है, इससे उतने प्रमाण में राग की उत्पत्ति नहीं होती, उसे राग का नाश किया—ऐसा व्यवहारनय के कथन से कहने में आता है। आहाहा! बाकी तो ज्ञानस्वरूप, वह रागरूप हुआ ही नहीं। द्रव्य हुआ नहीं, वैसे परिणति में रागरूप हुआ ही नहीं। फिर हुआ है और उसे टालना है? आहाहा! क्या कहा यह? भगवान आत्मा शुद्धरूप त्रिकाल है, वैसे परिणति भी जहाँ शुद्धरूप से हुई है। वहाँ रागरूप हुआ था और राग को टालना, यह वस्तु कहाँ है? आहाहा! ऐसा है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल -२, गुरुवार, दिनाङ्क ०२-११-१९७८
वचनामृत-३५७ से ३५९ प्रवचन-१३८

इस संसार में जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अकेला परिभ्रमण करता है, अकेला मुक्त होता है। उसे किसी का साथ नहीं है। मात्र भ्रान्ति से वह दूसरे की ओट और आश्रय मानता है। इस प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में अकेले भटकते हुए जीव ने इतने मरण किये हैं कि उसके मरण के दुःख में उसकी माता की आँखों से जो आंसू बहे, उनसे समुद्र भर जायें। भवपरिवर्तन करते-करते बड़ी मुश्किल से तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, ऐसा उत्तम योग मिला है, उसमें आत्मा का हित कर लेने जैसा है, बिजली की चमक में मोती पिको लेने जैसा है। यह मनुष्यभव और उत्तम संयोग बिजली की चमक की भाँति अल्प काल में विलीन हो जायेंगे। इसलिए जैसे तू अकेला ही दुःखी हो रहा है, वैसे अकेला ही सुख के मार्ग पर जा, अकेला ही मुक्ति को प्राप्त कर ले ॥३५७॥

वचनामृत ३५७। इस संसार में जीव अकेला जन्मता है,...

मुमुक्षु : शरीर सहित जन्मता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर भी भिन्न है। शरीर, शरीर के साथ आता है। आत्मा तो अकेला (जन्मता है)। जैसे इसने राग-द्वेष आदि किये हैं, उस प्रकार से अकेला आता है। कर्म तो कर्म के कारण आते हैं। आहाहा! अकेला मरता है, देह छूटे, तब अकेला चला जाता है। कोई कुटुम्ब परिवार जिसके लिए पाप किये, पुत्र-पुत्री के लिए (पाप किये), वे कोई साथ में नहीं आते। आहाहा! आयुष्य पूरा (होने के पश्चात्) कोई साथ नहीं आता,

शरीर साथ नहीं आता। अकेला चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा अकेला अपने पुण्य-पाप के भाव लेकर आता है। आहाहा!

अकेला मरता है, अकेला परिभ्रमण करता है, ... चौरासी के अवतार में। आहाहा! चार गति में अकेला परिभ्रमण करता है, कोई वहाँ मददगार नहीं है। आहाहा! अकेला मुक्त होता है। मुक्ति भी अकेला होता है। उसे पर का कोई साथ नहीं है। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव करके स्थिर होकर अकेला मुक्त होता है। उसे कोई साथ-साथ में आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसे किसी का साथ नहीं है। आहाहा! जिनके लिए पाप किये, स्त्री, पुत्र, परिवार, धन, उनका साथ नहीं है। यहाँ पड़े रहते हैं। आहाहा!

मात्र भ्रान्ति से वह दूसरे की ओट और आश्रय मानता है। आहाहा! मुझे ठीक शरीर का आश्रय-सहारा मिले, कुटुम्ब कबीला मेरी सेवा अनुकूल करे, ऐसे अज्ञानी स्वयं भ्रमणा से मानता है। आहाहा! मात्र भ्रमणा, मिथ्यात्व है, भ्रमणा। आहाहा! वह लेख आता है कथा में। दो भाई थे। एक छोटे भाई को रोग हुआ तो बड़ा भाई उसकी दवा करता। उसमें अण्डे का रस लाता। इसे (छोटे भाई को) खबर नहीं कि अण्डे का रस है। फिर वह लाकर गया तो वह मरकर नरक में गया और यह जो था, वह कोई वहाँ परमाधामी हुआ। जिसे रोग था, वह मरकर परमाधामी हुआ, जो दवा लाकर देता था, उसका भाई, वह नारकी हुआ। उसे मारता है। अरे! परन्तु मैंने तुम्हारे लिए पाप किये थे परन्तु तुझसे कहा किसने कि मेरे लिए कर? अण्डे का रस और अण्डा लाता था। उसे नहीं कहता कि यह अण्डे का रस है। मैंने तुझे कब कहा था? तुझे मारने का ही अभी हक है। आहाहा! ऐसा संसार अनादि से चलता है।

भ्रमणा में पर का आश्रय, यह ओथ अर्थात् आश्रय लेना चाहता है कि इससे मुझे मिलेगा, इससे मिलेगा। रोग आवे तो ऐसे नजर किया करे, ऐसे दवा, डॉक्टर के सामने। अरे! मुझे कोई बचावे, मुझे कोई बचावे। कौन बचावे? बापू! आहाहा! आयुष्य की स्थिति पूर्ण होने पर उसे कौन रखे? किसी का साथ, किसी का सहारा है नहीं। आहाहा!

इस प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में अकेले भटकते हुए जीव ने इतने मरण किये हैं कि उसके मरण के दुःख में उसकी माता की आँखों से जो आंसू बहे, उनसे समुद्र भर जायें। आहाहा! माता, पुत्र के मरण से जो आँसू (बहावे), उन आँसूओं के समुद्र भर

जाएँ। इतनी बार यह दुःख से मर गया है। आहाहा! करोड़ों रुपये हों, करोड़ों के मकान हों। आहाहा! है न अपने अभी यहाँ, नहीं? आमोद, आमोदवाला। मुम्बई, हम उतरे थे न? अपने आमोदवाला, रमणीकभाई। सत्रह लाख का एक मकान है। आमोद है। हमारे पालेज के पास आमोद है। वहाँ रमणीकभाई है न, मुम्बई में। वहाँ उतरे थे न? वह मकान सत्रह लाख का एक मकान। ऐसे पैसे बहुत, पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। आहाहा! कोई शरण नहीं है, बापू! कहा इसमें (कोई शरण नहीं है)। और समुद्र एकदम निकट है।

मुमुक्षु : उसका मकान था तो उसे आपका लाभ मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं, लाभ क्या मिले? इससे क्या लाभ होगा? वह तो शुभभाव हो, पुण्य हो, वह बन्धन है। आहाहा! यह तो ठीक परन्तु वहाँ आगे मैं ऐसे समुद्र में नजर करता, निकट में समुद्र, सत्रह लाख का मकान, एक ही, हों! ऐसे तो बहुत मकान। बड़ा गृहस्थ है, बहुत नरम व्यक्ति है। आमोद का अपना दिगम्बर है। ऐसे नजर करने पर बगुला, बगुला समुद्र में मछलियाँ लेने जाए। अरे रे! कहा, यह बगुला कहाँ तक जाता होगा? भाई! मैंने पूछा। अपने तो वहाँ पहले रहे नहीं। बीस-बीस मील तक वे बगुले समुद्र में आधार बिना मछलियाँ खाने जाते हैं। आहाहा! अरे रे! यह जाए और वापस मरकर नरक में जानेवाले हैं। अरे रे! उनसे क्या किया? कुछ खबर नहीं होती। आहाहा! अकेला ब्रह्माण्ड में परिभ्रमण किया। आहाहा! बाप मरकर नरक में जाए, लड़का मरकर स्वर्ग में जाए। बाप मरकर स्वर्ग में जाए, लड़का मरकर नरक में जाए। उन्हें कहाँ सम्बन्ध, कुछ लेना-देना है? आहाहा!

जो आंसू बहे, उनसे समुद्र भर जायें। भवपरिवर्तन करते-करते बड़ी मुश्किल से तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, ... आहाहा! कल कहा था। छहढाला में आता है कि त्रसपना मिले वह चिन्तामणि के समान है। छहढाला में आता है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लहि त्रस तणी (पहली ढाल, काव्य ५)

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह छहढाला में आता है। त्रसपना मिले तो चिन्तामणि समान। मनुष्यपने की तो बात क्या करना! आहाहा! छहढाला में आता है। आहाहा! अरे! इसे मनुष्यपना मिला परन्तु इसे कीमत नहीं होती। आहाहा!

(परिभ्रमण) परिवर्तन करते-करते बड़ी मुश्किल से तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, ऐसा उत्तम योग मिला है, ... आहाहा! उसमें आत्मा का हित कर लेने जैसा है, ... आहाहा! पर के लिए न रुककर, आहाहा! अपना हित करनेयोग्य है। मैं आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ, मेरे आनन्द की प्राप्ति के लिए किसी पदार्थ की आवश्यकता नहीं है। मेरा सुख तो मुझमें है। मुझे सुख के लिए कोई चीज़ बाह्य में नहीं है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, बँगला— यह कोई सुख के कारण नहीं हैं, ये तो दुःख के निमित्त हैं। आहाहा!

सुख तो भगवान आत्मा... हिरण की नाभि में कस्तूरी, परन्तु हिरण को कस्तूरी की कीमत नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का सागर (भरा है)... आहाहा! उसे नहीं लेना चाहता और बाहर में भ्रमणा इसी और इसी में, इसी में। आहाहा! यहाँ से सुख मिले और यहाँ से सुख मिले। सुख कहाँ है? किसके तेरे झपट्टे, यह किसके हैं? प्रभु! आहाहा! यहाँ लक्ष्मी नहीं मिले तो परदेश में जाए। परदेश में पचास, साठ-साठ वर्ष निकाले। मानो वहाँ से सुख मिलेगा। धूल में भी नहीं, वहाँ। आहाहा!

आत्मा में आनन्द है। ऐसा उत्तम योग मिला है, उसमें आत्मा का हित कर लेने जैसा है, ... आहाहा! बिजली की चमक में मोती पियो लेने जैसा है। बिजली की चमक आवे तो मोती (पियो ले), इसी प्रकार यह मनुष्य का भव बिजली की चमक जैसा मिला है। २५-५०-६० वर्ष हो जाए तो देह छूट जाएगी। आहाहा! यह मनुष्यभव और उत्तम संयोग बिजली की चमक की भाँति अल्प काल में विलीन हो जायेंगे। भाई! आहाहा! २५, ५०, ६०, १०० वर्ष कितने? आहाहा! अल्प काल में विलीन हो जायेंगे।

इसलिए जैसे तू अकेला ही दुःखी हो रहा है, ... पर को (ये सब) मेरे, पुण्य-पाप मेरे - ऐसा मानकर अकेला ही दुःखी हो रहा है, वैसे अकेला ही सुख के मार्ग पर जा, ... आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, वहाँ अकेला जा। आहाहा! तेरी वर्तमान पर्याय को वहाँ जोड़ दे। तीन लोक का नाथ आनन्दकन्द प्रभु आत्मा, वर्तमान पर्याय को वहाँ जोड़ दे। वह सुख का पन्थ है। आहाहा! पर्याय को राग-द्वेष और पुण्य-पाप में जोड़ने से दुःख की दशा है। आहाहा! कैसे जँचे? सब करते हैं, हम करते हैं। बापू! सब करते हैं, वे करते हैं, इसका अर्थ क्या? आहाहा! तुझे करना तो यह है।

राग और वर्तमान पर्याय को... राग से तो भिन्न है परन्तु उस पर्याय को अन्तर में

झुकाना। आहाहा! यह कोई बात है। चैतन्यलक्षण से लक्षित जो पर्याय है; राग नहीं, दया-दान नहीं, विकल्प नहीं, वह वस्तु भिन्न है। आहाहा! वह चैतन्यलक्षण से जो लक्षित पर्याय है, वह लक्षण, वह जिसका है, इस लक्ष्य को वहाँ झुका। आहाहा! भाषा तो है परन्तु भाव तो, बापू... आहाहा! करने का तो स्वतन्त्रपने का यह है। अकेला ही सुख के मार्ग पर जा,... वहाँ किसी की मदद या साथ नहीं है। आहाहा! अकेला ही मुक्ति को प्राप्त कर ले। आहाहा! मैं आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु हूँ, ऐसी दृष्टि लगा आनन्द में और अकेला अनुभव करके अकेला स्थिर होकर मुक्ति को प्राप्त करेगा। आहाहा! वैराग्य की बातें की।

गुरुदेव मार्ग को अत्यन्त स्पष्ट बतला रहे हैं। आचार्य भगवन्तों ने मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है और गुरुदेव उसे स्पष्ट कर रहे हैं। जैसे एक-एक माँग में तेल डालते हैं, उसी प्रकार सूक्ष्मता से स्पष्ट करके सब समझाते हैं। भेदज्ञान का मार्ग हथेली में दिखाते हैं। माल मसलकर, तैयार करके दे रहे हैं कि 'ले, खा ले।' अब खाना तो अपने को है ॥३५८॥

फिर बहिन ने जरा यहाँ का लेकर ३५८ में (कहती हैं) गुरुदेव मार्ग को अत्यन्त स्पष्ट बतला रहे हैं। आचार्य भगवन्तों ने मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है और गुरुदेव उसे स्पष्ट कर रहे हैं। जैसे एक-एक माँग में तेल डालते हैं, उसी प्रकार सूक्ष्मता से स्पष्ट करके सब समझाते हैं। आहाहा! एक-एक समय की पर्याय स्वतन्त्र है, द्रव्य स्वतन्त्र है, गुण स्वतन्त्र है। यह पर्याय प्रगट होने में किसी पर के साधन की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! बहिन में भी आया है न एक बोल? कि द्रव्य के कार्य के लिए परद्रव्य के साधन की राह देखना नहीं पड़ती। आहाहा! द्रव्य अर्थात् आत्मा, उसके कार्य के लिए अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि कार्य के लिए, दूसरे द्रव्य के साधन की राह नहीं देखनी पड़ती। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, आहाहा! भेदज्ञान का मार्ग हथेली में दिखाते हैं। भाई! तू आत्मा है। ये दया, दान के विकल्प उठते हैं, वह भी राग है, वह तू नहीं, तुझमें नहीं, तू उनमें नहीं। आहाहा! माल मसलकर, तैयार करके दे रहे हैं कि 'ले, खा ले।' अब खाना तो अपने को है। आहाहा!

सहजतत्त्व का कभी नाश नहीं होता, वह मलिन नहीं होता, उसमें न्यूनता नहीं आती। शरीर से वह भिन्न है, उपसर्ग उसे छूते नहीं हैं, तलवार उसे छेदती नहीं है, अग्नि उसे जलाती नहीं है, राग-द्वेष उसे विकारी नहीं बनाते। वाह तत्त्व! अनन्त काल बीत गया हो तो भी तू तो ज्यों का त्यों ही है। तुझे कोई पहिचाने या न पहिचाने, तू तो सदा ऐसा ही रहनेवाला है। मुनि के एवं सम्यग्दृष्टि के हृदयकमल के सिंहासन में यह सहज-तत्त्व निरंतर विराजमान है ॥३५९॥

सहजतत्त्व का कभी नाश नहीं होता,... ३५९। सहजतत्त्व जो किसी से किया नहीं गया, जिसकी आदि नहीं, जिसका अन्त नहीं, ऐसा जो भगवान आत्मा सहजतत्त्व है, उसका कभी नाश नहीं होता। उसकी पर्याय पलटती है, उस पर्याय का नाश होता है और नयी पर्याय उत्पन्न होती है, परन्तु वस्तु है, उसका कभी नाश नहीं होता। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु जागृत ज्योति, जागृत जीव खड़ा है न! अन्दर ध्रुव है न! आहाहा! वहाँ नजर को कर न! जहाँ ध्रुव (चीज़) पड़ी है, जागृत चीज़ पड़ी है। आहाहा! देखनेवाले को देख न! देखनेवाला दूसरे को देखता है। आहाहा! देखनेवाला जो चैतन्य है, उसे देख न! आहाहा! वह सहजतत्त्व है, नाश नहीं होता। भाषा से नहीं, भाव में उसका भासन होना चाहिए।

वह मलिन नहीं होता,... सहजतत्त्व जो वस्तु ज्ञायकभाव द्रव्य, वह कभी मलिन नहीं होता। मलिन की तीव्रता—मिथ्यात्व की पर्याय में हो, तथापि द्रव्य मलिन नहीं होता। आहाहा! अरे! कैसे जँचे? कभी (सुना नहीं।) भगवान सहजतत्त्व है, चैतन्यज्योति, जलहलज्योति नित्यानन्द प्रभु, वह कभी मलिन नहीं होता। पर्याय में मलिनता लाख, करोड़ अनन्त हो, वस्तु मलिन नहीं होती। आहाहा! निगोद के अनन्त भव किये, एक श्वास में अठारह भव। उसमें अठारह भव, तथापि उसकी निगोद की दशा अक्षर के अनन्तवें भाग पर्याय में विकास रहा, वस्तु तो पूर्ण निर्मल ही है। आहाहा! कैसे जँचे? उस काल में भी द्रव्य जो स्वभाव है, वह तो निर्मल ही परिपूर्ण है तथा केवलज्ञान हुआ, केवल (ज्ञान) की पर्याय (हुई) तो भी जो वस्तु है, वह तो परिपूर्ण शुद्ध एकरूप ही है। उसमें से निर्मल पर्याय आयी, केवल (ज्ञान की) आयी, इसलिए कहीं द्रव्य में कमी हो गयी,

(ऐसा नहीं है)। आहाहा! और निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग का विकास रहा तो द्रव्य में कुछ पुष्टि रही, ऐसा नहीं है। द्रव्य तो एकरूप सहजतत्त्व त्रिकाल एकरूप है। आहाहा! ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. जैसे पानी का प्रवाह ऐसे जाता है, वैसे भगवान का-आत्मा का प्रवाह ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. है। अब ऐसी बातें। वहाँ नजर लगा न, प्रभु! सुख होने का पन्थ तो यह है, बाकी सब बातें हैं। आहाहा!

तीर्थकर जैसे, जिन्हें जन्मने पर देव मानते हैं, जिनके पास देव साहिबी खड़ी करते हैं, कितने ही तीर्थकर चक्रवर्ती थे। १६-१७-१८ (वें तीर्थकर) आहाहा! उन्हें अतीन्द्रिय आनन्द के आश्रय की (लगन) लगी होगी, तब वे यह सब (संयोग) जैसे कफ का त्याग करे, वैसे राज्य छोड़कर आत्मा के आनन्द में चले गये। आहाहा! जिनकी साहिबी चक्रवर्ती तीर्थकर। आहाहा! छियानवें हजार स्त्रियाँ, बहत्तर हजार पाटण, अड़तालीस हजार नगर, छियानवें करोड़ गाँव। एक क्षण में जिसके आनन्द के आश्रय के लिए छोड़ दिया। मेरा नाथ आनन्दस्वभाव से भरपूर है, यह मैंने जाना। अब मैं उसका अनुभव करने के लिए वन में चला जाता हूँ। आहाहा! वह कुछ अन्दर विस्मयता, अद्भुतता लगी है, तब यह सब छूटता है न? आहाहा! तीन लोक का नाथ परमात्मस्वरूप प्रभु, जिसमें अनन्त आश्चर्यकारी चमत्कारिक विभूति पड़ी है। भाई! तुझे खबर नहीं है। आहाहा! एक समय की वर्तमान पर्याय के समीप में अन्तर प्रभु पूरा महा विराजमान है। पर्याय ऊपर है, वस्तु अन्दर है, पर्याय से अन्दर है। आहाहा!

ऐसा सहजतत्त्व कभी मलिन नहीं होता। उसमें न्यूनता नहीं आती। न्यूनता-हीनता कभी नहीं होती। वह तो पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण स्वरूप भगवान कायम रहता है। पर्याय में चाहे जो अवस्था होओ, परन्तु द्रव्यस्वभाव तो ऐसा का ऐसा त्रिकाली शुद्ध चैतन्यघन है। आहाहा! बाहर का माहात्म्य आवे इसे कुछ पैसा मिले दो-पाँच करोड़ धूल (मिले) वहाँ ऐसा हो जाता है कि आहाहा! हमने कमाया और लाभ हुआ। अकेला पाप है। आहाहा! लड़का जरा अच्छा पके, दो-पाँच लाख रुपये कमावे ऐसे लड़के और आठ-दस लड़के हों, ओहोहो! मानो क्या हुआ? 'मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो गयी इसे।' आहाहा! भाई! वह चीज़ है, वह तेरी कहाँ है, तुझमें कहाँ है? आहाहा! तुझमें जो है, वह उसमें नहीं और वह है, वह तुझमें नहीं। आहाहा! चमत्कारिक चैतन्य वस्तु भगवान अन्दर, आहाहा! उसमें कभी उसमें न्यूनता नहीं आती।

शरीर से वह भिन्न है,... यह मिट्टी है, वह तो आत्मा में अभावस्वरूप है। शरीर में शरीर भावस्वरूप है और भगवान आत्मा में शरीर का अभावस्वभाव है। आहाहा! (समयसार) तीसरी गाथा में नहीं कहा? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु पदार्थ अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को चुम्बन करता है परन्तु परद्रव्य को वह चुम्बन और स्पर्श नहीं करता। अनादि से। यह क्या कहा? समयसार तीसरी गाथा - प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य-वस्तु त्रिकाली, उसकी शक्तियाँ और पर्याय को स्पर्श करता है, चुम्बन करता है, आलिंगन करता है। पर से भिन्न कहना है न! परन्तु परद्रव्य को तो कभी स्पर्श नहीं किया। कर्म के उदय को जीव ने स्पर्श नहीं किया, कर्म का उदय जीव को स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

वास्तव में तो राग होता है, उसे कर्म का उदय है, वह स्पर्श नहीं करता। उदय है, वह जड़ की पर्याय है और राग है, वह चैतन्य की विकृत अवस्था है। वह राग अवस्था जड़ के उदय को स्पर्श नहीं करती, तथा जड़ का उदय राग में नहीं आता, राग को स्पर्श नहीं करता उदय। अरे.. अरे..! यह क्या होगा? आहाहा! इस शरीर से अत्यन्त भिन्न।

उपसर्ग उसे छूते नहीं हैं,... शरीर में कोई उपसर्ग आवे, चोट लगे, सर्प काटे। आहाहा! उस सहज तत्त्व ज्ञायकस्वभाव को वे उपसर्ग बाधक नहीं हैं। आहाहा! तीसरे नरक का नारकी हो, महादुःख में पड़ा होता है। उसे परमधामी गठरी बाँधकर लोहे के धधकते सरियों के साथ गाँठ बाँधता है और ऊपर गरम-गरम घन मारता है तो भी वह कुछ तत्त्व को स्पर्श नहीं करता, कहते हैं। ऐ.. भाई! इसने माना है। अरे! ऐसे प्रसंग में भी.. आहाहा! कितने ही जीव एकदम दृष्टि बदलकर गुलाँट खाकर अन्दर आत्मा को पकड़ते हैं और उसमें समकित प्राप्त कर जाते हैं। ऐसे प्रसंग में। यहाँ तो लोग कहते हैं हमें कुछ सुविधा हो, लड़के कमाना सीखें, लड़कियों को ठिकाने लगावें (शादी-विवाह करे दें) फिर हम कुछ करेंगे। अब बाद में करूँगा तो बाद में बाद में ही रहेगा, पहला नहीं आयेगा कभी। आहाहा! लड़कियाँ बड़ी हो गयी हैं, चार बड़ी बेल जैसी। एक बीस की और एक बाईस की और पच्चीस की और तीस की, उन्हें ठिकाने करें, लड़के बड़े हो गये हैं और अपने प्रमाण में कन्या मिले तो ली जाए, इसके बिना नहीं ली जाए (क्योंकि) इज्जत जाती है। आहाहा! परन्तु तू कहाँ फँस गया है? प्रभु! यह तुझे क्या हुआ है? यह भ्रमणा तुझे क्या हुई? आहाहा! इस भ्रमणा से पार प्रभु अन्दर है, उसे भ्रमणा ने स्पर्श नहीं किया है। आहाहा! ऐसी बात।

तलवार उसे छेदती नहीं है,... गीता में भी ऐसा आता है 'न छेदंती' यह एक श्लोक आता है। आत्मा छिदता नहीं है, भिदता नहीं है, खण्डित नहीं होता, ऐसा आता है। एक श्लोक (आता है) परन्तु उसका एकान्त है। यह तो भगवान का कहा हुआ अनेकान्त है। ऐसी बात कहीं है नहीं। आहाहा! अन्दर एक वस्तु है, वह अनन्त गुण का पिण्ड है, वापस उसमें अनन्त गुण हैं और अनन्त गुण की एक समय में अनन्त पर्यायें हैं। ऐसी बात सर्वज्ञ के सिवाय कहीं नहीं हो सकती।

भगवान वस्तुरूप से एक है, उसके गुण कितने हैं, अनन्त? वे उन अनन्त में अनन्त के अनन्त, अनन्त गुणा कर डालो और उसकी जो संख्या आवे, उसे भी अनन्त गुणा कर डालो, उसकी जो संख्या आवे उसे अनन्त गुणा कर डालो; इस प्रकार अनन्त को अनन्त बार गुणा कर-करके करो तो भी गुण का छोर, उस अनन्त का छोर यह है - ऐसा नहीं है। इतने गुण अन्दर हैं। अनन्त के अनन्त भाग में यह अनन्त अन्तिम है, ऐसा वस्तु में नहीं है। आहाहा!

कितने गुण, भाई! आहाहा! आकाश के प्रदेश हैं, जिनका अन्त नहीं। आकाश.. आकाश.. आकाश.. दसों दिशा में कहीं अन्त नहीं, कहीं अन्त नहीं। उसके प्रदेशों की संख्या की अपेक्षा एक भगवान आत्मा में अनन्त गुण हैं। आहाहा! इस निज सम्पदा की उसे खबर नहीं है। इस धूल की बाहर की जहाँ पाँच-पचास लाख मिले, धूल लाख, करोड़, दो करोड़ वहाँ तो हम श्रीमान्त हो गये। आहाहा! भगवान के एक हजार आठ नाम हैं न? आदिपुराण में, भाई में—आशाधर (में)। एक हजार आठ नाम हैं। उनमें पहला नाम श्रीमान् है। हे नाथ! आप श्रीमान् हो, आप श्रीमान् हो। ये सब श्रीमान्.. श्रीमान् करते हैं, वे सब तो भिखारी हैं।

एक हजार आठ नाम से इन्द्र ने भगवान की स्तुति की है न? एक हजार आठ क्यों? अर्थकार करते हैं (कि) एक हजार आठ क्यों? कि इस शरीर में एक हजार आठ लक्षण भगवान को है न? इसलिए एक हजार आठ नाम भगवान को कहे। पहला (नाम) प्रभु! आप श्रीमान् हो। आहाहा! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण की शक्तियाँ जो हैं, वे सब आपको प्रगट हो गयी हैं। आप लक्ष्मीवान हो, प्रभु! आहाहा! जितने गुणों की संख्या अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त..

उतने गुणों की पर्याय में अनन्त, अनन्त पर्याय, हों! पर्याय एक समय की इतनी अनन्त है कि यह अनन्त, यह अनन्त, यह अनन्त, यह अनन्त, करते-करते अन्तिम अनन्त पर्याय में आवे, ऐसा है ही नहीं। इतनी तो एक समय में पर्यायें हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा जो प्रभु है, आहाहा! वह तलवार से छिदता नहीं, अग्नि उसे जलाती नहीं है,... भगवान को। आहाहा! सहजतत्त्व प्रभु, ज्ञायक ज्योति चैतन्यतत्त्व के नूर के तत्त्व के पूरे जिसमें भरे हैं। आहाहा! ऐसा भगवान जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय, वह यह चीज़ है। उसे अग्नि जलाती नहीं, तलवार छेदती नहीं। राग-द्वेष उसे विकारी नहीं बनाते। आहाहा! वह एक रतनचन्दजी है, वह और ऐसा कहते हैं कि पर्याय में राग-द्वेष होवे तो द्रव्य भी पूरा राग-द्वेष (मय) अशुद्ध हो गया। पर्याय तो एक समय की अवस्था है। वस्तु तो त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु ध्रुव है। आहाहा! वह है न एक रतनचन्द मुख्तार? वह ऐसा कहता है। देखो! इसमें प्रवचनसार में आया? अशुद्ध के समय अशुद्ध होता है। परन्तु यह अशुद्ध के समय अशुद्धपर्याय होती है, अवस्था एक समय की। भगवान तो त्रिकाली, त्रिकाली आनन्दकन्द शुद्ध ध्रुवतत्त्व अन्दर पड़ा है। आहाहा! उसके आश्रय और दृष्टि बिना अनन्त काल से मर गया।

‘मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।’ छहढाला में आता है। मुनिव्रत अट्टाईस मूलगुण, पाँच महाव्रत चुस्त / निरतिचार (पालन करे)। अभी तो उनके लिए (बनाया हुआ) आहार ले, चौका बनावे और खावे, इसलिए जिनके व्यवहार का ठिकाना नहीं। आहाहा! वह तो अट्टाईस मूलगुण ऐसे चुस्त निरतिचार (पालन किये)।

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।

पै निज आतमध्यान बिना सुख लेश न पायो।

यह पंच महाव्रत के परिणाम भी दुःखरूप और आस्रव हैं, दुःखरूप हैं। अर..र..! यह कैसे जँचे? यह दुःख त्रिकाली स्वरूप को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! प्रभु! तेरा तत्त्व कितना और कैसा बड़ा प्रभु! तूने जाना नहीं। आहाहा!

यह प्रभु का प्रभु स्वयं है। आहाहा! पर्याय में जो प्रभुता होती है, उसका भी द्रव्य-गुण तो प्रभु है। आहाहा! ऐसा जो तेरा त्रिकाली स्वभाव, आहाहा! तलवार उसे छेदती नहीं

है, अग्नि उसे जलाती नहीं है, राग-द्वेष उसे विकारी नहीं बनाते। वाह तत्त्व! यह सम्यग्दर्शन का विषय जो तत्त्व, वह यह है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें। ऐसा सम्यग्दर्शन। आहाहा! सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यक् सत् जितना, जैसा है; वैसा उसका ज्ञान होकर प्रतीति में, अनुभव में भासन होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा!

वाह तत्त्व! अनन्त काल बीत गया हो... अनन्त काल व्यतीत हुआ, प्रभु! तेरे ऊपर, आहाहा! नरक के, तिर्यच के, निगोद के भव कर-करके... आहाहा! अनन्त भव हुए और अनन्त काल बीत गया हो तो भी तू तो ज्यों का त्यों ही है। यह बात कैसे जँचे? आहाहा! वस्तु है न? तत्त्व है न? सत्त्व है न? मौजूदगी चीज़ है न? महा अस्तित्वरूप आत्मा है न? आहाहा! यह महाप्रभु जो अस्तित्वरूप वस्तु है... आहाहा! वह अनन्त काल व्यतीत हुआ, अनन्त भव हुए, (तो भी) ऐसा का ऐसा ही है। आहाहा! अरे! मूल बात थी, अभी गुप्त हो गयी। बाहर में यह करो और यह करो, व्रत करो, अपवास करो और प्रतिमा लो... यह हो गया। समाहित हो गया सब। आहाहा! यह तो अभव्य भी ऐसा तो करता है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। यह कोई चीज़ नहीं है।

जिसमें चाहे जितने मिथ्यात्व के परिणाम अनन्त काल से हुए, तथापि उस वस्तु में कुछ हुआ नहीं। वस्तु में विभ्रमता या अल्पता या अपूर्णता आयी नहीं। क्या यह तो तत्त्व है! शशीभाई! आहाहा!

भगवान आत्मा ऐसा का ऐसा (रहा है)। अनन्त काल, अनन्त-अनन्त महा गृहीत मिथ्यात्व हुआ, अनन्त भवों में गृहीत और अगृहीत मिथ्यात्व सेवन किया... आहाहा! परन्तु यह वस्तु है, उसमें कुछ मलिनता या न्यूनता आयी नहीं। यह कैसे जँचे? आहाहा! तीन लोक का नाथ जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ परमात्मा का यह पुकार है। आहाहा! स्तुति में आता है न? गुजराती में आता है। 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल' सर्वज्ञ परमात्मा की स्तुति करते हैं।

प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल,
जिन सत्ताए शुद्ध सौने पेखता हो लाल।

हे नाथ! हमारी निज सत्ता को आप शुद्ध और परिपूर्ण देखते हो। हमारी निज सत्ता

जो स्वयं का अस्तित्व, हे नाथ! आप सर्वज्ञता में हमें परिपूर्ण शुद्ध देखते हो। आहाहा! जैसे भगवान प्रत्येक तत्त्व को परिपूर्ण शुद्ध देखते हैं, वैसे परिपूर्ण और शुद्ध तू देख तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। सोमचन्द्रभाई! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थकरदेव का पुकार है, उसे सन्त जगत में प्रसिद्ध करके बताते हैं। दिगम्बर सन्त, वे तीर्थकर के आड़तिया हैं। आहाहा! पूर्ण प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञ ने देखा है। हमने परोक्ष परन्तु आत्मा को देखा है और वेदन में प्रत्यक्ष हुआ है। आहाहा! यह आचार्य का पुकार है। आहाहा! वह वाणी यहाँ यह है। आहाहा!

प्रभु! तुझे ऐसा जँचता नहीं कि मैं चाहे जितना काल पर्याय में मलिनता में गया, महानास्तिक हुआ कि मैं आत्मा नहीं, ऐसी पर्याय में चार्वाक नास्तिक हुआ, तथापि द्रव्य में कुछ अपूर्णता आयी नहीं। आहाहा! क्या होगा वह तत्त्व? आहाहा! यह चैतन्य चमत्कारिक वस्तु ऐसी है... आहाहा! कि वह आस्तिक के परिणाम होने पर भी वे परिणाम अन्दर द्रव्य को स्पर्श नहीं करते। आहाहा! यह बात तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ के सिवाय कौन कहे? आहाहा!

कहते हैं, अनन्त काल बीत गया हो तो भी... आहाहा! तू तो ज्यों का त्यों ही है। 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे, ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की' स्फटिक होता है न? बड़ा स्फटिक मैंने जामनगर में देखा है। जामनगर में एक है न? कितने लाख का कहा? छह लाख का एक है। देखने की मशीन बड़ी है। व्याख्यान चलता था, यहाँ हमारे तब (संवत्) १९९१ में जामनगर। वह स्वयं बैठा था बड़ा डॉक्टर है। महाराज! देखने आओगे? सोलेरियम। देखने आओ न! तुम्हारे दृष्टान्त में काम आयेगा। छह लाख का सोलेरियम है। वह तब की बात है, हों! वह तो अभी १९९१। आहाहा! फिर हम गये थे, देखा था। एक इतना स्फटिक बताया, इतना स्फटिक, इतना बड़ा, हों! श्वेत-सफेद। वह सफेद है, वह सफेदी उसकी कभी जाती नहीं है। आहाहा!

ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे,
श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया, श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया,
प्रबल कषाय अभाव रे....

क्योंकि अकषायस्वभाव भगवान आत्मा का त्रिकाल है। उसे जिसने दृष्टि में लिया,

उसे अकषाय परिणाम प्रगट हुए, उसे यहाँ धर्म कहने में आता है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें... बाहर में सिरपच्ची, सिरपच्ची की। अन्दर भगवान त्रिलोक का नाथ.. आहाहा! अन्दर प्रभु विद्यमान है, वह पूर्ण प्रभु है, भगवन्त है, परमेश्वर है, परमात्मा है, एक समय में, प्रभु! उस परमात्मा के स्वरूप को कुछ भी व्यवधान अनन्त काल में हुआ नहीं। आहाहा! तू जब देखना चाहे, तब वह वैसा का वैसा अन्दर पड़ा है। अरे! भाई! आहाहा! यह बात भाषा में भले कम आवे परन्तु इसकी बातें तो अनुभव हो, उसे खबर पड़े। आहाहा! महाप्रभु इसे चाहे जितना राग-द्वेष हुआ, परन्तु उसमें मलिनता नहीं आयी।

तुझे कोई पहिचाने या न पहिचाने,... जंगल के फूल में सुगन्ध है, उस सुगन्ध को कोई सूँघे या न सूँघे, इससे कहीं सुगन्ध चली नहीं जाती। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा (को) कोई पहिचाने या न पहिचाने परन्तु उसकी परिपूर्णता शुद्धता कहीं जाती नहीं है। आहाहा! यह क्या है? यह तो कहे, व्रत करो, यह करो, पूजा करो और हमेशा श्रावक के छह बोल (कर्तव्य)। हमेशा पूजा, सेवा, दान, छह बोल आते हैं न, परन्तु वह तो राग की क्रिया है। वह तो सम्यग्दर्शन हुआ है, पश्चात् उसे ऐसा अशुभ से बचने को शुभभाव होता है, तथापि वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! श्रावक के छह आवश्यक कहे हैं न? वह राग की क्रिया है। परन्तु किसे? जिसे आत्मा परिपूर्ण शुद्ध है, ऐसा अनुभव में भान हुआ है उसे। उसका व्यवहार ऐसा होता है। आहाहा! निश्चय के बिना व्यवहार कैसा? आहाहा!

तुझे कोई पहिचाने या न पहिचाने, तू तो सदा ऐसा ही रहनेवाला है। आहाहा! सोगानी ने तो यह कहा है कि तू धर्म पाया, वह तुझे पहिचाने या न पहिचाने, इससे तुझे क्या काम है? अनन्त सिद्ध हुए, उन्हें कोई पहिचानता है? अनन्त-अनन्त सिद्ध हुए, कोई पहिचानता नहीं। तो नहीं पहिचानता, इसलिए सिद्धपना चला जाता है? आहाहा! है न उसमें? आहाहा! और वहाँ उनने तो पर्याय की बात की है। धर्म पाया है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ है, उसे कोई पहिचाने या न पहिचाने, इससे कहीं उसका चला जाता है? यहाँ तो त्रिकाली की बात करते हैं। आहाहा!

चैतन्यभगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु वर्तमान एक समय में पर्याय से भिन्न है। आहाहा! यह अव्यक्त में आ गया है। द्रव्य है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता। अरे रे! आहाहा! व्यक्त को—अव्यक्त को एक समय में जानने पर भी, व्यक्त को अव्यक्त ऐसा

द्रव्य स्पर्श नहीं करता। अरे रे! कहाँ यह बात? और वह अभी ऐसा कहता है, वह रजनी, रजनीश है न एक? था तो तारणपन्थी का जैन, परन्तु अभी भाषण भी (देता है)। बड़ा प्रोफेसर और श्रद्धा-ज्ञान सब भ्रष्ट। कैसा? बड़े करोड़पति उसे मानते हैं। पूना में बड़े पन्द्रह लाख के कितने ही मकान हैं। वापस मानता क्या है? कि हिन्दुस्तान में से एक-दूसरे को आलिंगन करना, चुम्बन करना यह चला गया है, यह खराब है; इसलिए एक-दूसरे आलिंगन और चुम्बन करे तो मैं प्रसन्न होऊँ। अर..र..र..! यह धर्माचार्य!

यहाँ कहते हैं कि परद्रव्य को आलिंगन-चुम्बन नहीं करता तीन काल में। उसे तो चुम्बन नहीं करता परन्तु द्रव्य, पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! द्रव्य, पर्याय को आलिंगन नहीं करता और निर्मल पर्याय, उस त्रिकाली को आलिंगन नहीं करती। यह तो कोई (बात है)! और ये बड़ा प्रोफेसर भाषण करना आवे और करोड़ों रुपये के बड़े मकान और बड़े... वहाँ से निकाल डाला था और वहाँ जाता कच्छ में। दरबार ने कुछ जमीन कही होगी, बाद में इनकार किया राजकुमार ने। राजकुमार का मेरे प्रति पत्र आया है कि यह साधु की निन्दा करता है। मेरा नाम बड़ा है न बाहर में। वह मानो कि साधु है। हम कहाँ साधु हैं? ऐसा कि साधु की निन्दा करता है, इसलिए तुम कोर्ट में कुछ करो। यहाँ क्या है परन्तु हमारे? राजकुमार का कच्छ का दरबार है न, वहाँ यह जाता था, जमीन नहीं दी। वापस अब पूना चला गया। अरे रे! प्रभु! ऐसे हिन्दुस्तान में ऐसे जीव पके? आलिंगन करना और दूसरे को चुम्बन करना, उसमें सुख है। अर..र..र! और भोग में, सम्भोग में भी ब्रह्मानन्द का अंश है। अर..र..र..! कुकर्म कर डाले। विषय के भोग में भी ब्रह्मानन्द अन्दर आनन्द है। अकेला जहर है, पाप है, बापू! अर..र..र..! अरे! उससे बचने को पुण्य करे, वह भी जहर है। आहाहा! मुझे विषय सेवन नहीं करना, मुझे विषय नहीं चलता, मुझे स्त्री नहीं चलती, मुझे पैसा नहीं चलता, यह सब भाव शुभ है, वह भी जहर है। आहाहा! चलता नहीं, चलता नहीं - यह तो मिथ्यात्व और पाप है परन्तु शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, मुझे अब्रह्म नहीं होता, मुझे यह नहीं होता, वह भी पुण्य का विकल्प है, वह कोई वस्तु नहीं। पुण्य-पाप के अधिकार में आया है। पुण्य के परिणामवाला पाप मुझे नहीं चलता, यह विषय मुझे नहीं चलते, यह मुझे नहीं चलता परन्तु यह भी एक शुभराग का विकल्प है। आहाहा! चाण्डालिनी का / विभाव का पुत्र है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तेरी इतनी महिमा है कि अपार है। तुझे पहिचाने या न पहिचाने, इससे तेरी महिमा में कुछ न्यूनता नहीं आती। पहिचाने तो महिमा बढ़ जाए, न पहिचाने तो न्यूनता आ जाए, ऐसा नहीं है। आहाहा! है ऐसा का ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात! अशुद्धता मिथ्यात्व की, गृहीत मिथ्यात्व नास्तिक के पाप (किये), तथापि वस्तु तो ऐसी की ऐसी है। आहाहा! अरे! मिथ्यात्व की पर्याय जो है, महातीव्र मिथ्यात्व, वह व्यय होता है तो वह पर्याय अन्दर में जाती है। भ्रमणा की नहीं परन्तु उसकी योग्यता अन्दर में जाती है। वह भी वहाँ सहज स्वभावरूप हो जाती है। यह क्या कहा ? आहाहा!

जो तीव्र मिथ्यात्व है, उसका व्यय होता है तो वर्तमान में व्यय होकर जाए कहाँ परन्तु ? अन्दर में जाता है। मिथ्याश्रद्धा अन्दर में नहीं जाती परन्तु मिथ्याश्रद्धा की जितनी योग्यता है, वह अन्दर में जाती है और अन्दर में गया, वह यहाँ था उदयभाव, अन्दर में गया वहाँ हो गया पारिणामिकभाव। अब ऐसी बातें। आहाहा! ऐसा का ऐसा हूँ, ऐसा कहा न ? ऐसा मिथ्यात्व गया और गया अन्दर, परन्तु तू तो ऐसा का ऐसा है। मीठालालजी! ऐसी बातें हैं।

यह तो जिनेश्वर का पन्थ है, प्रभु! यह कहीं कोई पक्ष नहीं, यह कोई वाड़ा नहीं, यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ का मार्ग है। आहाहा! यह वस्तु... इतने मिथ्यात्व के भ्रमणा के अनन्त पाप सेवन किये कि इसने तो ऐसा कहा कि मैं आत्मा ही नहीं। ऐसी प्रतीति अनन्त बार की, तथापि वस्तु तो जैसी है, वैसी है। अरे रे! ऐसी प्रतीति गयी न, अन्दर गयी उसकी योग्यता। वहाँ अशुद्धता अन्दर नहीं जाती। ऐसी योग्यता गयी, तथापि वह तो वस्तु ऐसी की ऐसी रही है। शशीभाई! ऐसी बातें हैं। अरे! इसमें दुनिया में कहाँ देखना ? आहाहा! तुझे कोई पहिचाने या न पहिचाने, तू तो सदा ऐसा ही रहनेवाला है। आहाहा!

अब कहते हैं मुनि के एवं सम्यग्दृष्टि के हृदयकमल के सिंहासन में... आहाहा! सच्चे मुनि हों, उनके और सम्यग्दृष्टि के हृदयकमल में। आहाहा! हृदयकमल के सिंहासन में यह सहज-तत्त्व निरंतर विराजमान है। आहाहा! यह वस्तु तो है, कहा पहले। परन्तु अब तो यहाँ मुनि के और सम्यग्दृष्टि के अन्दर हृदयकमल में, हृदयकमल के सिंहासन में ऐसी की ऐसी विराजती है। आहाहा! लो, सोमचन्दभाई! यह सम्यग्दर्शन। ऐसा है वीतराग का तत्त्व। बापू! आहाहा!

ऐसा जो शुद्धस्वरूप एकरूप जिसे राग-द्वेष और मिथ्यात्व के परिणाम हुए तो भी वह मलिन नहीं हुआ, अपूर्ण नहीं हुआ, हीनता नहीं आयी, पूर्णता में उसे कुछ दाग नहीं लगता। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, वह मुनि के हृदयकमल के सिंहासन में विराजमान है और सम्यग्दृष्टि के हृदयकमल के सिंहासन में विराजमान है। मुनि को और समकिति को चारित्र में, स्थिरता में अन्तर है, परन्तु दर्शन में अन्तर नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह तो रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आया है कि जैसा तिर्यच का समकित है, वैसा समकित सिद्ध का है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी, मोक्षमार्गप्रकाशक में है। तिर्यच है न बाहर, असंख्य सम्यग्दृष्टि हैं। हजार, हजार योजन के बड़े मच्छ हैं। समकिति हैं, आत्मज्ञानी हैं। आहाहा! हजार-हजार योजन, चार हजार कोस के लम्बे मच्छ, मगरमच्छ हैं परन्तु अन्तर में आनन्द का अनुभव है न, इसलिए उनके हृदयकमलरूपी सिंहासन में भगवान विराजता है, राग नहीं। कहो, पण्डितजी! आहाहा!

मूल तो ज्ञान की पर्याय जो निर्मल है, उसमें वह विराजता है अर्थात् आदर हुआ है। आहाहा! हृदयकमल अर्थात् यह। ज्ञान की खिली हुई दशा है, ज्ञान की खिली हुई दशा है न, उसमें यह वस्तु विराजमान है। इस वस्तु का ही अन्दर आश्रय और आधार है। आहाहा! ओहोहो! ऐसा गहन गम्भीर तत्त्व! आहाहा! उसे बाहर से ऐसा मान लेना कि यह करते हैं और यह करते हैं, यह किया; इसलिए ऐसा हुआ। भाई! इसे कीमत देनी पड़ेगी, भाई! जितनी कीमत का है, उतनी इसे कीमत देनी पड़ेगी। आहाहा!

नीलमणि रत्न कहीं निंबोली से नहीं मिलता। निंबोली भी हरी और नीलमणिरत्न भी हरा। आहाहा! इसकी कीमत भरनी पड़ेगी। भगवान मुनिपने के हृदय में अर्थात् ज्ञान की पर्याय में और समकिति की भी श्रद्धा की, ज्ञान की पर्याय में... आहाहा! सहज तत्त्व निर्मलानन्द प्रभु निरन्तर विराजमान है। एक समय का भी उसे विरह नहीं है। आहाहा! इसे सम्यग्दर्शन और मुनिपना कहते हैं। विशेष कहेंगे.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल -३, शुक्रवार, दिनाङ्क ०३-११-१९७८
वचनामृत-३६० से ३६१ प्रवचन-१३९

सम्यग्दृष्टि को पुरुषार्थ से रहित कोई काल नहीं है। पुरुषार्थ करके भेदज्ञान प्रगट किया, तब से पुरुषार्थ की धारा चलती ही है। सम्यग्दृष्टि का यह पुरुषार्थ सहज है, हठपूर्वक नहीं है। दृष्टि प्रगट होने के बाद एक ओर पड़ी हो, ऐसा नहीं है। जैसे अग्नि ढँकी पड़ी हो, ऐसा नहीं है। अन्तर में भेदज्ञान का—ज्ञातृत्वधारा का प्रगट वेदन है। सहज ज्ञातृत्वधारा चल रही है, वह पुरुषार्थ से चल रही है। परम तत्त्व में अविचलता है। प्रतिकूलता के समूह आये, सारे ब्रह्माण्ड में खलबली मच जाय, तथापि चैतन्यपरिणति न डोले—
ऐसी सहज दशा है ॥३६०॥

वचनामृत, ३६०। सम्यग्दृष्टि को पुरुषार्थ से रहित कोई काल नहीं है। क्या कहते हैं ? जब से सम्यग्दर्शन अर्थात् राग से भिन्न चैतन्य का अनुभव होता है, उसमें उसकी प्रतीति हो, वह पुरुषार्थ से हुई है। राग से हटकर, शान्त ज्ञायकस्वरूप की ओर दृष्टि स्थिर हुई है, इसलिए उसे वहाँ निर्विकल्प पुरुषार्थ है। प्रथम होते ही निर्विकल्प पुरुषार्थ है। ऐसी बात है। सम्यग्दृष्टि को पुरुषार्थ बिना का कोई काल बाद में है नहीं क्योंकि पुरुषार्थ, स्वभाव में राग से भिन्न पड़कर अनुभव हुआ, वह भेदज्ञान धारा—पुरुषार्थ, वह सदा रहा करता है। आहाहा!

पुरुषार्थ करके भेदज्ञान प्रगट किया... उसकी शुरुआत की। आहाहा! भगवान् ज्ञायकस्वरूप चैतन्य को राग से और पर्याय की बुद्धि से भी छोड़कर जिसे स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द रसकन्द की दृष्टि करके अनुभव हुआ, वह भेदज्ञान भी पुरुषार्थ से हुआ

है। काललब्धि पके तो हो, परन्तु उसमें भी पुरुषार्थ है, तब काललब्धि पकी, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पाँच कारण ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच कारण (समवाय) उस समय में होते हैं। आहाहा! अन्तरस्वरूप चैतन्य है महासत्ता अस्तित्ववाला परमात्मस्वभाव है, उसकी दृष्टि होने पर वह निर्विकल्प पुरुषार्थ की ही दशा है। आहाहा! भेदज्ञान होने पर **पुरुषार्थ करके भेदज्ञान प्रगट किया...** ऐसा कहा न ?

...इन्हें विगत दिन छीकें बहुत आयीं। २५-५० छीक। मनुसखलाल। सर्दी है न? सर्दी है न? एकदम आयी। आये थे, आज जाना है। नहीं तो रहना था। छीक २५-३०-४० एक साथ आयी। सर्दी रहती है न। आहाहा! शरीर की स्थिति ऐसी है। उससे भी, राग से भी जिसने भिन्न किया है। शरीर की अवस्था से तो ठीक, राग से भी ठीक, परन्तु एक समय की पर्याय पर जो रुचि है, उस रुचि को, जिसे त्रिकाली ज्ञायक की ओर रुचि हुई है। पोसाण में वह आत्मा आया है। आहाहा!

यह भेदज्ञान पुरुषार्थ करके प्रगट किया। ऐसा शब्द है न? काललब्धि तो उस समय होती ही है। जहाँ स्वभाव का पुरुषार्थ होता है, वहाँ स्वभाव है, पुरुषार्थ है, काललब्धि है, भव्यत्वता का भाव होने के योग्य है और उस काल में उतना कर्म का निमित्त का अभाव भी है। पाँचों ही समवाय साथ में होते हैं, परन्तु यह पुरुषार्थ करे, उसमें वे पाँच समवाय साथ में होते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

यह बात तो कहा न? हमारे (संवत्) १९७२ के वर्ष, ७२, ७२। हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे। उन्हें यह बात कान में पड़ी। पहली तो यह बात हुई कि भाई! केवलज्ञानी ने देखा, वैसा होगा, अपन क्या करें? ऐसा प्रश्न उठा। (संवत्) ७२, ऐसा प्रश्न दो वर्ष चला। १९७० में दीक्षा और १९७२ तक चला। एक बार फिर मेरे से कहा गया, भाई! तुम क्या कहते हो? केवलज्ञानी ने देखा हुआ, तब पुरुषार्थ होगा। अभी अपने कुछ कर नहीं सकते। आहाहा!

सर्वज्ञ केवलज्ञान एक समय की पर्याय, एक गुण की एक समय की पर्याय..

आहाहा! वह तीन काल, तीन लोक को जाने, ऐसी पर्याय की सत्ता जगत में है, ऐसा स्वीकार जिसे होता है, तब उसे केवली ने देखा वैसा होगा, उसकी श्रद्धा में आता है।

मुमुक्षु : केवलीपना श्रद्धा में आना चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके बिना भी यह... तब तो इतना कहा था। यह तो (संवत्) १९७२ की बात है। कितने वर्ष हुए? ६३ (वर्ष हुए)। कहा, जिसने सर्वज्ञ परमात्मा... आहाहा! जगत में उनकी सत्ता-अस्तित्व है, उसका स्वीकार कब होता है? कहा (कि) ज्ञानस्वरूपी प्रभु में अन्दर जाए, तब सर्वज्ञ का स्वीकार होता है, तो उस समय तो मूलचन्दजी गुरुभाई थे, वे तो विरुद्ध में थे। उनकी तत्त्वदृष्टि तो (झूठी थी)। वे तो केवलज्ञान में देखा, वैसा होगा, अपने कुछ नहीं कर सकते। उन्होंने-हीराजी महाराज ने माना कि यह 'कानजी' बात ठीक कहता है। उन्हें तो बहुत-४४ वर्ष की दीक्षा थी। यहाँ तो दो वर्ष... बात तो यह सत्य कहता है। परन्तु वापस उस दिन गया रात, सवेरे उठकर फिर पालीयाद आया, पालीयाद है। सरवा गाँव है। भाई को बताया था। यह सरवा गाँव। जगह दिखायी थी। यह १९७२ के फाल्गुन शुक्ल १३ की बात है। कितनों का तो जन्म भी नहीं हुआ होगा। आहाहा!

जिसे ज्ञान में सर्वज्ञ की यह बात जँचती है, उसे तो पुरुषार्थ हुआ अन्दर जाने का और उसे केवलज्ञान की श्रद्धा हुई, तब उस केवलज्ञान को माना कहलाता है। आहाहा! फिर दूसरे दिन... यह तो रात्रि में बात हुई, सवेरे तो... सरवा अर्थात् वह तो गाँव था। वहाँ कोई रहा नहीं जाए। वींछिया और पालीयाद के बीच है। सरवा.. सरवा..। सरवा न? भूल जाते हैं, भाई! यह कहा था और फिर पालीयाद आये। उसमें चार बजे प्रतिक्रमण हो रहे न साधु को? वस्त्र... प्रतिक्रमण कर रहे गुरु हीराजी महाराज। हीराजी महाराज को देखा था या नहीं? हिम्मतभाई! देखा था? ठीक। वे भद्रिक थे। इसलिए यह बात साढ़े चार बजे निकाली की मूलचन्दजी! मैं तो बैठा था नीचे। मूलचन्दजी! ऐसा तू मानने जाए तब तो इसमें पाँच समवाय सिद्ध हो जाएँ। भगवान ने देखा वह होगा, ऐसा माने तब तो समवाय हो जाए। वह समवाय माने नहीं। उनकी ४४ वर्ष की दीक्षा, हों! फिर ४६ वर्ष में गुजर गये, दीक्षा के ४६ (वर्ष)। ५८ वर्ष की उम्र, बारह वर्ष में (दीक्षा) ली थी।

वहाँ एक दूसरे थे, वे भी ऐसा बोलने लगे, क्या कुछ भगवान ने भव देखे हैं, वे बदलेंगे? ऐसा प्रश्न उठा। कहा, देखो! भाई! ऐसा नहीं है। तुम ऐसा रहने दो। जिसे आत्मा का पुरुषार्थ जगा है, राग से भिन्न पड़ने का (पुरुषार्थ जगा है), तब उसे पाँच समवाय होते ही हैं। एक समय की पर्याय... यह तो ६३ वर्ष पहले की बात है। अरे! जगत में झगड़ा.. झगड़ा.. झगड़ा। वास्तविक तत्त्व की खबर नहीं होती। आहाहा! अरे! यह तो ऐसा होता है। महाराज! ऐसा नहीं, कहा। पाँच समवाय हैं। जिस समय राग से भिन्न पड़कर पुरुषार्थ हुआ, वह पुरुषार्थ है, स्वभाव का पुरुषार्थ, वह स्वभाव है, काललब्धि उस समय की हो गयी है और भवितव्यता वहाँ जो होनेवाली थी, ये पाँच समवाय हैं। परन्तु वे लोग मानते नहीं। स्थानकवासी को ये कुछ है नहीं। स्थानकवासी में वास्तविक तत्त्व की खबर ही नहीं है। वे तो यह क्रिया करो और व्रत पालो, भक्ति करो, बस। भक्ति कहाँ है, उसमें? वह भक्ति तो यह... 'लोगस्स उज्जो अगरे धम्मत्तिथये जिणे' आहाहा!

जिसे सर्वज्ञ जगत में है, भाई! ये बातें नहीं हैं। आहाहा! एक गुण की एक पर्याय, ऐसी तो अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें प्रगट हैं। एक ही पर्याय की इतनी ताकत कि लोकालोक, अपना द्रव्य त्रिकाली, अपने गुण त्रिकाली, अपनी पर्याय त्रिकाली... आहाहा! अनन्त द्रव्य की पर्याय त्रिकाली, अनन्त गुण, अनन्त द्रव्य एक समय में जाने। ऐसी जिसकी सत्ता का स्वीकार है, ऐसी पर्याय जगत में है, ऐसे अस्तित्व का स्वीकार है, उसकी दृष्टि ज्ञान में जाती है। ज्ञानस्वरूप और ज्ञायक, उस समय ऐसी भाषा कहाँ थी। उस समय तो यह शास्त्र पढ़े भी नहीं थे परन्तु कहा था कि उसकी दृष्टि ज्ञान में जाती है। जो वस्तुस्वरूप ज्ञान है, उसमें उसकी दृष्टि जाती है। तब उसे सर्वज्ञ का निर्णय होता है। यही बात (प्रवचनसार) ८० गाथा में निकली। यही भाव अन्दर से आया था।

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।

सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥

यही बात आयी थी, लो अन्दर से। जिसने अरिहन्त के द्रव्य को, गुण को, पर्याय (को) जाना... पर्याय हुई न, केवलज्ञान? उसे आत्मा का ज्ञान होता ही है और मोह का-मिथ्यात्व का नाश होता है। आहाहा! परन्तु यह भी निमित्त से कथन है। अरिहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय वे तो पर के हैं परन्तु जो पर का ज्ञान हुआ और फिर स्वभाव के साथ मिलान

करता है, अन्दर में गुण को द्रव्य के साथ अभेद करता है, पर्याय को गुण में अभेद करता है, तब उसे आत्मा का ज्ञान, सम्यग्दर्शन, अनुभूति होती है। उसे मिथ्यात्व का नाश हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! यह वहाँ पुरुषार्थ है। समझ में आया? मैंने तो तब गजसुकुमाल का दृष्टान्त दिया था। गजसुकुमाल है न। कहा, यह गजसुकुमाल सुनने गये होंगे तो भगवान ने ऐसा कहा होगा कि हमने देखा होगा, तब होगा। गजसुकुमाल, जिन्हें हाथी के तलवे जैसा तो कोमल शरीर। कृष्ण उन्हें गोद में बैठाकर हाथी पर लेकर दर्शन करने जाते हैं। आहाहा! और एक सोनी की लड़की थी। वह सोने की गेंद से खेल रही थी। हाथी के हौदे से दिखायी दी। बहुत रूपवान सुन्दर थी। श्रीकृष्ण ने (अपने) व्यक्ति को हुकम किया कि इस कन्या को अन्तःपुर में ले जाओ, गजसुकुमाल के विवाह के लिए। वह कन्या बहुत रूपवान थी। सोने की गेंद से उसके मुहल्ले में खेल रही थी। अन्तःपुर में ले गये। यह गया भगवान को सुनने। (उपदेश) सुनकर इसे (वैराग्य हो गया)। आहाहा!

प्रभु!तब तो गाथा भी कण्ठस्थ थी और पाठ भी बहुत कण्ठस्थ थे। आपकी आज्ञा होवे तो प्रभु! अब मैं तो दीक्षित होना चाहता हूँ। कहा, यह क्या सुना होगा? भाई! ऐसी बात होगी? आहाहा! जिसे श्रीकृष्ण ने देव को आराधकर, माता के गर्भ में आया। गजसुकुमाल... था। वह गजसुकुमाल जब ऐसे दीक्षा लेना चाहता है, तब प्रभु को कहता है, प्रभु! आपकी आज्ञा होवे तो मैं दीक्षित होना चाहता हूँ। आहाहा! वह घर में माँ के पास जाता है, माता! मैं तो प्रभु के दर्शन करने गया था। आहाहा! मुझे तो दीक्षित होने का भाव हो गया। माता! आज्ञा दे। आहाहा!

भाई! मैंने किसी को लाड़-दुलार किया नहीं। तू मुश्किल से एक था, उसमें अब यह चला जाता है? माता! मैं तो भगवान के पास दीक्षित होना चाहता हूँ। वह गये। गये और भगवान ने सुनाया और सुना तथा उसी समय दीक्षित हुए और उस समय प्रभु को कहते हैं, वहाँ तो कहते हैं और ऐसी भाषा है न श्वेताम्बर में? अपने ओम ध्वनि है। प्रभु! आपकी आज्ञा होवे तो आज द्वारिका के श्मशान में जाकर बारहवीं प्रतिमा देकर खड़ा रहूँ। बारहवीं भिक्षु की कठोर प्रतिमा आती है, बहुत कठोर। आहाहा!

....सोऽहम् देवानुप्रिया! ऐसा भगवान कहते हैं। वह तो उन्हें कहाँ भाषा थी। जैसे

ठीक लगे वैसा करो। चल निकले श्मशान में। आहाहा! उसमें उनका ससुर आता है, सोमिल। अपने फोटो है न? सोमिल ससुर आता है, उसे लगा, अर र र! मेरी कन्या खटाई में पड़ गयी। इसके साथ विवाह के लिए अन्तःपुर में ले गये और इसने दीक्षा ली। हो गया। फिर उसे ऐसी कषाय आयी, श्मशान में खड़ा है। आहाहा! उस श्मशान की राख होती है न? राख में पानी डालकर पाल बाँधी, पाल बाँधकर अंगारे थे, (वे) अन्दर डाले। आहाहा!

यहाँ कहेंगे, देखो! कहेंगे। उपसर्ग-परीषह आवे तो भी उस समय डिगता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी अन्दर दृष्टि का जोर और स्थिरता हो गयी, केवलज्ञान अन्दर उत्पन्न हुआ! आहाहा! उस दिन दीक्षा, उसी दिन श्मशान में केवलज्ञान! भाई! यह क्या है? यह पुरुषार्थ कितना है? कहा। यह पुरुषार्थ के बिना भेदज्ञान होता नहीं और भेदज्ञान होने के बाद पुरुषार्थ प्रयत्न काल शुरु हुए बिना रहता नहीं। आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! अभी तो फेरफार-फेरफार हो गया है। आहाहा!

यह कहते हैं? तब से पुरुषार्थ की धारा चलती ही है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि का यह पुरुषार्थ सहज है,... आहाहा! चाहे तो वह राज्य में दिखायी दे, चक्रवर्ती राजपद में दिखायी दे, इन्द्रपद में दिखायी दे... आहाहा! परन्तु अन्दर सम्यग्दृष्टि का यह पुरुषार्थ स्वभाविक चालू ही होता है। आहाहा! पुरुषार्थ सामान्य की ओर ढला है, वह कायम चालू ही है। आहाहा! समझ में आया? हठपूर्वक नहीं है। जबरदस्ती ऐसे हठ करके अन्दर में जाना है, ऐसा नहीं है, सहज ही पुरुषार्थ है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

दृष्टि प्रगट होने के बाद एक ओर पड़ी हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! इसमें बहुत आ गया है। दृष्टि प्रगट हुई, राग से भिन्न पड़कर चैतन्य का, दृष्टि का अनुभव हुआ, वह दृष्टि अब खाली नहीं पड़ी रही, ऐसा कहते हैं। जैसे अग्नि ढँकी पड़ी हो ऐसा नहीं है। जैसे अग्नि से ढँका पड़ा हो, वैसे दृष्टि होने के बाद कायम पुरुषार्थ न रहे, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह पुस्तक तो इस प्रकार से आ गयी है सहज। कुछ बहिन ने लिखने का कहा नहीं। वह तो बोला गया और लड़कियों ने लिखा, और लिखा वह बाहर आया। आहाहा! दूसरे फिर लिखे कृत्रिम और अब ऐसा और वैसा है, वह बात नहीं आती। आहाहा! भाई का भी-सोगानी ने कुछ स्वयं कहा नहीं, लिखा नहीं। बोले थे, उसमें से लोगों ने लिख लिया। उसमें ये दो व्यक्ति-शशीभाई और लालभाई। लिखा दोनों व्यक्तियों

ने, परन्तु उन्हें कुछ नहीं, उन्हें कुछ नहीं था। उन्होंने कहा नहीं, उन्होंने लिखाया नहीं, उन्होंने लिखा नहीं। आहाहा! उसमें यह बात आ गयी।

यहाँ कहते हैं, दृष्टि प्रगट हुई, राग से भिन्न भेदज्ञान हुआ, पश्चात् वह दृष्टि एक ओर पड़ी रही है और पुरुषार्थ नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग। **अन्तर में भेदज्ञान का...** अन्तर में तो निरन्तर राग से भिन्न पड़कर जहाँ भेदज्ञान हुआ है... आहाहा! वह चाहे जिस प्रसंग में **ज्ञातृत्वधारा का प्रगट वेदन है।** जाननस्वभाव का प्रगट वेदन है। आहाहा! प्रगट वेदन क्यों कहा? – कि अन्तर आनन्द तो स्वभाव है, परन्तु यह तो पर्याय में प्रगट वेदन है। आहाहा!

भेदज्ञान का... अर्थात्? लाईन इस कारण की है। भेदज्ञान अर्थात् ज्ञाताधारा का। जाननस्वभाव ज्ञाताधारा का। आहाहा! १११ में आता है न? ज्ञानधारा और कर्मधारा एक साथ वर्तती है। आहाहा! वह राग से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान, ज्ञानधारा में निरन्तर वर्तता है। साथ में भले राग हो। राग, राग का कर्मधारारूप से वर्तता है। आहाहा! **ज्ञातृत्वधारा का प्रगट वेदन है।** ज्ञाताधारा का प्रगट पर्याय में वेदन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **सहज ज्ञातृत्वधारा चल रही है...** आहाहा! जानन-देखन स्वभाव जो राग से भिन्न पड़ा, वह ज्ञातादृष्टा की धारा टिक रही है। आहाहा! अरे! इसमें क्या नहीं आया? आहाहा! **वह पुरुषार्थ से चल रही है।** ज्ञाताधारा जो टिक रही है, जानन-देखन हूँ—ऐसा जो भेदज्ञान हुआ, वह धारा टिक रही है, वह पुरुषार्थ से टिक रही है, क्योंकि दृष्टि और ज्ञान जो हुआ, वह अब कार्य किये बिना नहीं रहता। पड़ी नहीं रहती, वह ऐसी की ऐसी (पड़ी नहीं रहती)। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

परम तत्त्व में अविचलता है। आहाहा! परमतत्त्व पारिणामिक ज्ञायकभाव में जिसकी अविचलता – चलित नहीं – ऐसी अविचलता है। आहाहा! ऐसा ज्ञायक चैतन्यधारा भगवान आत्मा की पुरुषार्थ से टिक रही है। आहाहा! **वह पुरुषार्थ से चल रही है। परम तत्त्व में अविचलता है। प्रतिकूलता के समूह आये,...** देखो! आया, देखा? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो लोगों की भाषा में समझाना है न, वे मानते हैं कि यह

प्रतिकूल है। कोई अग्नि रखी और कोई शस्त्र-प्रहार किया। है तो ज्ञेय परन्तु लोग उसे प्रतिकूल जानते हैं न, इसलिए समझाने में क्या आवे ? आहाहा ! प्रतिकूलता के समूह आये,... समूह आये। आहाहा ! सारे ब्रह्माण्ड में खलबली मच जाय,... आहाहा ! तथापि चैतन्य-परिणति न डोले... यदि द्रव्य च्युत हो तो परिणति च्युत हो। आहाहा ! ऐसा स्वरूप है।

सारे ब्रह्माण्ड में खलबली मच जाय, तथापि चैतन्यपरिणति न डोले—ऐसी सहज दशा है। हठ से नहीं, सहज दशा है – ऐसा कहते हैं। हठ करके रखी है, ऐसा नहीं। आहाहा ! इसमें बहुत आया। पहले से भिन्न किया, वहाँ से फिर वह धारा बही, वह ठेठ पूर्ण धारा (हुई)। सब बात आ गयी। पहले से आया न ? पुरुषार्थ करके भेदज्ञान प्रगट किया, तब से (बात) शुरु की। आहाहा ! एक हजार आठ नाम भगवान को दिये न, वह किसी ने पुस्तक छपाई है न ? जैतपुर से गुजराती (भाषा में छपाई है)। आशाधर नाम है। बहुत अच्छे अर्थ किये हैं ? एक हजार आठ। आशाधरजी ने स्वयं अर्थ किये हैं।

उसमें, हे नाथ ! आप तो समकिति के ज्ञान के भरण-पोषण देनेवाले हैं। निमित्त से (बात की है)। आहाहा ! हे प्रभु !आशाधरजी स्तुति करते हैं, आशाधरजी की बहुत महिमा की है। आशाधरजी की बहुत प्रज्ञापुंज है और यह है, बहुत महिमा... पूरी बड़ी गाथा भरी है। ऐसा है। साधु को पढ़ाते थे। आहाहा !

हे नाथ ! सर्वज्ञ प्रभु ! आप ज्ञाता धर्मात्मा के आप भरण-पोषण करनेवाले हैं। आहाहा ! अर्थात् कि आपकी दृष्टि जिसे हुई है, उसे अन्तर्दृष्टि हुई है, उसे आनन्द का भरण-पोषण चालू ही है। आहाहा ! जिसका भोजन आनन्द और शान्ति का है, वह भोजन उसे चालू है। आहाहा ! ज्ञानी को नित्यभोजी कहा है न ? बन्ध अधिकार। अमृतसागर का नित्यभोजी। प्रभु ! आहाहा ! वहाँ अमृत परोसा है।

भगवान अमृतसागर से भरपूर प्रभु, आहाहा ! उसका जहाँ अन्तर में सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, वह उसका आनन्द का भोजन है। आहाहा ! धर्मी को तो आनन्द का भोजन है। राग का नहीं और आहार का तो नहीं, नहीं और नहीं। उसे तो स्पर्श भी नहीं करता, कहते हैं। आहाहा ! तथापि तीर्थकर चक्रवर्ती हो वे बत्तीस ग्रास का आहार लें। एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक पचा नहीं सकें। एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक पचा नहीं सकें,

इतनी उत्कृष्ट हीरा-माणिक की भस्म होती है। हीरा-माणिक की भस्म करके घी में डाली हो और उसमें गेहूँ डाले हों, वे गेहूँ सब पी जाये और उसकी बनावे रोटी, उसकी बनावे पूरणपोली।

मुमुक्षु : गेहूँ को दलना पड़े या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन तले ? वह तो तलने की क्रिया होती है वहाँ ?

मुमुक्षु : नहीं, नहीं, चक्की में दलना पड़े या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो ऐसे पोचे होते हैं कि उसे करे... अरे ! उसकी एक दासी होती है। करोड़ रुपये का हीरा हो, करोड़ का हीरा। चक्रवर्ती गद्दी पर बैठे, अरे ! यह तो बातें। उसकी दासी ऐसे मसल दे, बापू ! जिसकी दासियाँ ऐसी। आहाहा ! तीन लोक के नाथ तीर्थकर चक्रवर्ती होते हैं। आहाहा ! चक्रवर्ती हो, उनकी बात है। सब तीर्थकर चक्रवर्ती नहीं होते। १६-१७-१८ (वें तीर्थकर) तीन हैं न ! आहाहा !

गद्दी पर बैठे, वह दासी हीरे को मसलकर चाँदला करती है। उस हीरे की भस्में। आहाहा ! उसका चूरा करके उसे गेहूँ में सेंक दे। उसका एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक नहीं खायें, तो वह खाता है ? नहीं, वह तो खाता ही नहीं। उस क्रिया को जानता है कि यह जड़ में होता है। आहाहा ! क्योंकि राग और शरीर से क्रिया से भेदज्ञान धारा चलती है, वह ज्ञान जानता है कि यह है। और उस काल में ज्ञान का वह स्व-परप्रकाशक स्वभाव होने से जिस प्रकार का जो आनेवाला है, उसका ही यहाँ ज्ञान स्व-परप्रकाशक स्वयं से होता है। आहाहा ! यह स्व-परप्रकाशक धारा, वह भस्म आयी; इसलिए यहाँ परप्रकाशक हुआ है, ऐसा नहीं है। उस पर्याय का स्वभाव.. आहाहा ! स्व-परप्रकाशक उस समय में, उस प्रकार से उस रीति से उत्पन्न होने का जन्मक्षण है। आहाहा ! इसलिए उसे जानता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। वास्तव में तो अपनी पर्याय को जानता है। आहाहा ! ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय आते हैं न ? अन्तिम कलश में (२७१ कलश में)। ज्ञाता भी स्वयं और ज्ञान भी स्वयं और ज्ञेय भी स्वयं। परज्ञेय नहीं, परज्ञेय पर में गया। परज्ञेयसम्बन्धी का अपना अपने में ज्ञान हुआ, वह अपना ज्ञेय हुआ। आहाहा ! ऐसा वीतराग का मार्ग ! आहाहा !

ऐसी ज्ञाताधारा में सारे ब्रह्माण्ड में खलबली मच जाय, तथापि चैतन्यपरिणति

न डोले.... आहाहा! अर्थात् कि नहीं बदलती। आहाहा! राग में जाए नहीं, राग को जाने बिना रहे नहीं। जो प्रतिकूल परीषह आये, उस समय उसे उसी ज्ञान में, वह जानने का प्रसंग था वह हुआ, जानता है। आहाहा! ऐसी बातें। ऐसा वीतराग का मार्ग, भाई! आहाहा! नहीं तो पूरे दिन यह पाप, पाप करता है। रामजीभाई (कहते हैं) सवेरे से उठकर ऐई यह चाय बनाओ और यह चाय पी, यह दूध पिया और स्त्री, पुत्र बैठे हों साथ में दाँत निकालना (हँसी-मजाक करना)... आहाहा! बहुत अच्छा बनाया है यह। अब नहाया और धोया और वस्त्र पहिने तथा काँच में देखा... सब पाप।

मुमुक्षु : अब करना क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहते हैं न, यह छोड़ दे। इनसे भिन्न है, उसे देख। उसे उस काल में रागादि आयेंगे तो वह जानेगा। वह जानने की पर्याय भी वह राग आया, इसलिए हुई - ऐसा नहीं है। आहाहा! कहो, चिमनभाई! ऐसा है, अब ऐसा मार्ग! आहाहा! यह ३६० (बोल पूरा हुआ)।

तू ज्ञायकस्वरूप है। अन्य सब तुझसे अलग पड़ा है, मात्र तूने उसके साथ एकत्वबुद्धि की है।

‘शरीर, वाणी आदि मैं नहीं हूँ, विभावभाव मेरा स्वरूप नहीं है, जैसा सिद्धभगवान का स्वरूप है, वैसा ही मेरा स्वरूप है’ ऐसी यथार्थ श्रद्धा कर।

शुभभाव आयेंगे अवश्य। परन्तु ‘शुभभाव से क्रमशः मुक्ति होगी, शुभभाव चले जायेंगे तो सब पता चल जायेगा और मैं शून्य हो जाऊँगा’— ऐसी श्रद्धा छोड़।

तू अगाध अनन्त स्वाभाविक शक्तियों से भरा हुआ एक अखण्ड पदार्थ है। उसकी श्रद्धा कर और आगे बढ़। अनन्त तीर्थकर आदि इसी मार्ग से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं ॥३६१॥

३६१, तू ज्ञायकस्वरूप है। प्रभु! आहाहा! तू जाननस्वभावी वस्तु है न! आहाहा! ज्ञायकस्वभावी चीज़ है न। अन्य सब तुझसे अलग पड़ा है,... भाई! भगवान ज्ञायकस्वभाव

से जो दूसरी चीज़ राग, शरीर, वाणी, मन, आहाहा! वे तो पृथक् ही पड़े हैं। तेरे ज्ञायक को वे स्पर्श ही नहीं करते। आहाहा! आठ वर्ष के बालक, वे जब सम्यग्दर्शन प्राप्त करते होंगे और प्राप्त करके ध्रुवधारा में अन्दर जाने में प्रयत्न करते (होंगे)... आहाहा! गम्भीर, गम्भीर समुद्र, आहाहा! उसे उलेचने-प्रगट करने... आहाहा!

मेरा नाथ पूर्णानन्द से भरपूर है। मुझे थोड़ा स्वाद आया है परन्तु इस स्वाद का अर्थी, वह पूर्ण स्वाद लेने के लिए अब मैं... आहाहा! वन में जाता हूँ, यह नहीं। आत्मा के वन में जाता हूँ। आहाहा! जहाँ कोई विकल्प की सामग्री नहीं, विकल्प का पदचाप नहीं, (जैसे जंगल में) मनुष्यों का पदचाप नहीं, उसी प्रकार यहाँ विकल्प का पदचाप ही जहाँ नहीं। आहाहा! ऐसा जो आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें जो अन्दर स्वाद आया है, उस स्वाद को बढ़ाने के लिए... आहाहा! यहाँ राजा और देव खम्मा-खम्मा करते हों, वह अकेला वन में चल निकलता है। मुझे गिने, न गिने; देखे या न देखे, जिसकी परवाह नहीं। आहाहा!

अन्य सब तुझसे अलग पड़ा है,... प्रभु! तूने माना है कि मेरा है, मेरा है परन्तु वह पृथक् ही पड़ा है। यह राग का, दया-दान का विकल्प और शरीर, वे पृथक् पड़े हैं। ज्ञायक के साथ एकत्र नहीं हुए। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक बार हिला डाले ऐसा है। प्रभु! तू पृथक् है न! तू पृथक् है नहीं परन्तु वह पृथक् पड़ा है न! तू पृथक् है, इसकी अपेक्षा वह पृथक् पड़ा है न! शरीर, राग, पुण्य, पाप के भाव, मन वह सब पृथक्, पृथक् पड़े हैं न, अलग रहे हैं न! तेरे साथ उन्हें कुछ मेल नहीं है। आहाहा! निमित्त-निमित्त सम्बन्धी का अर्थ (कि) कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! जिसमें तीर्थकरगोत्र का भाव आवे, वह भी पृथक् है। आहाहा! प्रभु! तू ज्ञायकस्वरूप है न! आहाहा! **अन्य सब...** दूसरा इस तेरे एक ज्ञायकभाव के अतिरिक्त दूसरा सब। आहाहा! विकल्प से लेकर सब तुझसे भिन्न पड़ा है न।

मात्र तूने उसके साथ एकत्वबुद्धि की है। पृथक् पड़ा है और तूने एकत्वबुद्धि की, बस! दूसरा कुछ नहीं। आहाहा! ज्ञायकस्वभाव चैतन्य हीरा को अन्तर के अनन्त गुण के भले पास हो, परन्तु रागादि चीज़ तो उससे पृथक् पड़ी है। आहाहा! **उसके साथ एकत्वबुद्धि की है।** दूसरा कुछ नहीं है। तूने विभाव का अध्यास किया कि ये मेरे। बाकी विभाव (तो) स्वभाव से पृथक् पड़ा है। आहाहा!

शरीर, वाणी आदि मैं नहीं हूँ,.... वे तो जड़ और पृथक् प्रदेशवाले। परन्तु विभावभाव मेरा स्वरूप नहीं है,.... आहाहा! जिसकी पर्याय में शुभ-अशुभ विभावभाव होता है, वह भी मेरा स्वभाव नहीं है। आहाहा! वह मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप होवे तो कायम रहना चाहिए। आहाहा! जैसा सिद्धभगवान का स्वरूप है, वैसा ही मेरा स्वरूप है... सिद्ध भगवान का स्वरूप पर्याय से शुद्ध है, यह द्रव्य से शुद्ध है, इतना अन्तर। सिद्ध की पर्याय है, वैसी पर्याय अभी है, ऐसा नहीं है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, (हैं, वैसा मैं)। इसलिए कहा न, पहली गाथा में? सर्वसिद्धों को पर्याय में स्थापित करता हूँ, प्रभु! आहाहा! श्रोता की पर्याय मैं और मेरी पर्याय में मैं उन्हें-सिद्धों को स्थापित करता है। आहाहा! अनन्त सिद्ध, अनन्त-अनन्त सिद्ध अकेले आनन्द के पिण्ड प्रभु... आहाहा! पर्याय में, हों! द्रव्य में तो नहीं, पर्याय में। आहाहा!

ऐसे अनन्त सिद्धों को, प्रभु आचार्य कुन्दकुन्द ऐसा कहते हैं कि मेरी पर्याय में स्थापित करता हूँ। मेरा स्वभाव तो उतना, वैसा है परन्तु अब पर्याय में स्थापित करता हूँ और श्रोता को भी कहते हैं कि अनन्त सिद्धों को तेरी पर्याय में स्थापित कर, प्रभु! आहाहा! वार, कुवार होवे तब नहीं रखते? कुछ लेने जाए, परगाँव जाना हो, वह बाहर क्या कहलाता है? प्रस्थाना रखते हैं, प्रस्थाना। तुम्हारी भाषा भूल जाते हैं। प्रस्थाना रखते हैं कि भाई! फिर अपन दूसरे, तीसरे दिन लेकर निकल जाएँगे। इसी प्रकार प्रभु! अभी तेरी पर्याय में सिद्ध का प्रस्थाना रखा। आहाहा! उसका अवसर-काल आयेगा, तो स्वयं सिद्ध हो जाएगा। आहाहा! अरे! ऐसी बातें।

ऐसी यथार्थ श्रद्धा कर। है? शरीर, वाणी आदि अर्थात् कर्म, बाह्य स्त्री, कुटुम्ब इत्यादि मैं नहीं हूँ परन्तु विभावभाव मेरा स्वरूप नहीं है। जैसा सिद्ध भगवान का स्वरूप है... आहाहा! वैसा 'ही', वापस ऐसा 'ही' ऐसा मेरा, ऐसा नहीं। आहाहा! वैसा ही मेरा स्वरूप है- ऐसी यथार्थ श्रद्धा कर। आहाहा!

शुभभाव आयेंगे अवश्य। भगवान की यादगिरी आदि-इत्यादि शुभभाव आयेंगे, आयेंगे अवश्य। ऐसे आयेंगे अवश्य। परन्तु 'शुभभाव से क्रमशः मुक्ति होगी, शुभभाव चले जायेंगे तो सब पता चल जायेगा और मैं शून्य हो जाऊँगा'—ऐसी श्रद्धा छोड़। आहाहा! ऐसा कि मैं शुभभाव छोड़ूँगा तो फिर मुझमें रहेगा क्या? आहाहा! अरे! परन्तु

शुभभाव छोड़ेगा तो तुझमें रहनेवाला त्रिकाल आनन्द रहेगा, प्रभु! आहाहा! शुभभाव छोड़ने से शून्य नहीं हो जाएगा। तू शुभभाव से टिका है, ऐसा मानता है तो उससे शून्य हो जाएगा, ऐसा नहीं। आहाहा! भाई गये? अभी क्यों गये होंगे? ठीक नहीं होगा। आहाहा! ऐसा है।

यह क्या कहा? ऐसा कि वस्तु जो भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप है, उसमें शुभभाव आयेगा परन्तु वह शुभभाव चला जाएगा तो मैं शून्य हो जाऊँगा—ऐसा न मान, भाई! शुभभाव जाएगा तो तू पवित्र आत्मा प्रगट होगा। आहाहा! शुभभाव जाएगा तो शुद्ध भगवान की शुद्ध की अस्तित्वता की पर्याय में प्रगटता होगी। शुभभाव जाएगा तो अरे! शुभभाव जाएगा तो मुझे क्या करना? उसमें नहीं कहा, पुण्य-पाप अधिकार में? कि शुभभाव जाएगा तो फिर सन्तों को अवलम्बन किसका? अब मुश्किल से यह कुछ करना, करना, ऐसा आया वहाँ कहते हैं कि यह नहीं। आहाहा! भगवान! यह शुभभाव जाएगा तो तुझे अवलम्बन आत्मा के आनन्द का है। आहाहा! शुभभाव तो दुःखरूप है, आकुलता है। वह जाएगा तो अनाकुल दशा विशेष प्रगट होगी। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : किसी को ऐसी बातें कान में न पड़ी हो तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : न हो तो कान में पड़ती है न अब यह। आहाहा! बात सत्य है। अरे रे! ऐसी तेरी घर की बातें, उसे कान में न पड़े, उसके भाव में कहाँ से जाए? आहाहा!

क्या कहा यह? कि मेरा स्वरूप तो यथार्थ सिद्ध भगवान जैसा है - द्रव्यस्वभाव। उसका ज्ञान हुआ और शुभभाव आयेंगे अवश्य, परन्तु शुभभाव से क्रम से मुक्ति होगी, यह बात चली जाएगी। यह शुभभाव है तो कुछ करता हूँ, कुछ शुभ है तो कुछ करता हूँ और जाएगा तो मैं वापस अकेला रह जाऊँगा, ऐसा नहीं है, भाई! शुभभाव करता है, वह कर्तव्य तेरा नहीं है। आहाहा! और उससे-शुभभाव से धीरे-धीरे मुक्ति होगी, ऐसा नहीं है। और शुभभाव चला जाएगा तो मैं शून्य हो जाऊँगा, ऐसा नहीं है। शुभ जाएगा तो शान्ति बढ़ेगी। आहाहा! शुभ जाएगा... क्योंकि इसने माना हो कि यह शुभभाव (जाएगा और) पूरी चीज़ है, वह तो जानी नहीं; इसलिए शुभभाव के विकल्प में (रह जाता है) बस सब। आहाहा!

ऐसी श्रद्धा छोड़। आहाहा! ऐसा कि मुश्किल से शुभभाव में आया हूँ अब यह छूट

जाएगा तो मैं शून्य हो जाऊँगा, ऐसा नहीं है। प्रभु! तू सिद्धसमान है। शुभ छूटेगा तो अन्दर तेरी शान्ति बढ़ेगी। तेरा अस्तित्व बढ़ेगा। उसका अस्तित्व जाने पर तेरा अस्तित्व चला जाएगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश कान में पड़ा न हो, बेचारे लोगों को। जैन में आये, जन्मे, उन्हें खबर नहीं होती। आहाहा!

ऐसा कि यह शुभभाव आया है, इसलिए कुछ मेरा टिकना है, ऐसा नहीं है। यह शुभभावरहित सिद्ध समान तेरा (स्वरूप) है, वह टिकना है और शुभभाव से क्रम-क्रम से जाने पर आगे शान्ति मिलेगी, ऐसा नहीं है। उसके जाने पर-छोड़ने पर शून्य हो जाऊँगा, ऐसा नहीं है। उसके जाने पर शुद्धि की पुष्टि होगी, ऐसा होगा। आहाहा! अब ऐसा उपदेश। इस पुस्तक में बहुत आ गया है।

और मैं शून्य हो जाऊँगा—ऐसी श्रद्धा छोड़। वह जाएगा तो मैं पूर्ण होऊँगा, ऐसा मान। आहाहा! मेरी साधकदशा कम है, यह शुभभाव जाएगा तो साधकदशा बढ़ जाएगी। आहाहा! इसलिए शुभ का अवलम्बन लूँगा तो रहेगी, यह (बात) रहने दे। आहाहा! शुभ का अवलम्बन जाएगा तो भगवान का उग्र अवलम्बन होगा। आहाहा! ऐसी बात है। यह दिगम्बर सन्तों के सिवाय ऐसी बातें कहीं नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया?

तू अगाध अनन्त स्वाभाविक शक्तियों से भरा हुआ... आहाहा! तू अगाध-जिसकी शक्ति के संग्रह का पार नहीं, ऐसी अनन्त (शक्तियों का) महा संग्रहालय पड़ा है। जिसकी गुण और शक्तियों की संख्या का पार नहीं... पार नहीं... पार नहीं... आहाहा! ऐसी अगाध अनन्त, अगाध और अनन्त स्वाभाविक शक्तियाँ, स्वाभाविक शक्तियाँ। आहाहा! उनसे भरपूर। अगाध और अनन्त। पार नहीं ऐसी अनन्त स्वाभाविक शक्तियाँ-गुण, उनका **भरा हुआ एक अखण्ड पदार्थ है।** आहाहा! जिसका अन्त नहीं ऐसी **अनन्त स्वाभाविक शक्तियों से भरा हुआ एक अखण्ड पदार्थ है।** अनन्त शक्तियाँ होने पर भी एकरूप पदार्थ है, ऐसा कहते हैं। भले अनन्त शक्तियों से भरपूर है परन्तु है एकरूप द्रव्य। आहाहा!

यहाँ तो चौबीस घण्टे, बाईस, तेईस (घण्टे) पाप करे। एक घण्टे मन्दिर में दर्शन करे और घण्टे भर सुने। पृष्ठ दो (पढ़े)। यहाँ आवे कितने ही, पन्ने दो लाईन दो पढ़ जाए,

यह स्वाध्याय हो गयी। अरे भगवान! आहाहा! हो गया। फिर २२-२३ घण्टे पाप करे। इसमें दो घड़ी करे तो वह शुभभाव है। इसमें धर्म कहाँ है। उसे शुभभाव जाएगा तो मैं खाली हो जाऊँगा, ऐसा कहाँ है? शुभ जाएगा तो मैं परिपूर्ण होऊँगा। आहाहा!

उसकी श्रद्धा कर... अगाध अनन्त स्वभाविक शक्तियों से भरपूर एकरूप। वस्तु है न एकरूप? अखण्ड-भेद नहीं, ऐसा पदार्थ है। **उसकी श्रद्धा कर...** आहाहा! उसका भरोसा ला। विश्वास में उस भगवान को ला। आहाहा! **उसकी श्रद्धा कर और आगे बढ़।** श्रद्धा करके फिर वापस वहाँ इसे खड़े नहीं रहना। आहाहा! अन्दर जो जाना है, भगवान पूर्णानन्द, उसमें अधिक जा न! आहाहा! जिसे श्रद्धा में लिया है, अब उसमें जा न! आहाहा!

अनन्त तीर्थकर आदि इसी मार्ग से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। अनन्त तीर्थकर, अनन्त केवली, अनन्त सन्त। आहाहा! इसी मार्ग से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, इसी मार्ग से मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, दूसरा कोई रास्ता नहीं है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आत्मा की सच्ची बुद्धि

भूतार्थदर्शी अर्थात् सम्यग्दृष्टि अपनी स्वसन्मुख बुद्धि से डाले हुए शुद्धनयानुसार बोध होनेमात्र से उत्पन्न हुए आत्मधर्म के विवेकपने से, अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत (प्रगट) किये गये सहज एक ज्ञायकस्वभावरूप से आत्मा का अनुभव करते हैं। शुद्धनय से आत्मा के शुद्धस्वरूप का बोध करना ही सच्ची बुद्धि है; उसी को यहाँ आत्मा की बुद्धि कहा है। परावलंबन से छूटकर और राग से पृथक् होकर जो ज्ञान, आत्मा के भूतार्थस्वभाव में ढला, उस ज्ञान को ही 'अपनी बुद्धि' कहा है; अकेले पर की ओर के ज्ञानविकास को यहाँ 'अपनी बुद्धि' नहीं कहते। सच्ची बुद्धि ही उसे कहते हैं कि जो अन्तर्मुख होकर अपने अखण्ड चिदानन्दस्वरूप को जान ले। क्षणिक विकार-स्वरूप ही सम्पूर्ण आत्मा को मान ले, तो वह बुद्धि नहीं है किन्तु मूढ़ता है।

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

कार्तिक शुक्ल -४, शनिवार, दिनाङ्क ०४-११-१९७८
वचनामृत-३६२ से ३६३ प्रवचन-१४०

जिस प्रकार अज्ञानी को 'शरीर ही मैं हूँ, यह शरीर मेरा है' ऐसा सहज ही रहा करता है, घोखना नहीं पड़ता, याद नहीं करना पड़ता, उसी प्रकार ज्ञानी को 'ज्ञायक ही मैं हूँ, अन्य कुछ मेरा नहीं है' ऐसी सहज परिणति वर्तती रहती है, घोखना नहीं पड़ता, याद नहीं करना पड़ता। सहज पुरुषार्थ वर्तता रहता है ॥३६२॥

(वचनामृत बोल) ३६२, पैराग्राफ है। जिस प्रकार अज्ञानी को 'शरीर ही मैं हूँ,... अनादि अज्ञानी को शरीर, वही मैं हूँ। यह शरीर मेरा है' ऐसा सहज ही रहा करता है,... सहज ही अज्ञानी की दृष्टि में रहता है। घोखना नहीं पड़ता,... उसे रटना नहीं पड़ता कि मैं शरीर हूँ। सहज, शरीर ही मैं हूँ और मैं ही शरीर हूँ। याद नहीं करना पड़ता,... याद नहीं करना पड़ता (कि) शरीर ही मैं हूँ। शरीर के प्रति (अस्तित्व ग्रहण कर रखा है)। अपना अस्तित्व देखा नहीं तो शरीर के अस्तित्व में अपनापन माना है, वह अनादि से सहज रहा करता है। आहाहा!

इसी प्रकार उसी प्रकार ज्ञानी को... धर्मी को-सम्यग्दृष्टि को। जिसे ज्ञायकस्वभाव चैतन्यमूर्ति मैं हूँ, मैं पर्याय जितना नहीं, राग नहीं, निमित्त नहीं, ऐसा अन्दर सम्यग्दर्शन हुआ है, ऐसे सम्यग्दृष्टि को, ज्ञायक ही मैं हूँ,... अज्ञानी को जैसे शरीर ही मैं हूँ - ऐसा रटना नहीं पड़ता, सहज ही अज्ञानी की दृष्टि है। इसी प्रकार धर्मी जीव उसे कहते हैं कि मैं ज्ञायक चैतन्यद्रव्य हूँ, पूर्ण अखण्डानन्द प्रभु, सम्यग्दर्शन में ज्ञायक की प्रतीति, अनुभव हो गया है। मैं ज्ञायक ही हूँ। अन्य कुछ मेरा नहीं है... धर्मी को—सम्यग्दृष्टि को—मैं तो

ज्ञायक द्रव्य त्रिकाली ज्ञायकस्वभावी मैं हूँ; अन्य मेरा नहीं। राग का कण उत्पन्न हो; भक्ति, दया, दानादि का, वह भी मेरी चीज़ नहीं। आहाहा!

ऐसी सहज परिणति वर्तती रहती है, ... मैं ज्ञायक हूँ—ऐसी सहजदशा, श्रद्धा-ज्ञान की दशा सहज वर्तती है। आहाहा! उसे यहाँ ज्ञानी और धर्मी कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! ऐसी सहज परिणति... अर्थात् दशा। मैं ज्ञायक हूँ, शुद्ध चैतन्य हूँ—ऐसी परिणति अर्थात् श्रद्धा-ज्ञान की दशा सहज वर्तती रहती है। आहाहा! समझ में आया? **घोखना नहीं पड़ता**, ... उसे रटना नहीं पड़ता। आहाहा! जैसे अज्ञानी को, शरीर में हूँ - ऐसा रटना नहीं पड़ता। वह तो शरीर में हूँ - ऐसी दृष्टि अनादि से हो गयी है। आहाहा! इसी प्रकार धर्मी जीव को अपना चैतन्य ज्ञायकभाव हूँ, ऐसी श्रद्धा-ज्ञान की निर्मल परिणति हो गयी, निर्विकल्प श्रद्धा और निर्विकल्प सम्यग्ज्ञान... आहाहा! हुए तो रटना नहीं पड़ता कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। वह परिणति निरन्तर रहती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। **याद नहीं करना पड़ता**। स्मरण नहीं करना पड़ता कि मैं ज्ञायक हूँ। वह तो ज्ञायक की परिणति सदा रहती है। सम्यग्दर्शन हुआ, अखण्ड ज्ञायकभाव की दृष्टि अनुभव में हुई तो वह सदा रहती है। वे श्रद्धा और ज्ञान खाली नहीं पड़े रहते। उनका परिणमन सदा रहता है। आहाहा! ऐसी बात बहुत कठिन, भाई!

याद नहीं करना पड़ता। सहज पुरुषार्थ वर्तता रहता है। स्वाभाविक। सहज अर्थात् स्वाभाविक मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी परिणति सदा ही वर्तती है। आहाहा! **सहज पुरुषार्थ वर्तता रहता है।** कठिन बात है। आहाहा! धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे ज्ञायकभाव की शुद्ध श्रद्धा की परिणति और ज्ञायक की ज्ञाता-दृष्टा की दशा हो गयी है, आहाहा! वह दशा राग से भिन्न हुई, वह चैतन्य की धारा सदा रहती है। आहाहा! समझ में आया? उसे रटना नहीं पड़ता, याद नहीं करना पड़ता। वह तो वस्तु की स्मृति अन्दर से आ गयी। आहाहा! उसे यहाँ धर्मी अथवा ज्ञानी कहते हैं।

ज्ञानी अर्थात् बहुत ज्ञान है, ऐसा यहाँ नहीं है। अपने चैतन्यस्वरूप की प्रतीति होकर ज्ञान हुआ अथवा अपने त्रिकाली स्वरूप का ज्ञान होकर प्रतीति हुई। आहाहा! अपनी ज्ञान की पर्याय में, ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक त्रिकाली का ज्ञान होकर प्रतीति हुई, उसका नाम धर्मी और सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है। अभी सम्प्रदाय में कठिन पड़े,

ऐसी है। मूल सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं होता (और) व्रत करो, अपवास करो, तपस्या करो, यह करो... भाई! यह सब तो विकल्प है। विकल्प तो ज्ञानी को भी आते हैं, परन्तु विकल्प के काल में भी ज्ञाता की धारा जो चैतन्य परिणति हुई है, वह धारा खण्डित नहीं होती। ज्ञानी को भी विकल्प आते हैं। आहाहा! परन्तु ज्ञानी विकल्प को, अपने में रहकर पृथक् ज्ञेयरूप से उन्हें जानता है। आहाहा! अपनेरूप नहीं जानकर, धर्मी को राग से भिन्न अपनी दृष्टि और अनुभव हुए हैं, तो राग आता है, उसे पृथक् ज्ञेय करके जानता है। अपना स्वज्ञेय जानता है - ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात। ऐसा धर्म है।

सहज पुरुषार्थ वर्तता रहता है। यह तो साधारण सम्यग्दृष्टि और धर्मी की बात की। अब मुनिराज (की बात करते हैं)। आहाहा!

मुनिराज आश्चर्यकारी निज ऋद्धि से भरे हुए चैतन्यमहल में निवास करते हैं; चैतन्यलोक में अनन्त प्रकार का दर्शनीय है, उसका अवलोकन करते हैं; अतीन्द्रिय-आनन्दरूप स्वादिष्ट अमृतभोजन के थाल भरे हैं, वह भोजन करते हैं। समरसमय अचिन्त्य दशा है! ॥३६३॥

मुनिराज आश्चर्यकारी निज ऋद्धि से भरे हुए... मुनिराज तो उन्हें कहते हैं, आहाहा! आश्चर्यकारी निज ऋद्धि, आनन्द का सागर प्रभु, अतीन्द्रिय ज्ञान से भरपूर प्रभु आत्मा, अतीन्द्रिय प्रभुता की शक्ति से पूर्ण भरपूर है, अतीन्द्रिय शान्त.. शान्त.. शान्त.. अकषायभाव से पूर्ण भरपूर प्रभु है। ऐसा जो आश्चर्यकारी निज ऋद्धि। आता है न इसमें? 'ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दीसे, घट में प्रगट सदा; अन्तर की लक्ष्मी सों आजाची लक्षपति है।' यह आता है। 'स्वारथ के साचे, परमारथ के साचे, साचे साचे वेण कहे, साचे साचे जिनमति है। काहू के विरोधी नाही, पर्यायबुद्धि नाही, आतम गवेषी, न गृहस्थ है, न पति है। 'ऋद्धि सिद्धि बुद्धि दीसे...' सब ऋद्धि-सिद्धि अन्तर में दिखती है। बाहर की यह धूल लक्ष्मी, स्त्री आदि वह कोई आत्मा का वैभव नहीं है, ऋद्धि नहीं है। आहाहा! 'ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दीसे घट में प्रगट सदा' आहाहा! अन्तर की लक्ष्मी से अजाची लक्षपति है।

अजाची - कोई याचना नहीं कि राग या पर के पास। भगवान के पास भी याचना नहीं नहीं। अन्दर में वस्तु पड़ी है। 'दास भगवन्त का, उदास रहे जगत सौं, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकित्ती हैं' बनारसीदास, नाटक समयसार। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : पैसेवाले... नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसेवाले धूलवाले हैं। पैसा तो धूल है, अजीव है। अजीववाला आत्मा है ?

मुमुक्षु :परन्तु उसके बिना चलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ जीव मानता है कि मैं पैसेवाला हूँ। मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है। आहाहा! पैसा धूल है, अजीव-मिट्टी है। रुपया होवे तो मिट्टी, धूल है। और वह तुम्हारी क्या कहलाती है ? नोट। नोट भी धूल, मिट्टी है। वह आत्मा की हो गयी ? अन्तर में राग आता है, वह भी अपना नहीं। आहाहा! होता है अपनी पर्याय में, धर्मी को भी (होता है) जानता है कि मेरी कमजोरी के कारण मुझे राग आया है परन्तु मैं इसका वास्तव में तो दृष्टि की अपेक्षा से जाननेवाला हूँ और ज्ञान की अपेक्षा से राग का परिणामन है, उतनी मेरी कमी है, ऐसा वह जानता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यहाँ कहते हैं कि **मुनिराज...** आहाहा! धन्य-धन्य दशा! मुनि धन्य दशा! पण्डितजी! पुस्तक दी है न ? छोटी पुस्तक दी है-धन्य मुनिदशा। दी है, सवेरे दी है। दो आये न ? एक यह और एक वह, धन्य मुनिदशा! आहाहा! **आश्चर्यकारी निज ऋद्धि...** आनन्द, ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता और प्रभुता ऐसी अन्तर में निज ऋद्धि से भरपूर। आहाहा! **चैतन्यमहल में निवास करते हैं;**... मुनिराज तो अपनी ऋद्धि, चैतन्यऋद्धि, ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, आनन्द ऐसी अपनी ऋद्धि में निवास करती है, वास नहीं, निवास। विशेष निवास करते हैं। आहाहा! समझ में आया ? पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं, उनमें वास नहीं। है ? आहाहा!

मुनिराज आश्चर्यकारी निज ऋद्धि से भरपूर अपने महल में निवास करते हैं। आहाहा! ज्ञानानन्दस्वभाव में मुनिराज तो आनन्द में रहते हैं। विकल्प आता है तो उसके ज्ञाता रहते हैं। पंच महाव्रतादि का विकल्प आता है परन्तु उसमें उनका वास नहीं है।

मुनिराज का वास तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द की ऋद्धि में वास है। आहाहा! अनन्त-अनन्त चैतन्य समृद्धि जो अन्दर में भरी है, उसके अनुभव में चारित्रदशा में बहुत ऋद्धि प्रगट हुई है। अतीन्द्रिय प्रचुर आनन्द प्रगट हुआ, अतीन्द्रिय-अतीन्द्रिय सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ... आहाहा! प्रभुत्व, ईश्वरत्वशक्ति अन्दर में पूर्ण है, उस ईश्वरशक्ति की भी प्रगट में ईश्वरशक्ति की ऋद्धि प्रगट हुई। आहाहा! मुनिराज तो पंच परमेष्ठी में परमेष्ठी हैं। आहाहा! ऐसे मुनिराज अपने महल में-चैतन्यमहल में (निवास करते हैं)। जैसे राजा पाँच-दस करोड़ के महल में रहता है, वैसे मुनिराज अपने आनन्द के महल में रहते हैं। चैतन्यमहल में रहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह महल कहाँ होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान आत्मा है, वह महल है। चैतन्यस्वरूप ध्रुव अतीन्द्रिय आनन्द का सागर नाथ आत्मा, उसमें मुनिराज अपनी पर्याय में वहाँ वास करते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : मुनि तो जंगल में वास करते हैं, ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य जंगल की बात व्यवहार है। अन्तर में बसते हैं। यह आया था न? (समयसार) ४९ गाथा में कहा था। जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका है ४९ गाथा में। है यहाँ? है? ४९ गाथा है। जंगल की बात है न? देखो! आहाहा! क्या कहते हैं? देखो! ४९ गाथा है न? 'निर्विकल्पनिर्मोहनिरंजननिजशुद्धात्मसमाधिसंजात...' संस्कृत है। जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका है। मुनिराज किसमें बसते हैं? मैं आत्मा अपूर्व त्रिकाली आनन्द का नाथ, वह मुझे उपादेय है। ऐसा होकर 'इति मत्वा निर्विकल्पनिर्मोह-निरंजननिजशुद्धात्मसमाधि...' निज शुद्धात्मा की आनन्द की दशा संजात...' उत्पन्न हुई। 'सुखामृत' सुखरूपी अमृत अतीन्द्रिय 'रसानुभूतिलक्षणे..' 'रसानुभूतिलक्षणे गिरिगुहागह्वरे' उस गिरिगुफा में रहते हैं। यह गिरिगुफा तो जड़ है, जो बाहर है। उसमें क्या है? समझ में आया? जयसेनाचार्यदेव की टीका है। समयसार तो अक्षर-अक्षर अठारह बार पूरा पढ़ा गया है। अभी सवेरे उन्नीसवीं बार पढ़ा जा रहा है। उन्नीसवीं बार, समयसार सभा में (पढ़ा जाता है)। सब टीका आ गयी है।

कहते हैं, मुनिराज कैसी गिरिगुफा में रहते हैं ? अपना सुख समाधि आनन्द की उत्पन्न हुई, अमृत की धारा (बहती है), ऐसी गिरिगुफा में रहते हैं। पण्डितजी ! ऐसी बात है, भगवान ! ऐसा प्रभु का मार्ग है। आहाहा ! आचार्यों-दिगम्बर सन्तों ने गजब काम किया है। आहाहा ! ओहोहो ! टीकाएँ, यह अमृत बरसाया है।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अमृत का सागर है। उसका अनुभव सम्यग्दर्शन में हुआ, तदुपरान्त जब स्वरूप की रमणता में चारित्र हुआ.. आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द में रमते हुए, आत्मराम रमे सो आत्मा। आहाहा ! निजपद रमे सो राम कहिये। बाकी राग में रमे, उसे हराम कहिये। ऐसी बात है, प्रभु ! वह यहाँ गिरिगुफा। यह (बाहर की) गिरिगुफा नहीं। आहाहा ! निरंजन निज शुद्धात्मा में से आनन्द 'संजात' उत्पन्न हुआ। 'सुखामृतरसानुभूति-लक्षणे गिरिगुहागह्वरे स्थित्वा सर्वतात्पर्येण ध्यातव्य।' आहाहा ! संस्कृत है। यहाँ तो सब चल गया है। यहाँ जंगल में ४४ वर्ष हुए। यह ४४वाँ वर्ष चलता है। यह तो बहुत बार सभा में पढ़ा गया है। आहाहा ! बाहर के जंगल में तो पक्षी भी रहते हैं। वह कहाँ (बात है)।

'गिरिगुहागह्वरे' गिरि रूपी गुफा में गम्भीर अन्दर में 'संजात' आनन्द की धारा, अमृत का अनुभव, उस गिरिगुफा में मुनि रहते हैं। आहाहा ! देखो ! यह सन्तों की वाणी। स्वयं मुनि हैं, आचार्य हैं, जयसेनाचार्य। यह अमृतचन्द्राचार्य की टीका अपने पढ़ी जाती है और वह है जयसेनाचार्य की टीका। समयसार की दो टीकायें हैं। आहाहा ! यह कहते हैं, प्रभु ! मुनिराज किसमें बसते हैं 'शुद्धात्मानुभूतिसुखामृतरसास्वादेनगिरिगुफा' उसमें रहते हैं। पंच महाव्रत के विकल्प में नहीं रहते, ऐसा कहते हैं। आता है, परन्तु उसे छोड़कर अन्तर आनन्द में रहते हैं। आहाहा ! क्योंकि पंच महाव्रत का विकल्प भी आस्रव है, राग है, बन्ध का कारण है। आहाहा !

मुमुक्षु : दूसरा जो करे, वह सब बन्ध का कारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूजा-बूजा, भक्ति-बक्ति लाख करे और करोड़ करे, सब राग है, क्लेश है, शुभराग है। निर्जरा अधिकार में कहा, क्लेश करो तो करो परन्तु वह आत्मधर्म नहीं है। आहाहा ! अमृतचन्द्राचार्यदेव का कलश है, निर्जरा अधिकार में है। है, यहाँ तो सब चल गया है। आहाहा ! आज वह प्रश्न करता था, भाई आया था न ? चला गया ? दाढ़ीवाला

एक आया था न? चला गया। वह प्रश्न करता था। वह वहाँ आबू में अभी रहता है, भाई! वहाँ श्रीमद् का पढ़ता है और यहाँ का पढ़ता है। शिवलाल है न, अपने वहाँ दीक्षा ली थी वह भाई भी वहाँ है। कहते हैं रोटी करता था। वह कहता था शुभयोग तो ठीक है न? शुभयोग है, प्रभु!

प्रवचनसार की ७७ गाथा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि शुभ और अशुभभाव में जो विशेष-अन्तर जानता है, भेद मानता है कि शुभ ठीक है और अशुभ ठीक नहीं, ऐसा अन्तर मानता है, भेद मानता है, वह घोर संसार में भटकेगा। समझ में आया? यह प्रवचनसार ७७ गाथा है। ७७ न? ७७। 'ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।' ज्ञेय अधिकार की ७७ गाथा। प्रवचनसार, दिव्यध्वनि का सार। प्र-वचन। प्र-विशेष दिव्यध्वनि, उसका सार। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ७७ गाथा में कहते हैं 'ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो' शुभ और अशुभभाव में कुछ अन्तर नहीं है, ऐसा नहीं मानता और अन्तर है, ऐसा मानता है, 'पुण्णपावाणं हिंइदि घोरमपारं संसारं।' घोर संसार में भटकेगा, नरक और निगोद में जाएगा। आहाहा! दिगम्बर मुनि हैं, नागा बादशाह से आगा। उन्हें दुनिया की पड़ी नहीं है कि दुनिया-समाज मानेगी या नहीं मानेगी? यह वस्तुस्थिति ऐसी है। पुण्य-पाप में कुछ भी अन्तर मानेगा या अशुभ से शुभभाव ठीक है, ऐसा दोनों में अन्तर मानेगा, 'हिंइदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो।' मिथ्यात्व से ढँका हुआ अज्ञानी घोर संसार में भटकेगा। आहाहा! मीठालालजी! यह प्रवचनसार, ७७ गाथा। वह पूछता था कि शुभ ठीक है न? कहा, शुभ और अशुभ दोनों अठीक है। दोनों बन्धन के कारण हैं, दोनों दुःखरूप हैं, आकुलता है, आस्रव है। आहाहा! तत्त्वार्थसूत्र में लिया है न? आस्रव का अधिकार। तत्त्वार्थसूत्र। शुभभाव आस्रव अधिकार में लिया है। जैसे अशुभभाव आस्रव है, वैसे शुभभाव भी आस्रव है। दोनों में दृष्टि में अन्तर मानेगा कि यह ठीक है, (वह) घोर अपार संसार, जिसका पार नहीं पड़े—ऐसे घोर संसार में, अनन्त संसार में चला जाएगा। आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी है। अरे! कौन माने?

यह यहाँ कहते हैं, मुनिराज तो चैतन्य के महल में निवास करते हैं। चैतन्यलोक में अनन्त प्रकार का दर्शनीय है... आहाहा! चैतन्यलोक में अनन्त प्रकार के गुण के दर्शन करनेयोग्य हैं। आहाहा! है? चैतन्यलोक में... भगवान चैतन्यलोक। सवेरे कहा था। उसमें

अनन्तगुणे गुण हैं। आकाश के प्रदेश हैं, अन्त नहीं, अन्त नहीं, अनन्त इतने जो प्रदेश हैं, उनसे अनन्तगुणे गुण एक आत्मा में हैं। उस आकाश में भी इतने गुण हैं। सवेरे कहा था। आकाश पदार्थ है, उसमें भी जितने प्रदेश हैं, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अन्त नहीं, उससे अनन्तगुणे गुण आकाश में हैं। ऐसे अनन्त प्रदेशों से अनन्तगुणे गुण आत्मा में हैं और जितने प्रदेश हैं, उससे अनन्तगुणे गुण एक परमाणु में हैं। जड़ में जड़ और चैतन्य में चैतन्य, परन्तु अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा! एक पॉइन्ट परमाणु परमात्मा जिसे कहते हैं, वह तो स्कन्ध है, टुकड़े करते.. करते.. करते.. अन्तिम परम अणु-अन्तिम छोटा टुकड़ा (रहे), उस परमाणु में भी आकाश के प्रदेश से भी अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा! यह कौन माने ?

मुमुक्षु : कैसे रहे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रहे। उसकी शक्ति-स्वभाव है। रहे क्या ? आहाहा! एक परमाणु पॉइन्ट है। परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव इन्द्रों के बीच ऐसा फरमाते थे कि इस परमाणु में आकाश के अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... प्रदेश हैं, उससे अनन्तगुणे गुण एक परमाणु में हैं। भले जड़ हो। चैतन्य में चैतन्य और जड़ में जड़, परन्तु गुण अनन्त समान हैं। आहाहा! एक आकाश में अनन्त प्रदेश से अनन्तगुणे गुण हैं इतने चौड़े। उतने एक परमाणु में भी अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर की दिव्यध्वनि द्वारा पुकार है। ऐसे एक-एक द्रव्य में अनन्तगुणे गुण हैं। एक कालाणु (द्रव्य) है, असंख्य कालाणु हैं। एक कालाणु में भी अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा! अरे!

यह यहाँ कहते हैं, **चैतन्यलोक में अनन्त प्रकार का...** यह अनन्त प्रकार के गुण दर्शनीय है... देखनेयोग्य है। आहाहा! भगवान चैतन्यलोक। 'लोकयन्ते इति लोकः' प्रभु! इसमें अनन्त प्रकार के गुण-स्वभाव दर्शनीय है, देखनेयोग्य है। आहाहा! देखनेवाला पर को देखता है, वह तो परप्रकाशकभाव हुआ। देखनेवाला अपने अनन्त गुण जो दर्शनीय / देखनेयोग्य है, उन्हें देखे। आहाहा! चैतन्यमहल में अनन्त आश्चर्यकारी अनन्त गुण... आहाहा! **चैतन्यलोक में अनन्त प्रकार का...** अनन्त प्रकार का। एक प्रकार नहीं, अनन्त-अनन्त प्रकार का देखनेयोग्य है। आहाहा! ऐसी बातें। मार्ग तो यह है, भाई! वीतराग तीन लोक के नाथ परमेश्वर तो ऐसा फरमाते हैं। आहाहा! यह सन्तों की वाणी ऐसी है।

अनन्त प्रकार का दर्शनीय है, उसका अवलोकन करते हैं;... आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त प्रकार का, अनन्त विशेष प्रकार का, एक प्रकार नहीं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, कर्ता, कर्म, करण, जीवत्वशक्ति, ऐसे अनन्त प्रकार के गुण मुनि को दर्शनीय है। उनका अवलोकन करते हैं। आहाहा! वर्तमान पर्याय से अनन्त गुण दर्शनीय है, उनका अवलोकन करते हैं। आहाहा! यह तो क्या बात!

जैसे इन बाह्य पदार्थों को देखने नहीं जाता? क्या कहलाता है वह सब एकत्रित हों? प्रदर्शन सब भराया हो। इसी प्रकार यह प्रदर्शन भगवान है, कहते हैं। अनन्त गुण से भरपूर प्रदर्शन भगवान आत्मा है, भाई! आहाहा! वह दर्शनीय है, देखनेयोग्य है। अनन्त गुण देखनेयोग्य है। मुनिराज उनका अवलोकन करते हैं। आहाहा! समकिति भी उनका अवलोकन करता है परन्तु थोड़ा। थोड़ा अर्थात्? वहाँ पर्याय की कमजोरी है और मुनि को तो पर्याय की उग्रता है। उस उग्रता से अनन्त दर्शनीय गुणों को देखते हैं, अवलोकन करते हैं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें। आहाहा!

वस्तु है या नहीं? चैतन्य वस्तु है न? तो वस्तु किसे कहें? कि जिसमें अनन्त गुण बसे हों-रहे हों। गोम्मटसार में पाठ है। वस्तु किसे कहना? गोम्मटसार में है। नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (कृत है)। वस्तु उसे कहते हैं कि जिसमें अनन्त गुण बसे हों, रहे हों, आहाहा! चाहे तो परमाणु हो, चाहे तो आकाश हो, चाहे तो आत्मा हो। वस्तु उसे कहते हैं, जिसमें अनन्त गुणों का वास है, रहे हैं। आहाहा! अरे! उन्हें मुनिराज देखते हैं, अवलोकन करते हैं। आहाहा! क्या बात यह!

मुमुक्षु : भेद को देखे तो राग होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह बात नहीं है। यहाँ तो देखते हैं, इतनी बात है। अनन्त गुणों को देखते हैं, बस इतना। गुणरूप आत्मा है तो अनन्त गुण को देखते हैं, बस! भेद डालकर, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : अनन्त हुए तो भेद हुआ न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भेद नहीं है। अनन्त प्रकार के हैं, उनमें एकरूप को देखते हैं। आहाहा! और देखने में भी विकल्प नहीं होवे तो भी अनन्त को देखें, उसमें कोई विरोध

नहीं है। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने लिया है कि वीतरागभाव रहे जब, उससे भले सब देखे। उससे कोई विकल्प हो जाएगा (ऐसा नहीं है)। वह तो ज्ञान का स्वभाव है। ज्ञान अनन्त को जानता है। अनन्त को जानता है, इसलिए विकल्प होता है, ऐसा है? आहाहा! दृष्टि निर्विकल्प है। क्योंकि सम्यग्दर्शन है तो अपनी अस्ति को जानता नहीं, पर की अस्ति को जानता नहीं। वह तो ज्ञान अपनी अस्ति और पर की अस्ति को जानता है। आहाहा! ज्ञान...

यह पंचाध्यायी में लिया है, भाई! यह चर्चा तो हमारे पहले (संवत्) १९९० में वीरजीभाई के साथ हो गयी है। पंचाध्यायी है न? उसमें है। हे महाप्राज्ञ! ऐसा पाठ है। हे महाप्राज्ञ! तू अनन्त-अनन्त गुण और अनन्त-अनन्त पदार्थ को देख। देखने से तुझे विकल्प होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह चर्चा १९९० में हुई थी। ३५ वर्ष पहले वीरजी वकील (के साथ)। हे प्राज्ञ! हे धर्मी ज्ञाता-ज्ञान! तू अनन्त-अनन्त स्व के गुण और अनन्त-अनन्त परपदार्थ को देख, तेरा स्वभाव ऐसा है। उन अनन्त को देखने से तुझे राग होगा, ऐसा है नहीं। स्वरूप-स्वभाव ही ऐसा है। आहाहा! पंचाध्यायी में है। यहाँ तो बहुत बात हो गयी है। बड़ी चर्चा सम्प्रदाय में हुई। जिसमें थे न, उसमें। यह तो (संवत्) १९९१ में यहाँ परिवर्तन हुआ। परन्तु उससे पहले हम तो ढूँढ़िया में भी दिगम्बर शास्त्र पढ़ते थे। समझ में आया? उसमें ऐसा आया है कि हे महाप्राज्ञ! तेरे ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है कि सबको देख। देखने से तुझे राग होगा, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! 'स्व पर प्रकाशक शक्ति हमारी, ताँतें (वचन) भेद भ्रम भारि, ज्ञेय शक्ति द्विविधा परकाशी, निजरूपा पररूपा भासी।' आहाहा! उस ज्ञेयशक्ति में जो ज्ञान है, उस ज्ञान की इतनी ताकत है कि स्व और पर सबको जाने। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दृष्टि का विषय। दृष्टि का विषय तो अभेद अखण्डानन्द है। दृष्टि जो है, वह निर्विकल्प है। श्रद्धा है, वह अपने को नहीं जानती, सम्यग्दर्शन-पर्याय अपने को नहीं जानती, पर को नहीं जानती। अस्ति रखती है। सूक्ष्म बात है, भाई! ज्ञानगुण की ऐसी पर्याय है कि अपने को जानती है और सबको जानती है। आहाहा! इस श्रद्धा-गुण की पर्याय का विषय अखण्ड अभेद है, क्योंकि वह निर्विकल्प पर्याय है। उसमें भेद

है नहीं। विशेष जानना, यह उसमें नहीं। अपने को जानती नहीं तो विशेष को जाने, यह कहाँ आया? समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर की यह वाणी है। आहाहा! अरे! दुनिया ने कहाँ देखा है कि आत्मा कैसा है? आहाहा! 'स्वपर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं (वचन) भेद भ्रम भारि, ज्ञेयशक्ति...' स्व-परप्रकाशी। स्वज्ञेय-परज्ञेय सबको जाने। जानने में कोई अनन्त को जाने, इसलिए राग हो जाता है—ऐसा उसमें नहीं है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, चैतन्यलोक में अनन्त प्रकार का दर्शनीय है, उसका अवलोकन करते हैं;... आहाहा! राग को देखते हैं, यह बात गौण रह गयी। ज्ञानी धर्मात्मा को भी राग आता है। उसे देखते हैं तो परद्रव्यरूप से देखते हैं। यह तो स्वद्रव्यरूप से अनन्त गुण को देखते हैं। ऐसी बात है, भाई! अभी तो बहुत गड़बड़ उठी है। वास्तविक तत्त्व, उस तत्त्व का माहात्म्य क्या है? आहाहा! सन्त उसे कहते हैं, सन्त और मुनिराज (उन्हें कहते हैं) कि अनन्त प्रकार के भिन्न-भिन्न जो अनन्त गुण हैं, चैतन्यलोक में-प्रभु में, आहाहा! प्रभु! यह स्वयं प्रभु है, वे अनन्त गुण दर्शनीय-देखनेयोग्य हैं, उन्हें देखते हैं। देखनेयोग्य, देखना है न? दर्शनीय अर्थात् देखनेयोग्य। उन्हें देखते हैं, यह भाषा है। दर्शनीय है, उसे देखते हैं। अवलोकन करनेयोग्य है, उसका अवलोकन करते हैं। क्या कहा?

यह तो भाई! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव ने जो आत्मा देखा, उस आत्मा की बात है, प्रभु! आहाहा! कहते हैं, भगवान आत्मा भले शरीरप्रमाण हो, परन्तु उसकी ताकत अन्दर में है, वह अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त का अन्त नहीं। इतना अनन्त है कि अनन्त में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त करो तो यह अन्तिम अनन्त है, उसमें नहीं आता। क्या कहा? आत्मा में इतने अनन्त गुण हैं कि अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त को अनन्त गुणा करे, उसकी जो संख्या आवे, उसे अनन्त गुणा करो, उसका वापस अनन्त गुणा करो, अनन्त बार अनन्त गुणा करो तो भी जो अनन्त आवे, उसका अन्त नहीं, इतने गुण आत्मा में हैं। आहाहा! यहाँ तो पाँच-पच्चीस लाख धूल करोड़ मिली, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। धूल मिली। यहाँ तो अनन्त क्रोड़ाक्रोड गुण अन्दर भरे पड़े हैं।

मुमक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल है। ऐई! कहो, अजितभाई! यह हमारे पैसेवाले रहे। अफ्रीका।

तुम्हारे पास बैठे हैं न, पण्डितजी! ये अफ्रीका में रहते हैं। वहाँ अभी मन्दिर हुआ है। मन्दिर का शिलान्यास (हुआ)। ये लोग गृहस्थ हैं। साठ-सत्तर लाख रुपये हैं। ऐसे साठ घर हैं। नैरोबी अफ्रीका में। सब श्वेताम्बर (थे अब) दिगम्बर हो गये हैं। यहाँ से प्लेन में प्रतिमा ले गये हैं। पच्चीस-तीस वर्ष से यहाँ का वाँचन चलता है। ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारह, पन्द्रह लाख के मन्दिर का शिलान्यास हुआ। पन्द्रह लाख। शिलान्यास हुआ। अभी देर लगेगी। आगामी दिसम्बर। निवेदन करने आयेंगे। इस शरीर को ८९ वर्ष हुए। कोमल शरीर परन्तु ८९ वर्ष। ९०-९०। सौ में दस कम। आहार साधारण, चार फुलके। कुछ माल (ताकत) नहीं होती, दिखाव अच्छा लगता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही कहता हूँ न। दिखाव, दिखाव परन्तु माल (ताकत) अन्दर नहीं है। घी लगाते नहीं, शक्कर पाव भर नहीं, गुड़ पाव भर नहीं, पकवान पाव भर नहीं। कोई चीज़ नहीं। पहले से सादी दशा ऐसी है न। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तेरे द्रव्य में इतने गुण हैं, इस चैतन्यलोक में 'लोकयन्ते इति' लोकनेयोग्य 'लोकयन्ते' अर्थात् देखनेयोग्य। आहाहा! चैतन्यलोक में 'लोकयन्ते' अर्थात् देखनेयोग्य। अर्थात् दर्शनीय, देखनेयोग्य हैं, उन्हें देखते हैं। आहाहा! 'लोकयन्ते इति' लोक को देखते हैं, अवलोकते हैं। आहाहा! भाषा, बहिन की भाषा है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा, निमित्त से तो ऐसा ही कहा जाए न। भगवान की दिव्यध्वनि। दिव्यध्वनि जड़ की है। बोले तो निमित्त से कहा जाता है, बाकी दिव्यध्वनि जड़ की है। भगवान की वाणी है दिव्यध्वनि? वाणी आत्मा की है? वाणी तो जड़ है।

यहाँ तो भगवान आत्मा का विकल्प भी उसका नहीं है। वह तो निर्विकल्प अतीन्द्रिय आनन्द चैतन्यलोक अर्थात्? अर्थात् जो लोकयन्ते। देखनेयोग्य है चैतन्यलोक। चैतन्यलोक लोकयन्ते—देखनेयोग्य है। लोकयन्ते इति लोक कहते हैं न? यह चौदह ब्रह्माण्ड को लोक क्यों कहते हैं? लोकयन्ते इति लोक। लोक को जाननेयोग्य है, इसलिए लोक कहते हैं। भगवान ने लोक कहा है न। आहाहा! उसमें छह द्रव्य हैं, लोकयन्ते-देखनेयोग्य हैं,

ऐसे सर्व जगत को देखना, इसलिए लोक कहते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा लोक... आहाहा!

जगत की एक व्याख्या की है, भाई! ज ग त। जिसकी उत्पत्ति, गमन। आनन्द का ज्ञान का गमन जिसमें है, उसे यहाँ जगत कहते हैं। एक हजार आठ नाम हैं न? भगवान के एक हजार आठ नाम हैं। सहस्र (नाम) बनारसीदास में हैं, आदिपुराण में है। एक हजार आठ क्यों? - कि भगवान के शरीर में एक हजार आठ लक्षण थे, तो इन्द्रों ने एक हजार आठ नाम से भगवान की स्तुति की है। पण्डितजी! एक हजार आठ। आदिपुराण में है और आशाधरजी में है, पण्डित आशाधरजी में है। दो, और एक सकलकीर्ति मुनि हो गये हैं, तीन और श्वेताम्बर में एक हेमचन्द्राचार्य हो गये, उसमें भी एक हजार हैं और एक हजार आठ बनारसीदासजी के हिन्दी में हैं। यह अपने हैं। बनारसीदासजी के (लिखे हुए)। एक हजार आठ (नाम हैं)। आहाहा!

वहाँ जगत शब्द लिया है—ज-ग-त। आहाहा! जगत में जो आत्मा आदि वस्तुएँ उत्पन्न हैं, उनका अपने अन्दर गमन करे, उसे जगत कहते हैं। भगवान की स्तुति की है। प्रभु! आप जगत हो। आहाहा! आपमें जो अनन्त गुण परिणमित हुए हैं, उनमें गति हुई है, इसलिए आपको जगत कहा जाता है। आहाहा! आशाधरजी में है। एक हजार आठ नाम हैं न? उसमें एक हजार गुजराती है। उसमें हिन्दी है और उसमें संस्कृत है, मूल में संस्कृत है। आशाधर की स्वयं की टीका है। आशाधर की एक हजार आठ नाम की स्वयं की टीका है। स्वयं ने टीका की है। आहाहा! एक हजार कहाँ ढूँढ़ने जायें? परन्तु जगत शब्द वहाँ पड़ा है।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा.. आहाहा! लोकयन्ते - लोक में योग्य, अवलोकन करनेयोग्य, देखनेयोग्य ऐसे अन्दर अनन्त गुण हैं, उनका अवलोकन करते हैं। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि भी अवलोकन करते हैं परन्तु अन्दर अल्प काल रहते हैं। उनकी निर्विकल्पदशा विशेष नहीं रह सकती और मुनि की तो निर्विकल्पदशा विशेष रह सकती है। छठवें-सातवें गुणस्थान में आते हैं तो भले वहाँ रहें तो पौन सेकेण्ड के अन्दर, परन्तु वहाँ पौन सेकेण्ड में भी असंख्य समय हैं और छठवें में आते हैं तो उससे डबल है। छठे से सातवें में आते हैं तो आधा है। सप्तम गुणस्थान की जितनी अवधि-काल

है, उससे छोटे गुणस्थान का काल दुगुना है। छोटे गुणस्थान का काल है, उससे सातवें का काल आधा है। यह धवल में है। जयधवल में है। जयधवल, धवल, महाधवल सब पुस्तकें पढ़ी हैं न। उसमें है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं ऐसा जो भगवान आत्मा, चैतन्य लोक जिसमें दर्शनीय-देखनेयोग्य जो अनन्त प्रकार के गुण हैं... आहाहा! मुनिराज उनका अवलोकन करते हैं। आहाहा! यह क्या बात! है? वे सब एक हजार आठ नाम में आते हैं। यहाँ यह तो बहिन के वचन हैं। **चैतन्यलोक में अनन्त प्रकार का दर्शनीय है...** दर्शनीय है—ऐसा क्यों कहा? देखनेयोग्य है, उसे देखते हैं, उसका अवलोकन करते हैं—ऐसा कहो या देखते हैं, ऐसा कहो। आहाहा! यह पुस्तक तो सबके पास आ गयी है। पौने सात हजार तो हिन्दी है, सवा तीन हजार गुजराती है। सबको भेंट दिया है। लोग पढ़े तो सही, भाई! मार्ग तो देखो। आहा!

एक दिगम्बर साधु है। जालना में दिगम्बर साधु भव्यसागर है। बीस वर्ष की दीक्षा है। आशुकवि-शीघ्र कवि। कविता बनाते हैं। शीघ्र बनाते हैं। उन्होंने भी जब यहाँ का साहित्य पढ़ा और फिर यह (वचनामृत) पढ़ा... ओहोहो! यहाँ चार सौ पुस्तकें भेजो। एक की कीमत सात रुपये है, तीन में देते हैं। आत्मधर्म के ग्राहकों को भेंट (दी है)। वहाँ चार सौ भेजे हैं। फिर वापस आया कि तीन सौ और भेजो। सात सौ भेजे हैं। बिना पैसे (भेजे हैं)। अरे! प्रचार करो, बापू! यहाँ पैसे की कीमत कहाँ है? धूल की कीमत कहाँ है? यहाँ तो लाखों रुपये आते हैं। आहा! छब्बीस लाख का तो यह मकान (परमागममन्दिर) बना है। छब्बीस लाख। पौने चार लाख अक्षर (उत्कीर्ण किये गये) हैं। अकेला संगमरमर है तो छब्बीस लाख का मकान हुआ है और उद्घाटन के समय छब्बीस हजार लोग आये थे। ग्यारह लाख का वह खर्च था। सैंतालीस लाख का मकान हुआ, परन्तु यहाँ कहाँ कमी है, यहाँ तो लाखों रुपये आते हैं। जगत की चीज़ बननेवाली हो तो बने बिना रहेगी? वह चीज़ कोई बना सकता है?

यहाँ कहते हैं, प्रभु! परन्तु तू वह अवलोकन करनेयोग्य है, वह कर। चैतन्यलोक हम उसे कहते हैं न? तो लोकयन्त्रे इति। देखनेयोग्य अन्दर कोई चीज़ है। क्या है? अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. प्रकार के, अनन्त.. अनन्त.. ऐसे जो दर्शनीय गुण हैं, उन्हें देख। मुनिराज उसका अवलोकन करने में रुके हैं। प्रमाद में आते हैं तो

विकल्प छठवें (गुणस्थान में) आ जाते हैं। आहाहा! ऐसी दशा, बापू! मुनि किसे कहें! आहाहा!

अतीन्द्रिय-आनन्दरूप स्वादिष्ट अमृतभोजन के थाल भरे हैं... आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्दरूप स्वादिष्ट अमृतभोजन के थाल भरे हुए हैं। आहाहा! भगवान आत्मा में अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द... आहाहा! अतीन्द्रिय-आनन्दरूप... अतीन्द्रिय-आनन्दरूप, स्वरूप स्वादिष्ट... स्वाद आनेयोग्य। ऐसे अमृतभोजन के थाल... प्रभु! तेरे घर में अमृत के भोजन के थाल भरे हैं। आहाहा! ज्ञान का आनन्द, दर्शन का आनन्द, कर्ता का आनन्द, कर्म का आनन्द ऐसा अनन्त गुण का आनन्द, अमृतगुणों का अन्दर में थाल भरे हैं। आहाहा! अमृत का स्वाद लेते-लेते चाहे जितना काल जाए, अन्दर से अमृत कम नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? पर्याय में अमृत आनन्द का स्वाद लेते-लेते अनन्त-अनन्त काल जाओ, पर्याय में स्वाद लेते.. लेते.. लेते, तो भी अन्दर में आनन्द कम नहीं होता, इतना आनन्द भरा है। परिपूर्ण आनन्द भरा है। अरे! ऐसा आत्मा! ऐसा आत्मा न जाने, तब तक उसकी दर्शनशुद्धि नहीं। आहाहा! चारित्र तो कहाँ आया? गजब बात है, भाई!

चारित्र तो स्वरूप दृष्टि में आया है, ज्ञान में लोकयन्ते देखने में आया, उसमें रमना, चरना,... चरना अर्थात् रमना। चारित्र अर्थात् चरना अर्थात् रमना अर्थात् आनन्द का भोजन करना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिष्ट भोजन करना। आहाहा! इसका नाम चारित्र है, बापू! चारित्र तो परमेश्वर पद है। आहाहा! यह कहते हैं।

अतीन्द्रिय-आनन्दरूप... अतीन्द्रिय-आनन्दरूप स्वादिष्ट अमृतभोजन के थाल भरे हैं... आहाहा! वह भोजन करते हैं। मुनिराज। धन्य मुनि! बाहर में दिगम्बर होते हैं, मुनि को वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता। अन्तर में महाव्रत आदि के विकल्प हों, परन्तु उससे भिन्न चीज़ प्रभु आत्मा देखते हैं। आहाहा! समझ में आया? बाहर में वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता। वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि माने तो निगोद में जाएगा। आहाहा! परन्तु राग का कण भी अन्दर में-स्वरूप में नहीं है, वे अन्दर दिगम्बर हैं। जिन्हें विकल्परूपी अम्बर नहीं, निर्विकल्प वस्तु पूरी अन्दर पड़ी है। आहाहा! उसके अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करते हैं। थाल भरे हैं... ऐसी बात है, प्रभु! यह आत्मा कौन है? भाई! आहाहा! अतीन्द्रिय

शान्ति, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय श्रद्धा, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय ईश्वरता, प्रभु गुण है न? आत्मा में एक प्रभु नाम का गुण है। प्रभुत्व नाम का गुण है। जिसका प्रताप खण्ड नहीं हो सकता और स्वतन्त्रता से शोभायमान हो, उसे प्रभुत्वगुण कहते हैं। ऐसा प्रभुत्वगुण जिसका प्रताप खण्डित न हो और जिसकी स्वतन्त्रता से शोभित हो, वह प्रभुत्वगुण है। समयसार में पीछे है। ऐसे प्रभुत्वगुण का रूप एक-एक गुण में है। सूक्ष्म बात है।

एक प्रभुत्वगुण है। वह गुण है। एक गुण दूसरे गुण में जाता नहीं परन्तु प्रभुत्वगुण का रूप दूसरे गुण में है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! जैसे आत्मा में ज्ञानगुण है, एक अस्तित्वगुण है, तो अस्तित्वगुण है वह ज्ञानगुण में नहीं जाता परन्तु अस्तित्वगुण का रूप ज्ञानगुण में है। क्या? कि ज्ञान 'है', ऐसा अस्तित्व भी स्वयं में है। वह अस्तित्वगुण के कारण नहीं है। ज्ञानगुण है न? है, है वह स्वयं का अस्तित्वरूप है। अस्तित्वगुण भिन्न है। आहाहा! इसी प्रकार आनन्द है, आनन्द है, उस आनन्द में ही अस्तित्व का रूप 'है', ऐसा है। अस्तित्वगुण उसमें नहीं जाता। आनन्द में भी 'है', वह अस्तित्वगुण का रूप उसमें है। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार चारित्र 'है'। आहाहा! वीतरागस्वभाव चारित्र है। तो 'है' अर्थात् स्वयं से वह है। अस्तित्वगुण के कारण नहीं। आहाहा! इसी प्रकार अनन्त गुण, एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। दीपचन्दजी ने बहुत लिया है। दीपचन्दजी का बनाया हुआ पंचसंग्रह है। दीपचन्दजी ने चिद्विलास बनाया है न? वैसे एक पंचसंग्रह है। सभी पुस्तकें हैं। उसमें पंचसंग्रह में यह लिया है। उसमें सवैया है, उसमें यह लिया है कि एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। चिद्विलास में भी लिया है। चिद्विलास नामक एक ग्रन्थ है। दीपचन्दजी कृत। दीपचन्दजी साधर्मि कृत। आहाहा! अनन्त गुण का अनन्त गुण में (रूप है)। एक-एक आनन्द, ज्ञान में आनन्द, आनन्द में आनन्द, श्रद्धा में आनन्द, ऐसे थाल भरे हैं, कहते हैं। आहाहा! उसका भोजन करते हैं। है?

समरसमय अचिन्त्य दशा है! आहाहा! मुनिराज भावसन्त जो हैं, उनकी समदशा, वीतरागदशा में झूलते हैं। भावलिंगी अनन्त गुण को देखनेयोग्य जो दशा हो गयी... आहाहा! उन्हें **समरसमय अचिन्त्य दशा है!** समता, वीतरागता की अचिन्त्य दशा है। आहाहा!

वीतरागता अर्थात् अन्दर में चारित्रगुण है न? वह वीतरागता है। चारित्रगुण है, वह वीतरागता है। पर्याय में वह वीतरागता प्रगट हुई है और प्रत्येक गुण में चारित्रगुण का रूप है। आहाहा! तो पर्याय में भी जो अनन्त पर्यायें प्रगट हुईं। अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें एक समय में हैं, तो भी यह पर्याय अन्तिम है, ऐसा उसमें नहीं है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. इतने गुणाकार करो तो एक समय की पर्याय का अन्त नहीं है। इतनी एक (समय की) पर्याय की संख्या है। आहाहा! जितने गुण हैं, उतनी पर्यायें हैं। उस पर्याय में आनन्द के थाल भरे हैं, भोगते हैं। आहाहा! और समरसभाव वीतराग है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

जिसे समझने से हित हो, ऐसा अपूर्व सत्य

निमित्त के कारण नैमित्तिक होता है—ऐसा माननेवाला भी पराधीन दृष्टिवाला मिथ्यादृष्टि है। अरे! अखण्ड आत्मा में ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद करके अनुभव करे और उस भेद के आश्रय से लाभ माने तो उसे भी सम्यग्दर्शन नहीं होता, वह भी व्यवहार में ही विमोहित है। भूतार्थस्वभाव में एकाकार दृष्टि करना ही सम्यग्दर्शन की रीति है; वही सत्य दृष्टि है, और वही कल्याण का मार्ग है। जो जीव ऐसी बात का श्रवण करने आया है, वह कुछ ऐसा अपूर्व सत्य समझना चाहता है—जिसके समझने से अपना हित हो, ऐसा सत्य समझना चाहता है। तो ऐसा कौन-सा सत्य है, जिसे समझने से हित हो? वह यहाँ बतलाते हैं। त्रिकाली ज्ञानानन्द आत्मा ही सत्य भूतार्थ है; उस अभेदरूप आत्मा में ज्ञानादि गुणों के भेद करना भी अभूतार्थ है; राग भी अभूतार्थ है और निमित्तादि परवस्तुओं का तो आत्मा में अभाव ही है। एकाकार सहज ज्ञायकस्वभाव की सन्मुखता से निर्विकल्प अनुभव होता है, इसलिये वही भूतार्थ है, वही परमार्थ सत्य है। उसके सिवा भेद की, राग की या पर की सन्मुखता से तो राग की उत्पत्ति होती है, इसलिये वह अभूतार्थ है, उसके सन्मुख देखने से कल्याण नहीं होता।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

कार्तिक शुक्ल -५, रविवार, दिनाङ्क ०५-११-१९७८
वचनामृत-३६४ से ३६६ प्रवचन-१४१

गुरुदेव ने शास्त्रों के गहन रहस्य सुलझाकर सत्य ढूँढ़ निकाला और हमारे सामने स्पष्टरूप से रखा है। हमें कहीं सत्य ढूँढ़ने को जाना नहीं पड़ा। गुरुदेव का कोई अद्भुत प्रताप है। 'आत्मा' शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेव के प्रताप से। 'चैतन्य हूँ', 'ज्ञायक हूँ'—इत्यादि सब गुरुदेव के प्रताप से ही जाना है। भेदज्ञान की बात सुनने को मिलना दुर्लभ थी, उसके बदले उनकी सातिशय वाणी द्वारा उसके हमेशा झरने बह रहे हैं। गुरुदेव मानो हाथ पकड़कर सिखा रहे हैं। स्वयं पुरुषार्थ करके सीख लेने जैसा है। अवसर चूकना योग्य नहीं है ॥३६४॥

बहिन के निर्मानता के वचन हैं। इतने सब वचन हैं। अन्त में कहती हैं, आत्मा (बोलना) इन गुरु से सीखे। अर..र..र..! आत्मा बोलना सीखे हों तो... आहाहा! इनकी बेहद निर्मानता को गजब है। आहाहा! यह शब्द है न अन्दर?—कि हम 'आत्मा' शब्द बोलना सीखे... आहाहा! वह भी गुरुदेव का प्रताप है। आहाहा! यह पढ़ लेना।

काल अनादि है, जीव अनादि है, जीव ने दो प्राप्त नहीं किये—
जिनराजस्वामी और सम्यक्त्व। जिनराजस्वामी मिले परन्तु उन्हें पहिचाना
नहीं, जिससे मिलना, वह न मिलने के बराबर है। अनादि काल से जीव अंतर
में जाता नहीं है और नवीनता प्राप्त नहीं करता; एक के एक विषय का—
शुभाशुभभाव का—पिष्टपोषण करता ही रहता है, थकता नहीं है। अशुभ में
से शुभ में और फिर शुभ में से अशुभ में जाता है। यदि शुभभाव से मुक्ति
मिलती होती, तब तो कब की मिल गई होती! अब, यदि पूर्व में अनन्त बार
किये हुए शुभभाव का विश्वास छोड़कर, जीव अपूर्व नवीन भाव करे—
जिनवरस्वामी द्वारा उपदिष्ट शुद्ध सम्यक् परिणति करे, तो वह अवश्य शाश्वत
सुख को प्राप्त हो ॥३६५ ॥

३६५, काल अनादि है,... एक विचार विशेष सवेरे कहा था कि आत्मा में कोई
ऐसा गुण नहीं कि विकार हो। आहाहा! तथा पुद्गल में कोई ऐसा गुण नहीं कि कर्म की
विकृत अवस्था हो। गजब बात है! ये क्या कहते हैं! भाई आये नहीं? गये होंगे। आहाहा!
क्या कहा? आहाहा! भगवान आत्मा में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण हैं परन्तु
कोई गुण विकृतरूप से हो, ऐसा कोई गुण ही नहीं है। गजब बात है! पर्याय में विकृत होता
है, पर्यायबुद्धि में। आहाहा! ऐसे परमाणु में अनन्त गुण हैं, उतने ही—जीव के जितने,
परन्तु कोई गुण कर्म की पर्यायरूप से परिणमे, ऐसा कोई गुण नहीं है। यह क्या कहते हैं
यह! आहाहा! सवेरे आया था। गजब! आहाहा! ऐई!

भगवान आत्मा गुण का पिण्ड, वह विकृतरूप से परिणमे, ऐसा अनन्त, अनन्त गुण
में से कोई एक गुण नहीं है। यह क्या कहते हैं? बापू! आहाहा! इस पर्याय में विकृत उत्पन्न
हो और स्वभाव के आश्रय में जाये... आहाहा! ऐसे परमाणु में, एक परमाणु में अनन्त..
अनन्त.. अनन्त.. जितने आत्मा के गुण, उतने गुण हैं। आहाहा! यह क्या कहते हैं? प्रभु!
परन्तु ऐसे अनन्त-अनन्त गुण में कोई कर्म की पर्याय से परिणमे, ऐसा कोई गुण नहीं है।
आहाहा! इस पर्यायबुद्धि में... आहाहा! विकृत हो और कर्म की पर्याय में विकृतरूप से

कर्म परिणमे । आहाहा ! द्रव्य और गुण में विकृत होने की वह कोई चीज़ नहीं है । आहाहा ! यह सवेरे सहज कहा था ।

यह भगवान (आत्मा) अकेला गुण का पिण्ड प्रभु और परमाणु भी जड़ के अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण का पिण्ड यह, बापू! सत् भले एक प्रदेश जितना है, परन्तु पदार्थ है न? तो उसमें अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त को गुणा गिनो तो पार नहीं इतने तो एक परमाणु में गुण हैं । ऐसे अनन्त परमाणु में इतने (गुण हैं), परन्तु कोई गुण कर्म की पर्यायरूप से हो, ऐसा कोई गुण नहीं है । यह क्या कहते हैं? आहाहा ! निर्मलरूप से परिणमे, ऐसा गुण जीव में है । आहाहा ! और परमाणु में भी कर्मरूप से न परिणमे, ऐसा परमाणु में गुण है । आहाहा !

उन अनन्त गुण का (पिण्ड)... प्रभु, कहते हैं कि काल अनादि है, जीव अनादि है, जीव ने दो प्राप्त नहीं किये... आहाहा ! जिनराजस्वामी और सम्यक्त्व । ऐसे जो जिनराज, ऐसा आत्मा का स्वरूप और परमाणु का स्वरूप ऐसा वर्णन किया । आहाहा ! और विकृत अवस्था पर्याय में है, कोई गुण नहीं । ऐसी चैतन्य और जड़ के स्वभाव की शक्ति का सामर्थ्य है कि विकृतरूप से न हो । आहाहा !

इसमें भगवान ने कहे हुए जो तत्त्व, उन जिनराजस्वामी को प्राप्त नहीं हुआ । क्यों ? जिनराज का स्वरूप क्या है, वह इसने जाना नहीं । आहाहा ! और सम्यक्त्व । जिनराजस्वामी मिले... अनन्त बार मिले । महाविदेहक्षेत्र के तीर्थकरों के समागम में समवसरण में अनन्त बार गया है, भाई ! आहाहा ! परन्तु उन्हें पहिचाना नहीं,... क्योंकि वे वीतरागस्वरूप हैं, ऐसा ही यह भगवान वीतरागस्वरूप है—ऐसा नहीं पहिचाना; इसलिए उन वीतराग को भी इसने पहिचाना नहीं । आहाहा ! आहाहा !

विकार होना, वह कोई गुण नहीं है । इसलिए ऐसे जो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा... आहाहा ! अनन्त जो गुण हैं, वे निर्मलरूप से परिणम गये हैं, ऐसे जो जिनराज, उन्हें इसने पहिचाना नहीं । आहाहा ! ऐसे तो शास्त्र के जानपने में यह बात आ गयी, परन्तु वह धारणारूप से जाना । आहाहा ! जिनराज और आत्मा दोनों समान हैं । ऐसा चैतन्यस्वरूप भगवान को जाने तो जिनराज के स्वरूप को जाना कहा जाए । आहाहा !

वे जिनवरस्वामी मिले । महाविदेहक्षेत्र में अनन्त पुद्गलपरावर्तन मनुष्यपने के

किये हैं। यह क्या कहा? एक अवतार में ऐसे-ऐसे असंख्य। एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में भी अनन्त अवतार होते हैं। ऐसे-ऐसे एक पुद्गलपरावर्तन में अनन्तगुने और ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन महाविदेह में मनुष्य हुआ है और अनन्त बार इतनी बार भले कितनी बार भले न गया हो परन्तु अनन्त-अनन्त बार तो समवसरण में गया है परन्तु उन्हें पहिचाना नहीं। वस्तु विकाररहित है द्रव्य और गुण तथा विकाररहित दशा उनकी हो गयी है। आहाहा! इस प्रकार अन्तर से पहिचाना नहीं। आहाहा! जिससे मिलना, वह न मिलने के बराबर है। आहाहा!

अनादि काल से जीव अंतर में जाता नहीं है... यह बात है। जो द्रव्य और गुण जो निर्मल है, उनका स्वभाव ही निर्मल है। ऐसा जो स्वभाव निर्मल-शुद्ध-पवित्र द्रव्य और निर्मल उसके गुण, ऐसे गुण में अन्दर जाता नहीं। आहाहा! ऐसे गुण और द्रव्य जो निर्मल है, उनके सन्मुख हुआ ही नहीं। आहाहा! अंतर में जाता नहीं है... अर्थात् यह। पर्याय में ही इसकी रमणता है, जिस पर्याय में विकार है और उसके द्रव्य-गुण में विकार जरा भी नहीं है। आहाहा! पर्याय में ही इसकी क्रीड़ा है परन्तु अन्तर पर्याय के पीछे महाप्रभु, निर्मलानन्द प्रभु (विराजमान है), उसमें यह जाता नहीं। निज घर निर्मल है, वहाँ जाता नहीं। पर्याय-विकृत अवस्था है, वह निज घर नहीं है। आहाहा!

अनादि काल से जीव अंतर में जाता नहीं है... आहाहा! वैराग्य के (प्रसंग) देखो न! आज लड़का गुजर गया। आहाहा! तीस वर्ष की उम्र। हमेशा आवे वहाँ छोटा लड़का लेकर। आहाहा! सपना हो गया। देह की स्थिति थी, इतनी रही और छूट गयी। आहाहा! एकदम ऐसा जवान, आहाहा! उसकी माँ को, पत्नी को बेचारी को दुःख (होवे) परन्तु दुःख होवे तो भी क्या? इससे कहीं चीज़ आनेवाली है फिर से? आहाहा! जहाँ दशा भवान्तर हो गयी। ऐसे जिसकी विकार से विकारान्तर दशा परमात्मा की हो गयी, वह फिर से विकार होनेवाला है? आहाहा!

ऐसे जिनराज परमात्मा, जैसे गुण निर्मल है, उस प्रकार ही परिणमन निर्मल हो गया। विकृत तो ऊपरी चीज़ थी और वह भी सीमा अर्थात् मर्यादावाली वस्तु थी। और यह गुण और द्रव्य है, (वह) तो अमर्यादित चीज़ है। आहाहा! उसके आश्रय से जो पर्याय होती है, (वह) असीम-मर्यादारहित (होती है)। अमाप.. अमाप.. अमाप.. आनन्द

अमाप, ज्ञान अमाप, शान्ति अमाप, स्वच्छता अमाप। आहाहा! जिनराज की ऐसी दशा हुई, उसे अन्दर में जाकर स्वयं को पहिचाना नहीं; इसलिए उन्हें भी पहिचाना नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा तो पूर्णानन्दस्वरूप और पूर्ण आनन्दरूप होना, यही उसका स्वरूप है। आहाहा! उसके गुण में कोई विकृत होना, ऐसा स्वरूप नहीं है। अर्थात् क्या हुआ यह? आहाहा! वह तो ऊपर-ऊपर विकृत अवस्था पर्याय में हुई, वह कहीं मूल द्रव्य और गुण से नहीं है। आहाहा! शशीभाई! ऐसी बात है। प्रभु! तेरी प्रभुता तो निर्मल है न, नाथ! आहाहा! तू द्रव्य से निर्मल और अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... को अनन्त को अनन्त बार कर डालो तो भी अन्तिम अनन्त नहीं, इतने सब तो प्रभु तुझमें निर्मल गुण हैं, प्रभु! हों! आहाहा!

वह (विकृत) पर्याय गुण से नहीं परिणमी है, विकृत पर्याय, पर्याय से परिणमी है। आहाहा! तू उस पर्याय के लक्ष्य को छोड़कर, प्रभु! जहाँ तेरा घर निर्मल से भरा हुआ है। आहाहा! वहाँ देख न! आहाहा! कल आया नहीं था? आया था न पहले? चैतन्यलोक, नहीं? चैतन्यलोक आया था न? कहाँ आया?

३६३, चैतन्यलोक में अनन्त प्रकार का दर्शनीय है... कल हिन्दी चला था, नहीं? आहाहा! चैतन्यलोक में निजऋद्धि से भरपूर भगवान आत्मा। आहाहा! जिसकी ऋद्धि के गुण की ऋद्धि की संख्या का पार नहीं होता। आहाहा! ऐसे अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुणों की निर्मलता के आश्रय से भरपूर प्रभु, उस चैतन्यमहल में सन्त निवास करते हैं। आहाहा! पर्याय में जो मिथ्याबुद्धि से निवास था, उसे छोड़कर सन्त चैतन्यमहल में निवास करते हैं। आहाहा! चैतन्यलोक में तो अनन्त प्रकार का दर्शनीय है। उसमें दर्शनीय शब्द था, हिन्दी में। चैतन्यलोक में तो अनन्त प्रकार का दर्शनीय, दर्शनीय अर्थात् देखनेयोग्य है। ऐसे अनन्त प्रकार का दर्शनीय, देखनेयोग्य अन्दर है, उसे देखता नहीं। आहाहा! उसका अवलोकन मुनि करते हैं। आहाहा! अन्तर में अनन्त प्रकार का, ऐसा आया था न? अन्दर (अनन्त) प्रकार का है न? कल आया था। अनन्त प्रकार का दर्शनीय-देखनेयोग्य, देखने लायक को देखता नहीं, उसे देखता नहीं। सन्त उसे देखते हैं और उसे देखते हैं। आहाहा! देखनेवाले को देखता नहीं। देखनेवाला यह और यह और यह.. यह सब (ऐसा देखता है)। क्या प्रभु का मार्ग! आहाहा!

उसका अवलोकन करते हैं; अतीन्द्रिय-आनन्दरूप स्वादिष्ट अमृतभोजन के थाल भरे हैं... अनन्त गुणों में प्रत्येक गुण में आनन्द है। आहाहा! आनन्द नाम का गुण है, परन्तु प्रत्येक गुण में उसका रूप है। ज्ञानानन्द, श्रद्धानन्द, चारित्र आनन्द, अस्तित्व आनन्द, प्रमेयत्व आनन्द, वस्तुत्व आनन्द, आहाहा! कर्ता आनन्द, कर्म आनन्द, करण आनन्द, ऐसे अनन्त-अनन्त आनन्द के थाल भरे हैं। आहाहा! ऐसी बातें! आहाहा! उस भोजन को सन्त जीमते हैं।

समरसमय अचिन्त्य दशा है! आहाहा! ऐसी स्थिति में कहते हैं, अन्दर में अनादि से जाता नहीं। पर्याय बाह्य में ही बाह्य में भटका करती है। यह है और यह है और यह है और यह है। और नवीनता प्राप्त नहीं करता;... आहाहा! आश्चर्यकारी चैतन्य-चमत्कारी वस्तु आनन्द से भरपूर और प्रत्येक गुण आनन्द से भरपूर। आहाहा! एक आनन्द का आनन्द नहीं परन्तु ज्ञान का आनन्द, दर्शन का आनन्द, अस्तित्व का आनन्द, वस्तुत्व का आनन्द। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के थाल भरे हैं, कहते हैं। आहाहा! भगवान! तू वहाँ जाता नहीं।

तू नवीनता प्राप्त नहीं करता;... आहाहा! एक के एक विषय का... अनादि से एक के एक विषय का-पर का। आहाहा! शुभाशुभभाव का... शुभ और अशुभ, शुभ और अशुभ, शुभ और अशुभ। पिष्टपोषण करता ही रहता है,... आहाहा! ऐसी बात है। शुभाशुभभाव का—पिष्टपोषण... अशुभ अनन्त बार किये, वापस शुभ अनन्त बार किये और अशुभ ऐसे-ऐसे पिष्टपोषण किया ही करता है, किया और किया ही करता है। आहाहा! अरे! जिन्दगी जाती है, बापू! कहाँ कुटुम्ब और कहाँ शरीर? कहाँ भाई और कहाँ पिता... आहाहा! मुनिराज तो कहते हैं कि 'चलो सखी वहाँ अपन जायें, जहाँ अपना न कोई।' आहाहा! सियार, जीवित शरीर को काटे, मरते रोवे न कोई। आहाहा! ऐसा जो निजघर देखने में कहाँ जायें गिरिगुफा में? आहाहा! हम वहाँ हमें जीवित कोई जाने नहीं, मरते कोई रोवे नहीं। आहाहा! ऐसा नवीनपना प्रभु! तूने किया नहीं, कहते हैं। आहाहा! किंचित्... किंचित् ऐसे, ऐसे सहारा आयेगा इसके कारण, इसके कारण, इसके कारण। आहाहा! बाहर और बाहर में वृत्ति को भ्रमाया है। आहाहा!

पिष्टपेषण-दाने का आटा बनाया हो, उस आटे को आटा किया वापस। आटे को

पीसा, आटे को पीसा। आहाहा! दाने का आटा बनाया और आटे को वापस खांडवी में पीसा परन्तु क्या है? आहाहा! यह तो किये हुए काम वह के वह हैं। आहाहा! पर का करने की यहाँ बात नहीं है, मात्र शुभाशुभभाव का पिष्टपेषण किया करता है। आहाहा! दले हुए को दलता है। आहाहा! थकता नहीं है। हीराभाई गये, नहीं? ठीक। थकता नहीं। आहाहा! यह तो शुभ में से अशुभ और अशुभ में से शुभ, यह तो ऐसा का ऐसा कर्मचक्र (चलता है)। भगवान में तो यह है ही नहीं। विकृत अवस्था ही उसके द्रव्य में और गुण में नहीं है। आहाहा!

यह शुभाशुभभाव जो स्वभाव में नहीं, द्रव्य में नहीं, उन्हें पिष्टपेषण किया ही करता है, बस, थकान नहीं लगती। अशुभ में से शुभ में... कोई हिंसा, झूठ, चोरी के परिणाम छोड़े तो दया, दान, भक्ति, पूजा के भाव (किये)। आहाहा! लोगों को यह काम कठिन पड़ता है। अशुभ में से शुभ में और फिर शुभ में से अशुभ में जाता है। क्योंकि दूसरा तो है नहीं इसे। अन्तर में वस्तु है, उसमें तो जाता नहीं। जहाँ निर्मलानन्द परमात्मा विराजता है। आहाहा! अनन्त आनन्द के थाल से भरा हुआ भगवान, वहाँ भोजन करने जाता नहीं और इसका भोजन-शुभाशुभभाव का करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपके जैसे गुरु मिले नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इसने पहिचाना नहीं, कहते हैं। भगवान मिले थे, परन्तु पहिचाना नहीं था, कहा नहीं? आहाहा! खिला हुआ फूल है। है? ऐसे केवलज्ञान से खिला हुआ आत्मा भगवान अन्दर है। कहीं से यह आया है। वृक्ष छोटा है, फूल ऐसा बड़ा खिला है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण (भरे हैं), अन्दर में जाये तो वे सब खिल निकलें, ऐसे हैं। आहाहा! इतने अनन्त-अनन्त हैं, वे सब खिल निकलें, ऐसे हैं। अन्तर सम्यग्दर्शन होने पर भी जितने अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. हैं, उन सबके अंकुर अन्दर फूटते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

बीस-बीस वर्ष के, पच्चीस-पच्चीस वर्ष के देह छूटकर चले जाते हैं। कोई शरण नहीं, कहाँ जाते हैं, कहाँ? आहाहा! अरे रे! वापस उसे मनुष्यभव कब मिले? ऐसी दुर्लभ

चीज़ तुझे मिली, प्रभु! आहाहा! मनुष्य का शरीर मिला, ऐसा। त्रसपना भी चिन्तामणि जैसा कहा तो मनुष्यपने की क्या बात! वह भी मनुष्यपना कहते किसे हैं? ज्ञायति इति मनुष्य। अपना स्वरूप जो है, उसे जाने तो उसे मनुष्य कहते हैं। आहाहा! यह तो पूरे दिन पाप का धन्धा-पानी पाप के पोटले किया ही करता है। पूरे दिन। उसमें से कदाचित् निवृत्त होकर कुछ यह दया, दान, व्रत, भक्ति, तप में आया, भगवान की पूजा (की), मन्दिर बनाये, वह शुभ में आया, शुभ में से छूटकर और अशुभ में आया। शुभ में तो कुछ थोड़ा काल है। आहाहा! ऐसे तो नरक के अशुभभाव से स्वर्ग के शुभभाव अनन्त बार किये हैं। अनन्त भव किये हैं। वह तो निगोद के भव और तिर्यच के निगोद के भव की अपेक्षा से शुभभाव थोड़े किये, परन्तु नरक के जितने अशुभभाव किये, उससे अनन्त गुणे शुभभाव किये हैं कि जिससे नरक का एक भव और स्वर्ग के अनन्त (भव किये हैं)। आहाहा! ऐसा पिष्टपेषण अनन्त बार किया, प्रभु! आहाहा!

अरे, अशुभ में से शुभ में और फिर शुभ में से अशुभ में जाता है। अब ऐसा कहकर क्या कहना है? कि यदि शुभभाव से मुक्ति मिलती होती,... अशुभ में से शुभ में अनन्त बार आया है। ऐसा तो फूलचन्दजी ने निकाला है न? कि निगोद के जीव में भी घड़ीक में शुभ और घड़ीक में अशुभ, पहले शुभ और अशुभ, शुभ और अशुभ हुआ ही करते हैं। आहाहा! तो वह शुभ भी अनन्त बार हुए हैं। अशुभ भी अनन्त बार हुए हैं। आहाहा! इस शुभ से यदि मुक्ति होती हो तो अनन्त बार शुभ हुआ है। ऐसा शुभ हुआ है कि नौवें ग्रैवेयक गया, ऐसा शुभ अनन्त बार हुआ है। आहाहा! निगोद में शुभ तो मुश्किल से कोई विशेष शुभ होवे तो कदाचित् मनुष्य आदि हो। नहीं तो वहाँ तो शुभ होवे ऐसा कि उसमें पर्याप्तपना और ऐसा मिले निगोद में मरकर निगोद में जाये, निगोद में मरकर (निगोद में जन्मे)। आहाहा! उसे शुभभाव तो होता है, तथापि अनादि से निगोद के जीव, निगोद में से त्रस नहीं होते। उन्हें शुभ और अशुभ होता है, तथापि उस शुभ के फलरूप से उन्हें पर्याप्तपना आदि मिलता है। आहाहा! तो ऐसे शुभ को भी अनन्त बार किया, अशुभ को अनन्त बार किया। आहाहा!

यदि शुभ से मुक्ति होती होवे तो वहाँ तो शुभ हुआ, उसमें भले मुक्ति न हो, परन्तु मनुष्यपने में आकर नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार, अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये हैं। जैसे

भगवान के पास भी अनन्त बार गया, अनन्त परावर्तन में वहाँ। ऐसे इकतीस सागर की नौवें ग्रैवेयक की स्थिति, शुभभाव से अनन्त बार की है, जो शुभ अभी इतना है नहीं। आहाहा! ऐसे शुभ से यदि मुक्ति होती होवे तो हो जाती इसकी। यह इसकी वह की वह दशा है।

शुभ भाव से मुक्ति मिलती होती, तब तो कब की मिल गई होती! अब यह कहते हैं, अभी शुभ भाव ही होता है। अरे! प्रभु! शुभभाव तो विकृत पर्याय की अवस्था, जिसमें गुण और द्रव्य कारण नहीं है। आहाहा! बस, यही हो? द्रव्य, गुण नहीं? और द्रव्य-गुण का स्वीकार करना, वह दशा नहीं? आहाहा! पंचम काल के श्रोताओं को भी द्रव्य-गुण की पर्याय की शुद्धता को प्राप्त करते हैं। आहाहा! और उन्हें ऐसा कहना कि अभी शुभयोग ही है। प्रभु! ऐसा नहीं है, भाई! परमेश्वर परम.. परम.. परम.. ईश्वर है, भाई! परम और म और ईश्वर का अर्थ किया है। परमेश्वर। प=परमेष्ठी। म=लक्ष्मी। अनन्त गुण की लक्ष्मी है, ऐसा भगवान आत्मा केवली को परमेश्वर कहा जाता है। यहाँ भी प्रभु! परमेश्वर आया नहीं, ३८ गाथा में? अपने परमेश्वर को मैं भूल गया था। आहाहा! पर-उत्कृष्ट लक्ष्मी, म—ऐसी ईश्वरता का धनी प्रभु आत्मा। आहाहा! जैसे परमेश्वर हुए, वैसा ही मेरा स्वरूप परमेश्वर है। आहाहा! इसलिए उसे भगवान कहा, परमेश्वर कहा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अरे! **शुभभाव से मुक्ति मिलती होती, तब तो कब की मिल गई होती!** अब, यदि पूर्व में अनन्त बार किये हुए शुभभाव का विश्वास छोड़कर,... परलक्ष्मी पर्याय में हुए शुभभाव का विश्वास (होवे) कि इसमें से कुछ होगा, इसमें से कुछ होगा—ऐसा विश्वास छोड़ दे। आहाहा! यह तो कुछ बात है! क्योंकि जिसके द्रव्य-गुण में कोई विकृत हो, ऐसा गुण-द्रव्य नहीं है। इसकी विकृत पर्याय में हुआ, उसका विश्वास छोड़ दे। जिसमें द्रव्य और गुण शुद्ध निर्मल आनन्द का नाथ विद्यमान है, आहाहा! उसका श्रद्धा में विश्वास ले। आहाहा!

शुभभाव का विश्वास छोड़कर, जीव अपूर्व नवीन भाव करे... आहाहा! अपूर्व क्या? पूर्व में जो हुए, हुए, वे नहीं। अपूर्व नवीन भाव है। वे तो पूर्व में अनन्त बार शुभाशुभभाव हुए। अपूर्व नहीं तथा नवीन नहीं। पूर्व में हुए और वे तो पुराने। आहाहा! **अपूर्व नवीन भाव करे...** अनन्त-अनन्त निर्मल गुण से भरपूर भगवान के सन्मुख होकर

पूर्वापर अनन्त बार शुभाशुभभाव हुए, उन्हें छोड़कर और स्वभाव के आश्रय से नवीन करे, शुद्धता प्रगट करे। आहाहा!

जीव अपूर्व नवीन भाव करे—जिनवरस्वामी द्वारा उपदिष्ट शुद्ध सम्यक् परिणति करे,... भगवान ने तो यह कहा है। वीतराग ने-परमात्मा ने तो वीतरागता का तात्पर्य बताया है और वीतरागता का तात्पर्य तो द्रव्य के आश्रय से होता है। स्व के आश्रय से, स्व में नजर करे वह वीतरागता होती है। आहाहा! चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है और यह कहते हैं कि इस अनुयोग में ऐसा है और इस अनुयोग में (ऐसा है)। भाई! सब अनुयोग में तात्पर्य तो वीतरागता है, भाई! आहाहा! कर्म के निमित्त से विकार हुआ, ऐसा बतलाया, वह उतना वहाँ रुकने के लिए नहीं। उसका तात्पर्य उसे छोड़कर स्वभाव का आश्रय ले तो तुझे वीतरागता होगी। इसके लिए विकार तुझमें है, तूने किया है, कर्म निमित्तमात्र है, ऐसा बतलाने में वीतरागता का अन्दर हेतु है। इतना बतलाकर वहाँ रुकाने का हेतु नहीं है। आहाहा!

भगवान को दयालु कहा है। उनसे दया दी है, इस आत्मा की दया। आहाहा! भाई! तू जितना बड़ा, जितना है, वहाँ नजर कर तो तेरी दया कहलाये परन्तु राग और पर्याय जो आत्मा में नहीं है, वहाँ नजर करे तो तेरी हिंसा कहलाये। आहाहा! समझ में आया? वहाँ गये होंगे, वहाँ गये थे तुम? आहाहा! यह स्थिति, देखो! यह दशा। इसके बेचारी महिला को दुःख हुआ परन्तु वह क्या है? संयोग का दुःख नहीं है। एक मान्यता है कि मेरा सुविधा देनेवाला था। आहाहा! वह कहाँ मर गया, इसकी कहाँ पड़ी है। आहाहा! अरे, उसकी गति कहाँ हुई है? हमें सम्हालती थी, वह गयी, उसे रोता है। प्रभु! यह तू क्या करता है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जिनवरस्वामी ने उपदेश किया, इसलिए कि जिनवरस्वामी ने जो उपदेश किया है, उसमें वीतरागता प्रगट करने की बात की है और वीतरागता प्रगट हो, वह द्रव्य के आश्रय से होती है; इसलिए द्रव्य का आश्रय लेना, वह वीतराग की आज्ञा है। वह उनका उपदेश है। आहाहा! 'जिनवचसि रमन्ते' आता है न? (समयसार कलश ४)। आता है न? जिनवचन में रमता है अर्थात् क्या? तब वे ऐसा कहते हैं जिनवचन निश्चय और व्यवहार के हैं, उन दो में रमता है। परन्तु दो में रमा नहीं जाता। दूध को दही में नहीं

डाला जाता। दूध और दही, दूध में और दही में दोनों में हाथ डालना। यह जिनवर ने कहा हुआ जीवद्रव्य जो शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसे उपादेयरूप से वीतराग की वाणी में आया है। आहाहा! उसमें रमना, यह उनका उपदेश है। है? जिनवरस्वामी ने उपदेश की हुई यह बात जिनवर के अलावा कहीं नहीं होती। आहाहा!

जिनवरस्वामी द्वारा उपदिष्ट शुद्ध सम्यक् परिणति करे,... आहाहा! अर्थात् कि शुद्धपरिणति - पर्याय को प्रगट करे। वस्तु में और गुण में तो शुद्धता है, अब पर्याय में जो शुभ-अशुभ होते हैं, उसे छोड़कर अन्तर की शुद्धता के आश्रय से सम्यक् परिणति करे, यह जिनवर की आज्ञा और हुकम है। जिनवर का चार अनुयोग का उपदेश वह बतलाता है। आहाहा! उसमें भी आता है न? छहढाला में।

लाख बात की बात यही, निश्चय उर आणो;
छोड़ी सकल जगद्वंद्व-फंद, निज आतम उर ध्याओ।

आहाहा! द्वंद्व अर्थात् दोपना / द्वैतपना भी छोड़ दे कि यह गुणी है और यह गुण है, ऐसा द्वैतपना भी छोड़ दे। अद्वैत। वह अद्वैत नहीं, हों! भगवान ने अद्वैत कहा है। एक दशा को प्राप्त करके भिन्नता छोड़ दी, इसलिए प्रभु आप अद्वैत हैं। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा राग जो 'एकड़े एक और बिगड़े दो', दूसरा राग है, वह बिगड़ता है, उसे छोड़कर एकड़े एक करे, एक स्वरूप है, उसे (उपादेय करे)। आहाहा! ...यह जिनवरदेव की आज्ञा है, यह जिनवर का उपदेशित मार्ग है। आहाहा! भले उसमें राग की बात की हो, व्रत यह और वैसे... परन्तु उन सबका तात्पर्य तो वीतरागता प्रगट करना, यह बात है। उससे (व्रतादि से वीतरागता) नहीं है। आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव... भाई! जन्म-मरण करके अनन्त-अनन्त (भव) किये, प्रभु! आहाहा! आहाहा! पाँच-दस कोस चले, थकान लगे तो विश्राम ले और इतने-इतने अनन्त भव किये परन्तु तुझे विश्राम लेने की कदर भी नहीं होती? आहाहा! पाँच, पाँच, छह कोस चला हो...

एक बार वहाँ हमारे हुआ था। हमारे खुशालभाई और शिवलालभाई उगाही करने को गये थे। पैसा धीरे-धीरे मिले और फिर आये नहीं। एक, दो दिन में इसलिए शंका पड़ गयी। क्या हुआ होगा? गाँव बहुत दूर था। गाड़ी वहाँ जाए नहीं, गाड़ी तैयार की। चलकर गये। उसमें बीच में थोड़े से छह कोस चलकर गये, वहाँ मिले गाड़ी-वाड़ी मिले कहीं से।

उसे जाना था, वह अनजाना। वहाँ वे मिले, मिले परन्तु थकान लग गयी। बहुत छोटी उम्र की बातें हैं। (संवत्) १९६५-६६ की होगी। उसमें बीच में एक गाँव आया, वहाँ हमारा ग्राहक था। महिला, विधवा महिला थी परन्तु ग्राहक। उसने कहा यहाँ रुको अभी। थकान उतारने को रहे। विधवा महिला थी, परन्तु हमारी ग्राहक थी। उसने हमें देखा। अरे! तुम यहाँ कहाँ से? भाई! वे भाई दो दिन से कहीं गये? गाँव में क्या हुआ? कुछ खबर नहीं। शिवलालभाई का साला था और मैं, दोनों उनके पीछे गये थे। यह तो १९६५-६६ की बात है। परन्तु थकान लगी, इसलिए जो हमारी ग्राहक विधवा महिला ने देखा। अरे! तुम कहाँ सेठ? हमको तो सेठ कहे न! थकान लगी, थकान। यहाँ रह जाओ, सवेरे जाना, सवेरे।

इसी प्रकार अभी कहते हैं, अनन्त काल से थकान लगी है(?) आहाहा! उसे सर्वज्ञदेव का विश्राम कहते हैं, सर्वज्ञ कहते हैं, विश्राम ले न प्रभु तेरे स्वभाव में। आहाहा! यह विश्राम ले, वह तुझे ठीक पड़ेगा, तेरी थकान उतर जाएगी। आहाहा! **जिनवरस्वामी द्वारा उपदिष्ट शुद्ध सम्यक् परिणति करे,...** आहाहा! भाषा भले सादी हो, बापू! पुरुषार्थ कोई अलौकिक है। आहाहा! उसकी श्रद्धा में तो निर्णय करे, भले परलक्षी श्रद्धा (होवे), परन्तु शुद्ध चैतन्यमूर्ति परमानन्द का नाथ भगवान, उसकी शुद्ध परिणति प्रगट करना, वह वस्तु है। आहाहा! बाकी शुभाशुभभाव होते हैं, वे तो संसार परिभ्रमण का कारण है। आहाहा!

शुद्ध सम्यक् परिणति करे, तो वह अवश्य शाश्वत सुख को प्राप्त हो। भव के, भव के भाव दुःखरूप, वे तो क्षणिक... क्षणिक... क्षणिक... क्षणिक... वेदन किये। यह तो अब शाश्वत् सुख को प्राप्त करे। अतीन्द्रिय आनन्द, अनन्त-अनन्त समाधि सुख में, 'अनन्त दर्शन-ज्ञानसहित' अरे! अनन्त गुण की प्रत्येक की व्यक्त पर्याय पूर्ण निर्मल ऐसे उस सुख को प्राप्त करे। निज स्वभाव की परिणति प्रगट करे तो (प्राप्त करे)। आहाहा! वह कोई राग से या शुभ से हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसे राग की मन्दता की भी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि वह पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध जो परिपूर्ण भरपूर है, उसका स्वीकार होने में राग की मन्दता की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

यह जैनधर्म, यह दिगम्बर धर्म। आहाहा! जिसे विकल्प की भी अपेक्षा नहीं कि भाई! यह विकल्प मैं शुद्ध हूँ, परिपूर्ण हूँ, ऐसा विकल्प आवे तो फिर शुद्ध हो। आहाहा! शुद्ध है, फिर प्रश्न क्या? उसका आश्रय ले तो शुद्धपरिणति होती ही है। आहाहा! ऐसी बातें

हैं। बाहर के उत्साह का रस छोड़ दे। आहाहा! शरीर कुछ ठीक हुआ और निरोग हुआ और स्त्री मिली और पैसा मिला और यह मिले, यह पाप के-श्मशान के सडका है। आहाहा! भाई! इसमें तूने प्रभु को मार डाला, हों! आहाहा!

यह वीतराग तीर्थकर की वाणी से भ्रान्ति नष्ट हो, ऐसी है। उन भगवान ने ऐसी वाणी कही है, उसे समझे तो भ्रान्ति का नाश हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! तीन लोक के नाथ के अतिरिक्त कोई जगत में सच्चा-सत्य बात कहनेवाला कोई है ही नहीं। आहाहा! ऐसे जिनवर परमात्मा की आज्ञा है, उसे अवश्य प्राप्त कर। तू शाश्वत सुख को प्राप्त हो। आहाहा! ३६५ (बोल पूरा हुआ)।

जिसने आत्मा को पहिचाना है, अनुभव किया है, उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है, प्रत्येक पर्याय में शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है। विविध शुभभाव आये, तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता और वे भाव मुख्यता नहीं पाते।

मुनिराज को पंचाचार, व्रत, नियम, जिनभक्ति इत्यादि सर्व शुभभावों के समय भेदज्ञान की धारा, स्वरूप की शुद्ध चारित्रदशा निरन्तर चलती ही रहती है। शुभभाव नीचे ही रहते हैं; आत्मा ऊँचा का ऊँचा ही— ऊर्ध्व ही— रहता है। सब कुछ पीछे रह जाता है, आगे एक शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है ॥३६६॥

३६६, जिसने आत्मा को पहिचाना है,... आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु निर्मलानन्द सहजात्मस्वरूप (है)। पर्याय तो कृत्रिम होती है। कृत्रिम अर्थात् की हुई होती है। पर्याय, पर्याय से की हुई। वस्तु है, वह की हुई नहीं, वह तो है ही ऐसी की ऐसी। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा है। है, उसे पहिचाना है, अनुभव किया है, उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है,... चाहे जिस प्रसंग में उसे शुभ-अशुभभाव आये हों, परन्तु भगवान ही वहाँ समीप में, दृष्टि में समीप में वर्तता है। आहाहा! अन्तर में ध्रुव में दृष्टि स्थिर हो गयी है, इसलिए चाहे जिस प्रसंग में भी उस तल में से दृष्टि हटती नहीं। आहाहा! ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती है। क्या हो? भाई! आहाहा! वह आ गया है, नहीं?

तेरे मरण से तेरी माता को रुदन आया है, बापू! आहाहा! उससे आँसू के समुद्र भर जायें, इतनी बार तेरे मरण से तेरी माता रोयी है। आहाहा! अब तो यह रुदन हो, इसे छोड़ दे न। आहाहा! यह कोई नवीन चीज़ नहीं है। आहाहा!

अभी एक सुना था। वहाँ पति-पत्नी की मण्डप में शादी थी। वहाँ नीचे सर्प काटा, वहाँ मर गया। वहीं का वहीं मर गया। विवाह चल रहा था। हाय.. हाय..! परन्तु वह तो सयम है वहाँ, चाहे जिस जगह आवे, उसमें क्या? आहाहा! यह तो ऐसा है परन्तु सर्प न काटा हो और हार्टफेल हो जाए वह तो। आहाहा! उत्साह का रस हो, वहाँ और उसमें पाँच-दस लाख, पचास लाख, करोड़, दो करोड़ की पूँजी और पाँच लाख खर्च किये हों और 'मैं चौड़ा और गली सकरी' हर्ष.. हर्ष.. हर्ष.. हर्ष.. आहाहा! उसमें मृत्यु हो, देह छूट जाये। वह कोई नवीन चीज़ नहीं है। आहाहा! और वह अकस्मात् भी नहीं है। वह पर्याय उस समय में ही छूटनेवाली है, बापू! आहाहा!

अब तो एक बार कहते हैं, आत्मा को पहिचान और उसका समीपपना तुझे सदा रहेगा। आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान में चारित्र में आत्मा समीप वर्तता है। अर्थात् कि वहाँ राग का समीपपना नहीं है। आहाहा! ऐसी गाथा तो उसमें भी आती है श्वेताम्बर में, परन्तु उसका अर्थ समझे नहीं। 'अनुयोगद्वार' में आती है। आहाहा!

जिसने आत्मा को पहिचाना है, अनुभव किया है, उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है,.... 'ही' एकान्त है। आहाहा! रागादि हो, तथापि उनका समीपपना नहीं है। आहाहा! उस धारा को ज्ञानधारा दूर रखती है। समझ में आया? ऐसा मार्ग! आहाहा! प्रत्येक पर्याय में शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है। प्रत्येक पर्याय के काल में भगवान् ज्ञायकस्वरूप ज्ञात हुआ है, पहिचान में आया है, वह प्रत्येक पर्याय में शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है। पर्याय आदि गौण हो जाते हैं, दृष्टि में वे रहते नहीं। आहाहा! अनुभव हुआ, उसे भी देखने के लिए दृष्टि निवृत्त नहीं है। आहाहा! क्योंकि पर्याय है। आहाहा! प्रत्येक पर्याय में शुद्धात्म द्रव्य ही मुख्य रहता है। 'ही' है, हों! यह एकान्त नहीं? सम्यक् एकान्त ही है, एकान्त ही है। एक अन्त अर्थात् द्रव्यस्वभाव का जो स्वभावधर्म, वह एक ही अन्त दृष्टि में है। आहाहा!

विविध शुभभाव आयें... धर्मी को भी विविध प्रकार के शुभभाव होते हैं। तब

कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता... शरीर का नाम याद है तो नींद में विस्मृत हो जाता है ? नींद में कोई कहे कि ऐ... पोपट । हं.. परन्तु कहाँ था कहाँ ? पोपट तो शरीर का नाम रखा । वहाँ उड़ा पोपट के नाम से । आहाहा ! इसी प्रकार धर्मी जीव को शुभभाव आवें, तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता... वह तो शुद्धात्मा ही स्मरण में है । आहाहा ! मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा परिणमन हो गया है, वह परिणमन अब कहाँ जाए ? आहाहा ! समझ में आया ? इसका नाम धर्मी जीव है । आहाहा !

विविध शुभभाव, ऐसा । एक शुभ नहीं, विविध प्रकार के । कोई भक्ति के, कोई पूजा के, कोई दान के, दया के, वांचन के, श्रवण के, कथन के, आहाहा ! अनेक प्रकार के भाव । विविध है न ? अनेक प्रकार के भाव आवे, तब कहीं एकरूप शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! मैं तो शुद्धचैतन्यमूर्ति प्रभु हूँ, ऐसा जो अन्दर परिणमन हो गया है, वह तो पर के आश्रय बिना निरपेक्षरूप से धारा चलती है । आहाहा ! ऐसी धर्मदशा ।

और वे भाव मुख्यता नहीं पाते । आहाहा ! अन्तिम यह । शुभ-अशुभभाव, शुभभाव आवे परन्तु वह मुख्यता प्राप्त नहीं करता; मुख्यता तो द्रव्य की मुख्यता है । आहाहा ! समझ में आया ? धर्मी जीव को भी शुद्ध की दृष्टि और परिणमन होने पर भी शुभभाव आवे, परन्तु वहाँ शुभभाव की मुख्यता नहीं होती । मुख्यता तो त्रिकाली शुद्ध स्वभाव पर दृष्टि पड़ी, उसकी मुख्यता है । आहाहा ! विशेष कहा जायेगा.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

कार्तिक शुक्ल -६, सोमवार, दिनाङ्क ०६-११-१९७८
वचनमृत-३६६ से ३६७ प्रवचन-१४२

३६६, फिर से पहले से शुरुआत। अन्तिम लिया था, परन्तु पहले से लेते हैं तो इसे मेल खायेगा। शुरुआत से।

जिसने आत्मा को पहिचाना है,... सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान् जिनेश्वरदेव ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा शरीर, वाणी से तो भिन्न / पृथक् है परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभपरिणाम होते हैं, उनसे अन्दर भिन्न चीज़ है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा अन्दर शुद्ध चैतन्यघन, सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह; उसे जिसने पहिचाना है। आहाहा! जिसने राग की क्रिया से भिन्न उसका स्वरूप जिनबिम्ब है। क्योंकि वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। ऐसा न होवे तो वीतरागता वीतराग को प्रगट हुई, वह कहाँ से आयी? आहाहा! वह वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा है, उसे जिसने पहिचाना-ज्ञान किया हो। आहाहा! वह चैतन्य शुद्ध पूर्ण, उसका जिसे ज्ञान होकर पहिचाना हो, अनुभव किया हो। आहाहा! तब से उसकी धर्म की शुरुआत है। ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : पहिचाना और अनुभव किया, इसमें क्या अन्तर है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान और वेदन में आया, ऐसा। ज्ञान किया और वेदन में आया। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर—धर्म की पहली सीढ़ी—वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में, यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का पुंज प्रभु... आहाहा! उसका वर्तमान ज्ञान की पर्याय में ज्ञान होना और उसकी वर्तमान पर्याय में उसका वेदन होना। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म की पहली शुरुआत है। आहाहा! इसके बिना दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि करे, वह सब शुभराग है; धर्म नहीं। यह जगत को कठिन पड़ता है। क्लेश है, राग है न? क्लेश करो तो करो परन्तु उसमें आत्मा को धर्म नहीं है—ऐसी बातें हैं, प्रभु! आहाहा!

वीतराग जिनेश्वरदेव की वाणी में यह आया है। आहाहा! यह त्रिकाली भगवान अन्दर शुद्धचैतन्यघन है, जिसने उसके सन्मुख होकर उसका ज्ञान किया और ज्ञान के पश्चात् उसका उस काल में अनुभव किया। आहाहा! अर्थात् कि अतीन्द्रिय आनन्द का अन्दर अनुभव हुआ, उसने आत्मा को पहिचाना, उसे आत्मज्ञान हुआ, उसे सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! ऐसी बात है। जगत से तो उल्टी है, भाई! आहाहा! मोक्ष का मार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह तो अभी (लुप्त हो गया था)। सम्प्रदाय में तो पूरी सब बात ही फेरफार है। सब खबर है न। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें होकर आप यहाँ आये हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु पूरी सब फेरफार है। खबर है न। पैंतालीस वर्ष से जाना है न। आहाहा! यह वस्तु (कोई अलौकिक है)।

देह की क्रिया है वह तो जड़ की है। यह तो हिलना-चलना वह तो मिट्टी, जड़ की क्रिया है, वह तो अजीव है परन्तु अन्दर में हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना, काम, क्रोध आदि का भाव है, वह पाप है और अन्दर में दया, दान, व्रत, तप और अपवास करना आदि भाव, वह सब पुण्य है, शुभभाव है। उस पुण्य और पापतत्त्व से ज्ञायक प्रभु आत्मा (भिन्न तत्त्व है)। नवतत्त्व है न? तो नौ में इन पुण्य-पाप के तत्त्व से ज्ञायक चैतन्यतत्त्व भिन्न है। आहाहा!

ऐसा जिसे ज्ञान हो, उसका जिसे अनुभव हो, **उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है,...** आहाहा! चाहे जिस प्रसंग में वह शुभभाव में आवे या अशुभ में आवे परन्तु अन्तर्दृष्टि में तो आत्मा ही समीप में वर्तता है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ? अनन्त-अनन्त काल से परिभ्रमण करते हुए भटकते-भटकते हुए अनन्त भव किये। शुभभाव किये तो स्वर्ग में गया, अशुभ किये तो नरक-तिर्यच में गया परन्तु यह वस्तु है, वह पुण्य-पाप के राग से भिन्न है, ऐसा जिसे ज्ञान नहीं, वे सब अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। चाहे तो वह व्रत, तप, भक्ति, पूजा करते हों तो भी मिथ्यादृष्टि हैं, क्योंकि यह राग है, उसे वे धर्म मानते हैं। आहाहा!

इसलिए यहाँ पहले लिया कि जिसने आत्मा को पहिचाना। प्रभु चैतन्यमूर्ति... आहाहा! नवतत्त्व में जो वस्तु जीव तत्त्व पहला, उस तत्त्व को जिसने पहिचाना, आहाहा! अनुभव किया है, उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है,... आहाहा! देह की क्रिया जड़

के कारण हो, शुभ और अशुभभाव कोई कमजोरी से आवे परन्तु दृष्टि में तो त्रिकाली भगवान आत्मा ही समकिति को समीप में वर्तता है, रागादि दूरपने वर्तते हैं। आहाहा!

ऐसी बातें! अरे रे! अनन्त काल हुआ परिभ्रमण करते हुए, इसने आत्मा क्या चीज़ है, उसका ज्ञान किया नहीं। बाकी तो मुनिव्रत अनन्त बार लिया, पंच महाव्रत अनन्त बार पालन किये। आहाहा! वह तो सब आस्रवतत्त्व और पुण्यतत्त्व है। आहाहा! उससे भिन्न भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप, चैतन्यस्वरूप का जिसे ज्ञान हुआ और अनुभव किया, उसे हर क्षण आत्मा ही उसकी दृष्टि में, समीप में वर्तता है। आहाहा! रागादि हों, वे दृष्टि से विरुद्ध वर्तते हैं। आहाहा!

प्रत्येक पर्याय में शुद्धात्म द्रव्य ही मुख्य रहता है। आहाहा! बात सुनी न हो, उसे कठिन पड़े ऐसी है। है दुनिया ऐसी की ऐसी भटकती अनादि से। आहाहा! जिसने आत्मा जाना और जिसे धर्म हुआ; धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन जो हुआ और सम्यग्ज्ञान हुआ, उस दर्शन और ज्ञान में आत्मा ही उसे सदा समीप है। किसी भी पर्याय के काल में आत्मा का समीपपना हटता नहीं है। आहाहा! क्या होगा यह ?

आत्मद्रव्य ही मुख्य रहता है। चैतन्यद्रव्य जो वस्तु है, त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु, वही धर्मी जीव को प्रत्येक पर्याय में-अवस्था में मुख्यरूप से द्रव्य ही वर्तता है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! इसके बिना इसके जन्म-मरण के अन्त आनेवाले नहीं हैं, प्रभु! अवतार कर-करके कचूमर निकल गया है। आहाहा! नरक के, तिर्यच के, एकेन्द्रिय के, निगोद के, आहाहा! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... भव किये। आहाहा! यह मनुष्यपना कहीं पहला भव नहीं है, ऐसे भव तो अनन्त बार किये हैं, जिसमें अरबोंपति बड़ा राजा, एक दिन में अरबों की आमदनी (होवे), ऐसा राजा भी अनन्त बार हुआ है, यह कोई नयी चीज़ नहीं है। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक का देव भी अनन्त बार हुआ है, प्रभु ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो।

पै निज आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायो ॥

आहाहा! यह पंच महाव्रत के परिणाम आदि, वह तो राग और आस्रव है, दुःखरूप है। अरे रे! यह कैसे जँचे? उसे धर्म, धर्म मानकर बैठा है बेचारा। आहाहा! अनादि से

इसने मिथ्यात्व में (उन्हें) धर्म माना है। आत्मज्ञान वस्तु बिना इसे सुख नहीं है। ये महाव्रत के परिणाम भी विकल्प और आस्रव तथा दुःखरूप हैं। आहाहा! इनसे रहित प्रभु आत्मा का ज्ञान होने पर उसे सुख होता है। ये पंच महाव्रत के परिणाम में दुःख है, वह तो आस्रव है। आहाहा! कहीं निवृत्ति नहीं मिलती, बनिये को व्यापार के धन्धे पाप के पूरे दिन।

मुमुक्षु :या पैसा कमाना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कमाता नहीं, पाप कमाता है। अजितभाई! आहाहा! पूरे दिन यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ तथा यह करूँ। अकेला पाप, पाप और पाप। धर्म तो नहीं परन्तु वहाँ पुण्य नहीं। अरे रे! यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य के परिणाम हों, दया के दान के, व्रत के-भक्ति के—ये भी अनन्त बार हुए हैं, जिससे स्वर्ग मिले या इस धूल के सेठिया जो कहलाते हैं, वह हो, परन्तु उसमें भव नहीं घटता। आहाहा!

मुमुक्षु : भव बढ़ता तो नहीं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भव ही स्वयं है, मिथ्यात्व, वही स्वयं अनन्त भव है उसमें। महाव्रत की राग की क्रिया है, उसे धर्म मानता है, उसमें अनन्त मिथ्यात्व के अनन्त भव के गर्भ उसमें हैं। अरे! प्रभु! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि धर्मी जीव को प्रत्येक अवस्था में आत्मद्रव्य ही मुख्य रहता है। विविध शुभभाव आये... धर्मी को भी शुभराग तो आते हैं। दया, दान, व्रत आदि का विकल्प है, वह शुभराग है। तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता... आहाहा! भूल जाये, तब तो मिथ्यात्व हो जाये। आहाहा! शुद्ध भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु, अनन्त-अनन्त अमृत के स्वभाव के सागर से भरपूर आत्मा है, उसे शुभभाव के समय भी शुद्धात्मा, धर्मी हो, उसे विस्मृत नहीं होता। आहाहा! और वे भाव मुख्यता नहीं पाते। धर्मी को, जिसे आत्मज्ञान हुआ है, उसे शुभभाव मुख्यता को प्राप्त नहीं होते। अशुभ जो हिंसा, झूठ, चोरी, विषय की तो क्या बात करना ? वह तो पाप। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यापार-धन्धा करना वह ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापार-धन्धा, वह तो अकेला पाप है। यह वकालात करना, वह पूरे दिन पाप। पन्ने फिराकर यह किया और यह किया तथा यह किया। क्या किया ?

मुमुक्षु : पाप कमाने में नम्बर वन हुआ था ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नम्बर वन है तो वह अकेला पाप है । वकालात में पहले नम्बर वन थे ये रामजीभाई । एक दिन के पाँच घण्टे के कोर्ट में 200 रुपये लेते थे । पैंतीस वर्ष पहले, हों ! परन्तु अकेला पाप ।

मुमुक्षु : मानते कि होशियार बहुत हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया होशियार कहती थी । मंगलभाई बहुत कहता है, मंगलभाई वकील है न मंगलदास ? कांप में (वह कहता है), ओहो ! रामजीभाई तो उनके समय में... आहाहा ! परन्तु कहा, अकेला पाप था । मंगलदास अहमदाबादवाला है । वकालात में अकेला पाप किया है । कोर्ट में जाकर यह किया और किया... ऐई !

मुमुक्षु : जज कहता था कि तुम्हारी बात सत्य है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दुनिया तो पागल, पागल तो ऐसा ही कहे न ! आहाहा ! दुनिया पागल है । आहाहा ! उसमें पाँच-पच्चीस लाख, करोड़, दो करोड़ हो गये हों तो मानो कि ओहोहो ! क्या होशियार ! बड़ा पापी है । आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि वह पाप तो एक ओर रहा परन्तु धर्मी को जो पुण्य का भाव आता है, उसकी भी मुख्यता समकिति को-धर्मी को नहीं होती । मुख्यता तो शुद्धात्मा है, उस पर मुख्यता है । आहाहा ! ऐसा है । अब ऐसी बातें सुनना कठिन पड़ती है, जिन्दगी में सुनी न हो । आहाहा ! है और देखा है न, बापू ! आहाहा ! ऐसा है । आहाहा !

अब उन दो के विवाद चलता है । रजनीश और मोरारजी को । रजनीश कहता है कि आलिंगन और चुम्बन लेने में दिक्कत नहीं है । आहाहा ! गजब है । क्या कहा ? आलिंगन करना और चुम्बन करना, अरे ! वह तो पाप है, प्रभु ! तू यह क्या कहता है ? यह तूने ऐसा कहाँ से निकाला ? रजनीश है न एक ? पूना में ।

मुमुक्षु : उसकी एक शिष्या कहती है.....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक कहती थी, ऐसा जवाब, ऐसे को अवतार नहीं देना । अर र र ! ऐसी बात ? आलिंगन करना और चुम्बन करना वह तो ऐसा कि प्रसन्न होने का कारण है । अर र र ! ऐसी बात पाप है ।

यहाँ तो पाप तो कहीं रह गया परन्तु अन्दर शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का आता है, वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा! इसलिए वह शुभभाव मुख्यता को प्राप्त नहीं होता। धर्मी को मुख्यता अन्तर में शुद्धात्मद्रव्य की वर्तती है। आहाहा! और वे भाव मुख्यता नहीं पाते। यहाँ तक अपने आ गया है, परन्तु यह तो जरा फिर से लिया है क्योंकि अब आता है न? दूसरा पैराग्राफ।

मुनिराज को... मुनि उन्हें कहते हैं... आहाहा! उन्हें पंचाचार होते हैं... विकल्प। दर्शनाचार, ज्ञानाचार ऐसा विकल्प / शुभराग होता है। व्रत होते हैं... पंच महाव्रत के विकल्प, राग होता है। नियम होते हैं... नियम-अभिग्रह आदि धारण करते हैं। जिनभक्ति इत्यादि होते हैं... वीतराग तीन लोक के नाथ परमेश्वर की भक्ति का विकल्प मुनियों को आता है। आहाहा! इत्यादि सर्व शुभभावों... ये सब शुभभाव हैं, पुण्यभाव हैं, बन्धनभाव हैं। आहाहा! जगत चिल्लाहट मचाता है। अरे! ऐसे के ऐसे भटकते जीव, उन्हें तत्त्व क्या है, भगवान कहते हैं, वह (तत्त्व क्या है)? अभी तो यह सुनना मुश्किल पड़ गया है। आहाहा! ऐसे लोग, रजनीश जैसे कोई हों। आज कोई कितना समाचार-पत्र रख गया था। कल तुम पढ़ते थे न वह? एक समाचार, समाचार-पत्र पढ़ते थे न तुम? पढ़ते थे न? कल पढ़ते थे। मैंने कहा क्या होगा? परन्तु आज कोई रख गया। यहाँ पढ़ते थे न यहाँ, यहाँ पढ़ते थे। खबर है। वह भी कोई रख गया, मैं बैठा हूँ वहाँ। थोड़ा पढ़ा। अर र र! कहाँ वीतरागमार्ग, कहाँ जिनेश्वर प्रभु का मार्ग और कहाँ यह... आहाहा! अरे रे! उसे गरज नहीं, भव का डर नहीं, भव.. भव.. मरकर कहाँ जायेगा? बापू! आहाहा! जिसे आत्मज्ञान नहीं और मिथ्यात्व है, वह कहाँ जाकर भटकेगा और उत्पन्न होगा? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि मुनि को शुभभाव आते हैं, उस समय भेदज्ञान की धारा,... आहाहा! राग से भिन्न जो आत्मज्ञान है, उस भेदज्ञान की धारा, स्वरूप की शुद्ध चारित्रदशा निरन्तर चलती ही रहती है। आहाहा! मुनि होते हैं, वे सच्चे सन्त तो दिगम्बर होते हैं, नग्न होते हैं, अन्तर में पंच महाव्रत का विकल्प होता है, तथापि उस काल में भी... आहाहा! सच्चे सन्त वीतराग परमात्मा कहते हैं वे। समझ में आया? भेदज्ञान की धारा, स्वरूप की शुद्ध चारित्रदशा निरन्तर चलती ही रहती है। अरे! यह क्या है? यह तो भगवान की अध्यात्मवाणी है। आहाहा! मुनि उन्हें कहते हैं कि उन्हें ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प आते

हैं, पंचाचार के आते हैं, जिनभक्ति के आते हैं, उस समय भी राग से भिन्न अन्दर, ज्ञानस्वरूप हुआ है, वह धारा तो निरन्तर वर्तती है। आहाहा! वह तो अभी कहाँ है। आहाहा! समझ में आया? और शुद्ध स्वरूप की शुद्ध चारित्रदशा। अन्तर स्वरूप आनन्द का नाथ प्रभु, सर्वज्ञ जिनेश्वर ने कहा है वह। दूसरे अज्ञानी आत्मा-आत्मा करे, वह नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने जो आत्मा कहा, वह अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें रमणता करे, उसे चारित्रदशा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अरे रे! कहाँ एक तो संसार के पाप के कारण निवृत्त नहीं। बाईस घण्टे, तेईस घण्टे अकेला पाप कमाना और नामा-ठामा, और पुत्र, स्त्री को सम्हालना... अकेला पाप। अब कहते हैं, उसमें से निवृत्त होवे और कदाचित् शुभभाव करे तो वह भी पुण्य और बन्ध का कारण है। आहाहा!

धर्मी जीव को तो पुण्य के समय भी आत्मा भिन्न है, ऐसी दशा कायम वर्तती है। आहाहा! और राग होता है, वह मेरा राग है और मुझे लाभ होता है तो उसे मिथ्यात्व का महा अनन्त पाप (चलता है)। अनन्त भव का कारण मिथ्यात्व को सेवन करता है। आहाहा! गले उतरना कठिन है। उसमें दो-पाँच करोड़ रुपये हो जाये, लड़के कमाऊँ हो जाये, दो-पाँच-दस लाख महीने के (तो) 'मैं चौड़ा और गली सकड़ी' मर गया। आत्मा को मार डाला। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें मेरा है, ऐसा इसने माना है न? यह चैतन्य मेरा है, आनन्द का नाथ (है) उसे मार डाला और यह जो ये (इसकी) नहीं उस वस्तु को 'मेरा' माना। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! एक शुभ दया, दान, व्रत के विकल्प का भी राग का अंश है। आहाहा! वह वृत्ति का उत्थान है। वह राग भी मेरा है और मुझे लाभ करता है, (यह) महा मिथ्या विपरीत मान्यता का पाप, जिसमें अनन्त भव भ्रमण रहे हैं, ऐसा मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, सच्चे सन्त-मुनि हों, जिन्हें सर्वज्ञ जैनशासन के सन्त कहा जाता है—णमो लोए सव्व साहूणं। आहाहा! उस साधु की दशा में शुभभाव आवे, तथापि उन्हें भेदज्ञान और चारित्र की दशा—रमणता निरन्तर वर्तती है। आनन्द में रमणता निरन्तर होती

है। आहाहा! राग में रमे तो वह हरामी-अज्ञानी है। आहाहा! रागरहित भगवान आत्मा जो अन्दर चैतन्य आनन्दनाथ है, उसमें रमे, उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा! ऐसी चारित्रदशा तो सच्चे सन्त को, जैनदर्शन के सच्चे सन्त को (होती है)। दूसरे में तो सन्त हो नहीं सकते, वीतरागमार्ग के अतिरिक्त। आहाहा! समझ में आया? दूसरे कोई साधु-बाधु नाम धराते हों, वे सब खोटे हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में जो सन्त होते हैं, वह स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप में रमणता (करनेवाले होते हैं)। आहाहा! ऐसे सन्त को शुभभाव आने पर भी भेदज्ञान और शुद्धचारित्र निरन्तर चलता है। आहाहा!

शुभभाव नीचे ही रहते हैं;... भाई! क्या है? प्रभु! शुभभाव आवे, परन्तु वे नीचे रहते हैं, तलहटी में रहते हैं और शुद्धस्वरूप है, वह ऊँचा रहता है, अधिक रहता है। ऐसी बात अब कहाँ? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आप झट समझा दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सादी भाषा तो आती है, प्रभु! क्या करे? आहाहा! भाषा आती है, हों! आहाहा! अरे रे! देखो न! वह लड़का बेचारा ३५ वर्ष का चला गया। आहाहा! ऐसे नजर में तैरता है। प्रतिदिन आता था, ऐसे लड़के को लेकर। आहाहा! देह की स्थिति पूरी हो गयी। एक दूसरा भव हो गया, दूसरे भव के घण्टों हो गये। अरे रे! यह संसार। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वह तो ठीक, परन्तु शुभभाव हुआ तो भी धर्मी को धर्म की दृष्टि और धर्म की चारित्रदशा है, वह हटती नहीं है। आहाहा! यह एक तो कहना क्या है, वह समझना कठिन पड़ता है। अभी तो कुछ व्रत करो, अपवास करो, यह करो, यह करो। ओली करो तो धर्म होगा। अब यह तो पूरी दुनिया की पुकार है। सब होली है। आहाहा! ऐसा है।

सम्यग्दर्शन में शुभभाव आने पर भी मुख्यता चैतन्य की है। अब यहाँ तो अभी मुनिराज हुए, उन्हें भी अन्दर मुख्यता चारित्र की है। आहाहा! अर्थात्? शुद्ध चैतन्य... 'चारित्तं खलु धम्मो'। यह धर्म अर्थात् चारित्र। चारित्र अर्थात्? आनन्दस्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द में चरना, रमना, जमना, अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करना। आहाहा! ऐसी चारित्रदशा मुनि को-सच्चे सन्त हों, उन्हें शुभभाव के समय भी यह दशा अन्तर में वर्तती होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को...

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि को चारित्रदशा नहीं है, इसलिए यहाँ लिया। वहाँ मात्र आत्मा की पहिचान (हुई है और) अनुभव हुआ है, इतनी बात ली है। यहाँ अब वापस चारित्रदशा लेनी है। पहले में इतना लेकर यहाँ आगे बढ़ा। आहाहा! सूक्ष्म दशा है, प्रभु! क्या हो ?

भगवान त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में मौजूद हैं, पाँच सौ धनुष की देह है। आहाहा! अन्दर दिखता है। आहाहा! अरे रे! वे परमात्मा त्रिलोकनाथ सीमन्धर प्रभु महाविदेह में साक्षात् विराजते हैं। ऐसे बीस तीर्थकर विराजते हैं। उनमें सीमन्धर भगवान तो मुख्य हैं। आहाहा! उनके पास ये मुनि-कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में गये थे। आहाहा! उन भगवान के पास गये थे और उन मुनि ने आकर ये शास्त्र रचे हैं। आहाहा! उसमें से यह... आहाहा! सूक्ष्म बात है। आहाहा! बहिन भी महाविदेह में से आयी हैं।

मुमुक्षु : आप भी वहाँ से आये हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी बात नहीं कही जाती। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इन बहिन की यह वाणी है। भगवान की सुनी हुई दिव्यध्वनि, उसका अनुभव होकर यह वाणी निकली है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! जगत को विश्वास आना कठिन। आहाहा! पूरे दिन और रात अकेले पाप के (रचे) पचे, उन्हें यह धर्म क्या है, (वह सुनने को मिलता नहीं)। आहाहा! निवृत्त होकर जाये, सामायिक की और प्रौषध किया और प्रतिक्रमण किया। वह तो सब राग की क्रिया है। तुझे सामायिक कहाँ से आयी। अभी आत्मा आनन्दस्वरूप निर्मल, पुण्य और पाप के भाव से भिन्न है-ऐसा जाने बिना समता का भाव अन्दर में स्थिरता आवे कहाँ से? चिमनभाई! आहाहा!

हम भी वहाँ ऐसा करते थे, हों! दुकान पर सामायिक, ऐसी खोटी। वह करते थे, मानों हम सच्ची सामायिक करते हैं। प्रतिक्रमण करते पर्यूषण में। पालेज (में) दुकान पर (करते थे) कहाँ गया अपने मनहर है या नहीं? है। वह सूरत गया हो तो उसका पिता वहाँ तब था, पालेज। हम सब इकट्ठे होकर वहाँ प्रतिक्रमण करते। गांडाभाई का कमरा था, वहाँ इकट्ठे होकर प्रतिक्रमण करें। परन्तु यह तो सत्तर वर्ष पहले की बातें हैं। पिचहत्तर वर्ष पहले की। आहाहा! मानते थे कि हमने कुछ सामायिक किया और प्रतिक्रमण किया। आठ दिन

में हम चार उपवास करते थे। चतुर्विध आहार त्याग, हों! तब (संवत्) १९६४-६५-६६ के वर्ष की बात है। आठ दिन में चार उपवास। एक दिन खाना और एक दिन नहीं। चतुर्विध आहार त्याग उपवास करते थे और मैं सबको प्रतिक्रमण कराता था। प्रतिक्रमण कण्ठस्थ था परन्तु यह सब ऐसा-पहाड़ा। राग करते और मानते कि हमने धर्म किया है। आहाहा! ये बातें अलग, बापू! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, शुभभाव धर्मी को—ज्ञानी को—सन्त को आवे, परन्तु वह शुभभाव नीचे रहता है, उसकी अधिकता नहीं रहती। आहाहा! अधिकता तो सन्तों को, मुनियों को और ज्ञानी को भी (स्वभाव की रहती है), परन्तु यहाँ तो चारित्रदशा का लेना है न! आहाहा! चैतन्य के प्रकाश के नूर का पूरा प्रभु! आहाहा! चैतन्य के प्रकाश के नूर का प्रवाह प्रभु आत्मा, धर्मी को उसकी दृष्टि हटती नहीं। आहाहा! उस समय शुभभाव आवे परन्तु वह नीचे रह जाता है, उसे ऊँचा करता नहीं, ऊँचा तो भगवान आत्मा रहता है। आहाहा! यह क्या बात! यह क्या कहते हैं यह? बापू! तूने सुना नहीं। जिनेश्वर वीतराग परमेश्वर का मार्ग क्या है? प्रभु! अभी तो चलता नहीं। अभी तो सबमें गड़बड़ी की है। आहाहा!

शुभभाव नीचे ही रहते हैं; आत्मा ऊँचा का ऊँचा ही... आहाहा! शुभभाव से भिन्न। ऊँचा अर्थात् शुभभाव से भिन्न। शुभभाव से पूर्ण पृथक् अधिक, ऐसा दृष्टि में धर्मी को वही उत्कृष्ट में उत्कृष्ट रहता है। आहाहा! उसे शुभभाव ऊँचा, ऐसा धर्मी को नहीं होता। आहाहा! कहो, मीठालालजी! ऐसी बातें हैं। यहाँ तो ४४ वर्ष हुए। यहाँ तो ४४ वर्ष इस सोनगढ़ में हुए। इन ४४ वर्षों से तो बात चलती है। आहाहा!

ऊर्ध्व ही—रहता है। धर्मी समकिति हो, या मुनि हो। धर्मी जिसने आत्मज्ञान और आत्मा पहिचाना है, उसे तो शुभभाव के समय भी, शुभभाव बन्ध का कारण पुण्य है, इसलिए धर्मी को धर्मस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा ऊँचा अर्थात् शुभभाव से अधिक—भिन्न रहता है। आहाहा! अब ऐसी बात। आहाहा! दुनिया की तो खबर है। दुनिया कहाँ खड़ी है और कहाँ मार्ग है, (सब खबर है)। आहाहा! **ऊर्ध्व ही—रहता है। सब कुछ पीछे रह जाता है,...** आहाहा! धर्मी, जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ और उसे फिर चारित्रदशा हुई, अन्दर रमणता (प्रगट हुई), उसे तो रागादि सब पीछे रह जाते हैं। आहाहा! यह पीछे और मुख्य क्या होगा यह?

मुमुक्षु : मेहमान के साथ नौकर आवे, उसमें कौन मुख्य कोई गौण...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बोले अवश्य कि यह तुम्हारा घर है। मेहमान आवे, उनसे कहे-तुम्हारा घर है, ऐसा बोले। अन्दर में है कि दो दिन हो तो कहे, अब कब जाओगे? यह सब जगत के ढोंग हैं। यह राग आया, वह मेहमानरूप से आया है। वह मेरे घर की चीज़ नहीं है, ऐसा ज्ञानी समझता है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु!

अरे रे! अनन्त काल से भटकता अनन्त बार अरबोंपति हुआ, अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक का देव हुआ, तो देव हुआ तो वह कुछ पुण्य से हुआ होगा या पाप से होता होगा? नरक के अनन्त भव किये हैं। वीतराग सर्वज्ञ प्रभु ऐसा कहते हैं कि नरक के जो अनन्त किये, उससे स्वर्ग के असंख्यगुने अनन्त तूने किये, प्रभु! तू भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं था ऐसा कौन कहे? आहाहा! जन्म होने के बाद छह महीने, बारह महीने में क्या हुआ-है याद? याद नहीं, इसलिए नहीं है? नहीं था? ऐसा कौन कहे? इसी प्रकार अनन्त काल में अनन्त नरक के और स्वर्ग के भव किये। यहाँ तो दूसरा कहना है कि नरक के भव किये अनन्त, उससे स्वर्ग के असंख्यगुने अनन्त किये—ऐसा परमात्मा तीर्थकरदेव कहते हैं। तब पाप के भाव की अपेक्षा पुण्य के स्वर्ग के भाव अनन्त गुणे अनन्त बार किये हैं। आहाहा! वह कोई धर्म नहीं हैं। अरे रे! आहाहा! व्रत और उपवास वह सब कोई धर्म नहीं है। वह तो विकल्प है, पुण्य है, शुभ है। आहाहा! ऐसा शुभ था कि जिसे शुक्ललेश्या (थी) परन्तु मिथ्यादृष्टि था। आत्मज्ञान और आत्मा क्या चीज़ है, उसका भान नहीं होता। आहाहा!

‘द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो’—यह तो दुकान के ऊपर हम पढ़ते थे। है न सञ्जायमाला? श्वेताम्बर में चार सञ्जायमाला है। एक-एक सञ्जायमाला में २५०-२५० सञ्जाय है और एक-एक सञ्जाय में पाँच श्लोक, दस श्लोक, पन्द्रह श्लोक है, तो वे चार सञ्जायमाला (पढ़ी थी)। घर की दुकान थी न पिताजी की, वहाँ पालेज। मैं तो सब पढ़ता था। वहाँ चारों पढ़ी थी। (संवत्) १९६५-६६ की बात है, हों! उसमें यह आया था। ‘द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो, फेर पीछो पटक्यो’ आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन के अनुभव, भान बिना इसने द्रव्यसंयम पालन किया, इन्द्रियदमन-ब्रह्मचर्य पालन किया, उससे ग्रैवेयक मिला परन्तु फिर नीचे गिरा। वहाँ से निकलकर मनुष्य और पशु होकर निगोद में गया।

आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! यह पालेज के अन्दर की बात है। तुम्हारा जन्म कहाँ था ? फावाभाई थे, दोनों साथ में (दुकान) करते थे।

मुमुक्षु : आप तो उनके अणवर थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अणवर था। बात सच्ची। १९६४ में विवाह हुआ फावाभाई का, उनका यह लड़का है। उनके पास अभी अस्सी लाख रुपये हैं। करोड़ कहते हैं। उनका भानेज करोड़ कहता था। मैं दुकान में गया और वह खड़ा था। वह गया न अभी गया, राजकोट। मेरे मामा के पास करोड़ रुपये हैं, कहे। ऐसा मुझे कहा। वहाँ सूरत में मैं खड़ा था और वह भी खड़ा था। चाहे जो हो नहीं, करोड़ हो या दो करोड़ हो। धूल है। वहाँ आत्मा को क्या ? वह तो नुकसान का कारण है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ममता.. ममता है न, नुकसान का कारण है। आहाहा! वे सब पाप के भाव हैं। आहाहा!

यहाँ तो इससे आगे जाकर कदाचित् शुभभाव किया परन्तु आत्मज्ञान नहीं तो वह भी बन्ध का कारण है और संसार में भटकने का (कारण है) तथा धर्म हुआ और उसे शुभभाव आया तो भी धर्मी जीव को ऊर्ध्वता, अधिकता तो शुद्धभाव की वर्तती है। आहाहा! उस शुभभाव की अधिकता उसे नहीं है। आहाहा! सब कुछ पीछे रह जाता है, आगे एक शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है। आहाहा!

मुमुक्षु : दुनिया में ऐसा है, पैसा आगे रह जाता है और मनुष्य पीछे रह जाता है। द्रव्य अर्थात् पैसा आगे रह जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह द्रव्य अर्थात् धूल-पैसा मिट्टी है, पुद्गल है। यह नोट है, वह पुद्गल-जड़-अजीव है। पैसा अजीव-मिट्टी-धूल है। आहाहा! यह शरीर मिट्टी है तो फिर वह तो बाहर मिट्टी है ही। कोई कील लगती है न शरीर में, तब लोग कहते हैं कि मेरी मिट्टी पकाऊ है, ऐसा बोलते हैं। यह मिट्टी है, यह मिट्टी, यह कहीं आत्मा नहीं है। भगवान आत्मा तो अन्दर भिन्न है। मेरी मिट्टी पकाऊ है, मुझे पानी छूने देना नहीं, ऐसा बोले कि मेरी मिट्टी पकाऊ है और बोले की यह शरीर मेरा है। एक ओर मिट्टी कहे तथा एक ओर (मेरा

शरीर कहे)। ऐसी यह भ्रमणा अज्ञानी की। पागल है, सन्निपात लगा है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, एक शुद्धात्मद्रव्य ही (मुख्य) रहता है। यह ३६६ (बोल पूरा हुआ)।

जिनेन्द्र भगवान की वाणी में अतिशयता है, उसमें अनन्त रहस्य होते हैं, उस वाणी द्वारा बहुत जीव मार्ग प्राप्त करते हैं। ऐसा होने पर भी सम्पूर्ण चैतन्यतत्त्व उस वाणी में भी नहीं आता। चैतन्यतत्त्व अद्भुत, अनुपम एवं अवर्णनीय है। वह स्वानुभव में ही यथार्थ पहिचाना जाता है ॥३६७॥

३६७, जिनेन्द्र भगवान की वाणी में... जिनेन्द्र भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर अरिहन्तदेव। आहाहा! जिनेन्द्र-जिन तो समकित्ती को भी जिन कहा जाता है, गणधर को भी जिन कहा जाता है परन्तु यह तो जिनेन्द्र हैं-जिन के भी इन्द्र हैं भगवान अरिहन्त सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ। महावीर आदि भगवान अरिहन्त पद में हो गये हैं, वे तो अभी सिद्धपद में हैं - णमो सिद्धाणं (में हैं) और यह सीमन्धर भगवान वर्तते हैं, वे अरिहन्त पद में हैं। शरीरसहित वर्तते हैं, केवलज्ञान आदि (सहित वर्तते हैं), उन्हें अरिहन्त कहते हैं। शरीररहित हो जाये, अकेला आत्मा रहे, उन्हें सिद्ध-णमो सिद्धाणं कहते हैं। आहाहा! उनकी इसे कहाँ खबर है। णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं रट जाये, लो! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जिनेन्द्र भगवान... वे गणधर भी जिन हैं, उनके भी इन्द्र / स्वामी परमात्मा अरिहन्तदेव। उनकी वाणी में अतिशयता है,... भगवान की वाणी-दिव्यध्वनि अतिशय है। आहाहा! वह वाणी दूसरे की अपेक्षा अलग प्रकार की होती है, उन्हें ओम्ध्वनि होती है। ऐसी (क्रमवाली) वाणी उन परमात्मा को नहीं होती। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर हो गये, जिनेन्द्रदेव को ओम्ध्वनि उठती है। होंठ हिलते नहीं, कण्ठ हिलता नहीं। आहाहा! ऐसी वाणी में अतिशयता है। वाणी में, हों!

उसमें अनन्त रहस्य होते हैं,... भगवान की वाणी में तो अनन्त रहस्य हैं, बापू! यह कहीं साधारण बात नहीं है। आहाहा! अनन्त-अनन्त रहस्य भरपूर वीतराग की वाणी। जिनेन्द्रदेव परमेश्वर... आहाहा! उस वाणी द्वारा बहुत जीव मार्ग प्राप्त करते हैं। इसके

अतिरिक्त-जिनेन्द्र के अतिरिक्त अज्ञानियों की वाणी में से कोई धर्म प्राप्त करे, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! उसमें अनन्त रहस्य होते हैं, उस वाणी द्वारा बहुत जीव मार्ग प्राप्त करते हैं। निमित्त है। ऐसा होने पर भी सम्पूर्ण चैतन्यतत्त्व उस वाणी में भी नहीं आता। यह प्रश्न किया था, वह भव्यसागर, महाराष्ट्र में जालना है न? जालना। (वहाँ) एक दिगम्बर साधु है बीस वर्ष की दीक्षा है, नग्न मुनि है और आशुकवि है - शीघ्र कवि। यहाँ का पढ़कर उन्हें ऐसा हो गया। आहाहा!

अरे! आप ऐसा कहाँ से लाये? दो सौ वर्ष में यह बात नहीं थी। हमने तो कितना ही पढ़ा है और आप कहते हो, उस अपेक्षा से तो हम साधु ही नहीं हैं। ऐसा कहा। दिगम्बर नग्न मुनि है। अभी जालना में है। वहाँ स्थानकवासी के साधु हैं आनन्दऋषि, वह भी अभी वहाँ है। उनका आचार्य है, स्थानकवासी के आचार्य आनन्दऋषि। दोनों वहाँ हैं। हम हैदराबाद गये थे न, हैदराबाद में चारों ही संघवालों ने स्वागत किया था। हैदराबाद में बड़ा (समुदाय) है। वह करोड़पति नहीं? इन्दौर। राजकुमारसिंह। उनके लड़के की लड़की का वहाँ विवाह हुआ है। उतरे थे हम वहाँ, इसलिए चारों संघवालों ने स्वागत किया।

स्थानकवासी, तेरापंथी, श्वेताम्बर और दिगम्बर। अब वह जब हमारा स्वागत किया तो व्याख्यान सुनने सब आते थे। वे अभी जालना में हैं। आनन्दऋषि और वह (मुनि)। इसलिए उन्हें वन्दन करने जाता है। यहाँ हैदराबाद से क्या कहलाता है? बैंगलोर से। वे लोग यह बहिन की यह पुस्तक माँगते हैं। वह बहिन की पुस्तक लाओ, लाओ। सब स्थानकवासी माँगते हैं। वहाँ (मुनि) बहुत प्रचार करते हैं। यहाँ बहुत आना चाहते हैं, परन्तु हम किसी को (कुछ नहीं कहते)। (कहते हैं कि) मुझे बुलाओ, मुझे कहो कि आओ। हम किसी को आओ और जाओ, ऐसा कुछ नहीं कहते। आना हो वह आवे और सुनना हो वह सुने। यहाँ हमारे क्या है?

दिगम्बर साधु है, बीस वर्ष की दीक्षा है, शीघ्र कवि है बहुत वर्ष से इस धर्म का इस प्रकार का प्रचार करते हैं। इस पुस्तक का वहाँ (प्रचार करते हैं)। वह आनन्दऋषि स्थानकवासी के साधु हैं, उन्हें वन्दन करने आवें वे भी यह पुस्तक माँगते हैं। यह क्या है यह बात? यह वचनामृत है वह क्या है? तब वे लिखते हैं.... यहाँ से सात सौ पुस्तकें भेजी थीं। सात सौ। सात रुपये की, यहाँ तीन रुपये में बिक्री की जाती है। परन्तु उन्हें मुफ्त में

संस्था ने दी थी। वे कहते हैं, लिखा था, उनका पत्र आया था। मेरे पास स्थानकवासी के लोग आते हैं, तो बीस मिनट पढ़ना, इस शर्त से उन्हें पढ़ने को देता हूँ। यह पुस्तक प्रतिदिन बीस मिनट इसे पढ़ना। फिर मुफ्त देते हैं। पत्र आया था। यह तो बहुत प्रचार है। जालना में। आहाहा! बापू! यह मार्ग कोई अलग प्रकार है, भाई! जिनेन्द्र की वाणी और जिनेन्द्र के सिद्धान्त कोई अलौकिक हैं। आहाहा! **सम्पूर्ण चैतन्यतत्त्व उस वाणी में भी नहीं आता।** उनका यह प्रश्न है। उनका-भव्यसागर का। यह है, एक अपेक्षा से सब आता है, वक्तव्य है और एक अपेक्षा से अवक्तव्य भी है। श्रीमद् में आया न? श्रीमद् राजचन्द्र। 'जो स्वरूप झलका जिनवर के ज्ञान में।' 'जो स्वरूप सर्वज्ञ...' परमेश्वर अरिहन्त सर्वज्ञ ने 'देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्रीभगवान जो।' वाणी जड़ और भगवान आनन्द का नाथ चैतन्य, उसकी कितनी बातें वाणी करें। आहाहा!

**जो स्वरूप श्री सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जो
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे?**

जिस स्वरूप को सर्वज्ञ ने पूर्ण जाना, उनकी वाणी में भी पूर्ण आया नहीं, तो उसके अतिरिक्त छद्मस्थ प्राणी उस ऐसे स्वरूप को अन्य वाणी से वह क्या कहे?

अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो।

आहाहा! यह गूँगे का गुड़। गुड़ का स्वाद चखता है परन्तु उसे पूछे (कि) कैसा (स्वाद है)? बस। (कह नहीं सकता) इसी प्रकार वीतराग की वाणी में इसे ईशारा आता है। आहाहा! यह तो गोम्मटसार में भी वहाँ लेख है न? भगवान ने जैसा जाना, वैसा वाणी में अनन्तर्वे भाग आता है। आहाहा! और उसके अनन्तर्वे भाग गणधर झेलते हैं। आहाहा! और उसके अनन्तर्वे भाग में गणधर शास्त्र रच सकते हैं। अरे! वह तो क्या बात है? बापू! आहाहा! परमेश्वर जिनेश्वरदेव... आहाहा!

उनकी वाणी में **सम्पूर्ण चैतन्यतत्त्व उस वाणी में भी नहीं आता।** आहाहा! उसमें पाँचवीं गाथा में तो ऐसा कहा है, वहाँ अर्थ में। नहीं? समयसार। सब आता है। अनुमान से कराते हैं। वचनगोचर है इतना कहते हैं। बाकी वचन अगोचर और अनुमान से कहा,

परन्तु वास्तव में तो वक्तव्य और अवक्तव्य सप्तभंगी हैं न ? कथंचित् वक्तव्य है, कथंचित् अवक्तव्य है। आहाहा ! पूर्ण रीति से नहीं आता परन्तु वक्तव्य है और पूर्ण रीति से नहीं आता इसलिए अवक्तव्य भी है। सप्तभंगी है। आहाहा !

यह उनका प्रश्न है। १२८ पृष्ठ का। भव्यसागर दिगम्बर साधु अभी जालना में है। उनका यह प्रश्न है, उनसे यह पढ़ा। इसमें यह क्या ? भगवान की वाणी में पूरा न आवे ? बापू ! वाणी जड़ है और भगवान तो अन्दर आनन्द का नाथ भिन्न है। आहाहा ! शत्रु द्वारा मित्र की बातें कराना, वह कितनी करे ? यह तो वाणी तो जड़ है, मिट्टी-धूल है। यह भाषावर्गणा तो मिट्टी है। इसी प्रकार यह आत्मा अन्दर अरूपी आनन्द का नाथ चैतन्य अरूपी है। उसमें रूप नहीं, गन्ध नहीं, वर्ण नहीं, स्पर्श नहीं। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति भरी है। अब इसकी बातें वाणी द्वारा करना। आहाहा !

मुमुक्षु :वाणी क्या करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे ? इस अपेक्षा से कहा है। उनका यह प्रश्न है। बहुत बार पत्र में आता है। भव्यसागर का। वह यह। आहाहा !

चैतन्यतत्त्व वाणी में भी नहीं आता भी अर्थात् क्या ? कि जानने में आता है परन्तु कहने में नहीं आता। चैतन्यतत्त्व अद्भुत,... आहाहा ! सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भरपूर भगवान भरा है। अरे ! कैसे जँचे ? आहाहा ! आहाहा ! जिसमें से केवलज्ञान होता है तो भी वह पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण है, उसमें। आहाहा ! अरे रे ! चैतन्यतत्त्व अद्भुत,... यह तो अपने कलश में आता है न पीछे ? अद्भुतार्थ अद्भुतं। एक जगह अद्भुत आता है और दूसरी जगह अद्भुत आता है। दो कलश आते हैं, समयसार में पीछे है। आहाहा !

चैतन्यतत्त्व अद्भुत में अद्भुत है। आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान, उसका धर्मी को स्वाद आता है तो भी वह स्वाद क्या कहे ? अज्ञानी को उस राग का स्वाद आता है। स्त्री के विषय में कहीं स्त्री के शरीर का भोग उसे नहीं है। वह तो मिट्टी, धूल है। धूल अरूपी भोगे कहाँ से ? भगवान आत्मा तो अरूपी है। मात्र शरीर की अनुकूलता देखकर उसे राग होता है कि यह ठीक है, उस राग को वेदता-अनुभव करता है; शरीर को

नहीं। आहाहा! अरे! उसे यह भी भान-खबर कहाँ है? समझ में आया? स्त्री का शरीर, आत्मा भोगे, यह तीन काल में नहीं है। वह तो मिट्टी-धूल है और आत्मा-प्रभु तो अन्दर अरूपी है। आहाहा! मात्र अज्ञानी उस शरीर की सुन्दरता और माँस-हड्डियों को ठीक देखकर राग करता है, उस राग का अनुभव करता है। धर्मी उस राग से भिन्न करके आत्मा को अनुभव करता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बातें। एक घण्टे सुनना। महिलाएँ नहीं आयी हों और घर में (पूछे), क्या (सुनकर) आये? तो कहे, कौन जाने? वहाँ ऐसा कहते थे, ऐसा और ऐसा। ऐसी बातें हैं यह सब। अरे! दुनिया को जानते हैं न यहाँ? यहाँ तो ८९ वर्ष हुए। आहाहा! पूरी दुनिया की क्या पद्धति और रीति है, सब खबर है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान की वाणी में चैतन्य का पूरा तत्त्व आता नहीं। वह अद्भुत, अद्भुत और अनुपम। अद्भुत, अनुपम... आहाहा! ऐसा भगवान, उसे उपमा क्या देना? उसे किसकी उपमा दे? अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर, अतीन्द्रिय प्रभुता और स्वच्छता का पिण्ड प्रभु। आहाहा! उसे उपमा किसकी देना? किसकी उपमा उसके जैसे की? अवर्णनीय है। इस पर उनका प्रश्न है। अवर्णनीय है, वचन में बहुत नहीं आता, ऐसा कहते हैं। कथन...

वह स्वानुभव में ही यथार्थ पहिचाना जाता है। आहाहा! वह तो सम्यग्दर्शन में -धर्म की पहली दशा में-आनन्द का नाथ अन्दर अनुभव में आता है, उस अनुभव में वह ज्ञात होता है। वह वाणी द्वारा नहीं, विकल्प द्वारा नहीं। वाणी द्वारा उसका वर्णन भी पूरा नहीं (आता)। आहाहा! यह स्वानुभव, स्व अनुभव। आनन्द का अनुभव। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द है... आहाहा! इन रागादि दुःख के परिणाम से भिन्न है। वह स्वानुभव में ही वास्तविक पहिचाना जाता है। वाणी द्वारा और धारणा में से नहीं, ऐसा कहते हैं। वह स्वानुभव में आत्मा की वास्तविक पहिचान होती है। आहाहा! यह ३६७ (बोल पूरा हुआ)। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल -७, मंगलवार, दिनाङ्क ०७-११-१९७८
वचनामृत-३६८ से ३७० प्रवचन-१४३

पंचेन्द्रियपना, मनुष्यपना, उत्तम कुल और सत्य धर्म का श्रवण उत्तरोत्तर दुर्लभ है। ऐसे सातिशय ज्ञानधारी गुरुदेव और उनकी पुरुषार्थप्रेरक वाणी के श्रवण का योग अनन्त काल में महापुण्योदय से प्राप्त होता है। इसलिए प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थ करो। सब सुयोग प्राप्त हो गया है, उसका लाभ ले लो। सावधान होकर शुद्धात्मा को पहिचानकर भवभ्रमण का अन्त लाओ ॥३६८ ॥

३६८, पंचेन्द्रियपना,... मिला है, कहते हैं। तुझे पाँच इन्द्रियाँ मिली, उनमें भी मनुष्यपना,... मिला, पाँच इन्द्रियाँ तो तिर्यच को भी है। उसमें उत्तम कुल (मिला) और सत्य धर्म का श्रवण उत्तरोत्तर दुर्लभ है। आहाहा! ऐसे सातिशय... यह तो बहिन (विनय है)। (ज्ञानधारी गुरुदेव) और उनकी पुरुषार्थप्रेरक वाणी के श्रवण का योग अनन्त काल में महापुण्योदय से प्राप्त होता है। इसलिए प्रमाद छोड़कर... आहाहा! पुरुषार्थ करो। जिसमें भव का अन्त आवे, वह पुरुषार्थ कर। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रमाद छोड़, इसका अर्थ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाद छोड़, इसका अर्थ भी पुरुषार्थ कर, कहा है वापस। अर्थात् प्रमाद छोड़ और पुरुषार्थ कर। आहाहा! यह पुरुषार्थ इस ओर जाये तो प्रमाद छूटे। आहाहा! बात यह कि लोगों ने, विज्ञानवालों ने जड़ को बहुत खोजा और उसकी सब बातें की। परन्तु यह तो चैतन्य भगवान अन्दर पूर्ण आनन्द का नाथ, इसकी शोध उन्होंने नहीं की। आहाहा! उसने इन्द्रियों को जीतना, वह तो ठीक, वह तो बाह्य चीज़ है... आहाहा! परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप के संकल्प-विकल्प जो मन सम्बन्धी होते हैं, इन्द्रियों का लक्ष्य छूट जाए और भले अन्दर में विकल्प जो मन के (संग से) उठें, उन्हें भी जीतना

अर्थात् उन्हें छोड़कर स्वरूप की दृष्टि करना। आहाहा! भगवान् ज्ञायकस्वरूप प्रभु, वह महा अचिन्त्य चमत्कारी पदार्थ है।

इसे सब सुयोग प्राप्त हो गया है, उसका लाभ ले लो। आहाहा! अन्तर में सुयोग मिला, (उसका) लाभ ले अर्थात् अन्तर में जा। आहाहा! बाकी सब बातें हैं। दया, दान, भक्ति, और, व्रत यह सब विकल्प हैं, वे तो मन के संकल्प-विकल्प उपाधि हैं। वह भव है, वह तो। इसलिए अन्दर स्वरूप चैतन्य है, उसे देख।

सावधान होकर शुद्धात्मा को पहिचानकर... देखा? आया न? सावधान होकर शुद्धात्मा, शुद्ध आत्मा। पवित्र प्रभु भगवान् स्वरूप ही प्रभु है। महिमावाला पदार्थ है, जिसकी महिमा का पार नहीं होता, उसे देख, उसे पहिचान। यह बात है। भवभ्रमण का अन्त लाओ। इसके अतिरिक्त कोई चीज़ करने जैसी नहीं है। आहाहा! अब इसका विशेष स्पष्टीकरण है।

चैतन्यतत्त्व को पुद्गलात्मक शरीर नहीं है, नहीं है। चैतन्यतत्त्व को भव का परिचय नहीं है, नहीं है। चैतन्यतत्त्व को शुभाशुभपरिणति नहीं है, नहीं है। उसमें शरीर का, भव का, शुभाशुभभाव का संन्यास है।

जीव ने अनन्त भवों में परिभ्रमण किया, गुण हीनरूप या विपरीतरूप परिणमित हुए, तथापि मूल तत्त्व ज्यों का त्यों ही है, गुण ज्यों के त्यों ही हैं। ज्ञानगुण हीनरूप परिणमित हुआ, उससे कहीं उसके सामर्थ्य में न्यूनता नहीं आयी है। आनन्द का अनुभव नहीं है, इसलिये आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है, नष्ट नहीं हो गया है, घिस नहीं गया है। शक्तिरूप से सब ज्यों का त्यों रहा है। अनादि काल से जीव बाहर भटकता है, अति अल्प जानता है, आकुलता में रुक गया है, तथापि चैतन्यद्रव्य और उसके ज्ञान-आनन्दादि गुण ज्यों के त्यों स्वयमेव सुरक्षित रहे हैं, उनकी सुरक्षा नहीं करनी पड़ती।

—ऐसे परमार्थस्वरूप की सम्यग्दृष्टि जीव को अनुभवयुक्त प्रतीति होती है ॥३६९॥

३६९, चैतन्यतत्त्व को पुद्गलात्मक शरीर नहीं है, नहीं है... आहाहा! चैतन्यतत्त्व जो वस्तु है, चैतन्यतत्त्व, चैतन्य लोक, चैतन्यस्वभाव, चैतन्यभाव ऐसी चीज़। आहाहा! उसमें पुद्गलस्वरूप शरीर नहीं है। इसलिए उसकी सम्हाल करने में रुक जाता है, उसे छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। जो तुझमें नहीं है, उसे सम्हाल करने में तू रुक गया। आहाहा! चैतन्यतत्त्व को भव का परिचय नहीं है, नहीं है। आहाहा! भगवान् आत्मतत्त्व परमेश्वर जिनेश्वर वीतरागदेव ने जो कहा, ऐसा जो चैतन्यतत्त्व अन्दर जलहल ज्योति प्रभु, उसे भव का परिचय नहीं है, नहीं है। भव का परिचय नहीं है, नहीं है। भव का कारण भाव, उस भाव का भी उसे परिचय नहीं है। आहाहा! ऐसा है। जिनेश्वर वीतरागदेव ने जो तत्त्व कहा, वह अलौकिक अन्दर है, भाई! तुझे खबर नहीं। जिसे भव का परिचय नहीं। क्योंकि भव के भाव, भव और भव के भाव से रहित तत्त्व है। आहाहा! जिसे यहाँ आत्मतत्त्व, चैतन्यतत्त्व कहते हैं, सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा कहा, देखा है कि ऐसा जो आत्मतत्त्व, चैतन्यतत्त्व है, चैतन्य लोक है, उस चैतन्य को भव के भ्रमण का परिचय, संग नहीं है। आहाहा! बाहर के पदार्थ का तो उसे संग, उसे शरीर का संग नहीं... आहाहा! परन्तु भव और भव के भाव का प्रभु चैतन्यतत्त्व को परिचय नहीं। आहाहा! 'श्रुत परिचित अनुभूता'—कहा न? आहाहा!

यहाँ तो यह परिचय। सुना है, वह भी राग से रहित भगवान्, भव के भाव से रहित चैतन्यतत्त्व तूने सुना नहीं। आहाहा! तब और उसने विद्यानन्दजी ने बलभद्र ने अर्थ ऐसा किया, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? आहाहा! श्रुत अर्थात् ज्ञान और परिचित अर्थात् समकित और अनुभूत अर्थात् चारित्र। अब उसका यहाँ क्या काम? यहाँ तो 'श्रुत परिचित अनुभूता' (अर्थात्) तूने राग का सुना है, राग का भाव जो राग, उसे सुना है, अनुभव किया है, वेदन किया है। आहाहा! परन्तु रागरहित भगवान् आत्मा,... आहाहा! मन के सम्बन्ध से होनेवाले विकल्प उस मन और विकल्प का भी प्रभु को परिचय नहीं है। प्रभु! तुझे खबर नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

भगवान् चैतन्यतत्त्व अन्दर ज्ञानरस, आनन्दरस स्वभाव... स्वभाव.. स्वभाव.. शुद्ध स्वभाव का पिण्ड प्रभु, ऐसे आत्मतत्त्व को भव का परिचय नहीं है। आहाहा! वह तो पर्याय की अवस्था में राग का सम्बन्ध और भव का परिचय है। आहाहा! एक समय की पर्याय

में (वह है)। वस्तु में वह नहीं है। आहाहा! ऐसी बात! उस विज्ञान ने, भाई! बहुत अच्छा लिखा है, हों! ऊपर शीर्षक यह है। विज्ञान नां आयना... क्या कहलाता है? आईना, आईना-दर्पण। विज्ञान के दर्पण में दिखाये महावीर, ज्ञात हुए महावीर। आहाहा!

महावीर अर्थात् क्या? वह कोई शरीर महावीर नहीं है, राग महावीर नहीं है, वाणी महावीर नहीं है। आहाहा! जिसने चैतन्यद्रव्य जो सर्वज्ञस्वभावी पूर्णानन्द प्रभु, उसे शोध निकालकर राग से भिन्न अनुभव किया और स्थिरता करके केवलज्ञान प्रगट किया। आहाहा! ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसे भव का-चौरासी लाख के अवतार और उनका जो कारण मिथ्यात्व, उसका परिचय नहीं है। आहाहा! यह तो अपने आ गया है दोपहर को। उसमें मिथ्यात्व नहीं है। मिथ्यात्व, अत्रत, कषाय, योग वह जीव को नहीं है, जीव में नहीं है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें हैं? दुनिया कहाँ भटक रही है? आहाहा! परिभ्रमण के भव में।

कहते हैं कि वह परिभ्रमण का भाव, भगवान आत्मा द्रव्य वस्तु चैतन्यतत्त्व जो वस्तु, जो चैतन्य अस्ति-तत्त्व है, उसमें भव के भ्रमण का परिचय उसे नहीं है। आहाहा! वह तो भव के भ्रमण के मिथ्यात्व से रहित चैतन्य भगवान है। आहाहा! अब ऐसी बात। इस प्रवृत्ति में से यह किया और यह किया और यह किया। दया पालन की और भक्ति की और व्रत पालन किये, यात्राएँ कीं... यह सब कहाँ था? प्रभु! यह तो राग है, यह आत्मा में है ही नहीं। आहाहा!

चैतन्यतत्त्व को भव का परिचय नहीं है, नहीं है। चैतन्यतत्त्व को शुभाशुभ परिणति नहीं है, नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यतत्त्व सच्चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ जिनेश्वर वीतराग ने देखा वह, हों! अज्ञानी आत्मा-आत्मा करते हैं और दूसरे वेदान्त आदि आत्मा (कहते हैं), उन्होंने जाना नहीं है। आहाहा! भगवान सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने जहाँ अन्दर आत्मा हीरा शुद्ध चैतन्यघन देखा... आहाहा! ऐसे आत्मा के शुभाशुभभाव की परिणति ही नहीं है। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग-वासना, काम-क्रोध, कमाना, वह तो सब पापभाव परन्तु यह दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा, पूजा का भाव, यह पुण्यभाव—इन दोनों भावों का प्रभु को परिचय नहीं है। अन्दर तत्त्व भिन्न है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। है?

शुभाशुभ परिणति नहीं है, नहीं है। भगवान आत्मा, जिसे सर्वज्ञदेव परमेश्वर

आत्मा कहते हैं, उस आत्मा में शुभाशुभ पर्याय / परिणति नहीं है। आहाहा! क्योंकि शुभाशुभ परिणति है, वह तो पुण्य-पाप तत्त्व में जाती है और ज्ञायकतत्त्व तो उससे भिन्न है। नवतत्त्व है न? आहाहा! ऐसा जो भगवान् चैतन्यतत्त्व-वस्तु पूर्ण महाप्रभु जिसमें अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. पवित्र गुणों का सागर प्रभु है, उसे शुभाशुभभाव की दशा नहीं है। आहाहा!

कितने ही तो मात्र जानना, जानने में, जानने में रुक गये हैं, वह भी विकल्प है। आहाहा! कितने ही तो यह व्रत, तप और भक्ति-पूजा में रुक गये हैं, वह भी राग है। आहाहा! अभी इसमें कुछ है, हों! उस पुस्तक में। यह है न? उसमें पहले लिखा है, हों! ...पहले किसी ने लिखा है। उसमें कुछ है नहीं। आहाहा! बात तो ऐसी ही है। आहाहा! कहीं कोई स्त्री, पुत्र, परिवार में रुक गये, कोई कमाने में रुक गये।

मुमुक्षु : इसके बिना संसार चले कैसे ? कमाये नहीं तो खाये कहाँ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। कौन कमावे ? वह तो पैसा आनेवाला हो, वह आता है, जानेवाला हो वह जाता है, बापू!

मुमुक्षु : जिस निमित्त से आनेवाला हो, वह आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें झूठी है, झूठी। यहाँ तो शुभाशुभभाव जहाँ स्वरूप में नहीं, वहाँ फिर यह क्रिया की बातें कहाँ करना ? आहाहा! अरे रे! अरे! करने का जो भव मिला, उसमें किया नहीं और जो न करने का, वह किया। आहाहा!

कहते हैं, तीन बातें की हैं। पुद्गलस्वरूप शरीर आत्मा में नहीं है, नहीं है। भवभ्रमण का भगवान् को परिचय नहीं है, यह तो कैसे जँचे ? आहाहा! यह भवभ्रमण किया, इसने किया है, तब किसने किया है ?

मुमुक्षु : यह पर्याय ने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पर्याय, बापू! तुझे खबर नहीं है। आहाहा! वह तो एक समय की पर्याय है, उसमें सब है। वस्तु / द्रव्य में वह पर्याय नहीं है। आहाहा! ऐसा है। अरे! ऐसी बात अभी तो पूरी पड़ी रही और लगायी सब यह व्रत करो और अपवास करो और तपस्या करो... आहाहा! शास्त्र बनाओ और शास्त्र सुनो तथा पढ़ो। सब क्रियाकाण्ड

राग है। भगवान तो इस विकल्प से पार, जिसमें इस विकल्प की परिणति नहीं, अवस्था नहीं। अरे रे! ऐसे चैतन्यतत्त्व को अन्दर में से खोज। आहाहा! अस्तिरूप से महाप्रभु विराजता है, कहते हैं। आहाहा!

उसमें शरीर का, भव का, शुभाशुभ भाव का संन्यास है। नहीं है, (-ऐसा) कहकर पश्चात् कहते हैं कि उसका त्याग है, संन्यास है। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप परमानन्द का स्वभाव त्रिकाल, ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसे शरीर, शुभाशुभपरिणति और भव का तो संन्यास है, त्याग ही है। वे भिन्न हैं, वस्तु में तो उनका त्याग ही है। आहाहा! ऐसी बातें! अब लोगों को सोनगढ़ का ऐसा लगे... परन्तु वाड़ा में तो मिले वहाँ तो सर्वत्र यह करो, यह करो, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण (करो)। कहाँ सामायिक, प्रौषध हुए तुझे? अभी आत्मा कौन है, कैसा है, कहाँ है, उसकी खबर नहीं होती और सामायिक प्रौषध आये कहाँ से तुझे? आहाहा! यहाँ तो सामायिक करूँ, ऐसा जो विकल्प उठता है,... सामायिक तो कहाँ है वहाँ, परन्तु विकल्प उठता है, वह राग की परिणति द्रव्य में नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्धकार में कुछ... ऐसा लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अन्धेरे में धूल में भी नहीं है। अन्धेरा कहाँ... अन्तर जाने बिना प्रकाश का प्रकाश किये बिना, उस चैतन्यप्रकाश का प्रकाश किये बिना सब व्यर्थ है। आहाहा! वह भटक मरने का रास्ता है, भाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि शुभाशुभभाव, शरीर और भव का तो त्याग है। आहाहा! अर्थात् कि उसमें तो अभाव है। ऐसे आत्मतत्त्व को अनुभव। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे दृष्टि में लेकर अनुभव (कर), तब तुझे कल्याण का मार्ग हाथ आयेगा। ऐसा है। आहाहा!

जीव ने अनन्त भवों में परिभ्रमण किया,... अनन्त भवों में परिभ्रमण किया। देखो, जीव को नहीं (कहा), तथापि जीव ने किया, यह पर्याय। आहाहा! **गुण हीनरूप या विपरीतरूप परिणमित हुए,...** आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द प्रभु में है, उसकी पर्याय में हीन दशा हुई। आहाहा! और विपरीतरूप हुए, **तथापि मूल तत्त्व ज्यों का त्यों ही है,...** आहाहा! वस्तु जो आत्मतत्त्व है, (वह) तो ऐसा का ऐसा ही है। आहाहा! उसमें भव के भ्रमण का दाग नहीं है। आहाहा!

गुण विपरीतरूप से परिणमित हुए, ऐसी भाषा आयी। देखा ? गुण। वास्तव में तो परिणति पर्याय है परन्तु गुण की पर्याय है, इसलिए उसे गुण परिणमित हुए—ऐसा कहने में आता है। बाकी गुण तो ध्रुव है। यह क्या कहा ? गुण है और द्रव्य है, वह तो ध्रुव है, वे परिणमते नहीं परन्तु उनकी अवस्था होती है, वह परिणमती है, इसलिए गुण परिणमते हैं, ऐसा कहने में आता है। सूक्ष्म बातें, भाई ! आहाहा !

गुण हीनरूप या विपरीतरूप परिणमित हुए,... ज्ञान, दर्शन आदि हीनरूप हुए और कितने ही आनन्द आदि विपरीतरूप से—दुःखरूप आदि हुए। चारित्र गुण विपरीतरूप से हुआ, श्रद्धा गुण विपरीतरूप से (परिणमित हुआ)। पर्याय, पर्यायरूप से, तथापि मूल तत्त्व ज्यों का त्यों ही है,... आहाहा ! अरे ! यह इसे कैसे जँचे ? आहाहा ! स्वयं मिथ्यात्व करे और कहते हैं कि मिथ्यात्व का भाव द्रव्य में नहीं है। आहाहा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पर्याय की बात हुई। आहाहा ! तत्त्व तो शुद्ध चैतन्य भगवान। आहाहा ! ऐसा का ऐसा निराला, त्रिकाल है। आहाहा !

तथापि मूल तत्त्व ज्यों का त्यों ही है, गुण ज्यों के त्यों ही हैं। दोनों। तत्त्व जो द्रव्य है, वह ऐसा का ऐसा है और अनन्त ज्ञान का जो स्वभाव है, वह ऐसा का ऐसा ही है। चाहे जिस प्रकार विपरीत या हीन दशा हो; गुण और तत्त्व में तो ऐसा का ऐसा ही अनादि से है। यह कैसे जँचे ? आहाहा ! तत्त्व जो है, वस्तु त्रिकाल ध्रुव। त्रिकाल तो रहने की अपेक्षा से, बाकी वर्तमान ध्रुव—ऐसा तत्त्व है। आहाहा ! वह हीनरूप तत्त्व हुआ नहीं, ऐसे विपरीतरूप तत्त्व हुआ नहीं। पर्याय हुई, वह पर्याय उसमें है नहीं ऐसी। आहाहा ! ऐसा है।

गुण ज्यों के त्यों ही... 'ही'... हैं। आहाहा ! ज्ञानगुण हीनरूप परिणमित हुआ... निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग तक विकास रह गया। उससे कहीं उसके सामर्थ्य में न्यूनता नहीं आयी है। आहाहा ! यह क्या ? इसका जो ज्ञानगुण त्रिकाल है, उसमें उसकी कोई हीनता नहीं आयी। आहाहा ! पर्याय है, वह पर्याय उसमें नहीं है। यह तो द्रव्यस्वरूप चिदानन्द प्रभु है। आहाहा ! लोग कहीं न कहीं अटककर जिन्दगी निकाल डालते हैं। मूल चीज़ है, वह ऐसी की ऐसी और गुण भी ऐसे के ऐसे हैं, ऐसा इसे जँचे तब दृष्टि वहाँ जाये।

आहाहा! चाहे जितने मिथ्यात्व के, अव्रत के, कषाय के भाव हुए, तथापि उसके द्रव्य और गुणों में हीनता या न्यूनता हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग!

मुमुक्षु : हमें क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या चलता है ? यह भटकने का बन्द करना, ऐसा कहते हैं। यह प्रश्न नारद है। अमृतसागर भगवान है, उसे देख - ऐसा कहते हैं। बाहर में ठीक सुविधा विशी में मिले और घर में अब इसका भाई देता है, इसलिए वहाँ रुक गया है ठीक से।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बारह में किसी दिन आता है। एक, दो दिन। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि त्रिकाल स्वरूप भगवान और त्रिकाल स्वरूप गुण... आहाहा! वे हीन या अधिक हुए नहीं। वे तो जैसे हैं, वैसे के वैसे रहे हैं। आहाहा! उसका अन्तर (में) जाकर स्वीकार कर। जो पूरा द्रव्य और पूरे गुण हैं, उनका स्वीकार पर्याय में कर। यह स्वीकार करनेवाली पर्याय भी उसमें नहीं है। आहाहा! थोड़ा पढ़ा है, मैंने उसे पूछा था तो कहे, थोड़ा पढ़ा है। कहा, यह पढ़ा है। कहा, इसमें सब है।

मुमुक्षु : आपकी उपस्थिति में और अकेले पढ़े, उसमें अन्तर तो होगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पढ़े तो सही पहले यह क्या है। बहुत साररूप तत्त्व है। आहाहा!

जैसे कि आत्मा में ज्ञानगुण है। ज्ञायक ज्ञान, ज्ञानस्वभाव। वह गुण हीनरूप परिणमित हुआ, इससे कहीं उसकी सामर्थ्य में हीनता आयी नहीं है। पर्याय में हीनदशा निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग पर्याय हुई, तथापि ज्ञानगुण में हीनता और न्यूनता नहीं हुई। आहाहा! यह तत्त्व कोई आश्चर्यकारी है। आहाहा! निगोद के जीव में अक्षर के अनन्तवें भाग उघाड़ रहा है।

मुमुक्षु : अक्षर अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अक्षर अर्थात् न खिरे ऐसा। केवलज्ञान आदि अक्षर है। उनका अनन्तवाँ भाग जहाँ विकास का रह गया है थोड़ा सा।

मुमुक्षु : यह क का आदि यह अक्षर नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अक्षर यहाँ नहीं। आहाहा! अक्षर—अ—नहीं खिरे। जो नाश न हो ऐसा जो केवलज्ञान, उसके अनन्तवें भाग निगोद में पर्याय रह गयी। आहाहा! तथापि उसके गुण में और द्रव्य में कहीं हीनता नहीं आयी, प्रभु! आहाहा! वहाँ नजर करनेयोग्य है। राग में नहीं, निमित्त में नहीं, हीन अवस्था में नहीं, विपरीत अवस्था में नहीं। आहाहा! सुलटी अवस्था में भी नहीं। यह त्रिकाली भगवान आत्मा ऐसा का ऐसा और गुण इतना का इतना है, उसमें नजर करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। बोलना न आवे, समझना न आवे, वह चीज़ एक ओर रह गयी, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

अन्तर में पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण गुण, पूर्ण स्वरूप है। अद्भुत बात है, भाई! इस ज्ञानगुण की पर्याय में हीनता का पार नहीं होता, तथापि गुण है, वह तो ऐसा और इतना रहा है। यह तो कोई (बात है)! आहाहा! और केवलज्ञान की पर्याय हो तो भी गुण तो इतना का इतना रहा है। आहाहा! केवलज्ञान की इतनी बड़ी पर्याय आयी। आहाहा! तीन काल—तीन लोक को जाने, अपने त्रिकाली द्रव्य को जाने, गुण को जाने, अपने को जाने और अपनी अनन्त पर्यायों (को जाने)। अनन्त—अनन्त गुण जिनकी कमी नहीं, हद नहीं, उन्हें जाने और एक समय की अनन्त पर्यायें हैं, उन्हें जाने और भविष्य की अनन्त—अनन्त पर्यायें (होंगी), उन्हें भी वह पर्याय जानती है। ऐसी जो एक समय की पर्याय, तथापि ज्ञानगुण तो इतना और ऐसा रहा है। अरे! यह क्या? भाई! विस्मयकारी चीज़ ही ऐसी है। आहाहा! अद्भुतात् अद्भुतम्। यह चैतन्य का मूलस्वरूप ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक समय की पर्याय और सब पदार्थों को जानना, यही अद्भुत बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय (प्रगट हो), तथापि आत्मा में कोई हीनता, न्यूनता हुई नहीं—ऐसा यहाँ तो कहना है। आहाहा! केवलज्ञान में एक समय की अनन्त पर्यायें हैं। केवलज्ञान की, दर्शन की, आनन्द की, शान्ति की ऐसी अनन्त पर्यायें। वे कितनी? एक समय में अनन्त?—कि जिनका कोई अन्त नहीं। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त का गुणाकार करते... करते... करते अनन्त—अनन्त करो तो भी एक समय की पर्यायें इतनी, यह अन्तिम—ऐसा नहीं है। आहाहा! बापू! यह क्या चीज़ है? अरे रे!

ऐसे आत्मा में अनन्त-अनन्त गुण, उन्हें अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसे करते-करते अनन्त अनन्त को ले जाये अन्तिम तो भी यह अन्तिम अनन्त जिसमें नहीं है और अन्तिम अनन्त की अन्तिम पर्याय, गुण, वह जिसमें नहीं है। आहाहा! अरे! भगवान् चैतन्य परमात्मस्वरूप को कहाँ सुना है, भाई! आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के घर में यह बात होती है, यह अन्यत्र कहीं नहीं होती। इसे तो अभी तो वाड़ेवालों को भी खबर नहीं। यह करो और यह करो, यह करो... परन्तु क्या चीज़ है यह अन्दर (कुछ भी पता नहीं होता)। आहाहा!

यह कहते हैं, उससे कहीं उसके सामर्थ्य में न्यूनता नहीं आयी है। आनन्द का अनुभव नहीं है, इसलिये आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है,... यह क्या कहते हैं? पर्याय में अनादि से दुःख का अनुभव है। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान् का अनुभव नहीं है, तथापि वह अतीन्द्रिय आनन्द कुछ कम हो गया है या घट गया है, ऐसा नहीं है। वह तो इतना और ऐसा अनन्त आनन्दगुण है। आहाहा! निगोद के जीव एक श्वास में अठारह भव करते हैं, वह कितना दुःख होगा? आहाहा! मिथ्यात्व के दुःख का पार नहीं होता। उस मिथ्यात्व में अनन्त-अनन्त दुःख होने पर भी, उस समय का जो आनन्द (गुण) है, वह तो इतना का इतना रहा है। आहाहा! अर्थात् कि कहीं आनन्दगुण कम हो गया है, चला गया है अर्थात् क्या? कि पर्याय में आनन्द का अनुभव नहीं है, इसलिए आनन्द गुण कहीं चला गया है और नहीं है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

पर्याय में व्यक्त जो प्रगट दशा है, उसमें आनन्द गुण का अनुभव नहीं है, दुःख का अनुभव है। उसका पर्याय में अनुभव नहीं है, इसलिए आनन्द वहाँ है ही नहीं अथवा आनन्द की दशा कम हो गयी है अथवा आनन्द पर्याय में नहीं है; इसलिए आनन्द ऐसा बड़ा जब्बर है (ऐसा नहीं है)। वह तो आनन्द है उतना है। ऐसी बातें हैं। आहाहा!

अनादि अज्ञानी संसारी प्राणी को पर्याय में दुःख का वेदन है, आनन्द का नहीं, तथापि उस पर्याय में आनन्द का अनुभव नहीं है; इसलिए वह आनन्द गुण नहीं है तथा आनन्द गुण में कमी है तथा नहीं है, इसलिए आनन्द गुण पुष्ट-बड़ा है, (ऐसा नहीं है)। वह तो जितना है उतना है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। आहाहा! अरे रे! इसने कभी अपनी शोध नहीं की। यह सब शोध करते हैं न? यह अमुक शोधो और शास्त्र शोधो और

यह शोधो... यह शोधान्त आता है न सब ? वह सब एक ओर रहा । प्रभु ! तू कहाँ है, उसकी तूने शोध नहीं की । आहाहा !

तेरा तत्त्व अन्दर पूर्णानन्द से भरपूर है । वर्तमान पर्याय में आनन्द का अभाव होने पर भी उसके स्वभाव में तो आनन्द का पूर्ण-पूर्ण भाव है । आहाहा ! वर्तमान पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का अज्ञानदशा में अनुभव नहीं है, इसलिए वह आनन्द नहीं है—ऐसा नहीं है । आहाहा ! समझ में आया ? यह तो मक्खन है । आहाहा ! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त काल में इसे एक समय की पर्याय में कभी आनन्द आया नहीं, आनन्द का अनुभव नहीं । इसलिए वह आनन्द इसमें नहीं है, ऐसा नहीं है । आहाहा ! ऐसी बातें सुनना कठिन पड़ती है । आहाहा !

आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है, नष्ट नहीं हो गया है,... पर्याय में आनन्द नहीं है, इसलिए कहीं आनन्द नष्ट हो गया होगा, ऐसा नहीं है । आहाहा ! तथा घिस नहीं गया है । पर्याय में आनन्द नहीं है, इसलिए आनन्द गुण घिस गया है, (ऐसा नहीं है) । आहाहा ! शक्तिरूप से सब ज्यों का त्यों रहा है । यह बहुत सरस पैराग्राफ है । आहाहा ! कहो, शक्तिरूप से—स्वभाव के सामर्थ्यरूप से—इसके सत्त्व की परिपूर्णतारूप से—सब ऐसा का ऐसा ही है । आहाहा ! ऐसा उपदेश । वह तो इच्छामि पडिकम्मणां... तस्स मिच्छामि दुक्कडम्.... हो गयी सामायिक । धूल में भी नहीं, सुन न ! लोगस्स में उज्जोयगरे धम्म तिथियरे जिणे... अरे ! इसकी खबर नहीं होती ।

‘विहुयरयमयला’ । कहा न ? एक महिला सामायिक करके बैठी, उसमें यह आया । ‘विहुयरयमयला’ दशाश्रीमाली महिला थी और विशाश्रीमाली का विरोध था । लींबड़ी की बात है । ‘विहुयरयमयला’ (आया) तो कहे, इसमें विशा रोईमलया ऐसे अभी शब्द की खबर नहीं होती । सामायिक की थी, धर्म किया था । वहाँ तो सब मिथ्यात्व है । आहाहा !

मिथ्यात्व और दुःख होने पर भी स्वरूप में कभी हीनता नहीं हुई । आहाहा ! यह तो क्या चीज़ है ? और सर्वज्ञ को अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द आया, तथापि वहाँ आनन्द कम हुआ है, (ऐसा नहीं है) । शक्ति तो इतनी की इतनी, इतनी की इतनी है । आहाहा ! ऐसा आनन्द का स्वभाव भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ इन्द्रों की सभा में यह कहते थे, वह यह बात है । आहाहा ! पूरा का पूरा, ऐसा का ऐसा गुण है ।

अनादि काल से जीव बाहर भटकता है,... आहाहा! यह विकल्प का जाल जो इसमें नहीं है। यहाँ कहना क्या है? कि इसमें है, वह सब पूर्ण है, उसमें यह नजर करता नहीं परन्तु जो विकल्प का जाल, संकल्प-विकल्प, पुण्य-पाप... आहाहा! उनमें रुक गया है। बाहर ही भ्रमता है, बस! अन्तर में परमात्मा पूर्णानन्द पड़ा है, उसकी नजर नहीं करता। आहाहा! अर्थात् कि पर्यायबुद्धि नहीं छोड़ता और द्रव्यबुद्धि नहीं करता। आहाहा!

अनादि काल से जीव बाहर भटकता है, अति अल्प जानता है,... आहाहा! जानने की पर्याय में बहुत कम जानता है। भगवान तो पूर्ण ज्ञानगुण स्वभाव है, परन्तु बाहर भ्रमते हुए पर्याय में बहुत कम जानता है। भले वह ग्यारह अंग का ज्ञान हो तो भी बहुत कम है। आहाहा! अरे! बारह अंग का ज्ञान धर्मी को, समकित्ती को ही होता है तो भी वह बहुत कम है। आहाहा! यह तो अनादि अज्ञानी की बात है। उसे ग्यारह अंग का विकास अनन्त बार हो गया है परन्तु वह बहुत कम, बहुत कम, बहुत विपरीत है वह तो। आहाहा!

आकुलता में रुक गया है,... देखा! आहाहा! ज्ञान बहुत कम और उसमें आकुलता है क्योंकि त्रिकाली अनाकुल भगवान पूर्ण ज्ञानस्वरूप की तो दृष्टि नहीं, उसका स्वीकार तो नहीं। सम्यक् स्वीकार, पूर्ण का सम्यक् स्वीकार। आहाहा! सम्यक् दर्शन अर्थात् सम्यक् सत्य, पूर्ण सत्य, पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... सत्य, पूर्ण गुण का एकरूप, ऐसी सम्यक्श्रद्धा उसे नहीं है। आहाहा! इससे वह तो आकुलता में रुक गया है,... मिथ्यात्व भाव है, वह आकुलता है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति का राग, उससे मुझे लाभ होगा, वह मिथ्यात्वभाव आकुलता-दुःखरूप है। अरे रे! ऐसी बात कहाँ? आहाहा!

तथापि चैतन्यद्रव्य और उसके ज्ञान-आनन्दादि गुण ज्यों के त्यों... आहाहा! वस्तु है न? जगत की चीज़ है वह और वस्तु है तो उसमें बसे हुए—रहे हुए अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण ध्रुव हैं। आहाहा! ज्यों के त्यों स्वमेव सुरक्षित रहे हैं,... आहाहा! उन्हें सुरक्षित करना पड़ा, इसलिए रहे हैं, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण सुरक्षित रहे हैं। आहाहा! लोग कहते हैं न, भाई! यह अमुक पुस्तक तुमने रखी है, अमुक चीज़ सुरक्षित रखी है? कि, हाँ। यह तो सुरक्षित ही रहा है। आहाहा! अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण और द्रव्य सुरक्षित ही रहे हैं। इन्हें सम्हाला नहीं, इसलिए सुरक्षित रहा है, ऐसा नहीं है। उसे सम्हाला नहीं, माना नहीं, इसलिए वह

सुरक्षित रहा है, ऐसा नहीं है। वह सुरक्षित ही रहा है। आहाहा! ऐसा कहाँ है ?

उनकी सुरक्षा नहीं करनी पड़ती। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त गुणों का स्वरूप प्रभु की सुरक्षा नहीं करनी पड़ती। वे सुरक्षित ही रहे हैं। आहाहा! ऐसा उपदेश! सम्प्रदाय में तो यह मिलता है (कि) यह करो और यह करो, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। वह सब क्रिया तो राग है, उसमें कहीं आत्मा है नहीं। वह राग भी आत्मा में है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : पुद्गल परिणाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल परिणाम। निकल जाये, वह आत्मा का कैसा? आत्मा के ज्ञान और आनन्द कभी निकलते नहीं। वे उसके हैं। आहाहा! कठिन काम, भाई! जन्म-मरण का अन्त लाने की बातें, बापू! आहाहा!

सुरक्षित रहे हैं। भाषा तो देखो! एकदम सादी (भाषा है) अर्थात् ध्रुव है, वह ध्रुवरूप ही रहे हैं। ध्रुव की सुरक्षा करनी पड़े तो ध्रुव रहे, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसलिए फिर लोग ऐसा कहे न, यह सोनगढ़ की अकेली निश्चय की बातें करते हैं। परन्तु यह करना व्यवहार का कुछ कहते नहीं। अरे! सुन न, प्रभु! यह करने का तू कहता है, उसका निषेध तो यहाँ आता है। आहाहा! यह करूँ और यह करूँ, दया पालन करूँ, व्रत करूँ, उपवास करूँ। करूँ.. करूँ है, वहाँ तो राग का भाव है, वहाँ तो मरना-मरना है। आहाहा! भाई में आता है, सोगानी में (आता है)। करना, वह मरना है। परन्तु यह बात (समझने की) अभी किसे निवृत्ति है? बनियों को हाथ यह जैनधर्म आया और बनिये निवृत्त नहीं होते। उस जापानी ने लिखा है। आहाहा! पूरे दिन यह कमाना, यह कमाना और होली सुलगती ही रहती है। आहाहा! अधिक पैसे होवें तो और लड़कों को अलग करके सबकी दुकानें अलग-अलग करो, एक साथ इकट्ठे मत बैठो। यह बड़ी होली जली। आहाहा! और बहुत पैसा हुआ हो, लड़का न हो तो गृहस्थों को रखे कि देखो पाँच लाख देता हूँ। एक प्रतिशत का ब्याज और आमदनी हो, उसका आधा भाग मेरा, महीने में मैं देखने आऊँगा। आहाहा! ऐसे भी हैं न अभी अरबोंपति। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्यान रखने जाना पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान रखने जाये। इन रुपयों का अभी, परन्तु तब तो आठ आना (था)। आठ आने का ब्याज लूँगा और इस धन्धे में आमदनी हो, उसका आधा भाग मेरा और आधा भाग तेरा और महीने-महीने में बहियाँ देखने आऊँगा। इस उपाधि का पार (नहीं होता)। आहाहा! नहीं शान्तिलाल खुशाल? क्या कहलाता है? गोवा, दो अरब चालीस करोड़ रुपये। दशाश्रीमाली बनिया था। पाणासणा का। दो अरब चालीस करोड़। मरते पैसा नहीं मिलता, वह सब उसमें रह गये हैं, मशीन में और बीस लाख रुपये टके के ब्याज से प्रयोग करने के लिये लेना पड़े। आहाहा! मकान में और मशीन में लग गये। एक टके का कुछ डेढ़ टके का कोई कहता था। अभी अन्तिम था न, वह मर गया पाँच मिनट में। एकदम हार्ट दुःखता है, कुछ दुःखता है, कहे, बुलाओ (डॉक्टर को) एक व्यक्ति वहाँ उसका रिश्तेदार खड़ा था। मुम्बई में है, वह कहता था कि मैं खड़ा था। मुझे कहा। मैं जहाँ डॉक्टर को लेने गया, आकर (देखा) वहाँ तो... जाओ भटकने चार गति में। अर र र! यहाँ दो अरब चालीस करोड़, चालीस लाख के मकान, चालीस लाख का एक मकान, दस दस लाख के दो मकान, साठ लाख के मकान गोवा में, आहाहा! यह सत्रह लाख का मकान यहाँ नहीं? आमोदवाले रमणीकभाई! उनके मकान में उतरे थे न। सत्रह लाख का एक मकान। पाँच - छह करोड़ रुपये हैं। वह यहाँ आनेवाला है न? बड़ोदरा। मन्दिर का खातमुहूर्त करने आनेवाला है। मगसिर शुक्ल दस। आहाहा!

अरे रे! भाई! तेरा स्थान कहाँ है? यह स्थान तेरा है? यहाँ तो राग भी तेरा स्थान नहीं है। आहाहा! दया, दान का राग वह तेरा स्थान नहीं है। तेरा स्थान तो स्वयं ज्योति सुखधाम। आहाहा! चैतन्य का स्थान तो वह है। आहाहा!

उसमें गुण स्वयमेव सुरक्षित रहे हैं, उनकी सुरक्षा नहीं करनी पड़ती। आहाहा! — ऐसे परमार्थस्वरूप की सम्यग्दृष्टि जीव को... ऐसे परमार्थस्वरूप, आहाहा! ऐसे परमार्थस्वरूप की सम्यग्दृष्टि जीव को अनुभवयुक्त प्रतीति होती है। आहाहा! समझ में आया? तब उसे धर्मी व समकिति कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सब बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत ही बात आयी। आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : यह तो निश्चय सम्यक्त्व हुआ, व्यवहार सम्यक्त्व कहाँ गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : था कहाँ ? व्यवहार समकित ही नहीं है। व्यवहार समकित राग है। वह भी आत्मा में नहीं है। आहाहा! व्यवहार-प्यवहार तो राग है। वह तो शुभ परिणति है, वह आत्मा में कहाँ है ? आहाहा! यह बात अलग है। आहाहा! वहाँ 'जरिया' में मिले, ऐसा नहीं है। क्या इसका ? धनबाद। धनबाद। लक्ष्मी का धन है, वहाँ बाद है उसमें। चैतन्य लक्ष्मी। आहाहा!

ऐसे परमार्थस्वरूप की... ऐसे परमार्थस्वरूप की, पर्याय में दुःख होने पर भी, आनन्द की पर्याय न होने पर भी। समकित दृष्टि को तो आनन्द की पर्याय प्रगट है और इसलिए वह पूर्ण स्वरूप है और दुःख के समय भी वह पूर्ण स्वरूप था, ऐसी सम्यग्दृष्टि को अन्तर में अनुभवसहित प्रतीति होती है। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि जीव को अनुभवयुक्त...** आत्मा में पूर्ण स्वभाव के अनुभवयुक्त यह प्रतीति होती है। आहाहा! बहुत सरस बात आयी है। थोड़ा देखा है, हों! एक घण्टे चला। चार मिनट (बाकी है)। आहाहा!

आहाहा! धर्मी, पहली श्रेणीवाला धर्मी सम्यग्दृष्टि को ऐसा द्रव्य और गुण परमार्थ से पूर्ण है। पर्याय में चाहे जितनी हीन और विपरीतता हो गयी और अभी भी हीन हो, तथापि वस्तु पूर्ण गुण और द्रव्य से भरपूर है, घिसी हुई नहीं है, नष्ट नहीं है, अपूर्ण नहीं है। आहाहा! ऐसी सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ीवाले को उसकी अनुभवयुक्त प्रतीति होती है अर्थात् उसका ज्ञान करके अनुभवयुक्त प्रतीति होती है। आहाहा! उसने लिखा है, विज्ञान के आईने में ज्ञात महावीर, ऐसा लिखा है। यह विज्ञान का विज्ञान सब बातें करते हैं न ? सबको मिथ्या सिद्ध किया है। यह विज्ञान का विज्ञान है। भगवान ने कहा वह। आहाहा!

मुमुक्षु : वीतरागी विज्ञान है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागी विज्ञान है। वह पुस्तक है कहीं। वहाँ था कुछ। जैनजगत या किसी में है। देखूँगा अन्दर, हों! पढ़ने जैसा है। आहाहा! यह ३६९ (बोल पूरा) हुआ। पैराग्राफ.....

जिसे आत्मा का करना हो तो उसे आत्मा का ध्येय ही सन्मुख रखने योग्य है। 'कार्यों' की गिनती करने की अपेक्षा एक आत्मा का ध्येय ही मुख्य रखना, वह उत्तम है। प्रवृत्तिरूप 'कार्य' तो भूमिका के योग्य होते हैं।

आत्मा को मुख्य रखकर जो क्रिया हो, उसे ज्ञानी देखते रहते हैं। उनके सर्व कार्यों में 'आत्मा समीप जिसे रहे' ऐसा होता है। ध्येय को वे भूलते नहीं हैं ॥३७०॥

३७०, जिसे आत्मा का करना हो... आत्मा का करना हो। पर का नहीं, राग का नहीं, पुण्य का नहीं। आहाहा! जिसे आत्मा का करना हो... आहाहा! उसे आत्मा का ध्येय ही सन्मुख रखने योग्य है। उसे तो आत्मा ज्ञायक पूर्ण, गुण से पूर्ण वह उसके ध्यान में ध्येय करने योग्य है। आहाहा! जिसे आत्मा का करना हो... आहाहा! उसे आत्मा का ध्येय ही सन्मुख रखने योग्य है। आत्मा का ही ध्येय, ऐसा। पर्याय नहीं, राग नहीं, निमित्त नहीं। आत्मा पूर्णानन्द प्रभु को ध्येय में, ध्यान के ध्येय में, ध्यान के विषय में उसे बनाने योग्य है। आहाहा!

'कार्यों' की गिनती करने की अपेक्षा एक आत्मा का ध्येय ही मुख्य रखना... कार्यों की गिनती करने की अपेक्षा... मैंने ऐसे कार्य किये, पुण्य किया और दया पालन की, व्रत पालन किया... छोड़ दे न अब यह सब। हमने बहुत शास्त्र वांचन किये और बहुत शास्त्र पढ़े। इन कार्यों की गिनती छोड़ दे। आहाहा! एक आत्मा का ध्येय ही मुख्य रखना वह उत्तम है। आहाहा! प्रवृत्तिरूप 'कार्य' तो भूमिका के योग्य होते हैं। परन्तु उन कार्यों की गिनती में रुका रहे कि इतने किये, इतने किये, इतने किये, हमने तो इतने किये... आहाहा! रहने दे। आत्मा को ध्येय करने योग्य है, बाकी करने योग्य नहीं है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल -८, बुधवार, दिनाङ्क ०८-११-१९७८
वचनामृत-३७० से ३७२ प्रवचन-१४४

३७० फिर से। जिसे आत्मा का करना हो... आत्मा का कार्य जिसे करना हो, उसे आत्मा का ध्येय ही सन्मुख रखने योग्य है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, जो सम्यग्दर्शन का विषय / ध्येय है, वह कायम आत्मा का (ध्येय है)। सम्यग्दर्शन होता है, वह भी ध्रुव के ध्येय से होता है और इसके पश्चात् ध्रुव जो चीज़ है, उसके ध्येय को रखकर कार्यों की गिनती करनेयोग्य नहीं है। अर्थात् क्या ? आहाहा! इतना पढ़ा, इतने मन्दिर बनाये और इतनों को समझाया तथा इतनी पुस्तकें बनायीं, ऐसे विकल्प के कार्यों की गिनती करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! वे कार्य तो उनसे होते हैं परन्तु जो विकल्प आता है, वह कार्य गिनती करनेयोग्य नहीं है। क्योंकि वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

भूतार्थ जो सत्यार्थ प्रभु पूर्ण, उसके ध्येय को पकड़ा है... यह दृष्टान्त दिया नहीं था घो का ? चन्दन घो होता है, ऐसे डाले (वहाँ) चिपक जाता है। फिर बहुत चार मण का परन्तु फिर भी रस्सी चढ़े तो वहाँ से गिरे नहीं। वह घो खिसकता नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जिसे दृष्टि में, ध्येय में लिया है... आहाहा! उस आत्मा का प्रथम कर्तव्य है और उस देह को चूककर कुछ भी काम... आदि होते हैं, वे उसके कार्य नहीं हैं और वह कार्य होता है, उसकी गिनती नहीं करना कि हमने तो बहुत इतनी पुस्तकें बनायीं और इतने मन्दिर बनाये। पचास हजार, लाख लोग धर्म को प्राप्त हुए। आहाहा! वह तो सब विकल्प है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : धर्म को प्राप्त हुए, यह सत्य है। धर्म को प्राप्त हुए ऐसा विकल्प....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे विकल्प की गिनती में करे कि मैंने इतनों को समझाया, वह

निरर्थक है। विकल्प बन्ध का कारण है। आहाहा! इतने व्याख्यान पढ़े। पचास-पचास हजार लोगों में, दस हजार (लोगों में)। वह क्या चीज़ है? वह तो विकल्प है, भाई! हमने इतनी दया पालन की, इतनी भगवान की भक्ति, परमात्मा की स्तुतियाँ की हैं। आहाहा! उन सब विकल्प के कार्यों की गिनती करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! चैतन्य ज्ञायकस्वरूप परमात्मा... आहाहा!

एक पण्डित आशाधर थे, (उन्होंने) एक हजार आठ लक्षण से... आहाहा! परमात्मा की स्तुति की है। परन्तु ऋषभदेव भगवान की स्तुति इन्द्रों ने की है। आशाधरजी ने स्वयं की है। उस समय तो भगवान नहीं थे। यह तो भगवान होवे, तब इन्द्र ने स्तुति की है।

मुमुक्षु : उस इन्द्र ने स्तुति की, वह स्तुति किसने याद रखी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह रखी इसने, कोई व्यक्ति ने वहाँ। इन्द्र ने स्वयं बनायी है कि यह ऐसे भगवान की स्तुति करते हैं। वे बोले, उनका भाव लिखा हुआ है। आहाहा! उस समय की ऋषभदेव भगवान के समय में हुई वह बात भी उपस्थित होती है न! आहाहा! परम्परा से बात आ गयी है। एक हजार आठ लक्षण से स्तुति करके मैंने बहुत स्तुति की, ऐसे विकल्प की गिनती करने योग्य नहीं है। आहाहा!

कार्यों की गिनती करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! मैंने इतना पढ़ा और इतनी पुस्तकें देखी और इतनी पुस्तकें लिखीं। बापू! वह तो सब जड़ की क्रिया है। आहाहा! उसमें विकल्प उठता है, वह राग है। उस राग के कार्य की गिनती करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! अरे रे! जगत कहाँ है? उसे आत्मा अखण्ड आनन्द प्रभु, उसे जो दृष्टि में-ध्येय में लिया है, आहाहा! वह दृष्टि जहाँ ध्रुव पर चिपटी है, उसे किसी प्रसंग में ध्येय को चूकनेयोग्य नहीं है। आहाहा!

वह गिनती करने की अपेक्षा एक आत्मा का ध्येय ही मुख्य रखना... आहाहा! शुद्ध चैतन्य भगवान, परमानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा के ध्येय को मुख्य रखना। ऐसा है। भगवान के मन्दिर बनाये और भगवान की इतनी भक्ति की, पाँच-दस करोड़ रुपये खर्च किये... वह तो जड़ की क्रिया है।

मुमुक्षु : भरत महाराज ने मन्दिर बनाया, चौबीसी बनायी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब विकल्प था। उसे बनाया नहीं। बना है परमाणु की पर्याय से परन्तु उसमें विकल्प था। ऐसा है। आहाहा! वह विकल्प तो राग है। ऐसी बातें, बापू! जगत ने तत्त्व सुना नहीं। आहाहा! वह तो चैतन्य ज्ञायक जानन-देखन स्वभाव स्वरूप वस्तु प्रभु, उस विकल्प को करे कहाँ से? आवे, आवे उसका जाननेवाला रहे। उसकी गिनती न करे कि इतने-इतने काम मैंने किये। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! वीतरागमार्ग कोई अलग प्रकार है। आहाहा! हमेशा भगवान की प्रतिमा के निकट जाते हैं, स्तुति करते हैं। अरे! समवसरण में अनन्त बार गया है। सम्यग्दृष्टि होवे तो अनन्त बार तो नहीं जायेगा। वह तो होने के बाद थोड़ा काल रहता है। वह भी स्तुति, भक्ति करने जाता है तो उसके विकल्प की उसे गिनती नहीं होती। जो होता है, उसे जानता है। आहाहा! ऐसा बहुत कठिन काम है, बापू!

मुख्य रखना वह उत्तम है। आहाहा! प्रवृत्तिरूप 'कार्य' तो भूमिका के योग्य होते हैं। होते हैं। चौथे, पाँचवें, छठवें (गुणस्थान में) उसकी भूमिका के योग्य राग का विकल्प आता है, परन्तु उसकी मुख्यता नहीं है। आहाहा! वह चीज़ कोई साधनेयोग्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बीच में ऐसा व्यवहार आता है। आहाहा! ऐसा काम! उसे वह जानता है। है? ज्ञानी **आत्मा को मुख्य रखकर...** धर्मी उसे कहते हैं... आहाहा! कि चैतन्य ज्ञान, आनन्द आदि स्वरूप ऐसे भगवान को मुख्य रखकर जो क्रिया हो, रागादि के परिणाम आवें, उसे देखते रहते हैं। आहाहा! यह तो मैंने किया और मैंने किया तथा यह करते हैं और बाहर प्रसिद्ध होंगे। आहाहा! वह तो मिथ्या अभिप्राय है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानी, **आत्मा को मुख्य रखकर जो क्रिया हो, उसे ज्ञानी देखते रहते हैं। उनके सर्व कार्यों में 'आत्मा समीप जिसे रहे'** आहाहा! कार्य में राग होने पर भी आत्मा दृष्टि में समीप है, ऐसा। दृष्टि में से भगवान पृथक् नहीं पड़ता। आहाहा! ऐसा काम है। आहाहा! ध्यान करने बैठे वहाँ भी विकल्प है क्योंकि वस्तु अन्दर जानी नहीं है। अन्दर क्या चीज़ है? आहाहा! इससे ऐसा का ऐसा आँख बन्द करके बैठे, फिर विकल्प किया करे। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है, नहीं? अभ्यन्तर तप है, वह भी इसने किया है। विनय, वैयावृत्त्य, सज्जाय, ध्यान, व्युत्सर्ग किये हैं, वह विकल्प है। आहाहा!

वास्तविक अन्तर चैतन्य प्रभु, सहजात्म शुद्ध चैतन्यघन, जिसे दृष्टि में आया नहीं, जिसके ज्ञान में ज्ञात नहीं हुआ, वह किसका ध्यान करे ? आहाहा ! यह विचार में विकल्प का जाल चला करता है, उसे वह ध्यान मानता है। आहाहा ! क्योंकि चैतन्यस्वरूप ज्ञायकमूर्ति प्रभु, असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का विस्तार पड़कर बादशाह पड़ा है। आहाहा ! ऐसे बादशाह की जिसे नजर नहीं, उसे ये पामर क्रियाएँ जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि मानी हुई (करे, उसकी गिनती करता है)। आहाहा ! भगवान की भक्ति और पूजा में राग है, वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा ! वह यदि आत्मा के ध्येय को चूककर हो, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा !

ज्ञानी को-धर्मी जीव को, जिसे ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि का अनुभव हुआ है... आहाहा ! उसे तो आत्मा को मुख्य रखकर क्रिया होती है, उसे देखा करे। आहाहा ! वास्तव में तो ये रागादि आते हैं, उस काल में भी ज्ञान की स्व-पर प्रकाशक पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह होगी। आहाहा ! राग को जानता है न ? जानने का अर्थ है कि ज्ञान की पर्याय में, उस राग के समय भी, स्व-पर प्रकाशक ज्ञान की पर्याय परिणमित होती है, उसमें राग ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं। वास्तव में तो स्व-पर प्रकाशक पर्याय ज्ञात होती है। आहाहा ! ऐसी बातें ! लोगों को जँचना कठिन। यह सामायिक की और प्रौषध किये और प्रतिक्रमण किया... वह सब राग की क्रिया है। यहाँ कहाँ सामायिक थी ? यह भगवान की भक्ति करे, धूमधाम से (पूजा करे) झाँझर बजाकर... आहाहा ! राग (लय) तानकर... वह सब जड़ की क्रिया है। उसमें राग मन्द होवे तो शुभभाव होता है, वह जाननेयोग्य है, वह कहीं आदरनेयोग्य नहीं है। आहाहा !

उनके सर्व कार्यों में 'आत्मा समीप जिसे रहे'... धर्मी उसे कहते हैं कि सर्व विकल्प आदि कार्य के समय भी भगवान ही जहाँ दृष्टि में समीप वर्तता है। आहाहा ! राग पर के लक्ष्य से हुआ, तथापि स्वलक्ष्य की दृष्टि का विषय है, वह छूटता नहीं है। आहाहा ! ऐसा है। यह निर्णय करने की फुरसत नहीं मिलती। आहाहा ! ऐसा होता है। 'समीप जिसे रहे' ऐसा होता है। ध्येय को वे भूलते नहीं हैं। आहाहा ! चाहे जैसे विकल्प के (काल में भी)। समझाने का विकल्प उठे, वह भी राग है। राग है, इसलिए मुझे धर्म होता है; दूसरे समझेंगे, इसलिए लाभ होगा, यह बात है ही नहीं। आहाहा ! इसी प्रकार जो राग हुआ है,

वह कुछ लाभदायक नहीं है। आहाहा! लाभदायक तो राग का ध्येय छोड़कर उसका (-आत्मा का) ध्येय करे, तब राग का ज्ञान स्वयं से स्व-पर प्रकाशक होता है, वह लाभदायक है। अरे! ऐसी सब शर्ते। यह कहाँ? आहाहा! ३७० (बोल पूरा हुआ)।

जैसे स्वप्न के लड्डुओं से भूख नहीं मिटती, जैसे मरीचिका के जल से प्यास नहीं बुझती, वैसे ही परपदार्थों से सुखी नहीं हुआ जाता।

‘इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे ॥’

—यही सुखी होने का उपाय है। विश्वास करो ॥३७१॥

३७१, जैसे स्वप्न के लड्डुओं से भूख नहीं मिटती,... अर्थात्? सपने में भूख लगी हो और उसमें लड्डू तैयार होकर खाये, इससे कहीं भूख मिटेगी?

मुमुक्षु : सपने के लड्डू खाये किस प्रकार जायें?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा आता है। लड्डू बनाये हैं और खाते हैं तथा हलवा बनाया है, उसे खाते हैं, यह स्वप्न होता है। आहाहा! सपने के लड्डुओं से भूख नहीं भागती।

जैसे स्वप्न के लड्डुओं से भूख नहीं मिटती, जैसे मरीचिका के जल से प्यास नहीं बुझती,... आहाहा! मृगतृष्णा होती है न? मरीचिका जल। जल नहीं, उससे कहीं प्यास नहीं बुझती। आहाहा! वैसे ही परपदार्थों से सुखी नहीं हुआ जाता। तीन लोक के नाथ तीर्थकर हैं, उनकी भक्ति भी राग है। उससे सुखी नहीं हुआ जाता। आहाहा! ऐसा है। परपदार्थों से सुखी नहीं हुआ जाता। चाहे तो देव, गुरु और शास्त्र हो परन्तु परपदार्थ से आत्मा को लाभ हो, ऐसा नहीं है। भगवान त्रिलोकनाथ वीतरागदेव तो ऐसा कहते हैं, तेरे सन्मुख देखे बिना अकेला मेरे सन्मुख देखेगा तो तुझे राग होगा, क्योंकि हम परद्रव्य हैं। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की वाणी में यह आवे कि हमारे तुम दर्शन करो और हमें सुनने का लक्ष्य रखो, वह तुम्हें राग है। आहाहा!

‘सुणाह’ आज सवेरे आया था पंचास्तिकाय। अन्यत्र ‘वोच्छामि’ आता है। समयसार

में। पंचास्तिकाय में (दूसरी गाथा में) 'सुणह वोच्छामि' दो बोल आये। सुन! हम कहते हैं। आहाहा! 'सुणह वोच्छामि' ऐसा शब्द वहाँ है। दूसरी गाथा। पंचास्तिकाय संग्रह, आज सञ्जाय नहीं की थी? आहाहा! उसमें 'सुणह' नहीं आता। समयसार की पहली गाथा में 'वोच्छामि' आता है। 'वोच्छामि'। प्रवचनसार में पहले सबको वन्दन करते हैं। हम कहेंगे। 'वोच्छामि' आता है। नियमसार में आता है। परन्तु यहाँ तो 'सुणह' एक बार सुन! हम पंचास्तिकाय का सर्वज्ञ कथित कहते हैं। आहाहा! उस समय विकल्प तो है कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, उस समय विकल्प तो है। परन्तु उसके ध्येय में द्रव्यस्वभाव जो है, वह छूटता नहीं। आहाहा! हम कहते हैं, हम कहते हैं - ऐसा कहा। मैं कहता हूँ। उसमें आता है। मैंने मेरी भक्ति से कहा। ऐसा नहीं आता? नियमसार में। यह मैंने मेरे लिये (बनाया है) आहाहा! क्या शैली! मुझे प्रवचन की भक्ति से यह विकल्प आया। प्रवचन की भक्ति से प्रेरित होकर यह आया है, यह विकल्प है, परन्तु ध्येय तो भगवान त्रिलोकनाथ है, उसमें अन्दर ध्येय लगा है। आहाहा! इस विकल्प को जाननेवाला रहता है। करनेवाला नहीं, इस क्रिया की गिनती का भाव नहीं, वहाँ कि हमने बहुत शुभविकल्प किये। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

परपदार्थों से सुखी नहीं हुआ जाता। श्लोक लिखा है।

‘इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे ॥’

आहाहा! इसमें सदा रतिवंत बन,... ज्ञायकभाव ध्रुव है, उसकी प्रीति में जा। आहाहा! यह भक्ति आदि का राग आता है, उसकी भी प्रीति छोड़ दे। आहाहा! ऐसी बातें! इसमें सदा रतिवंत... जिसे शुभराग हो, परन्तु जिसने उसे उपादेय माना, उसे भगवान आत्मा हेय हो गया। आहाहा! और जिसने भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य उपादेय किया, उसे चाहे तो भगवान की भक्ति हो, अरे! तीर्थकरगोत्र का शुभभाव आवे, वह भी हेय है। आहाहा! ऐसी बहुत कठिन बातें। इसमें वर्तमान लोगों में तो ऐसी गड़बड़ी हो गयी, ऐसी गड़बड़ी (कि) कहीं के कहीं उलझ गये हैं। आहाहा!

इसमें सदा रतिवंत... ऐसा कहा न? कायम चैतन्य ज्ञायकस्वभाव का तुझे ध्येय

छूटे नहीं। उसका प्रेम अर्थात् एकाग्रता। आहाहा! इसमें सदा संतुष्ट... उसमें सदा सन्तुष्टता रख। आत्मा में तृप्ति-तृप्ति होती है दृष्टि में-स्थिरता में, उसमें सन्तोष है। आहाहा! उसमें सन्तोष है, राग होता है उसमें सन्तोष नहीं है। आहाहा! चाहे तो भगवान की भक्ति हो, पंच परमेष्ठी का नाम स्मरण हो, वह सब राग है वह तो। आहाहा! उसे छोड़कर प्रभु आत्मा में सन्तुष्ट हो। आहाहा!

इससे हि बन तू तृप्त,... आहा! तुझे तृप्ति-तृप्ति होगी, वहाँ जा। आहाहा! उससे तृप्त हो। रागादि की क्रिया से तृप्ति न मान। आहाहा! आहाहा! समाधिशतक में तो यहाँ तक कहा, अरे! मुझे समझाने का विकल्प उठता है, वह उन्माद है, चारित्रमोह का उन्माद है। आहाहा! दृष्टि का उन्माद नहीं। दृष्टि का उन्माद तो राग को अपना मानना और राग से लाभ माने, वह दृष्टि का उन्माद—पागलपन—गहलता—है। आहाहा! परन्तु ध्येय दृष्टि में होने पर भी स्थिरता नहीं है, इस कारण से। स्थिरता नहीं है, इस कारण से वह विकल्प आवे परन्तु कहते हैं कि वह उन्माद है। आहाहा! उपदेश का विकल्प उन्माद है, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! राग है न! वह चारित्र का उन्माद है, दोष है। आहाहा!

उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे। प्रभु! तू ज्ञायकस्वरूप में जा। वहाँ प्रीति कर, वहाँ सन्तुष्ट हो, वहाँ जाकर तृप्त हो, तुझे सुख होगा। टीका में तो ऐसा भी आया है न (कि) दूसरे को नहीं पूछना पड़ेगा। आहाहा! इस भगवान आत्मा में बादशाह जो अनन्त गुण का नाथ, स्वदेश असंख्य प्रदेश में विराजमान... आहाहा! उस देश में जा। आहाहा! तुझे सुख होगा, तुझे शान्ति मिलेगी। तुझे वहाँ निर्विकल्प स्वच्छता की शुद्धता का अनुभव होगा। आहाहा! ऐसा काम, लो! भाई! लोगों को प्रवृत्ति.. प्रवृत्ति.. प्रवृत्ति.. आहाहा! जन्म-अवतार चला जाता है। मृत्यु का डंका एक बार आयेगा, अकस्मात् आयेगा।

—यही सुखी होने का उपाय है। विश्वास करो। आहाहा! ३१ गाथा में तो यही कहा कि यह जड़ इन्द्रिय है, शरीर परिणाम को प्राप्त है, वह कहीं तेरी नहीं है। भावेन्द्रिय है, क्षयोपशम, एक-एक इन्द्रिय एक-एक विषय को जानती है, वह कहीं तेरा स्वरूप नहीं है। वह परलक्ष्य से क्षयोपशम हुआ है, वह कहीं तेरा स्वरूप नहीं है। इसी प्रकार भगवान और भगवान की वाणी तथा उनकी प्रतिमा और मन्दिर, वे सब इन्द्रिय है। आहाहा! उस इन्द्रिय में तेरा लक्ष्य जायेगा तो राग होगा। आहाहा! ऐसा काम है।

मुमुक्षु : उसे राग नहीं होगा, दूसरे को राग होगा ।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे राग होता है । परसन्मुख लक्ष्य होता है, उसे राग हुए बिना रहता ही नहीं । स्व का लक्ष्य इतना छोड़ा है न ! आहाहा ! चैतन्य भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसका आश्रय जितना लिया, उतनी शुद्धता होती है और आश्रय की उग्रता नहीं, वहाँ परद्रव्य की ओर लक्ष्य जाता है, उतना राग होता है । आहाहा ! यह वीतराग कहते हैं । वीतराग के सन्त यह कहते हैं, दूसरे की बात वजनी नहीं है । आहाहा ! सुन—ऐसा कहते हैं, कहता हूँ—ऐसा कहते हैं 'सुणह वोच्छामि' दूसरी गाथा आयी । आहाहा ! तथापि उस समय जो विकल्प है, आहाहा ! उस समय अन्दर ध्येय तो ध्रुव का है । आहाहा ! विकल्प का ध्येय नहीं है, बीच में आ जाता है, वह बन्ध का कारण है । आहाहा ! ऐसी बातें हैं, बापू ! यह कहीं बाहर में रमने से मिल जाये, ऐसी यह चीज़ नहीं है । आहाहा ! राग की क्रीड़ा में विकल्प में पड़ा है, उसे आत्मा हाथ नहीं आता, नाथ ! प्रभु ! तू कौन है ? कहाँ है ? आहाहा ! विकल्प की ओट में प्रभु छिप गया है । इसने स्वयं छिपाया है । यह शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति के राग के प्रेम में भगवान अन्दर लुप्त हो गया है । आहाहा ! और जिसे भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु को दृष्टि में लिया, उसे विकल्प आदि के चाहे जो प्रसंग हो, परन्तु उसका ध्येय छूटता नहीं । ऐसी बातें हैं । **विश्वास करो । आहाहा !**

जैसे पाताल कुआँ खोदने पर, पत्थर की आखिरी पर्त टूटकर उसमें छेद हो जाने पर पानी की जो ऊँची पिचकारी उड़ती है, उसे देखने से पाताल के पानी का अन्दर का भारी जोर ख्याल में आता है, उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग द्वारा गहराई में चैतन्यतत्त्व के तल तक पहुँच जाने पर, सम्यग्दर्शन प्रगट होने से, जो आंशिक शुद्ध पर्याय फूटती है, उस पर्याय का वेदन करने पर चैतन्यतत्त्व का अन्दर का अनन्त ध्रुव सामर्थ्य अनुभव में—स्पष्ट ख्याल में आता है ॥३७२॥

३७२, जैसे पाताल कुआँ खोदने पर, पत्थर की आखिरी पर्त टूटकर उसमें छेद हो जाने पर... आहाहा ! पाताल कुआँ खोदने पर पत्थर की अन्तिम पर्त टूटने पर...

आहाहा! यहाँ 'जनडा' में है न? बोटाद जाते हुए जनडा में कुआँ है। बहुत गहरा पानी। पहले नहीं निकला। पत्थर खोदते... खोदते... खोदते... थोड़ी एक पर्त रह गयी। लोग उकता गये। आहाहा! उसमें एक बारात आयी। वह मानो कुएँ में गहरे पानी होगा। खड़े रहे, दस-साढ़े दस का सवेरे का समय। करना क्या? ऐसे देखे तो पानी मिले नहीं। उकताये। ग्यारह बजे का समय। अब अभी जाना कहाँ? सब छोड़ा था, ऊपर एक बड़ा पत्थर था तो (एक व्यक्ति) कहे, इस पत्थर को उठाकर ऊपर डाले, कदाचित् थोड़ा टूटकर पानी निकले। वह पत्थर डाला और पानी निकला, एकदम अन्दर। धोध.. धोध.. ऐसे पिचकारी निकली। हम वहाँ कुएँ के पास से निकले थे। पच्चीस-पच्चीस कुएँ वहाँ जुड़े हैं, तथापि कुआँ... क्या कहलाता है? मोट... मोट.. भूल जाते हैं। उस कुएँ में पच्चीस मोट (चरस) जुड़े हैं, तथापि पानी का पार नहीं होता। अन्दर में से पाताल में से आया। आहाहा!

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र का भण्डार अन्दर पड़ा है। आहाहा! जैसे उस पानी की पानी की जो ऊँची पिचकारी उड़ती है, उसे देखने से पाताल के पानी का अन्दर का भारी जोर ख्याल में आता है,... आहाहा! पर्त टूटकर उसमें छेद हो जाने पर पानी की जो ऊँची पिचकारी उड़ती है, उसे देखने से पाताल के पानी का अन्दर का भारी जोर ख्याल में आता है,... आहाहा!

उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग द्वारा गहराई में चैतन्यतत्त्व के तल तक पहुँच जाने पर,... आहाहा! एक समय की जो पर्याय है... आहाहा! उसे सूक्ष्म उपयोग करके, धीर होकर, ज्ञान का उपयोग सूक्ष्म करके, गहराई में चैतन्यतत्त्व... गहराई अर्थात् धीर, ध्रुव। वर्तमान पर्याय को सूक्ष्म उपयोग करके अन्तर में गहराई में अर्थात् ध्रुव में अर्थात् चैतन्यतत्त्व के तल तक पहुँच जाने पर,... आहाहा! असंख्य प्रदेश में पर्याय ऊपर है। आहाहा! असंख्य प्रदेश। ऊपर अर्थात् ऐसे इतने में ऐसा नहीं। यहाँ पेट में असंख्य प्रदेश भिन्न अलग हैं, वहाँ भी एक-एक प्रदेश के ऊपर पर्याय है। आहाहा! असंख्य प्रदेश का थोक प्रभु पड़ा है, उस प्रत्येक प्रदेश में पर्याय ऊपर है और ध्रुवता तल में अन्दर है। आहाहा! अब ऐसी बातें।

यहाँ जो प्रदेश है, हाथ में, यहाँ सर्वत्र वहाँ प्रत्येक में ऊपर पर्याय है। पूरी पर्याय

-उपयोग को सूक्ष्म करके.. आहाहा! गहरे तल में अर्थात् ध्रुव जिस पर्याय के समीप में ध्रुव परमात्मा विद्यमान है, आहाहा! उसे तल तक पहुँच जाने पर, सम्यग्दर्शन प्रगट होने से,... तब उसे सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी होती है। आहाहा! समझ में आया? वे कहें, देव-गुरु की बहुत भक्ति करो तो सम्यग्दर्शन होगा। यहाँ कहते हैं, यह सब बात मिथ्या है।

यहाँ तो पर्याय को सूक्ष्म करके, जो बाहर जाती है, उसे सूक्ष्म करके अन्तर ध्रुव जो पूरे असंख्य प्रदेश के ऊपर पर्याय है, उसे अन्दर में झुकाकर... आहाहा! ध्रुव के तल में जाने पर... आहाहा!

मुमुक्षु : उसका आश्रय लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस पर लक्ष्य किया। उसका आश्रय लिया, ध्रुव को पकड़ा अथवा क्या भाषा होगी? आहाहा! इस पर्याय को सूक्ष्म जानन-उपयोग करके... सूक्ष्म करना अर्थात् बहुत अलौकिक बातें हैं। आहाहा! जिस उपयोग से पकड़ में आता है, उसके उपयोग को सूक्ष्म कहते हैं और जो पकड़ में नहीं आता, उस उपयोग को स्थूल कहते हैं। यह क्या कहा? जो यह ज्ञान और दर्शन का उपयोग है, वह यदि अन्दर पकड़ में नहीं आता तो वह उपयोग स्थूल है। अरे.. अरे..! ऐसी बातें! परन्तु जिस उपयोग से पकड़ में आता है, उस उपयोग को सूक्ष्म कहा जाता है। और पकड़ में नहीं आता तो उस उपयोग को स्थूल कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

अन्दर जो ध्रुव अरूपी सूक्ष्म दल पड़ा है, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का दल, पूरा पड़ा है। आहाहा! उसे पकड़ने के लिये उपयोग तो बहुत सूक्ष्म (करना पड़ेगा)। शुभराग और अशुभराग तो छूट जाये, उसकी तो यहाँ कोई गिनती नहीं, परन्तु उपयोग स्थूल है, उससे पकड़ में नहीं आता। आहाहा! क्योंकि वह वस्तु स्वयं अरूपी, सूक्ष्म और ध्रुव है। ध्रुव है, वह पर्याय का तल है। पर्याय ध्रुव के ऊपर है। आहाहा! अब ऐसी बातें।

सूक्ष्म उपयोग द्वारा गहराई में चैतन्यतत्त्व के तल तक... आहाहा! पहुँच जाने पर,... चैतन्यतत्त्व के तल तक, अन्तर के ध्रुव में तल तक जाने से सम्यग्दर्शन प्रगट होने से,... सम्यक्—जैसी चीज़ है, वैसी प्रतीति में, ज्ञान में आने पर, आहाहा! जो आंशिक

शुद्ध पर्याय फूटती है,.... सम्यग्दर्शन होने पर आंशिक शुद्धपर्याय फूटती है, प्रगटती है, फूटती है। आहाहा! सम्यग्दर्शन प्रगट होने से, जो आंशिक शुद्ध पर्याय फूटती है,.... आहाहा! जैसे वह पानी फूटता है, कहा न? ऐसे। आहाहा! उस पर्याय का वेदन करने पर... उस शुद्धता का अंश जो प्रगट हुआ। वह शुभाशुभराग से भिन्न... आहाहा! उस पर्याय का वेदन करने पर चैतन्यतत्त्व का अन्दर का अनन्त ध्रुव सामर्थ्य अनुभव में... आहाहा! जैसे पाताल में से पानी फूटने पर उसकी पिचकारी निकले पर उसे अन्दर में कितना जोर है, यह ख्याल में आता है। आहाहा! तल में पानी का कैसा जोर है (यह ख्याल में आता है)। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा में सूक्ष्म उपयोग द्वारा अन्दर तल में जाने पर, ध्रुव में जाने पर जो सम्यग्दर्शन की शुद्धता की धारा फूटती है... आहाहा! आंशिक शुद्ध पर्याय फूटती है,.... अभी अंश है, पूर्ण नहीं; पूर्ण तो केवलज्ञान होगा, तब (होगा)। आहाहा! उसका वेदन करने पर यह अद्भुत चमत्कारिक चीज़ है—ऐसा अन्दर में प्रतीति में, ज्ञान में अनुभव में आया, तब उसका अन्दर में जोर कितना है, उसकी इसे प्रतीति और ज्ञान हुआ। आहाहा! बड़ा पूर / पूरा प्रवाह है। जैसे पाताल में तल में पानी का धोध जाता है, वह ऐसे जाता है, यह ध्रुव.. ध्रुव.. (ऐसे ऊर्ध्व प्रवाह चलता है)। आहाहा! उस ध्रुव में से ध्येय जो अंश प्रगट हुआ, उस अंश को वेदने से चैतन्यतत्त्व का अन्दर का... जोर। ऐसी बातें हैं। सादी भाषा है परन्तु अकेला माल है। अनन्त ध्रुव सामर्थ्य... अनन्त-अनन्त जो ध्रुव स्वभाव अन्दर है... आहाहा! वह सम्यग्दर्शन होने पर, धर्म की पहली शुरुआत होने पर.. आहाहा! उसका अनन्त ध्रुव सामर्थ्य अनुभव में—स्पष्ट ख्याल में आता है। आहाहा! अन्तर में कितनी ताकत है, ध्रुव में कितना बल और सामर्थ्य है, अनन्त-अनन्त गुण का जो सामर्थ्य है, वह पर्याय में प्रतीति होने पर उसकी सामर्थ्य का ज्ञान होता है, वह ख्याल में आता है। आहाहा! बहुत अलौकिक बात है। आहाहा! यह उपाय! प्रगटे तब उसके—ध्रुव के सामर्थ्य का ख्याल आता है। इसके बिना तो शुभ-अशुभ में कुछ ख्याल नहीं आता। आहाहा! ऐसी कब अब निवृत्ति मिले? ऐसा है।

शुभाशुभ विकल्प है, राग है, उसका लक्ष्य छोड़कर उपयोग को सूक्ष्म करके ध्रुव के तल में उपयोग को ले जाकर... आहाहा! जो पिचकारी फूटती है, सम्यग्दर्शन (होने

पर)। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, शुद्धता, शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, ईश्वरता के सब अंश प्रगट होते हैं। आहाहा! आंशिक शुद्धता के वेदन में पूर्ण शुद्धता अन्दर कितनी है, उसका ख्याल आता है। समझ में आया? साधारण कुएँ में पानी एक ऐसे ऐसे निकालता हो। पाताल में से जो आवे, वह पिचकारी फूटे, एकदम! आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा ध्रुव का तल है, उसे देखने पर... आहाहा! तल में, तल में जाने पर... आहाहा! जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और अंश स्वरूपाचरणचारित्र (प्रगट हुए), उसमें जो शुद्धता का अंश आया, उस शुद्धता के अंश को वेदने पर अनन्त ध्रुव में कितनी ताकत है, उसका ख्याल आता है। समझ में आया? आहाहा! इसके बिना ध्रुव अनन्त-अनन्त ध्रुव जो है, अनन्त शक्ति-सामर्थ्य ज्ञान का, आनन्द का, शान्ति का, स्वच्छता का, प्रभुता का, एक-एक गुण में अनन्त जो सामर्थ्य है, ऐसे अनन्त गुण का सामर्थ्य ऐसा जो ध्रुव, उसमें से सम्यग्दर्शन का कण फूटने पर... आहाहा! यह इतना महा तत्त्व है, उसके सामर्थ्य का ख्याल आता है। इसके बिना ख्याल नहीं आता। अरे! यह ऐसी बातें हैं। यह किसके घर की? वाड़ा में तो वे कहे - सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण (करो)। मन्दिरमार्गी में कहे, भक्ति करो, पूजा करो, मन्दिर बनाओ, दिगम्बर में वस्त्र छोड़ो, आहार छोड़ो। वस्तु को जाने बिना यह क्या है? आहाहा!

ध्रुव का अनन्त ध्रुव, अनन्त ध्रुव है। आहाहा! एक-एक गुण में भी अनन्त-अनन्त सामर्थ्य है। एक-एक गुण है, उसमें अनन्त गुण का रूप है, ऐसा एक-एक गुण में अनन्त सामर्थ्य है। ऐसा अंश जहाँ प्रस्फुटित होने पर श्रद्धा में वह सब (प्रगट होता है)। ऐसा अनन्त गुण का ध्रुव है। उस अनन्त ध्रुव का बल ख्याल में आता है। अनुभव में स्पष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष ख्याल में आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। कोई कहीं अड़े हैं और कोई कहीं लगे हैं और फिर चल निकले, हम धर्म करते हैं। अरे! भाई! धर्मी ऐसा भगवान, जिसमें धर्म पड़ा है। अनन्त-अनन्त सामर्थ्यवाली एक-एक शक्ति, ऐसी अनन्त शक्तियाँ अन्दर भरी हैं। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय प्रगटे तो भी ज्ञानगुण का अनन्त सामर्थ्यवाला विद्यमान है। समकित की पर्याय प्रगटे तो भी श्रद्धागुण सामर्थ्यवाला पड़ा है। आहाहा! स्वरूपाचरण का-चारित्र का अंश प्रगटे तो चारित्र प्रगटे तो भी अन्दर में चारित्र नाम का गुण है, उसमें अनन्त सामर्थ्य पड़ा है। आहाहा! इसी प्रकार आनन्द का वेदन आया,

उसकी अपेक्षा अनन्त गुणा अन्दर आनन्द के गुण में सामर्थ्य पड़ा है। आहाहा! ऐसे अनन्त ध्रुव के सामर्थ्य का अंश प्रगट होने पर, वेदन करने पर उसका उसे वहाँ ख्याल आता है। आहाहा! स्पष्ट ख्याल में आता है। बहुत अलौकिक बात है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी बात कहीं नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात अभी कहीं नहीं है। सर्वत्र गप्प मारते हैं। आहाहा! अपने आप पढ़े तो यह समझ में नहीं आता। बराबर होगा? शान्तिभाई! इसमें क्या कितना भरा है? आहाहा!

पर्याय में... द्रव्य-गुण और पर्याय तीन होकर वस्तु है न? उसकी पर्याय में उपयोग की सूक्ष्मता होने पर वह सूक्ष्म स्वरूप को पहुँच जाती है। त्रिकाली सूक्ष्म को वह ध्येय में लेती है तो पहुँच जाती है। उसे पहुँचने पर जो निर्मल अंश प्रगट हुआ, श्रद्धा का-ज्ञान का-शान्ति का-आनन्द का-स्वच्छता का-प्रभुता का आदि अनन्त-अनन्त गुणों का... जितने गुणों की संख्या है, उतने अंश व्यक्त (होते हैं)। सम्यग्दर्शन में सभी गुणों की व्यक्तता का अंश वेदन में आता है। भले उसे ख्याल न आवे कि यह.. यह.. यह.. है। आहाहा! यह स्पष्ट ख्याल में आवे कि यह चीज़ इतनी है। आहाहा! अंश में इतनी ताकत है तो त्रिकाल में कितनी ताकत, ऐसा! आहाहा! ऐसी बात है, भाई! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ वीतराग का यह फरमान है। आहाहा! यह बहिन के मुख से यह आया है। वस्तु की स्थिति यह है। एकदम सादी भाषा, गुजराती और बारह अंग का सार। आहाहा! उन्हें तो लड़कियों में कहना था न, उन्हें कहाँ... आहाहा! यह ३७२ (बोल पूरा हुआ)। बस, २८ और ३२, ६० रहे।

सब तालों की कुंजी एक—‘ज्ञायक का अभ्यास करना’। इससे सब ताले खुल जायेंगे। जिसे संसार कारागृह से छूटना हो, मुक्तिपुरी में जाना हो, उसे मोह-राग-द्वेषरूप ताले खोलने के लिये ज्ञायक का अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी लगानी चाहिये ॥३७३॥

सब तालों की कुंजी एक—‘ज्ञायक का अभ्यास करना’। आहाहा! ज्ञायक जो

त्रिकाली भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, उसकी ओर का अभ्यास करना। आहाहा! ऐसी बात है। शास्त्र का अभ्यास करना या यह बात यहाँ आयी नहीं। शास्त्र का अभ्यास करने में तो विकल्प उठता है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इस अपेक्षा है, स्व के लक्ष्य से। स्व के लक्ष्य से है, उसकी बात है। आहाहा! स्व के लक्ष्य के अतिरिक्त शास्त्र का अभ्यास, वह सब व्यभिचार है। आहाहा! जिसने भगवान को ध्येय में नहीं लिया... ऐसा तो प्रवचनसार में दूसरे अधिकार में नहीं कहा? कि स्व के लक्ष्य से अभ्यास करना, परन्तु ध्येय को लक्ष्य में रखकर। आहाहा!

सब तालों की कुंजी एक... क्या कहा जाता है तुम्हारे उस चाबी को? 'मास्टर की।' 'ज्ञायक का अभ्यास करना'। इससे सब ताले खुल जायेंगे। इसकी व्याख्या आयेगी। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

सम्यग्दर्शन की एक ही रीति

अनादि काल से अज्ञानी जीव, राग से और व्यवहार के अवलम्बन से लाभ मान रहे हैं, व्यवहार का आश्रय तो वे अनादि से कर ही रहे हैं किन्तु उसके आश्रय से किंचित् कल्याण नहीं हुआ। कल्याण कहो या सम्यग्दर्शन कहो; वह अभेदस्वभाव के आश्रय से ही होता है। राग से किंचित् पृथक् होकर, अन्तर्मुख होकर ज्ञानानन्दस्वभाव को ग्रहण करने से सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ शुभराग को व्यवहार कहा जाता है किन्तु राग करते-करते, उस राग के आश्रय से सम्यग्दर्शन हो जाये—ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

कार्तिक शुक्ल -१०, गुरुवार, दिनाङ्क ०९-११-१९७८
वचनामृत-३७३ से ३७५ प्रवचन-१४५

३७३, बहुत सूक्ष्म है, मूल रकम की बात है न। आहाहा! ३७३। सब तालों की कुंजी एक... तुम्हारे 'मास्टर की' कहते हैं न? आहाहा! 'ज्ञायक का अभ्यास करना'। अर्थात् क्या? ज्ञायक अर्थात् द्रव्यस्वभाव जो त्रिकाली, उसमें जो अनन्त ज्ञान आदि गुण और उनकी जो पर्याय, उन तीनों में पहले तीन का ज्ञान करना चाहिए। द्रव्य क्या, त्रिकाली क्या, गुण क्या, त्रिकाली है और पर्याय क्या वर्तमान है। आहाहा! इन तीन में भी, जिसे आत्मकल्याण करना हो, उसे तो ज्ञायकवस्तु ध्रुव जो चैतन्यस्वरूप (है, उसका अभ्यास करना चाहिए)। वस्तु जो है द्रव्य है, चिदानन्द ज्ञायकभाव अर्थात् ध्रुवस्वभाव, एक समय की पर्याय से भी रहित। निमित्त से तो रहित, देव-शास्त्र-गुरु आदि से तो रहित परन्तु उनकी भक्ति का भाव-राग होता है, उससे भी रहित। उससे तो रहित परन्तु उस राग को जाननेवाली वर्तमान पर्याय है, उससे ज्ञायकध्रुव भिन्न है। आहाहा!

आत्मा में अनन्त गुण हैं, उनमें पर के मिथ्यात्व के अभ्यास से ताला बन्द है, खुला नहीं। आहाहा! खोलने की चाबी यह है। अनन्त गुणस्वरूप जो भगवान ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, सामान्यभाव, स्वभावभाव, एकरूप भाव, उस ज्ञायक का अभ्यास पर्याय में करना। पर्याय है, उसका अभ्यास करती है—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सर्वोपरि भाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वोपरि वह चीज़ है। आहाहा! ताले की यह चाबी है (ताला) खुल्ला करने की। बाकी सब बातें हैं। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, भक्ति, व्रत, नियम, तप, और पंच परमेष्ठी का स्मरण, यह तो सब विकल्प / राग है। उनसे प्रभु भिन्न है। अन्तर आत्मा ज्ञायकभाव, वह नित्यानन्द प्रभु ध्रुव है। आहाहा! उसका अन्तर्मुख होकर अभ्यास

करना। शास्त्र का अभ्यास और यह सब अभ्यास, ये सब विकल्पात्मक है। आहाहा! यह ज्ञायक चैतन्यवस्तु है, उसके सन्मुख होकर एकाग्रता होने का अभ्यास करना। आहाहा! ऐसी बात है। यह तो मूल रकम की बात है। ३७३ (बोल)। आहाहा!

पहले तो ज्ञायक किसे कहना - यह अभी जाने बिना किसका ध्यान करे? आहाहा! एक समय में त्रिकाली वस्तु नित्यानन्द और अनन्त गुण का पूरा पूरा, ऐसा एक नूर-एक तेज। आहाहा! उसके सन्मुख का अभ्यास करना। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! शान्ति उत्पन्न होने का यह उपाय है। बाकी सब अशान्ति है। आहाहा!

मुमुक्षु : अशान्ति तो हमारे खोले पड़ गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि की अज्ञान की अशान्ति है। आहाहा! अरे! यह दया, दान, व्रत के भाव, भगवान के स्मरण के भाव, वह सब राग है, अशान्ति है। प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! जिसे शान्ति चाहिए हो, मोक्षमार्ग और मोक्ष चाहिए हो... आहाहा! भवभ्रमण की पीड़ा जिसे मिटाना हो, उसे जिसमें भवभ्रमण तो नहीं, भवभ्रमण का भाव नहीं परन्तु जिसमें वर्तमान पर्याय भी नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! जगत से अलग है। आहाहा! उस ज्ञायक का अभ्यास करना। अर्थात्? चैतन्य नित्यानन्द प्रभु की ओर का झुकाव करना। ऐसी बात है।

इससे सब ताले खुल जायेंगे। आहाहा! ज्ञायकभाव के अभ्यास की एकता से, (जो) ज्ञान को ताला लगाया है, दर्शन को ताला, आनन्द को ताला, वे सब ताले खुल जायेंगे। आहाहा! यह एक 'मास्टर की-चाबी' है। लोग कहते हैं न 'मास्टर की' आहाहा! अर्थात् ज्ञायकस्वभाव में दृष्टि को स्थापित करना और ज्ञायकस्वभाव का विश्वास, उसका पूर्ण स्वरूप, उसका विश्वास उसमें बैठ जाना। आहाहा! अब यह ऐसी बातें। ऐसा मार्ग है, भाई! एक समय की पर्याय है, वह तो क्षणिक है, अवस्था है। वह तो पलट-बदल जाती है। उसमें पलटती में दृष्टि करे तो किस प्रकार स्थिर होगा? आहाहा! जो ध्रुव, चैतन्य ज्ञायक ध्रुव है, उसमें स्थिर है तो दृष्टि वहाँ स्थिर होगी। आहाहा! ऐसी बात है, दुनिया से तो पागल जैसी लगे ऐसी है। आहाहा! एकान्त करते हैं, एकान्त करते हैं (ऐसा) लोग कहते हैं—चिल्लाहट मचाते हैं। आहाहा! व्यवहार से भी क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, भक्ति से भी होता है, उसका तो यहाँ निषेध करते हैं।

मुमुक्षु : प्रवचनसार में आता है न क्रियाकाण्ड से ज्ञानकाण्ड ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त का कथन है । ज्ञानकाण्ड । आहाहा ! उसका अभाव होता है, तब स्वभाव की, ज्ञायक की दृष्टि होती है परन्तु वह था, इसलिए उसे उससे हुआ—ऐसा आरोप से कथन है । आहाहा ! अभी विद्यानन्दजी की ओर से समयसार प्रकाशित हुआ है । आहाहा ! उसमें तो गजब विपरीतता की है । बस, सिद्ध को ही निश्चय होता है । अरे ! आहाहा ! वहाँ नय कहाँ है ? केवली को नय कहाँ है ? यह तो प्रमाण केवलज्ञान हो गया । आहाहा ! सूक्ष्म बात, भाई ! यह चलती नहीं थी और आयी, इसलिए लोगों को (एकान्त लगता है) । आहाहा !

कहते हैं, यह चीज़ है, वह कायम रहनेवाली चीज़ है या नहीं ? पर्याय है, वह तो बदलती है, तो कायम रहनेवाला उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् (कहा), तो वर्तमान पर्याय जो है, वह तो उत्पाद-व्ययवाली है, वह तो पलटती है, एक समय की अवधिवाली है । भगवान जो ध्रुव है, वह तो त्रिकाली अवधि का, त्रिकाल वस्तु ध्रुव है । आहाहा ! उस ज्ञायक की ओर के अन्तर के अभ्यास द्वारा... उससे सब ताले खुल जायेंगे । अनन्त गुणों की व्यक्तता (हो जायेगी) । उसका अभ्यास करने से पर्याय में अनन्त गुणों की शक्ति जितनी है, उतने अंश व्यक्त हो जाते हैं । अनन्त गुण जो ताले लगाये थे, वे खुल जाते हैं । आहाहा ! कहो, देवानुप्रिया ! ...चन्दुभाई नहीं आये । उन्हें ठीक नहीं नहीं । छोटाभाई नहीं आये ? नहीं । बहुत रुचिवाला जीव है । उसे आँखें गयी तो भी यह अभ्यास । आहाहा !

चैतन्य के दो भाग : एक पर्याय का भाग और एक ध्रुव का भाग । पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है । उसे क्या है ? अब उसमें दो भाग हैं । एक अंश का, पर्याय का और एक त्रिकाली । अब वह त्रिकाली है, उसका अभ्यास करना । अभ्यास करनेवाली पर्याय है । आहाहा ! पर्याय से द्रव्य का अभ्यास करना । पर्याय से पर्याय का अभ्यास तो अनादि से किया है । आहाहा ! ऐसी बातें हैं, प्रभु ! क्या हो ? अरे ! भगवान का विरह पड़ा, मार्ग रह गया । अब यह मार्ग लोगों को ग्राह्य होना... आहाहा ! वाड़ा बाँधकर बैठे अपना पन्थ करने को, परन्तु यह तो वाड़ा नहीं है, यह तो वस्तु का स्वरूप है । आहाहा !

एक समय में, पर्याय की स्थिति एक समय और एक समय में ध्रुव भी एक समय में पूर्ण है । आहाहा ! एक समय की पर्याय में एक समय की अवधि और वस्तु है, वह वस्तु

ध्रुव है, वह एक समय में है, परन्तु एक समय में वह त्रिकाली ध्रुव है। आहाहा! वह एक समय में पूर्ण ध्रुव है। आहाहा! उसका इसे अन्तर्मुख अभ्यास करने पर अनन्त गुणों की जो चाबी नहीं, वह चाबी ख्याल आ गयी। आहाहा! उसमें से ज्ञान खिलता है, श्रद्धा खिलती है, शान्ति खिलती है, आनन्द खिलता है। शान्ति अर्थात् चारित्र। स्वच्छता खिलती है, ईश्वरता खिलती है, जीवत्व खिलता है, कर्ता-कर्म शक्तियाँ जो पड़ी हैं, वे सब खिलती हैं। आहाहा! जिसमें अनन्त-अनन्त गुण ध्रुव पड़े हैं, उनका सन्मुख होकर अभ्यास करने से सब गुणों का (जो) राग की एकत्वबुद्धि में ताला लगाया है... आहाहा! वह ताला खुल जाता है, ऐसी बात है, भाई!

जिसे संसार कारागृह से छूटना हो,... आहाहा! शुभभाव और अशुभभाव संसार कारागृह है। आहाहा! नीचे कहेंगे—शुभभाव, वह संसार है। आहाहा! अशुभभाव, वह संसार है और शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या का भाव विकल्प आवे पूजा आदि, वह भाव भी संसार है। आहाहा! ज्ञानी को आता है, परन्तु उसकी रुचि नहीं होती। आहाहा! रुचि तो ज्ञायक की जो हुई है, वह हटती नहीं। आहाहा!

अज्ञानी को तो ज्ञायक की रुचि नहीं है। मात्र यह जो अशुभ छूटकर शुभ करे, उसकी रुचि में पड़ा है। आहाहा! और मानता है कि मैं कुछ धर्म में आया, धर्म किया। आहाहा! अरे रे! संसाररूपी कारागृह अर्थात् बड़ा कठोर अन्धकूप है बड़ा, पुण्य-पाप। आहाहा! उनसे छूटना हो,... संसार कोई स्त्री, पुत्र, परिवार, वह संसार नहीं है। संसार तो स्वरूप में से संसरण-हटकर दया, दान के विकल्प की एकताबुद्धि, वह संसार है। आहाहा!

संसार कारागृह से छूटना हो, मुक्तिपुरी में जाना हो,... आहाहा! अपनी निर्मल दशारूपी मुक्तिनगर, वहाँ जिसे जाना हो। आहाहा! है तो मुक्ति परन्तु पर्याय। आहाहा! मोक्ष है, सिद्ध है, वह है तो पर्याय परन्तु जिसे वह पूर्ण पर्याय प्राप्त करनी हो। आहाहा! **उसे मोह-राग-द्वेषरूप ताले खोलने के लिये...** मोह अर्थात् राग की एकताबुद्धि-मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम अनुकूल-प्रतिकूल जानकर होते हैं, वह **ताले खोलने के लिये...** आहाहा! **ज्ञायक का अभ्यास करनेरूप...** आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। है पाँच लाइन का पैराग्राफ। आहाहा! पंच परमेष्ठी पंच भी नहीं, यहाँ तो मोक्षपद। सिद्ध की-परमेष्ठी पर्याय की बात है। आहाहा!

जिसे मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा, ज्ञायकभाव वह मुक्तस्वरूप है और उसकी मुक्त की पर्याय जिसे प्राप्त करनी हो। द्रव्य तो मुक्त है, वस्तु जो ज्ञायक ध्रुव द्रव्यस्वभाव, वह तो अबन्ध है, मुक्त है। उस मुक्त का अभ्यास करने से जिसे मुक्ति अर्थात् मोक्ष की पर्याय चाहिए हो तो उसका अभ्यास करने पर वह मिलेगी। आहाहा! ऐसा है। वे कितने ही कहते हैं कि पहले प्रतिमा का अभ्यास करना, दसवीं, ग्यारहवीं कैसे हो और (वह अभ्यास करना)। अब यह अभ्यास तो राग का है, सुन न! आहाहा!

मुमुक्षु : स्वरूप को जाने बिना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहते हैं अभी। अभ्यास करो। क्या अभ्यास करे ? यह तो सहजस्वरूप जो आत्मा ज्ञायक है, उसका अभ्यास होने पर जो ताला खुल गया। अब उसमें स्थिरता होने का नाम वस्तु में लिपट जाना, वस्तु में थिर हो जाना, वह निश्चयव्रत है। आहाहा!

एक हजार आठ नाम में आता है। प्रभु! आप व्रतधारी हैं। कैसे ? कि अनन्त गुण में आप लिपट गये हैं, यह व्रत। यह व्रत लोग मानते हैं पंच महाव्रत और बारह व्रत, वह तो सब विकल्प और राग है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसमें लिपट जाना, उसमें एकाग्र होना। आहाहा! इससे सब ताले खुल जाते हैं अर्थात् अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण हैं, वे सब खिलावट होकर खिल निकलते हैं। आहाहा! लाख उसकी क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति की करे, वह सब क्लेश है। आहाहा! लोग चिल्लाहट करते हैं।

मुमुक्षु : क्लेश करो तो करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्लेश है। निर्जरा अधिकार (कलश १४२ में कहा है)। आहाहा! दुकान के धन्धे में न बैठा हो और यहाँ भगवान के पास बैठा हो और भक्ति करता हो (तो) वह मानो कि हम (धर्म करते हैं)। आहाहा! स्त्री-पुत्र को सम्हालता हो और वह करने की अपेक्षा यहाँ आकर बैठा, इसलिए मानो कि मैं धर्म में कुछ आया हूँ। धर्म स्थानक में आया हूँ! धर्म स्थानक कहना किसे ? भगवान स्वयं धर्म स्थानक है। आहाहा! आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, वह धर्म का स्थानक है। वहाँ एकाग्रता होने पर शान्ति और आनन्द मिले, ऐसा है।

मोह-राग-द्वेषरूप ताले खोलने के लिये ज्ञायक का अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी लगानी चाहिये। आहाहा! कहीं किसी का सहारा लेकर अटक जाना, यह नहीं। आहाहा! इतना तो करता हूँ और इतना तो करता हूँ न, दुकान तो छोड़ी है, स्त्री, पुत्र छोड़े हैं, यह इतना तो मैंने किया है। क्या किया? धूल। आहाहा! वह तो राग है। आहाहा! पुण्य-पाप में नहीं आता? कि पाप तो करे, वह तो ठीक परन्तु पुण्यवाला ऐसा मानता है कि यह मुझे नहीं चलता, यह मुझे नहीं चलता। वह चाण्डाल जो ब्राह्मण हुआ, वह ऐसा कहता है मुझे माँस नहीं चलता, मुझे यह अमुक है। वह भी एक विकल्प है, राग है। इसी प्रकार हमारे विषय नहीं चलते, हमारे धन्धा नहीं चलता। आहाहा! यह भी एक शुभराग है, यह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! यह चाण्डालनी का पुत्र है। आहाहा! ऐसी बातें।

एक ही कुंजी लगानी चाहिये। एक ही चाबी लगाना। एकान्त हो गया। एकान्त ही है। 'अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त बिना...' श्रीमद् का वाक्य है परन्तु इसे कहाँ समझे? अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त बिना निज पद की प्राप्ति दूसरी है नहीं। आहाहा! पर्याय का ज्ञान हो, परन्तु सम्यक् एकान्त की दृष्टि हुई, पश्चात् पर्याय का ज्ञान हो, वह अनेकान्त है। अनेकान्त में सम्यक् एकान्त आ गया, तब अनेकान्त का सच्चा ज्ञान होता है। आहाहा! देवीलालजी! ऐसी बातें, भाई! अरे रे!

शुभराग की रुचि, वह भी भव की रुचि है; मोक्ष की रुचि नहीं है। जो मन्दकषाय में सन्तुष्ट होता है, वह अकषायस्वभावी ज्ञायक को जानता नहीं एवं पाता नहीं। गुरुदेव पुकार-पुकारकर कहते हैं कि ज्ञायक का आश्रय करके शुद्ध परिणति प्रगट कर; वही एक पद है, शेष सब अपद है ॥३७४॥

३७४, शुभराग की रुचि वह भी भव की रुचि है, ... लो! आहाहा! मैंने इतनी दयायें पालन की, और इतना सत्य बोला और इतने महाव्रत पालन किये। आहाहा! यह शुभराग की रुचि है, उसे भव की रुचि है। वह शुभभाव स्वयं भवस्वरूप है। भगवान तो भव के अभावस्वरूप है। आहाहा! भव के भाव से अभावस्वरूप प्रभु है। आहाहा! वह तो अभयस्वरूप है। राग है, वह भवस्वरूप है। आहाहा! भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप कहो

या अभवस्वरूप कहो, अबन्धस्वरूप कहो। आहाहा! ऐसे मुक्तस्वरूप, अभवस्वरूप की दृष्टि करना और यह शुभराग है, वह भवस्वरूप है। आहाहा! है ?

शुभराग की रुचि... आहाहा! चाहे तो देव, गुरु और शास्त्र, भगवान की भक्ति (का भाव हो) परन्तु वह शुभराग है। उसकी रुचि, वह भव की रुचि है। ज्ञानी को आवे परन्तु उसकी रुचि नहीं होती। अस्थिरता के कारण आवे परन्तु उसकी रुचि नहीं होती। रुचि तो ज्ञायक त्रिकाल भाव है, उसकी रुचि है। आहाहा! इसमें कोई बड़ी पण्डिताई चाहिए और सब शास्त्र का अभ्यास बहुत हो, तो यह हो, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! तिर्यच हजार-हजार योजन का मच्छ भी समकित प्राप्त करता है। आहाहा! ऐसे असंख्य तिर्यच समकित बाहर पड़े हैं-ढाई द्वीप के बाहर। आहाहा! शरीर एक हजार योजन - चार हजार कोस का (होता है) परन्तु अन्दर भगवान आत्मा ज्ञायकध्रुव का पोषाण हो गया है, दूसरा उन्हें पोसाता ही नहीं। आहाहा! दृष्टि में ध्रुव का ही पोषाण है; उन्हें पर्याय का भी पोषाण नहीं है।

शुभराग की रुचि, वह भी भव की रुचि है,... ऐसा (कहते हैं) कि मिथ्यात्व की रुचि है, वह तो भव की रुचि है परन्तु शुभभाव की रुचि, वह भव की रुचि है, ऐसा भी शब्द है न? मिथ्यात्व है, वह तो भवस्वरूप है और भव की रुचि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मिथ्यात्वरहित प्रभु अन्दर भगवान, जिसमें मिथ्यात्व है ही नहीं। पर्याय में एक समय की अवस्था में वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! वह संसार का मूल और संसार, वह संसार है। मिथ्यात्व, वह संसार है परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि राग भी संसार है। आहाहा! आस्रव अधिकार समयसार में आता है न? मिथ्यात्व, वह संसार है। यह शुभराग उस मिथ्यात्वसहित होवे तो महासंसार है। आहाहा! रुचि महासंसार है - ऐसा कहते हैं। रुचि कही न? शुभराग की रुचि तो मिथ्यात्व हुआ। आहाहा!

मोक्ष की रुचि नहीं है। परमात्मप्रकाश में तो योगीन्द्रदेव ने कहा। जिसे शुभराग का प्रेम है, उसे आत्मा हेय है। यह भगवान उसे हेय अर्थात् ऐसे छोड़ दिया उसने। आहाहा! जिसने उस शुभराग को उपादेयरूप से माना, उसने त्रिलोक के नाथ भगवान ज्ञायकभाव उसे हेय हो गया, छोड़ डाला, उसने छोड़ दिया। आहाहा! जिसे ज्ञायक ध्रुव भाव की रुचि है, त्रिकाली ज्ञायकभाव उपादेय है, उसे राग हेय है। राग आता है परन्तु हेय है। आहाहा!

जो मन्दकषाय में सन्तुष्ट होता है,... क्या कहते हैं ? राग की मन्दता शुभयोग । अर र ! प्रभु ! आहाहा ! दिगम्बर के श्रुतसागर साधु । आहाहा ! ऐसा लेख बाहर प्रकाशित किया है । पंचम काल में शुभयोग ही होता है । प्रभु.. प्रभु.. प्रभु.. ! आत्मा होता ही नहीं, इसका अर्थ (तो ऐसा हुआ) । आहाहा ! शुभयोग तो हेय कहा है, जहर कहा है । आहाहा !

मुमुक्षु :अमृत कहा है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निश्चय है, उसे व्यवहार से अमृत कहा जाता है, आरोप से, वह भी आरोप से । निश्चय से जहर है । मोक्ष अधिकार में आ गया है । प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान और भगवान की पूजा, भगवान का दर्शन करना और प्रायश्चित्त लेना, ये सब भाव जहर हैं । क्यों ? भगवान अमृतस्वरूप है, अमृत का सागर है प्रभु । उससे विकल्प उठे, वह जहर है । आहाहा ! भगवान आत्मा अमृत का सागर है, तब प्रकृति जो १४८ है, वह जहर का वृक्ष है । आहाहा ! और जिस भाव से बँधी, वह भाव जहर है । आहाहा ! अरे ! तीर्थकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह भाव जहर है । आहाहा ! शुभभाव है, अधर्म है । आहाहा ! चिल्ला उठे ऐसा है ।

जो मन्द कषाय, राग की मन्दता, राग पतला किया होता है, उसमें सन्तुष्ट हो जाता है । आहाहा ! वह अकषायस्वभावी ज्ञायक को जानता नहीं... जो राग की मन्दता, लोभ की मन्दता । आहाहा ! माया और लोभ होकर राग है न ? इसलिए राग की मन्दता अर्थात् लोभ की मन्दता । द्वेष के दो भाग - क्रोध और मान । राग के दो भाग - कपट और लोभ । अब कहते हैं कपट तो ठीक,... परन्तु लोभ मन्द हो... आहाहा ! उसमें जो सन्तुष्ट हो जाता है... आहाहा ! वह अकषायस्वभाव का अनादर करता है, तिरस्कार करता है । नहीं आया ? राग है, वह स्वभाव का तिरस्कार करनेवाला है । आहाहा ! (समयसार, गाथा) १९ में आया था नहीं ? १९ गाथा । राग के प्रेमी, स्वभाव का तिरस्कार करते हैं । आहाहा ! स्वभाव के प्रेमी, राग का तिरस्कार करते हैं । आहाहा ! ऐसा है ।

राग के, मन्दता के कषायभाव में सन्तुष्ट हो गया कि हमने तो बहुत किया, बहुत किया । आहाहा ! दुकान का धन्धा छोड़ा, स्त्री, पुत्र का संग छोड़ा, यह सब कितना किया । ऐसा विचारकर शुभभाव में सन्तुष्ट हो जाता है । वह अकषायभाव को नहीं जानता । ज्ञायक,

अन्तर ज्ञायकस्वभाव, अकषायस्वभाव, वीतरागमूर्ति आत्मा को वे जानते नहीं। अथवा राग में-रुचि में पड़े हैं, वे ज्ञायकभाव की रुचि छोड़ देते हैं। आहाहा!

एवं पाता नहीं। राग-कषाय की मन्दता में सन्तुष्ट हो गया, वह अकषायस्वभाव ज्ञायक को प्राप्त नहीं करता। जानता नहीं, प्राप्त नहीं करता। आहाहा! ऐसी सादी गुजराती भाषा है। आहाहा! ऐई! चेतनजी! तुम कल रात को नहीं थे। कान्तिभाई का लड़का आया था। फोटोग्राफी। वह कहे, मेरे पास से मैं बहिन का पढ़ता था... मैंने कहा, ले गया, माँगे वह भले बेचारा पढ़ने को ले गया। पहले ले गया था चित्रभानु। वह कहे, मैंने चित्रभानु को दिया था। वह कल कहता था और यह कहता था कि मैंने दिया, तब ऐसा कहा कि मैंने पढ़ा नहीं, ऐसा कहा। पढ़ा नहीं, परन्तु है, ऐसा उसने नहीं कहा। वह कल कहता था, कल आया था खास। आहाहा! फिर तीन पुस्तकें दीं। कहा, कोई ऐसे माँगे तो दो, दो। पढ़े तो सही, बापू! आहाहा! यशोविजयजी है न? ...सब मिथ्यादृष्टि हैं। कठोर बातें। श्वेताम्बर और स्थानकवासी के साधु नहीं।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि इतना ही विशेषण या इससे आगे भी विशेषण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मिथ्यादृष्टि अर्थात् अनन्त संसार में भटकनेवाला है। वास्तव में तो प्रभु! क्या कहें? कठोर पड़ता है। आहाहा! भगवान तो ऐसा कहते हैं, मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्य... **णगगो विमोक्खमगगो सेसा उम्मगगया सव्वे** (सूत्रपाहुड़-२३) जिन्हें विकल्परहित आनन्द का नाथ जागृत हुआ, उन्हें विकल्परहित नग्न आत्मा और शरीर में नग्न, वस्त्र का टुकड़ा नहीं। उस नग्न को मोक्ष है। इसके अतिरिक्त सब उन्मार्ग है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य (ने ऐसा कहा है)। टोडरमलजी तो कहते हैं कि स्थानकवासी और श्वेताम्बर, वे अन्यमति हैं, जैनमति हैं ही नहीं। कठिन बात है, भाई! है तो हित की परन्तु... आहाहा! पूरे समुदाय पर चोट पड़े तो कठोर लगे। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो स्पष्ट कह दिया। दोनों जैनमति ही नहीं हैं, अन्य की तो बात क्या करना?

मुमुक्षु : सब अन्यमति।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्यमति है। यह वह कहता था न? सबकी हजामत की है, वह कहता था, भाई! यह कैसा? बल्लभसागर कैसा? बल्लभविजय। वह बल्लभविजय

कहता था, मुझे यहाँ मिला था। यहाँ पालीताणा जाते हुए डोली में और कुछ श्रद्धा में ठिकाना नहीं। सब धर्म, सब इकट्ठे होकर धर्म का करना। वह कल्याणजी साथ में था। सब धर्म की करो वृद्धि, धर्म का ऐसा करो परन्तु अभी धर्म तुम्हारे है ही नहीं न, कल्याणजी साथ में था, उसे भी यह कहे। अरे! भाई! क्या हो? कठोर लगता है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा कि अन्तर में विकल्परहित जो निर्विकल्प आनन्द में रमते हैं और बाहर में वस्त्ररहित ऐसे नग्न को मोक्ष होता है। आहाहा! परन्तु वस्त्र का एक टुकड़ा भी रखकर मुनिपना माने, मनावे और माननेवाले को भला जाने – निगोदं गच्छई। कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है, वह निगोद में जायेगा। बापू! उसके हित की बात है, हों! भाई! आहाहा! बापू! तुम्हारे अनादर की बात नहीं, भाई! आहाहा! ऐसे अनन्त भव (होंगे), बापू! कठोर पड़ेगा, भाई! आहाहा! वर्तमान में लोग मानेंगे। लोग बेचारे साधारण, बनिया अर्थात् साधारण, व्यापार में लवलीन। कुछ भान नहीं होता। ए...शान्तिभाई! सब ऐसे? आहाहा! यह तो ऊपर त्यागी बैठा और ब्रत लेकर बैठा और हो गया त्यागी। अरे रे! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! वह अकषायस्वभावी ज्ञायक को जानता नहीं एवं पाता नहीं। जबकि वह श्रुतसागर तो ऐसा ही कहते हैं, अभी तो शुभयोग ही होता है। अर..र..र! दिगम्बर साधु होकर ऐसी बात बाहर रखी। प्रभु.. प्रभु..! अरे! परमात्मा नहीं मिलते। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि अकषायस्वभाव जो राग की मन्दता दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, प्रभु का स्मरण... आहाहा! शास्त्र वांचन में होनेवाला शुभराग, उसमें जो सन्तुष्ट हो जाता है। आहाहा! वह अकषायस्वभावी ज्ञायक को जानता नहीं एवं पाता नहीं।

पश्चात् बहिन का शब्द गुरुदेव पुकार-पुकारकर कहते हैं कि ज्ञायक का आश्रय करके... आहाहा! पूर्ण चैतन्यघन प्रभु का आश्रय करके शुद्ध परिणति प्रगट कर;... आहाहा! इसके अतिरिक्त धर्म है नहीं। आहाहा! भले ग्यारह अंग पढ़ा हो, लाखों लोगों में ऐसे भाषण देकर प्रसन्न-प्रसन्न करता हो, बापू! वह चीज़ दूसरी, भाई! उसमें कुछ (नहीं है)। एक कोई है, कच्छ में साधु है। श्वेताम्बर (है), उसने यहाँ का पढ़ा, देखा... उसे ऐसा हो गया अन्दर से, ओहो..! परन्तु बेचारा सम्प्रदाय छोड़ नहीं सकता। पच्चीस-पच्चीस वर्ष, चालीस-चालीस वर्ष निकाले हों। भाई आये थे न राजकोटवाले, नहीं?

भावसार। वह वहाँ रहते हैं। वह कहता था कि यहाँ का साहित्य पढ़कर... आहाहा! यथार्थ बात है। साधु किसे कहा जाये, उसकी खबर नहीं होती। पढ़ा, बड़ा भाषण दिया जगत को। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, प्रभु ज्ञायक का आश्रय ले। 'भूदत्थमस्मिदो' भाषा है न शास्त्र की? आहाहा! ११वीं गाथा। भूतार्थ, सत्यार्थ प्रभु सत्यसाहेब पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसका आश्रय ले तो शुद्धदशा प्रगट हो, तो धर्म प्रगट हो; बाकी धर्म-बर्म है नहीं। आहाहा!

वही एक पद है,... अपद-अपद आता है न? **शेष सब अपद है।** आहाहा! जो पद है प्रभु का, चैतन्यमूर्ति भगवान, आहाहा! उसका आश्रय लेकर शुद्धपरिणति प्रगट होती है। आहाहा! बाकी सब शुभ-अशुभभाव, वे निजपद नहीं हैं, वे अपद हैं। आहाहा! ऐसी बातें। क्या हो? **वही एक पद है, शेष सब अपद है।** आहाहा! आता है न? निर्जरा अधिकार में, समयसार में (आता है)। अपद... अपद...। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञायक ध्रुवस्वरूप का आश्रय लेकर, उसे विश्वास में लेकर निर्मल दृष्टि प्रगट कर। वह शुद्धता प्रगट की कहलाती है और वह पद जीव का है। आहाहा! बाकी रागादि व्यवहाररत्नत्रय का राग... ऐ... देवानुप्रिया! उस व्यवहार का पूछा था न? व्यवहाररत्नत्रय का राग, बापू! वह राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह भी होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निश्चय होवे उसे राग (आता है) परन्तु फिर भी वह दुःखरूप है, वह अपद है। आहाहा! बाहर का क्रियाकाण्ड करके लोगों को ऐसे अन्दर से चैन मनावे। आहाहा! महीने-महीने के उपवास, दो-दो महीने के उपवास। आहाहा! क्या है परन्तु अब यह? धूल भी नहीं है, मर जायेगा। जायेगा (नीचे) अब भाई! परन्तु लोगों को ऐसा आकर्षण होता है। महीने के उपवास, दो महीने के उपवास, संथारा किया है और इसने यह त्याग किया। आहाहा! बेचारे लोगों को खबर नहीं होती, आकर्षित होकर पड़ते हैं, जैसे पतंगा अग्नि में गिरता है। आहाहा! परन्तु अन्दर में मिथ्यात्व का त्याग क्या है और स्वभाव का आदर क्या है, इसकी उसे खबर नहीं होती। आहाहा!

छह खण्ड के राज्य में रहा होने पर भी समकित्ती को मिथ्यात्व का त्याग है। यह

त्याग, वह यथार्थ है। आहाहा! और शुद्धि की वृद्धि करते-करते आगे बढ़ता है, वही वास्तविक राग का और मिथ्यात्व का त्यागी है। आहाहा! बाहर का त्याग करके इसने राग में क्रीड़ा की है। आहाहा! वह बड़ा अत्यागी है, धर्म का त्यागी है। धर्म को त्यागा है। आहाहा! राग को ग्रहण किया है। ऐसी बातें हैं, भाई! वाद विवाद से कुछ पार पड़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! ३७४ (बोल पूरा हुआ)।

इस चैतन्यतत्त्व को पहिचानना चाहिये। चैतन्य को पहिचानने का अभ्यास करना, भेदज्ञान का अभ्यास करना—वही कर्तव्य है। वह अभ्यास करते-करते आत्मा की रागादि से भिन्नता भासित हो तो आत्मा का स्वरूप प्राप्त हो जाये। आत्मा चैतन्यतत्त्व है, ज्ञायकस्वरूप है—उसे पहिचानना चाहिये। जीव को ऐसा भ्रम है कि परद्रव्य का मैं कर सकता हूँ। परन्तु स्वयं परपदार्थ में कुछ नहीं कर सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है। स्वयं ज्ञाता है, ज्ञायक है। परपदार्थ में उसका ज्ञान जाना नहीं है और पर में से कुछ आता नहीं है। यह समझने के लिये देव-शास्त्र-गुरु आदि बाह्य निमित्त होते हैं, परन्तु दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि जो प्रगट होता है, वह सब अपने में से ही प्रगट होता है। उस मूलतत्त्व को पहिचानना, वही कर्तव्य है। दूसरा बाहर का तो अनन्त काल में बहुत किया है। शुभभाव की सब क्रियाएँ कीं, शुभभाव में धर्म माना, परन्तु धर्म तो आत्मा के शुद्धभाव में ही हैं। शुभ तो विभाव है, आकुलतारूप है, दुःखरूप है, उसमें कहीं शान्ति नहीं है। यद्यपि शुभभाव आये बिना नहीं रहते, तथापि वहाँ शान्ति तो नहीं है। शान्ति हो, सुख हो—आनन्द हो—ऐसा तत्त्व तो चैतन्य ही है। निवृत्तिमय चैतन्यपरिणति में ही सुख है, बाह्य में कहीं सुख है ही नहीं। इसलिये चैतन्यतत्त्व को पहिचानकर उसमें स्थिर होने का प्रयास करना, वही यथार्थ श्रेयरूप है। वह एक ही मनुष्य जीवन में करनेयोग्य—हितरूप—कल्याणरूप है ॥३७५

३७५, ओहोहो! बड़ा है। इस चैतन्यतत्त्व को पहिचानना चाहिए। प्रभु! अन्दर चैतन्य के नूर के तेज का पूर पड़ा है, अन्दर (विद्यमान है) प्रभु! आहाहा! भाई! तुझे खबर

नहीं है। आहाहा! वह आता है, और आ गया? साधु को ऐसा कि पतली धारा... यह अभी आया नहीं। पतली धारा (नहीं), हमें तो अधिक चाहिए। मुनि का है। कहीं है अवश्य। ४१५। आहाहा! मुनिराज कहते हैं... आहाहा! ४१५ कितना आ गया है इसमें! आहाहा! मुनिराज कहते हैं:—हमारा आत्मा तो अनन्त गुणों से भरपूर,... आहाहा! ४१५ पैराग्राफ, क्या कहलाता है यह? बोल, ४१५ बोल। आहाहा! मुनिराज कहते हैं। आत्मज्ञानी आनन्द की धारा जिन्हें बहती है। आहाहा! आत्मा तो अनन्त गुणों से भरपूर, अनन्त अमृतरस से भरपूर, अक्षय घट है। महा अक्षय अमृत का घट प्रभु आत्मा है। आहाहा! उस घट में से पतली धार से अल्प अमृत पिया जाये, ऐसे स्वसंवेदन से हमें सन्तोष नहीं होता। आहाहा! मुनिराज भाव मुनि बाह्य में दिगम्बर हों, अन्दर में विकल्प से निर्विकल्प बहुत दशा प्राप्त की हो। आहाहा! वे मुनिराज ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस घट में से पतली धार से अल्प अमृत पिया जाये, ऐसे स्वसंवेदन से हमें सन्तोष नहीं होता। आहाहा! हमारे तो अन्तर आनन्द की मूसलधार धारा चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुनि हैं, उन्हें प्रचुर स्वसंवेदन की आनन्द की धारा तो होती ही है, तभी उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा! परन्तु यहाँ कहते हैं कि हमें पतली धारा आती है, हों! आहाहा! घट में से, अमृत का घट सागर प्रभु भरा है, उसमें से पतली धारा से अमृत आता है। आहाहा! उसमें हमें सन्तोष नहीं है। आहाहा!

हमें तो प्रतिसमय पूर्ण अमृत का पान हो... आहाहा! देखो! यह मुनिराज सन्त की यह भावना होती है। अरे रे! हमारा यह अमृत का नाथ, अमृत से भरपूर, उसमें फूटा है—प्रवाह आया है परन्तु पतली धारा से आया है। आहाहा! इतने से हमें सन्तोष नहीं होता। आहाहा! हमें तो प्रतिसमय... प्रत्येक समय में और पूरा—दो (बातें की हैं)। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वे मुनि अभी कहाँ है, बापू! आहाहा! जिन्हें अमृत का प्याला अन्दर से प्रस्फुटित हुआ है, फव्वारा। आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की रमणता में अमृत की धारा बहती है, परन्तु वह तो पतली धारा है, हों! आहाहा! परन्तु हमें तो एक समय में और पूर्ण अमृत का पान हो, ऐसी पूर्ण दशा चाहिए। आहाहा! है? ऐसी बातें हैं।

उस पूर्ण दशा में सादि-अनन्त काल पर्यन्त प्रतिसमय पूर्ण अमृत पिया जाता है और घट भी सदा परिपूर्ण भरा रहता है। आहाहा! पर्याय में एक समय में पूरा अनन्त

अमृत वेदन में आता है, तथापि घट है-भगवान वस्तु है, वह तो परिपूर्ण पड़ी है। आहाहा! अनन्त पतली में से अनन्त धारा पूरी प्रगट हुई। आहाहा! तथापि वस्तु में इस अमृत का नाथ प्रभु है, वह तो पूर्ण घट भरपूर है। इस समय। आहाहा! उस अमृत की पूरी धारा एक समय में आयी, तथापि उस वस्तु में कुछ कमी हो गयी है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसा तो वस्तु का स्वरूप इन सर्वज्ञ के सिवाय किसी ने देखा नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भी अमृत की धारा बहुत ही पतली होती है। थोड़ी (होती है) मुनि को उससे विशेष होती है, तथापि उसे कहते हैं कि यह एक समय में पूरी अमृत धारा, इस हिसाब से इस पतली धारा में हमें सन्तोष नहीं होता। आहाहा! देखो! यह मुनि की भावना और मुनि की दशा! आहाहा! अरे रे!

यह यहाँ कहते हैं। आहाहा! ३७५ है न? इस चैतन्यतत्त्व को पहिचानना चाहिए। नव तत्त्व में चैतन्यतत्त्व कैसा है, उसे पहिचानना चाहिए। आहाहा! चैतन्य को पहिचानने का अभ्यास करना,... उसे जानने का, उसका अन्तर में अभ्यास करना चाहिए। आहाहा! भेदज्ञान का अभ्यास करना... राग से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न, ऐसे भेदज्ञान का अभ्यास करते-करते आत्मा की रागादि से भिन्नता भासित हो तो आत्मा का स्वरूप प्राप्त होता है। आहाहा! यह इसकी विधि और पद्धति है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल -११, शुक्रवार, दिनाङ्क १०-११-१९७८
वचनामृत-३७५ प्रवचन-१४६

३७५ बोल है। वचनामृत, थोड़ा चला है। फिर से (लेते हैं)। ३७५ इस चैतन्यतत्त्व को पहिचानना चाहिए। क्या कहते हैं? जिसे आत्मज्ञान करना हो, सम्यग्दर्शन करना हो, धर्म की सीढ़ी सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो तो उसे पहले चैतन्यतत्त्व को पहिचानना चाहिए। आहा! चैतन्यतत्त्व जो ज्ञायकस्वरूप भगवान शरीर से भिन्न है। यह शरीर तो जड़ है, इससे भिन्न है। पुण्य-पाप के जो भाव होते हैं, दया, दान, व्रत, भक्ति और काम-क्रोध, ये शुभाशुभभाव, ये तो पुण्य-पाप हैं, विकार है, इनसे तो आत्मा भिन्न है। ऐसे चैतन्य को (पहिचानना चाहिए)। सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल हुआ। अनन्त बार मुनिव्रत धारण किये, पंच महाव्रत के परिणाम लिये, वह तो आस्रव है, वह तो कोई आत्मा नहीं, वह कोई धर्म नहीं। आहाहा!

जिसे कल्याण करना हो और आत्मधर्म करना हो तो पहले इस चैतन्यतत्त्व को पहिचानना चाहिए। आहाहा! आत्म ज्ञायकस्वरूप है, त्रिकाल ध्रुव, नित्य है, ऐसे चैतन्यस्वरूप को पहिचानना चाहिए, उसका ज्ञान करना चाहिए। आहाहा! ऐसी बात है। चैतन्य को पहिचानने का अभ्यास करना,... आहाहा! ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द प्रभु मैं हूँ, ऐसे राग से भिन्न करने का-भेदज्ञान करने का अभ्यास करना चाहिए। यह बात है, भाई! आहाहा! लाख व्रत-तप, भक्ति और पूजा करे, वह तो अनन्त बार किया है, वह तो शुभभाव है; वह कहीं धर्म नहीं और धर्म का कारण नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

चैतन्य को पहिचानने का अभ्यास करना, भेदज्ञान का अभ्यास करना—वही कर्तव्य है। आहाहा! आत्मा ज्ञायकस्वरूप चिद्घन आत्मा आनन्दकन्द प्रभु है, आहाहा! उसे राग से भिन्न करने का अभ्यास करना। यह चैतन्य सम्यग्दर्शन में प्राप्त होने की यह

पद्धति है। आहाहा! यह रीति है। वह अभ्यास करते-करते आत्मा की रागादि से भिन्नता भासित हो... आहाहा! चैतन्य ज्ञायक आनन्दस्वरूप प्रभु को राग से भिन्न करते-करते... आहाहा! यह राग की क्रिया जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि है, वह सब राग है। उस राग से भिन्न करने का अभ्यास करना। आहाहा! नवतत्त्व है न? तो शरीर और कर्म वह तो अजीवतत्त्व है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना, वह पापतत्त्व है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव, वह तो पुण्यतत्त्व है। वह कोई आत्मतत्त्व नहीं है। आहाहा!

वह अभ्यास करते-करते आत्मा की रागादि से भिन्नता भासित हो... आहाहा! तो आत्मा का स्वरूप प्राप्त हो जाये। आहाहा! यह पद्धति है। पहले आत्मज्ञान करना। आत्मज्ञान के बिना सब व्यर्थ है। आहाहा! यह आत्मज्ञान किस प्रकार होता है? कि राग जो विकल्प है, उस राग से भिन्न करते-करते आत्मा की दृष्टि हो जाना, आत्मा प्राप्त हो जाना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। ऐसा है, भगवान! **वही कर्तव्य है।** ऐसा लिया न? यही कर्तव्य है। ज्ञानस्वरूप प्रभु ज्ञायक (को) राग से भिन्न करना, यही कर्तव्य है। आहाहा! यह अनन्त काल अनन्त बार 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' पंच महाव्रत लिये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, हजारों रानियाँ छोड़ी, राज-कुटुम्ब छोड़ा, पंच महाव्रत पालन किये तो राग है, वह तो विकल्प है, आस्रव है, दुःख है। आहाहा! 'आत्मज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' वह आस्रव का भाव है, उसमें तो दुःख है। आहाहा! शुभराग है, दुःख है, आकुलता है; वह कोई धर्म नहीं है और वह धर्म का कारण भी नहीं है। उससे पृथक् करना और आत्मा का ज्ञान करना, इसका नाम धर्म है। आहाहा! है?

आत्मा का स्वरूप प्राप्त हो जाये। ज्ञायकस्वरूप दृष्टि में प्राप्त हो जाये, राग की क्रिया से भिन्न करते-करते। आहाहा! राग से लाभ मानना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! वह जैनधर्म नहीं है। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, यात्रा, पूजा का भाव, वह शुभराग है। उसमें धर्म मानना, वह मिथ्यात्वभाव है, अनन्त संसार का कारण है - ऐसी बात है। ऐसे राग से भिन्न करने का अन्दर अभ्यास करना। जिसे भेदविज्ञान (कहते हैं)। '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।**' भगवान अमृतचन्द्राचार्य मुनि हैं, सन्त हैं, पंच परमेष्ठी में (सम्मिलित हैं)। वे कहते हैं, भेदविज्ञान सिद्धा। जो कोई अभी तक मुक्ति को प्राप्त हुए

हैं, वे राग की भिन्नता करके, आत्मा को प्राप्त करके भेदविज्ञान से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

‘भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।’ अभी तक जितने मुक्ति को प्राप्त हुए, मोक्ष-सिद्ध हुए, वे सब भेदज्ञान से हुए हैं। राग की क्रिया से भेद करना और अपने स्वरूप की प्राप्ति करना, उससे मुक्त हुए हैं। आहाहा! और ‘अस्यैवाभावतो बद्धा’ और राग तथा आत्मा की एकताबुद्धि (अर्थात्) भेदविज्ञान के अभाव के कारण बन्धन में पड़े हैं। आहाहा! जो राग है, वह मेरी वस्तु है, ऐसा जो भेदज्ञान का अभाव, उसके कारण से बन्धन में, मिथ्यात्व में पड़े हैं। आहाहा! ऐसी बात है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनराज जिनवर जिनेश्वर कहते हैं, वह यह बात है। आहाहा!

आत्मा चैतन्यतत्त्व है, ... भगवान आत्मा तो जाननस्वभाव चैतन्यलोक है। अनन्त-अनन्त चैतन्यस्वभाव जिसका है, उसमें तो राग, पुण्य-पाप आदि, दया, दान के विकल्प वस्तु में नहीं हैं। आहाहा! ऐसा जो आत्मा चैतन्यतत्त्व है, ज्ञायकस्वरूप है। उसे चैतन्यतत्त्व कहो, जाननस्वभाव कहो या ज्ञायकस्वभाव कहो या ध्रुवस्वभाव कहो, सामान्यस्वभाव कहो, नित्यानन्द प्रभु कहो, सदृश त्रिकाली स्वरूप कहो। आहाहा! उस आत्मा का स्वरूप ज्ञायक है। जानना-देखना, यह उसका स्वरूप है। आहाहा! उसे पहिचानना चाहिए। चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव प्रभु को पहिचानना चाहिए। उसका ज्ञान करना चाहिए। आहाहा! ऐसी बात है। जगत कहाँ-कहाँ मानकर बैठा है। वीतराग कहाँ क्या बात कह रहे हैं, इसकी खबर नहीं है।

यह कहते हैं, जीव को ऐसा भ्रम है कि परद्रव्य का मैं कर सकता हूँ। क्या कहते हैं? अज्ञानी जीव को ऐसा भ्रम है कि मैं शरीर की क्रिया कर सकता हूँ, हिलना-चलना-बोलना (कर सकता हूँ), ऐसा अज्ञानी को भ्रम है। हाथ-पैर चलते हैं, भाषा होती है, वह तो सब जड़ की क्रिया है। अज्ञानी को भ्रम है कि उस क्रिया को मैं कर सकता हूँ। आहाहा! खाने-पीने की क्रिया तो जड़ की है। उस पर को मैं कर सकता हूँ (-ऐसा भ्रम है)। आहाहा! ऐसी बात है।

जीव को ऐसा भ्रम... मिथ्यात्व है कि परद्रव्य का मैं कर सकता हूँ। यह लेखन

कला होती है, वह क्रिया जड़ की है। अज्ञानी को भ्रम है कि यह मैं लिखता हूँ। आहाहा! ऐसी बातें! भगवान तो चैतन्यतत्त्व है न! यह लेखन क्रिया आदि तो जड़ है, अजीव है। यह अजीव है, कलम भी अजीव है, अक्षर पढ़ते हैं, वह भी अजीव है।

मुमुक्षु : मोती के दाने जैसे अक्षर हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोती के दाने जैसे। हमारे खुशालभाई को लिखावट बहुत थी। मोती के दाने जैसी। हमारे बड़े भाई थे न? मर गये। मोती के दाने जैसे, वह तो जड़ के अक्षर हैं। दुकान का, घर की दुकान का नामा लिखते थे। दुकान घर की थी। बहुत मोती के दाने जैसे अक्षर, परन्तु वह तो जड़ के अक्षर हैं, आत्मा के नहीं।

मुमुक्षु :सरीखे होंगे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सरीखे न हों या सरीखे हों, वह सब जड़ के कारण से है। ऐसी बातें हैं, बापू! बहुत कठिन काम, भाई! होशियार व्यक्ति, इसलिए मैं नामा ठीक से लिख सकता हूँ, (ऐसा) अज्ञानी का भ्रम है। आहाहा! भगवान तो ज्ञानस्वरूप है, वह पर की क्रिया कैसे करे? आहाहा! वस्तु तो यह है। यह शरीर तो मिट्टी-धूल है। ऐसे-ऐसे होता है, वह तो जड़ की क्रिया है। आत्मा कर सकता है, यह अज्ञानी का भ्रम है। आहाहा! ऐसी बात है। यह मिथ्यात्वभाव है, महापाप है। परद्रव्य का कर सकता हूँ, यह महापाप है। इसकी तो खबर नहीं होती, क्योंकि प्रभु तो ज्ञायकस्वरूप ज्ञान का पिण्ड है। जाननस्वभाव का पिण्ड वह तो है। वह परद्रव्य को जाने या परद्रव्य को करे? आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों करे या एक करे? या ज्ञान करे और या मिथ्यात्व से कर्ता हो। ऐसी बात कठोर बात, बापू!

नवतत्त्व है या नहीं? तो अजीवतत्त्व है या नहीं? तो अजीवतत्त्व की क्रिया जीव करे तो अजीवतत्त्व की क्रिया अजीव ने क्या की?

मुमुक्षु : परन्तु जीव में तो सर्व शक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण शक्ति अपने में स्वभाव में करना, वह पूर्ण शक्ति है। पर में करे, वह पूर्ण शक्ति ही नहीं है। आँख की यह एक पलक झपकना, वह आत्मा की शक्ति

नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह चश्मा है, यह नीचे से यहाँ ऊपर लगाना, वह जड़ की क्रिया है, आत्मा की है ही नहीं।

मुमुक्षु : चश्मा होवे तो पढ़ा जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो और कुछ दूसरी बात हो गयी। चश्मा होवे तो पढ़ा जाये, यह तो और दूसरी बात है। यह तो जड़ से मेरा ज्ञान हुआ, यह तो मिथ्याभ्रम है। आहाहा! यह तो बड़ी चर्चा हुई थी। लींबडी... लींबडी। लींबडी में श्वेताम्बर साधु आया था। क्या नाम? चन्द्रशेखर। उसका काका है न? जीवाप्रताप। गुजर गया, करोड़पति। वह श्वेताम्बर साधु मेरे पास आया। कहा, अपन चर्चा करें। (हमने) कहा, हम किसी के साथ चर्चा नहीं करते। फिर करते.. करते... करते... साथ में दो-चार श्रावक थे। फिर और कहा कि इस चश्मे से पढ़ा जाता है या नहीं? (हमने) कहा, चर्चा हो गयी। यह चश्मा तो मिट्टी-धूल है, अजीब है। इससे ज्ञान होता है?

मुमुक्षु : इन्द्रिय से ज्ञान नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय से भी ज्ञान नहीं होता। इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, मिट्टी है, धूल है। भगवान जाननेवाला तो इन्द्रियों से भिन्न है।

मुमुक्षु : ...दो प्रकार का ज्ञान-एक इन्द्रिय ज्ञान और एक अतीन्द्रिय ज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय ज्ञान तो इसलिए कहलाता है कि ज्ञान में इन्द्रियाँ निमित्त पड़ती हैं इस अपेक्षा से। परन्तु इन्द्रियों से ज्ञान होता है, इस जड़ से ज्ञान होता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। अरे! भावेन्द्रिय क्षयोपशम है, उनसे ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। यह तो आ गया है (समयसार) ३१ गाथा में आ गया है। 'जे इंदिये जिणित्ता' सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग जैन परमेश्वर सर्वज्ञदेव अरिहन्तदेव का पन्थ कोई अलग है। अभी तो सम्प्रदाय में गड़बड़ उठी है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, मैं यह दाढ़ हिला सकता हूँ, रोटी के टुकड़े... क्या कहते हैं? टुकड़े कर सकता हूँ, यह सब अज्ञानी का भ्रम है। ऐसी बात।

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष क्या दिखता है? यह होता है, ऐसा दिखता है, परन्तु इसने

(आत्मा ने) किया, ऐसा कहाँ दिखा ? आहाहा ! यह तो संयोग से देखता है । देखता है (अर्थात्) होता है क्या ?

यह यहाँ कहते हैं, आहाहा ! जीव को ऐसा भ्रम है कि परद्रव्य का मैं कर सकता हूँ । परन्तु स्वयं परपदार्थ में कुछ नहीं कर सकता । आहाहा ! शरीर की क्रिया, वाणी की क्रिया, पर जीव की दया की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता, प्रभु ! आहाहा ! राग करे कि मैंने यह किया, ऐसा राग करे परन्तु पर की क्रिया कर सके, यह तीन काल में नहीं है और राग करता है, उसका भी कर्ता होता है तो वह भी मिथ्यादृष्टि है । आहाहा ! ऐसी बात है । राग है, वह विकल्प है, दुःख-आकुलता है । भगवान आत्मा तो अनाकुल ज्ञानमूर्ति है, चैतन्यस्वरूप है । आहाहा ! आँख है, वह गड्ढा कर सकती है ? गड्ढे में धूल डालने का आँख कर सकती है ? इसी प्रकार आत्मा तो ज्ञानचक्षु प्रभु है । आहाहा ! कठिन काम । दुकान में बैठे और बराबर धन्धा चले । गुलाबचन्दभाई ! ऐसी बातें हैं । तब पर कर्ता होगा, उसमें भगवान करता होगा यह ? भगवान तो कहाँ (करे) ? भगवान तो केवलज्ञानी परमात्मा है । अज्ञानी ऐसा मानते हैं कि इस शरीर में हिलाता हूँ, वाणी बोल सकता हूँ, पर की दया पालन कर सकता हूँ, ऐसी क्रिया का कर्ता अज्ञानी मानता है । है नहीं ।

मुमुक्षु : धीरे बोलना हो तो धीरे बोले, जल्दी बोलना हो तो जल्दी बोले ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो कहता था न ? बुलन्दशहर के... बुलन्दशहर के कैलाशचन्दजी (वे कहते हैं,) धीरे बोलो, जोर से बोलो, खबर है न । अब यह बेचारा बदल गया । सर्वत्र प्रवचन देते हैं, सर्वत्र देते हैं, बाहर जाते हैं । बुलन्दशहर के कैलाशचन्दजी हैं । आहाहा !

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! एक बार सुनो तो सही । तेरा तत्त्व क्या है ? तू तो चैतन्यतत्त्व है, ज्ञानतत्त्व है, जाननतत्त्व है । वह परद्रव्य का क्या करे ? आत्मा से देह का हलन-चलन होता है, यह बिल्कुल भ्रम है । आहाहा ! अजीव की क्रिया अपने से होती है, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि मूढ़ है । वह जैनधर्म को नहीं जानता । आहाहा ! वह जैन ही नहीं है ।

जैन तो उसे कहते हैं कि 'घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सौ मतवाला समझे न ।' समयसार नाटक, बनारसीदास । 'घट-घट अन्तर

जिन बसे,...' यह आत्मा अन्दर जिनस्वरूप वीतरागस्वरूप विराजता है। आहाहा! और 'घट-घट अन्तर जैन,..' यह राग से भिन्न होकर जिनस्वरूप का अनुभव करना, इसका नाम जैन है। आहाहा! किन्तु राग की क्रिया मैं कर सकता हूँ और पर की क्रिया कर सकता हूँ, वह (ऐसा माननेवाला) जैन नहीं है, वह तो अजैन, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

ऐसा भ्रम है कि परद्रव्य का मैं कर सकता हूँ। परन्तु स्वयं परपदार्थ में कुछ नहीं कर सकता। शरीर में, वाणी में, खाने-पीने की क्रिया में, दुकान के धन्धे में पैसे देना, पैसे लेना, यह क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा! ऐसा गले उतरना। प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है। प्रत्येक द्रव्य, रजकण हो या आत्मा हो; भगवान ने छह द्रव्य कहे हैं—धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, पुद्गल और जीव। परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ने छह द्रव्य कहे हैं। प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय करने में स्वतन्त्र है। दूसरा द्रव्य उसकी पर्याय करे - ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! यह पृष्ठ ऐसे फिरता है तो इसकी क्रिया जड़ से हुई है। इस अंगुली से भी नहीं। आहाहा! यह बात! अंगुली इसे स्पर्श नहीं करती। ऐसी बात है। ये दुनिया के होशियार ऐसे दुकान पर बैठें, दो-पाँच लाख की आमदनी होती है। ऐसा बस... आहाहा! ऐसा किया, ऐसा किया। धूल में भी नहीं किया। सुन न! तूने मिथ्याभ्रम किया है। आहाहा!

स्वयं द्रव्य स्वतन्त्र है। प्रत्येक द्रव्य (स्वतन्त्र है)। एक-एक पॉइन्ट, यह मूल चीज़ नहीं है, यह (स्कन्ध) तो पॉइन्ट अनन्त-अनन्त परमाणु से जड़ स्कन्ध-पिण्ड बना है। इसके टुकड़े करते-करते अन्तिम टुकड़ा रहे, उसे परमाणु कहते हैं। वह परमाणु स्वतन्त्र है, अपनी पर्याय करने में स्वतन्त्र है। आत्मा उसकी पर्याय कर (नहीं) सकता। पर्याय अर्थात् यह हलन-चलन की क्रिया। आहाहा! परमाणु का रूपान्तर करना, वह आत्मा कर सकता, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : महिलायें सब्जी बनावे, रोटियाँ बनावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मिथ्या अभिमान है। धूल में भी नहीं करती। सब्जी क्या करे? रोटी होती है न? यह हाथ ऐसे होता है, वह हाथ की क्रिया है। आत्मा वह क्रिया नहीं कर सकता। रोटी बनाते हैं न? रोटी। उस आटे का जो होता है न? क्या कहते हैं? आटे का पिण्ड। रोटी बनाने को उसके टुकड़े कर सकते हैं, ऐसा बिल्कुल नहीं है और रोटी में...

बेलन होता है न? बेलन। वह बेलन ऐसे-एसे करते हैं, वह आत्मा बिल्कुल नहीं (करता)। अरे! अब ऐसी बातें...

मुमुक्षु : यह मान्यता तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल को पागल जैसी बात लगे, ऐसी है। दुनिया पागल है। वीतराग परमात्मा कहते हैं, उससे विरुद्ध मान्यता है। आहाहा!

प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है। स्वयं ज्ञाता है,... भगवान आत्मा तो ज्ञाता है। जाननशरीर, जाननस्वरूप। आहाहा! यह शरीर तो जड़ का, मिट्टी का है। वाणी मिट्टी की है। यह वाणी उठती है, वह आत्मा की नहीं है। **ज्ञायक है। परपदार्थ में उसका ज्ञान जाना नहीं है...** क्या कहते हैं? यह शरीर और वाणी होती है, उनमें ज्ञानस्वरूप भगवान, अपने ज्ञायकभाव की पर्याय जड़ में नहीं जाती। वह तो अपनी पर्याय में रहती है। जानने की क्रिया—जानने की पर्याय अपने में रही है। जानने की पर्याय जड़ में नहीं कि जड़ का कर सके। आहाहा! ऐसा है।

पर में से कुछ आता नहीं है। परपदार्थ में जड़ अनन्त परमाणु हैं। प्रत्येक परमाणु स्वतन्त्र है। उसमें ज्ञान-पर्याय नहीं जाती और पर की पर्याय उसमें नहीं आती। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह मार्ग कहीं नहीं है। परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव के अतिरिक्त यह मार्ग कहीं नहीं है। आहाहा! किसी ने ईश्वरकर्ता माना, किसी ने आत्मा अनासक्ति से काम लेना, करना (-ऐसा माना)। काम करना परन्तु अनासक्ति से करना। यह सब गप्प है। आहाहा! और करना तो ईश्वर को सौंप देना, उसके फल के लिये—ऐसा कितने ही कहते हैं। ये सब मिथ्या बातें हैं, मिथ्याभ्रम है। कर नहीं सकता, फिर करना और ईश्वर को सौंप देना, यह बात कहाँ से आयी? समझ में आया?

ईश्वर तो परमात्मा जिनेश्वरदेव, वे ईश्वर हैं। ईश्वर कोई कर्ता-फर्ता है नहीं। परमेश्वर तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान आदि विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान परमेश्वररूप से अरिहन्त पद में विराजते हैं। वह ईश्वर किसी का करे? और कोई करे तो ईश्वर को सौंपे, ऐसा होता है? वे तो ज्ञानस्वरूप परमात्मा हैं। आहाहा! महावीर भगवान आदि तो सिद्धपद में गये। णमो सिद्धाणं। ये णमो अरिहन्ताणं। सीमन्धर भगवान

विराजते हैं, वे तो णमो अरिहंताणं में हैं, आहाहा! तो वे वहाँ किसी का कर सकता हैं? और कोई करे तथा उन्हें सौंपे कि प्रभु! हमारी क्रिया आपको सौंपते हैं। वे तो सर्वज्ञ हैं।

मुमुक्षु : कर्म तो करे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म भी आत्मा नहीं करता। कर्म, कर्म के कारण बँधते हैं। अज्ञानी आत्मा राग करता है। कर्म बँधना, वह तो जड़ की पर्याय है। अज्ञानी राग करता है, उस समय कर्म बँधते हैं, वह कर्म की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा!

यहाँ तो आत्मा ज्ञायक चैतन्य है, वह राग को भी नहीं करता। आहाहा! राग होता है, उसे जाननेवाला आत्मा है। आहाहा! यह बात कठिन पड़े ऐसी है। भाई! क्या हो? दुनिया के बाहर के पाप में से निवृत्त नहीं होता। उसमें और यह बातें सुनने की। अरे रे! आहाहा!
परपदार्थ में उसका ज्ञान जाता नहीं है... ज्ञानस्वरूप प्रभु, (ज्ञान) चक्षु, आनन्दकन्द ज्ञान परपदार्थ में नहीं जाता। परपदार्थ कुछ आते नहीं।

यह समझने के लिये देव-शास्त्र-गुरु आदि बाह्य निमित्त होते हैं,... सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव बाह्य निमित्त हैं। गुरु निर्ग्रन्थ महामुनि आत्मध्यानी-ज्ञानी, वे गुरु हैं, वे यह समझने में निमित्त हैं, निमित्त। भगवान ने कहे हुए शास्त्र, जैन परमेश्वर ने जो परमागम कहे, वे यह बात समझने में निमित्त है। यह बात अन्यत्र नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा, गुरु निर्ग्रन्थ और शास्त्र, परमात्मा के कहे हुए परमागम—ये तीनों परमेश्वर के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं हैं। ये निमित्त हैं।

परन्तु दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि जो प्रगट होता है, वह सब अपने में से ही प्रगट होता है। वे तो निमित्त हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी - जो प्रगट होता है, वह निज द्रव्य के आश्रय से स्वयं से होता है, कोई भगवान से नहीं होता। आहाहा! है? दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र आदि जो प्रगट होते हैं। भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु का आश्रय लेकर जो दर्शन, चारित्र की पर्याय (प्रगट) होती है, वह स्वयं आत्मा प्रगट करता है। वह देव-गुरु-शास्त्र से प्रगट नहीं होती। आहाहा! **वह सब अपने में से ही प्रगट होता है।** वह देव-गुरु-शास्त्र में से प्रगट नहीं होता।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः - यह तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वामी (का सूत्र है)

जो पर्यूषण में हमेशा पढ़ा जाता है। उनका यह सूत्र है—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः, परन्तु वह सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि कौन प्रगट करे? अपना आत्मा अपने से प्रगट कर सकता है, दूसरे से नहीं हो सकता। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, राग की क्रिया से भी प्रगट नहीं होते। इसलिए कहा न? जो प्रगट होता है, वह सब अपने में से ही प्रगट होता है। अपने ज्ञायकस्वरूप में से ही प्रगट होता है। आहाहा! कठिन बातें हैं, भाई! है तो सत्य वस्तु, परन्तु कठिन। अभ्यास नहीं न, इसलिए कठिन कहने में आता है। दुर्लभ कहने में आता है न? बोधिदुर्लभ। आहाहा! अपने में से ही प्रगट होता है।

उस मूलतत्त्व को पहिचानना, वही कर्तव्य है। आहाहा! ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा अपने में से सम्यग्दर्शन अपने से ही प्रगट होता है। ऐसे सम्यग्ज्ञान अपने से अपने में से उत्पन्न होता है और सम्यक्चारित्र अपने में से अपने से ही उत्पन्न होता है। अपने में अपने से। आहाहा! भगवान आत्मा में तो अनन्त गुण पड़े हैं। उन अनन्त गुणों में अपने से अपने में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्षमार्ग का मार्ग अपने में, अपने से (प्रगट होता है)। आहाहा! पर से और पर में से नहीं। आहाहा!

मूलतत्त्व को पहिचानना, वही कर्तव्य है। मूलतत्त्व चैतन्य प्रभु, ज्ञायकभाव को पहिचानना, जानना, वही मूल कर्तव्य है। आहाहा! करनेयोग्य तो यह है। पर का कर्ता नहीं और पर से अपने दर्शन-ज्ञान होते नहीं। राग से होता नहीं और राग का कर्ता आत्मा होता नहीं क्योंकि ज्ञान की पर्याय राग में नहीं जाती तो राग को क्या करे? राग की पर्याय आत्मा के ज्ञान-दर्शन को क्या करे? आहाहा! ऐसी बातें। भगवान त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव इन्द्रों की सभा में ऐसा कहते थे। भगवान विराजते हैं, वे यह कहते हैं।

मुमुक्षु : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। दो हजार वर्ष पहले संवत् ४९, कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त वहाँ गये थे। दिगम्बर आचार्य बीच में हैं, वे वहाँ गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे, वहाँ से आकर शास्त्र बनाये हैं। आहाहा! समझ में आया? वह यह वाणी है। जगत को कठिन पड़े, क्या हो?

यह छह नाम की बात अभी की थी, भाई! धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल,

पुद्गल और जीव। ऐसा आता है। यह अपने समयसार तीसरी गाथा में ऐसा आता है। पहला जीव नहीं आता, वहाँ। नियमसार की गाथा में पहला जीव आता है। यहाँ सर्वत्र धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, पुद्गल और जीव। कुन्दकुन्दाचार्य ने पहला जीव डाला है, परन्तु अमृतचन्द्राचार्य ने टीका में ऐसा डाला है। समयसार की ३ गाथा, ३८ गाथा, ९५ गाथा। यह छह-छह नाम टीका में सीधे हैं। उनमें जाननेवाला भगवान है, उसे अन्त में डाला है। यहाँ जाननेवाला पहला है और पहले डाला है, ऐसी शैली है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य सन्त हजार वर्ष पहले हुए। दिगम्बर सन्त तथा कुन्दकुन्दाचार्य २००० वर्ष पहले (हुए)। संवत् ४९। आहाहा! यह जीव स्वयं सबमें प्रमुख है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

सबको जाननेवाला है। पर से नहीं, पर में नहीं, स्वयं से अपने में जाननेवाला है। आहाहा! दूसरे पाँच द्रव्य हैं, वे अपने को अपने से नहीं जानते और पर को नहीं जानते। वे तो जड़ हैं। यह जड़-मिट्टी, यह तो मिट्टी-धूल है। यह अपने को नहीं जानती कि मैं शरीर हूँ और भगवान अन्दर ज्ञानस्वरूप है, उसे नहीं जानती। जाननेवाला आत्मा अपने से अपने में अपने को जानता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

दूसरा बाहर का तो अनन्त काल में बहुत किया है। दूसरा अर्थात् बाहर का अर्थात् शुभाशुभभाव का अनन्त काल में बहुत किया। शुभाशुभभाव। बाहर के शुभ-दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव। वे तो अनन्त काल में अनन्त बार हुए। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! शुभभाव की सब क्रियाएँ कीं,... शुभभाव की क्रियाएँ (की हैं)। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना धर्म न पायो, सुख न पायो।' आहाहा! शुभक्रिया ऐसी की है, शुक्ललेश्या। शुक्लध्यान नहीं, हों! शुक्लध्यान तो समकित्ती को ही होता है। यह शुक्ललेश्या तो अभव्य को भी होती है। ऐसे भव्य भी अनन्त बार शुक्ललेश्या की है। शुभभाव। आहाहा! उस शुभभाव की सब क्रियायें। आहाहा! वह मिथ्यात्वसहित की बात है। बाकी तीर्थकरगोत्र का शुभभाव, यह नहीं किया। क्या कहा?

शुभभाव की सब क्रियाओं का अर्थ (यह कि) सम्यग्दर्शन बिना जो शुभभाव होता है, उस क्रिया की बात लेनी है। सम्यग्दर्शन के पश्चात् तीर्थकरगोत्र का भाव आता है, है भाव, है राग, परन्तु वह तो सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् होता है। वह क्रिया तो इसने नहीं

की। इसलिए शुभभाव की सभी क्रियाओं में तीर्थकरगोत्र का भाव भी आता है, परन्तु वह नहीं। यहाँ तो सम्यग्दर्शन बिना जो शुभाशुभ क्रिया की, वह अनन्त बार शुभक्रिया (की है) पंच महाव्रत अनन्त बार पालन किये। भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया। महाविदेह में जन्मा, तो भगवान तो कायम त्रिकाल वहाँ विराजते हैं, तो समवसरण में अनन्त बार गया। अनन्त बार भगवान की पूजा की। कल्पवृक्ष के फूल, हीरा का थाल, माणिक का दीपक (लेकर) जय प्रभु...! यह सब तो शुभभाव है। यह जड़ की क्रिया है और अन्दर भाव शुभ है। यह शुभभाव तो अनन्त बार किये। आहाहा! है?

शुभभाव की सब क्रियाएँ कीं, शुभभाव में धर्म माना,... दया, दान, व्रत, तप, अपवास आदि शुभभाव है, उसमें धर्म माना कि हम धर्म करते हैं। आहाहा! भगवान की यात्रा-सम्मदशिखर की करी, गिरनार की करी, शत्रुंजय की करी, वह तो शुभभाव है, वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! ऐसी शुभक्रियाएँ अनन्त बार की हैं। आहाहा! परन्तु **शुभभाव में धर्म माना, परन्तु धर्म तो आत्मा के शुद्धभाव में ही हैं।** आहाहा! इस शुभभाव से धर्म नहीं होता। शुद्धभाव जो आत्मा शुद्धस्वरूप प्रभु, उसके अवलम्बन से शुद्धभाव से धर्म होता है। आहाहा! परन्तु जिसे अभी शुद्ध आत्मा कौन है, उसकी पहिचान ही नहीं तो उसके आश्रय से शुद्धभाव कहाँ से प्रगट होगा? आहाहा! कहते हैं न कि वर्तमान पंचम काल में शुभयोग ही है। उसका अर्थ कि धर्म नहीं है। शुभयोग तो अनन्त बार किया है। ऐसे शुभभाव तो अभी है ही नहीं। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। मिथ्यादृष्टि जैन दिगम्बर साधु होकर (अनन्त बार गया)। ऐसे शुभभाव तो अभी हैं भी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो शुभ की क्रिया का जितना भाव है, वह सब धर्म नहीं है और उससे, उसके कारण से धर्म नहीं होता। आहाहा! **शुभ तो विभाव है,...** दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, तप, यह भाव तो शुभ है, विभाव है, विकार है, स्वभाव से विरुद्ध है। आहाहा! कठिन काम। एक तो धन्धा, स्त्री-पुत्र सम्हालने के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। २०-२२ घण्टे पाप में (जाते हैं)। कमाने में और धन्धे में तथा स्त्री, परिवार, स्त्री और पुत्र। अकेला पाप है।

मुमुक्षु : यह तो रोज का कार्यक्रम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोज का पाप का कार्यक्रम। वह शब्द आया था, भाई! दुर्घटना।

भगवान महावीर परमात्मा ने विवाह नहीं किया था क्योंकि स्त्री के साथ विवाह हो तो दुर्घटना हुई। अब सब दुर्घटना—अशुभभाव करना पड़े। आहाहा! अन्तिम तीर्थकर का आयुष्य तो थोड़ा था। पार्श्वनाथ, नेमिनाथ (महावीर) भगवान आदि तीनों को स्त्री नहीं थी। पहले का आयुष्य बड़ा था तो थी। पाँच तीर्थकर तो (बाल) ब्रह्मचारी थे। आहाहा! वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीरस्वामी। अन्तिम तीन और वे दो – बारहवें वासुपूज्य, उन्नीसवें मल्लिनाथ और बाईस, तेईस और चौबीसवें बाल ब्रह्मचारी थे और आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन तो लेकर जन्मे थे। स्वर्ग में से आकर माता के गर्भ में तीन ज्ञान, समकित सहित तो आये थे। आहाहा! वे राग की क्रिया को अपनी नहीं मानते थे। आहाहा! राज्य के स्थान में मैं राज्य का कार्य कर सकता हूँ, भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती थे, परन्तु यह चक्रवर्ती के राज्य की क्रिया मैं कर सकता हूँ—ऐसा नहीं मानते थे। वह तो जड़ से जड़ में होती है। आहाहा!

सोगानी ने कहा है न? सोगानी। निहालचन्द्र सोगानी। भगवान छहखण्ड को साधते हैं, ऐसा कोई कहता है परन्तु भगवान ने तो अखण्ड आत्मा का साधन किया। खण्ड का नहीं, अखण्ड का। आहाहा! द्रव्यदृष्टि प्रकाश में आता है न? अखण्डानन्द प्रभु चैतन्यघन आत्मा का भगवान ने साधन किया। विकल्प आया, उसके तो जाननेवाले रहे, करनेवाले नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें।

शुभ तो विभाव है, आकुलतारूप है,... आहाहा! दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, व्रत-तप का भाव तो आकुलतारूप है। विभाव है, स्वभाव से विरुद्ध है, आकुलतारूप है, दुःखरूप है। आहाहा! कैसे जँचे? **उसमें कहीं शान्ति नहीं है।** उस शुभभाव में कहीं शान्ति नहीं है। आहाहा! वह तो अशान्ति और आकुलता है। आहाहा! **यद्यपि शुभभाव आये बिना नहीं रहते,...** धर्मी को भी शुभभाव आता है, **तथापि वहाँ शान्ति तो नहीं है।** आहाहा! उस शुभभाव में एकाग्र होकर धर्मी रमते नहीं हैं। आहाहा! धर्मी तो अन्दर तल में—ज्ञातास्वभाव में रमते हैं। आहाहा! बातों में बहुत अन्तर है। क्या करते हैं?

शुभभाव, पंच महाव्रत के भाव, बारह व्रत के भाव, भगवान की भक्ति का भाव, भगवान की यात्रा का भाव, भगवान के स्मरण का भाव, णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, यह सब शुभभाव है, आकुलता है, दुःख है। भगवान शुद्धस्वरूप है, आनन्दरूप है,

सुखरूप है। आहाहा! अरे! बहुत विरुद्ध हो गया। अनादि से करता आवे, ऐसा का ऐसा मानता आकर धर्म करते हैं (ऐसा) माना। जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! **तथापि वहाँ शान्ति तो नहीं है।**

शान्ति हो, सुख हो—आनन्द हो, ऐसा तत्त्व तो चैतन्य ही है। इस शुभभाव में शान्ति नहीं। शान्ति तो भगवान आत्मा में है। आनन्द है, सुख है। आहाहा! तीन लिये हैं। शान्ति हो, सुख हो अर्थात् आनन्द हो, ऐसा तत्त्व चैतन्य भगवान आत्मा है। उसमें शान्ति का सागर भगवान है। आनन्द का सागर है। आहाहा! सुख का सागर है। भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। वहाँ सन्मुख दृष्टि करे, उसका आश्रय ले तो वहाँ शान्ति और सुख मिले। आहाहा! ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती है। क्या हो? लोगों को फिर जोड़ दिया—यह व्रत करो, और प्रतिमा ले लो तथा बाहर की संयम क्रिया ले लो। वह सब क्रिया तो राग है। आहाहा! राग में तो आकुलता है, दुःख है; सुख नहीं।

भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द प्रभु है, सुखरूप है, अकषायस्वभाव अर्थात् शान्तभाव है। शुभभाव तो कषायभाव है। कष अर्थात् संसार, आय अर्थात् लाभ। शुभभाव तो संसार का लाभ है। आहाहा! उसमें संसार का-भटकने का लाभ है। शुभभाव तो निगोद में भी होता है। लीलफूक—काई अनन्त जीव है, वहाँ भी शुभ तो होता है। क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ होता है। अनन्त काल से ऐसे भाव हुए हैं। वह कोई चीज़ नहीं है, धर्म नहीं है। मनुष्यपने में भी कोई शुभ आया, वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु :शुभ से धर्म मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानती अभी पूरी दुनिया है न। यह व्रत करना और अपवास करना, यह धर्म। धूल में भी नहीं है। मर जायेगा। चौरासी के अवतार में भटकना। ऐसी बात प्रभु के घर की है, भाई! आहाहा!

आनन्द हो, ऐसा तत्त्व तो चैतन्य ही है। आहाहा! ज्ञायकस्वभाव भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु में आनन्द है, उसमें सुख है, उसमें अनाकुलता है, उसमें शान्ति है। उसका आश्रय करने से सुख मिलता है, शान्ति मिलती है, अनाकुलता मिलती है। आहाहा! **निवृत्तिमय चैतन्यपरिणति में ही सुख है,...** राग से निवृत्तिमय चैतन्यपरिणति। आहाहा! इस शुभभाव

से निवृत्ति। आहाहा! वह चैतन्यपरिणति। निवृत्तिमय चैतन्यपरिणति में ही सुख है, बाह्य में कहीं सुख है ही नहीं। आहाहा!

इसलिए चैतन्यतत्त्व को पहिचानकर... भगवान का आनन्द का नाथ प्रभु! आनन्द का सागर अन्दर है। उसमें तो अतीन्द्रिय आनन्द लबालब पूर्ण भरा है। आहाहा! परन्तु दृष्टि उसमें जाये तो उसे खबर पड़े। ज्ञान की पर्याय उस ओर झुके तो खबर पड़े। खबर पड़े को क्या कहते हैं? मालूम पड़े। आहाहा! इसलिए चैतन्यतत्त्व को पहिचानकर उसमें स्थिर होने का प्रयास करना... ज्ञायकस्वभाव को जानकर उसमें स्थिर होने का प्रयास करना चाहिए। ऐसी बातें हैं। इसमें कहाँ...? वही यथार्थ श्रेयरूप है। वही यथार्थ श्रेयरूप है। आहाहा! भगवान आत्मा का ज्ञान करके, उसमें स्थिर, अन्दर में ज्ञान में स्थिर होना, वही श्रेयरूप है।

वह एक ही मनुष्य जीवन में करनेयोग्य... है। आहाहा! हितरूप—कल्याणरूप है। भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय सुख का सागर है, उसे जानकर स्थिर होना, यही मनुष्य (जीवन) का कर्तव्य है, यही हित है और कल्याण है। बाकी कोई हितरूप और कल्याणरूप है नहीं।
(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

जैनधर्म और उसकी अहिंसा

देखो, यह जैनधर्म! जैनधर्म कहीं बाह्य में या राग में नहीं है परन्तु अन्तर में आत्मस्वभाव के अवलम्बन से ही जैनधर्म है। परजीवों की दया और अहिंसादि का शुभभाव वास्तव में जैनधर्म नहीं है; जैनधर्म तो वीतरागभाव है। जैनधर्म की सच्ची अहिंसा तो यह है कि ज्ञानस्वभाव के अवलम्बन में टिकने से रागादिभावों की उत्पत्ति ही न हो। लोग परजीवों की अहिंसा में धर्म मानकर अटक गये हैं परन्तु भाई! 'मैं पर को बचाता हूँ, और राग से मुझे धर्म होता है'—ऐसी मिथ्यामान्यता के कारण तेरे आत्मा का ही घात हो रहा है; पहले सच्ची समझ करके अपने आत्मा की दया तो पाल!

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

कार्तिक शुक्ल -१२, शनिवार, दिनाङ्क ११-११-१९७८
वचनामृत-३७६ प्रवचन-१४७

पूर्ण गुणों से अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से, उसी के आलम्बन से, पूर्णता प्रगट होती है। इस अखण्ड द्रव्य का आलम्बन वही, अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव का आलम्बन है। ज्ञानी को उस आलम्बन से प्रगट होनेवाली औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभावरूप पर्यायों का—व्यक्त होनेवाली विभूतियों का—वेदन होता है परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता—उन पर जोर नहीं होता। जोर तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। क्षायिकभाव का भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेषभाव है। सामान्य के आश्रय से ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है, ध्रुव के आलम्बन से ही निर्मल उत्पाद होता है। इसलिये सब छोड़कर, एक शुद्धात्मद्रव्य के प्रति—अखण्ड परमपारिणामिकभाव के प्रति—दृष्टि कर, उसी के ऊपर निरन्तर जोर रख, उसी की ओर उपयोग ढले, ऐसा कर ॥३७६ ॥

३७६ बोल है। बोल सार-सार है। पूर्ण गुणों से अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से,... क्या कहा इसमें? यह भगवान आत्मा पूर्ण गुणों से अभेद। जितने गुण हैं, वे सब पूर्ण हैं। आहाहा! पूर्ण गुणों से अभेद ऐसा पूर्ण आत्मद्रव्य। भाषा तो बहुत सादी है, गुजराती (है)। भगवान आत्मा पूर्ण गुणों से अभेद ऐसा जो पूर्ण आत्मद्रव्य। आहाहा! उस पर दृष्टि करने से। आहाहा! पूर्ण शाश्वत् कायम ऐसे गुणों से अभेद ऐसा आत्मा पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से, उसी के आलम्बन से,... आहाहा! भगवान पूर्ण गुणों से अभेद ऐसा पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से, उसी के आलम्बन से,... आहाहा! पूर्णता

प्रगट होती है। इसमें कितना समाहित कर दिया, देखो! तीन पूर्णता आयी। एक तो पूर्ण गुण, पर्याय नहीं। आहाहा! पूर्ण गुणों से अभेद एकरूप। गुण बहुत हैं, इसलिए पूर्ण कहा। गुण कहा बहुवचन परन्तु वस्तु अभेद है। अभेद ऐसा एक पूर्ण आत्मद्रव्य। आहाहा! ऐसा पूर्ण आत्मद्रव्य, उसकी दृष्टि करने से। आहाहा! **उसी के आलम्बन से,...** पूर्ण गुण से अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य की दृष्टि करने से और उसके ही आलम्बन से, **पूर्णता प्रगट होती है।** पर्याय में। आहाहा! तीन बातें ली हैं। एकदम सिद्धान्त (कहे हैं)। पूर्ण गुण से अभेद ऐसा एक पूर्ण द्रव्य। गुण और द्रव्य दो आ गये। अब उनके आलम्बन से, उसमें दृष्टि करने से पर्याय में पूर्णता प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? महामांगलिक है। आहाहा! अभी आगे कहेंगे।

यहाँ तो तीन सिद्धान्त सिद्ध करना है। पूर्ण केवलज्ञान आदि की पर्याय कैसे प्रगट हो? कि पूर्ण गुण से अभेद, गुणों से भेद नहीं, पूर्ण गुणों से अभेद पूर्ण आत्मद्रव्य... आहाहा! उसकी दृष्टि करने से... आहाहा! उसके आलम्बन से पूर्ण गुणरूपी अभेद ऐसा पूर्ण द्रव्य, उसके आलम्बन से पर्याय में पूर्णता प्रगट होती है। कहो, सुमनभाई! यह शब्द तुम्हारे कोई नहीं आये होंगे वहाँ कहीं। आहाहा! द्रव्य-गुण और पर्याय तीन पूर्ण की बात की है। आहाहा! बहुत ही सादी भाषा, प्रचलित गुजराती। आहाहा!

मुमुक्षु : घर की भाषा।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर की भाषा। सत्य बात, बापू! आहाहा! तीनों ही पूर्ण कहे। भगवान! यह तेरे घर की बात है, हों! भगवान आत्मा पूर्ण गुणों से अभेद पूर्ण द्रव्य, पूर्ण गुणों से अभेद पूर्ण आत्मद्रव्य-वस्तु, उसकी दृष्टि करने से और उसके आलम्बन से पर्याय में पूर्ण केवलज्ञान, आनन्द आदि प्रगट होते हैं। कहो, देवीलालजी! आहाहा! ऐसी सादी भाषा और अकेला तत्त्व है। अखण्ड द्रव्य का आलम्बन कि यह पूर्ण द्रव्य, आत्मद्रव्य कहा, पूर्ण गुण से अभेद ऐसा यह पूर्ण आत्मद्रव्य, वह अखण्ड। आहाहा!

इस अखण्ड द्रव्य का आलम्बन, वही अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव का आलम्बन है। आहाहा! इस अखण्ड द्रव्य का आलम्बन, वह अखण्ड एक परमपारिणामिक-भाव का आलम्बन है। यह अब द्रव्य की (बात करते हैं)। द्रव्य कैसा है, ऐसा सिद्ध किया। वह परमपारिणामिकभाव। इस प्रकार पहले ऐसा कहा कि पूर्ण गुणों से अभेद ऐसा

पूर्ण आत्मद्रव्य। परन्तु वह क्या चीज़? कि वह अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव। वह अखण्ड द्रव्य कहो, पूर्ण आत्मद्रव्य कहो, वह परमपारिणामिकभाव का आलम्बन हुआ। आहाहा! शान्तिभाई! इसमें तुम्हारे जवाहरात-फवाहरात में कहीं (नहीं आता)। अभी तो कठिन पड़ गया, प्रभु! क्या करे? आहाहा!

यह परमात्मा पूर्ण प्रभु गुणों की अनन्ता से भी पूर्ण से भरपूर एकरूप, वापस। ऐसा जो पूर्ण आत्मद्रव्य, वही अखण्ड परमपारिणामिकभाव है। आहाहा! वह परमपारिणामिकभाव का आलम्बन है। ज्ञानी को उस आलम्बन से... आहाहा! धर्मी जीव को उस पूर्ण अखण्ड द्रव्य के आलम्बन से अर्थात् परमपारिणामिकभाव के आलम्बन से। आहाहा! प्रगट होनेवाली औपशमिक,... पहले कहा था, पूर्ण प्रगट होता है। अब यहाँ अधूरी, परन्तु बात इसमें से पहले निकलती है, अधूरी और पूरी। आहाहा! उसके आलम्बन से प्रगट होनेवाली औपशमिक,... पर्याय, औपशमिक पर्याय। आहाहा! उसके आलम्बन से उत्पन्न होनेवाली क्षायोपशमिक... पर्याय। आहाहा! उसके आलम्बन से उत्पन्न होनेवाली क्षायिकभावरूप पर्यायों का—व्यक्त होनेवाली विभूतियों... आहाहा! भगवान परमपारिणामिकभाव के आलम्बन से प्रगट होनेवाली औपशमिकभावरूप पर्याय अथवा क्षयोपशमिकभावरूप पर्याय या क्षायिकभावरूप पर्याय... आहाहा! उसकी व्यक्त होनेवाली विभूतियों का। यह औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक। यह शक्ति जो परमपारिणामिकभाव है, उसमें से प्रगट होनेवाली पर्यायों का। आहाहा! वेदन होता है... आहाहा!

धर्मी को पूर्ण गुण से भरपूर पूर्ण आत्मद्रव्य कि जिसे... आहाहा! अखण्ड पारिणामिकभाव कहते हैं, उसके आलम्बन से, उसके आश्रय से होनेवाली व्यक्त प्रगट पर्याय—उपशम, क्षायोपशम, क्षायिक। उदय, वह कहीं व्यक्त-प्रगट नहीं है, वह तो विकार है। आहाहा! यह तो उपशम, क्षायोपशम, क्षायिक प्रगट होनेवाली व्यक्त पर्यायें, प्रगट, उनका धर्मी को वेदन होता है। आहाहा! परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता... आहाहा! ऐसा मार्ग। पूर्ण गुण से भरपूर अभेद पूर्ण द्रव्य। आहाहा! उसके आलम्बन से पूर्ण पर्याय प्रगट होती है, ऐसी बात यहाँ रखी है।

अब यहाँ कहते हैं, पूर्ण गुणों से भरपूर आत्मद्रव्य, अखण्ड पारिणामिकभाव के आलम्बन से पर्याय में व्यक्त पर्याय उपशम, क्षायोपशम, क्षायिक हो, उसका वेदन है, परन्तु

उस वेदन का अवलम्बन नहीं है। आहाहा! हिम्मतभाई! यह ऐसी बातें हैं। हमारे यहाँ पढ़नेवाले हैं न, वीछिया। आहाहा! भगवान! यहाँ तो पूर्ण क्षायिक (पर्याय) प्रगट हो, वह वेदन में आवे और उपशम, क्षायोपशम अपूर्ण व्यक्त पर्याय अर्थात् अपूर्ण और पूर्ण दोनों वेदन में आवे परन्तु वेदन की पर्याय का आलम्बन धर्मी को नहीं होता। आहाहा! यह तो भगवान की कॉलेज है। तीन लोक के नाथ, आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान होने की कॉलेज है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की ही कॉलेज है, यह भगवान होने की ही बात है, भगवानस्वरूप ही है। भगवानस्वरूप है, उसके आलम्बन से भगवान ही होनेवाला है। आहाहा! उसके अन्दर में अब पर्याय और द्रव्य के बीच अखण्ड पारिणामिकभाव ऐसा जो पूर्ण गुण, पूर्ण अभेद द्रव्य, उसके अवलम्बन से व्यक्तरूप से पर्याय में प्रगटरूप से उपशम, क्षायोपशम, क्षायिक प्रगट हो, उसका धर्मी को वेदन होता है, परन्तु धर्मी को उनका आलम्बन नहीं होता। आहाहा! त्रिकाल के आलम्बन से क्षायिक समकित भी हो, उस क्षायिक समकित का वेदन है। श्रद्धा है, उसका वेदन भी है। श्रद्धा में आनन्दगुण का वेदन होता है, ज्ञान का आनन्द, श्रद्धा का आनन्द, चारित्र का आनन्द, अस्तित्व का आनन्द। आहाहा! उनका वेदन होने पर भी; राग का वेदन है, वह यहाँ बात नहीं है। अपूर्णता का वेदन शक्ति में है, उसकी व्यक्ति का वेदन यहाँ लेना। राग कहीं शक्ति में नहीं है, गुण में नहीं है और प्रगट होता है। उसका वेदन है परन्तु उस वेदन को यहाँ मुख्य नहीं गिनना। आहाहा! वह तो पर्याय में खड़ी हुई विकृत अवस्था है, यह तो द्रव्य के आश्रय से व्यक्त हुई दशा है। आहाहा! और विकार पुण्य-पाप को कोई द्रव्य के आश्रय से नहीं हैं, गुण के आश्रय से नहीं हैं; वह तो पर्याय में निमित्त के आधीन हुई दशा है। उसका यहाँ अभी वेदन कहना नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

क्योंकि जहाँ शक्ति का वर्णन चला है, सैंतालीस शक्ति... सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! उस शक्ति के वर्णन में क्रम और अक्रम निर्मल पर्याय का लिया है। सैंतालीस शक्ति। क्रम निर्मल पर्याय का, अक्रम निर्मल गुण। आहाहा! शक्ति में द्रव्य और शक्ति का जहाँ वर्णन आता है, वहाँ उसकी पर्याय में राग, यह वर्णन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? राग का वेदन, उस पर्याय में निमित्त आदि, उसकी बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो

भगवान आत्मा में जो अनन्त गुण पूर्ण हैं, उनका एकरूप द्रव्य जो अखण्ड पारिणामिकभाव, उस पर दृष्टि और आलम्बन लेने से शक्ति में से व्यक्तता है, उसमें से प्रगट होता है। वह है तो गुण। उसमें विकार प्रगट हो, उसकी यहाँ बात नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आज की बात गजब है। आहाहा!

वेदन होता है परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता—उन पर जोर नहीं होता। आहाहा! पर्याय के वेदन में आलम्बन का जोर नहीं होता। त्रिकाली पूर्ण गुणोंस्वरूप अभेद आत्मद्रव्य, वह अखण्ड पारिणामिकभाव, उसका जोर होता है। आहाहा! ऐसी बात कहीं सुनने को नहीं मिलती। ऐई! देवानुप्रिया! वहाँ कहीं नहीं तुम्हारे यहाँ। परन्तु यह तो दो-चार दिन थोड़े दिन यहाँ है। आहाहा! ऐसा मार्ग। आहाहा! प्रभु के समवसरण में ऐसी बातें चलती थीं, भाई! आहाहा!

कहते हैं कि शक्तियाँ-जितनी हैं, गुण (जितने हैं), वे पूर्ण हैं; इसलिए उनका अभेदरूप द्रव्य भी पूर्ण है। एक (बात)। इसलिए उसे अखण्ड पारिणामिकभाव कहा जाता है। उसके आलम्बन से पूर्ण गुण पवित्रता का पूर्ण द्रव्य, उसके आलम्बन से तो निर्मल दशा प्रगट होती है। आहाहा! उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक, इन तीन की व्यक्तता का वेदन हो परन्तु उनका आश्रय और अवलम्बन नहीं होता। आहाहा!

नियमसार में कहा है न, कि चार भाव, वे विभावभाव हैं, ऐसा कहा है। विभावभाव अर्थात्? उदय तो विभाव है, परन्तु क्षायिक उपशम (क्षयोपशम) विशेष भाव है। सामान्य जो पारिणामिकभाव है, वह सामान्य है और यह विशेष भाव है; इसलिए उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक को भी विभावभाव कहते हैं। आहाहा! विभाव का अर्थ यहाँ विकारी, ऐसा नहीं है। विभाव का अर्थ विशेष भाव। जैसे विभाविकशक्ति है न आत्मा में? आहाहा! यह विभाव विशेष अर्थात् विकारी, ऐसा नहीं, परन्तु चार द्रव्यों में नहीं और आत्मा में वह है, इसलिए उसे वैभाविकशक्ति-विशेष शक्ति एक भिन्न है, ऐसा कहा है। इस प्रकार पर्याय में जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय हुई, उसे यहाँ विभावपर्याय कहा। विभावदशा; विभाव अर्थात् विशेष अवस्था। तो विशेष अवस्था का वेदन हो परन्तु विशेष अवस्था का आलम्बन नहीं होता। आहाहा! उस पर जोर (नहीं होता)।

जोर तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। आहाहा! दृष्टि का ध्येय तो द्रव्य

के ऊपर होता है। दृष्टि का आश्रय तो द्रव्य है। आहाहा! उस पर्याय में आश्रय द्रव्य का है। पर्याय का आश्रय पर्याय से होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत मक्खन है। मानधाता का मान गल जाये, ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसे गलाने की ही आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। यही करना है, बापू! आहाहा! जिसे नजर में लेना है, वह नजर है तो पर्याय, परन्तु जिसे नजर में लेना है, वह तो द्रव्य त्रिकाली परमभाव है। आहाहा! पर्याय ने नजर में उसे लिया, तब पर्याय में व्यक्तता उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की हुई। आहाहा! अरे! ऐसा मार्ग।

सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। शुद्ध द्रव्य पर 'ही' होता है। आहाहा! 'भूदत्थमस्सिदो' भूतार्थ जो आत्मा परमपारिणामिकभाव पूर्ण गुणों का रूप अभेद एक द्रव्य पूर्ण, जो भूतार्थ है, उसका ही आश्रय होता है। आहाहा! **क्षायिकभाव का भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता...** आहाहा! क्षायिकभावरूपी सम्यग्दर्शन हुआ। यह तो नीचे की अपेक्षा से; पूर्ण हो, वह आगे। ऐसे भाव का भी आश्रय, आलम्बन नहीं लिया जाता। क्षायिक समकित की पर्याय का पर्याय में वेदन हो, परन्तु उसका आलम्बन नहीं लिया जाता। आहाहा! अरे! यह बात इसे जँचे तो निहाल हो जाये, ऐसी बात है। आहाहा! दुनिया मानो, न मानो; ठीक लगे, न लगे; दुनिया, दुनिया में पड़ी। उस बेचारे को खबर नहीं है। आहाहा!

क्षायिकभाव का भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता... 'भी' क्यों कहा? कि शुद्ध द्रव्य पर ही आलम्बन होता है, परन्तु क्षायिकभाव का भी आलम्बन नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात। कहो, चेतनजी! आहाहा! अमृत का सागर भगवान पूर्ण भरपूर प्रभु, आहाहा! वह अमृत आनन्द वह पूर्ण है। ऐसे-ऐसे पूर्ण गुणों से भरपूर एकरूप अभेद पूर्ण द्रव्य है, उसके आलम्बन से ही पर्याय प्रगट होती है। क्षायिकभाव का भी आलम्बन लेने योग्य नहीं है। आहाहा! तो फिर दया, दान के व्रत और रागादि के विकल्प... आहाहा! उनके आलम्बन से (धर्म हो...) अरे! प्रभु.. प्रभु! आहाहा! उसकी तो यहाँ बात ही नहीं है।

यहाँ तो निर्मल गुण से भरपूर निर्मल द्रव्य, उस पर नजर करने से, उसका

आलम्बन लेने से जो धर्म पर्याय निर्मल प्रगट हुई, क्षायिकरूप से हुई परन्तु उसका वेदन हो किन्तु उसका आश्रय और अवलम्बन लेनेयोग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें। जब आठ वर्ष के बालक... आहाहा! उस दशा में चढ़ जायें, तब और आगे बढ़ने के लिये... आहाहा! बाहर में-वन में चल जाते हैं क्योंकि संग में मनुष्यों के संग के साथ बातें करना, उन्हें वहाँ रुकना और उनका प्रश्न और उसका उत्तर... आहाहा! इससे छूटकर अन्दर में जाने के लिये (चल निकलते हैं।) आहाहा! गिरिगुफा नहीं कहा था? ४९ गाथा में। आहाहा! अतीन्द्रिय निर्विकल्प समाधि आनन्द प्रगट हुआ है, उस गिरिगुफा में प्रविष्ट हो गये हैं। आहाहा! परमार्थ की बातें, बापू! सूक्ष्म है। लोगों को व्यवहार की बातें ऐसी लगती है ऐसी मीठी ऐसे मानो यह करना, यह व्रत करूँ और यह करूँ... आहाहा! वह सब विकल्प है, प्रभु! वह कोई शक्ति की व्यक्तता नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो शक्ति भगवान गुण का पिण्ड, शक्ति अर्थात् (गुण का पिण्ड)। पूर्ण शक्ति का अभेद एक पूर्ण द्रव्य, उस पर नजर करने से, उसके अवलम्बन से होनेवाली निर्मल क्षायिक पर्याय, अपने अभी क्षायिक समकित तक लेते हैं। आगे जाने पर पश्चात्... उसका भी आश्रय लेने योग्य नहीं है। अर..र..र..! उसके बदले यहाँ कहे कि कषाय की मन्दता के शुभभाव, वे कारण हों और सम्यग्दर्शन कार्य हो। अरे! प्रभु! बहुत अन्तर, हों! इस वस्तु के स्वरूप में ऐसा नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप जो अन्दर है... आहाहा! अनन्त-अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु एकरूप द्रव्य... आहाहा! उसके आश्रय से जो निर्मल पर्याय होती है, वह राग से होती है - ऐसा नहीं है। और पर्याय से नयी पर्याय होती है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! निर्मल पर्याय-क्षायिक समकित इत्यादि प्रगट हुई... आहाहा! उसके आश्रय से भी नयी पर्याय नहीं होती। आहाहा! द्रव्य जो त्रिकाली अखण्ड प्रभु है, उसके आश्रय से ही नयी पर्याय प्रगट होती है। आहाहा!

क्षायिकभाव का भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेषभाव है। विभावभाव अर्थात् विशेषभाव है। आहाहा! पर्याय है, वह विशेष है; द्रव्य त्रिकाल है, वह सामान्य है। आहाहा! वस्तु है, वह अखण्ड अभेद सामान्य है और पर्याय है, वह विशेष है। आहाहा! वह विशेष भाव है। क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव या उपशम; यहाँ तो क्षायिक की बात ली है। क्षायिकभाव का भी आश्रय या आलम्बन

नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेषभाव है। आहाहा! ऐसी बात है। विशेषभाव जो निर्मल है; क्षायिकभाव है, उसका भी आश्रय नहीं लिया जाता क्योंकि उसके आश्रय से कहीं नयी पर्याय नहीं होती। वह तो एक समय की पर्याय है। आहाहा! तो फिर यह दया, दान, और व्रत, भक्ति के परिणाम से (धर्म प्रगट हो, ऐसा नहीं है)। आहाहा! अरे! बहुत कठिन काम।

भगवान आत्मा में कोई विकार होने का गुण नहीं है। भगवान में अनन्त-अनन्त गुण पूर्ण भरे हैं। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुणों (का) तो पार नहीं। असंख्य एक शब्द आया था न? उसका विचार आया था। भगवान को असंख्य कहा है, असंख्य, परन्तु उसके दो-तीन प्रकार हैं, बहुत प्रकार हैं। असंख्य का अर्थ असंख्य प्रदेश भी कहा जाता है। असंख्य का अर्थ संख्यारहित तुझमें प्रभु गुण हैं। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आहाहा! बहुत अर्थ हैं। वीतराग तीन लोक के नाथ और इन्द्र एक हजार आठ नाम से स्तुति करते हैं। आहाहा! वह पर्याय प्राप्त की स्तुति करते हैं। वह पर्याय कैसे प्रगट हो? आहाहा!

यह नहीं समझ में आता, ऐसा नहीं मानना। आत्मा भगवान प्रभु अन्दर परिपूर्ण पड़ा है। आहाहा! एक समय में केवलज्ञान लेने की ताकतवाला प्रभु है। आहाहा! क्योंकि ज्ञानगुण से भरपूर भगवान, ज्ञानस्वरूप यदि कहो तो पूरा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! सर्वज्ञस्वभाव पूरा प्रभु आत्मा का है। आहाहा! उसके अवलम्बन से सर्वज्ञ की पर्याय अथवा सम्यग्दर्शन आदि होते हैं। आहाहा! एक क्षण में अन्तर नजर पड़ने पर उत्कृष्ट पुरुषार्थी जीव को... आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ तो तुरन्त ध्यान में सप्तम गुणस्थान हुआ। बाह्य से नग्नदशा हो, उत्तर में जाने पर पूर्ण केवलज्ञान हो जाये। आहाहा! ऐसी पर्याय प्रगट होने पर भी उसका आलम्बन नहीं होता। आहाहा! यह क्या है ऐसा मार्ग? यह तो वे कहें कि सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, रात्रिभोजन छोड़ो, (ऐसा) करके जगत को मार डाला। वह तो सब विकल्प की-राग की बातें हैं। यहाँ तो वह राग होने का कोई गुण में स्वभाव ही नहीं है न। आहाहा!

क्षायिकभाव का भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेषभाव है। आहाहा! सामान्य के आश्रय से ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है,... यह क्या कहा? जिसे अखण्ड कहा था, जिसे पूर्ण गुण से भरपूर अभेद शुद्ध द्रव्य

कहा था। आहाहा! उसे-सामान्य को यहाँ सामान्य कहा है। जिसे अखण्ड पारिणामिकभाव कहा था, उसे यहाँ सामान्य शब्द से कहा है। आहाहा! जिसमें अनन्त-अनन्त शक्तियों का भण्डार है, भगवान सामान्य... आहाहा! ऐसे सामान्य के आश्रय से ही... एकान्त हो जाता है। कथंचित् सामान्य के आश्रय से और कथंचित् पर्याय के आश्रय से... आहाहा! प्रभु! मार्ग यह है, भाई! यह सम्यक् एकान्त है। आहाहा!

त्रिकाली भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति प्रभु। आहाहा! सामान्य जो सत् स्वभाव, उसके आश्रय से ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है,... उसके आश्रय से 'ही' शुद्ध विशेष; वह स्वभाव क्षायिकभाव, उपशमभाव; यह शुद्ध विशेष उस सामान्य के आश्रय से शुद्ध विशेष प्रगट होता है। इस राग के आश्रय से विशेष शुद्ध विशेष प्रगट होता है, आहाहा! या निमित्त के आश्रय से शुद्ध विशेष प्रगट होता है... आहाहा! ऐसा नहीं है। आहाहा! अमृत बहाया है।

त्रिकाली, जिसे पूर्ण गुण से अभेद पूर्ण द्रव्य कहा था, जिसे अखण्ड पारिणामिकभाव कहा था, उसे यहाँ अब विशेष प्रगट कहाँ से हो? कि सामान्य के आश्रय से विशेष शुद्धता प्रगट होती है। आहाहा! आत्मा अखण्डानन्द प्रभु सामान्य जो एक समय में पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! ऐसा जो द्रव्यस्वभाव... आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! अरे रे! अभी तो मिलना मुश्किल है, भाई! आहाहा! आत्मा एक समय में सामान्य अर्थात् अनन्त गुण का एकरूप प्रभु, ऐसे सामान्य के आश्रय से विशेष धर्म की निर्मल पर्याय उसके आश्रय से प्रगट होती है। आहाहा!

तीन लोक के नाथ का यह पुकार है। जिनेन्द्रदेव परमेश्वर का पुकार है, वह यह वाणी है। आहाहा! प्रभु! तू कौन है? अन्दर कितना है? कि अनन्त-अनन्त गुण पूर्ण का भरपूर अभेद एक पूर्ण द्रव्य है। उसे अखण्ड पारिणामिकभाव कहा है, पर्यायरहित। आहाहा! ऐसा जो सामान्य द्रव्य जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसके अवलम्बन से पर्याय में विशुद्ध, विशेष भाव प्रगट होता है। आहाहा! यह लोगों को जँचना (कठिन पड़ता है)। भगवान तीन लोक के नाथ परमात्मा जिनवरदेव, जिनेश्वरदेव का यह फरमान है, वह यहाँ बहिन कह रही हैं। आहाहा!

प्रभु! यहाँ तू शरीर, वाणी, मन और कर्म से तो भिन्न है, परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत और भक्ति के परिणाम शुभ हों, उससे तेरी चीज़ भिन्न है और उस भिन्न चीज़ में... आहाहा!

अनन्त-अनन्त निर्मल शक्ति का समूह, शक्ति का सागर, अनन्त गुण का पूर्णरूप, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. का पूर्णरूप, पूर्ण गुण का पूर्णरूप, वह सामान्य है। आहाहा! यह सामान्य और विशेष क्या होंगे? भगवान तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव का यह जगत के समक्ष फरमान है। आहाहा!

प्रभु! तू एक सामान्य अनन्त गुण का पिण्ड अन्दर एकरूप है। उसके आश्रय से विशेष शुद्धता सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक् परम आनन्द ऐसी धर्म की पर्याय शुद्ध है, वह सामान्य के आश्रय से विशेष शुद्धता प्रगट होती है। किसी निमित्त के आश्रय से या दया, दान के राग के आश्रय से तो नहीं, परन्तु निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसके आश्रय से भी विशेष निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

निमित्त से तो धर्म की निर्मल पर्याय नहीं होती तथा राग, दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभभाव है, उससे नहीं होती परन्तु निर्मल पर्याय जो सामान्य के आश्रय से प्रगट हुई, उसके आश्रय से निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। आहाहा! ऐसी बात है। सुनना कठिन पड़े, ऐसा है, बापू! वीतराग परमेश्वर जिनेश्वर यह गणधरों और इन्द्रों के बीच में यह कहते थे। यह वहाँ महाविदेह में परमात्मा विराजते हैं, वे ऐसा कहते हैं। वह यह बात है। आहाहा!

प्रभु! तब विशेष जो शुद्धता धर्म की—सम्यग्दर्शन, ज्ञान-शान्ति / वीतरागता, वे विशेष पर्यायें हैं, वे प्रगट होती हैं तो उस सामान्य के आश्रय से प्रगट होती हैं। वह विशेष धर्म की दशायें-पर्यायें उस निमित्त के आश्रय से नहीं, राग के आश्रय से नहीं, वह विशेष धर्म प्रगट हुआ, उसके आश्रय से नहीं। आहाहा! ऐसा काम है, बापू! जिनेश्वरदेव (के अलावा) ऐसा मार्ग कहीं है नहीं, परन्तु उनके मार्ग में रहे हुए को उसकी अभी खबर नहीं। ऐसे के ऐसे बाहर से चलते जाते हैं। चन्दुभाई! आहाहा! क्या करें? आहाहा!

अनन्त गुण का समुद्र प्रभु अन्दर भरा है न! वे कितने अनन्त? अनन्त के... अनन्त के... अनन्त के... अनन्त का अन्त नहीं इतने अनन्त। ऐसे सब आत्मा के पूर्ण गुण हैं। उन पूर्ण गुण का एकरूप अभेद, ऐसा पूर्ण आत्मद्रव्य है। आहाहा! वह सामान्य है और उस सामान्य के आश्रय से धर्म की विशेष पर्याय सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-चारित्र की / वीतरागता

की, केवलज्ञान की (पर्याय) उस सामान्य के आश्रय से प्रगट होती है। उस विशेष पर्याय का वेदन हो, परन्तु वेदन के अवलम्बन से नयी पर्याय प्रगट हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह क्या कहते हैं? भगवान जाने क्या होगा? आहाहा!

भाई! मार्ग तो यह है, बापू! अन्दर तीन लोक का नाथ चैतन्य भगवान विराजता है। अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है, जिनस्वरूप है, वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा सामान्यस्वरूप वीतरागस्वरूप है। अरे रे! सामान्य और वीतरागस्वरूप यह क्या कहते हैं? ऐसा जो त्रिकाली वीतरागस्वरूप प्रभु! सामान्य अर्थात् एकरूप अभेद, उसके आश्रय से धर्म की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की विशेष पर्यायें उसके आश्रय से प्रगट होती हैं। प्रगट हुई पर्याय के आश्रय से भी प्रगट पर्याय नहीं रहती। प्रगट हुई पर्याय के आश्रय से नयी पर्याय प्रगट नहीं होती। आहाहा! यह भगवान जो सामान्य एकरूप त्रिकाल, उसके अवलम्बन से प्रगट होती है, उसके अवलम्बन से रहती है, उसके अवलम्बन से बढ़ती है। आहाहा! क्या यह तो कोई ऐसी बातें? समाज में, अरे! बापू! मार्ग तो यह है, भाई! इसके बिना यह मर जायेगा और क्रियाकाण्ड करके बड़े व्रत, तप, भक्ति और यात्रा लाख-करोड़, अरब करे नहीं, वह सब राग की क्रियायें हैं, वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा!

जिसे परमात्मा जिनेश्वरदेव धर्म की दशा कहते हैं; यह वीतरागपर्याय है, वह धर्म की दशा है (ऐसा कहते हैं)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह सब वीतरागी पर्यायें हैं परन्तु वह विशेषपना प्रगटे कहाँ से? आहाहा! वह त्रिकाली भगवान परम स्वभावभाव के-सामान्य के आश्रय से प्रगट होता है। आहाहा! ऐसी बात है। यह तो कोई वीतराग का मार्ग यह होगा? यहाँ हम कहते हैं कि दया पालना, व्रत करना, उपवास करना और रात्रिभोजन त्याग करना, यात्रा करना और भक्ति करना ऐसा सब सुनते हैं। सब है, सुन न अब। आहाहा! वह तो सब शरीर की क्रिया-जड़ की है और अन्दर शुभराग हो तो वह विकार की क्रिया है; वह आत्मा की धर्मक्रिया नहीं है। आहाहा! धर्मक्रिया-शुद्धता-पवित्रता-आनन्द की वेदनदशा-यह धर्मक्रिया उस त्रिकाली सामान्य के अवलम्बन से होती है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। है?

वह तो पर्याय है, ... क्षायिकभाव हो, वह तो पर्याय है, अवस्था है। अब अवस्था क्या और द्रव्य क्या और गुण क्या? तीनों के नाम की खबर भी नहीं होती। ऐई! आहाहा!

तीनों बात इसमें आ गयी। अनन्त पूर्ण गुणों का एकरूप अभेद वह पूर्ण द्रव्य है। इसलिए गुण और द्रव्य आ गये। अब उसे सामान्य कहा, उसे पंचम पारिणामिक कहा, उसे अखण्ड कहा। आहाहा! उसके आश्रय से-उसमें दृष्टि देने से... आहाहा! पर्याय में धर्म की व्यक्त दशा, जो धर्मस्वभाव धर्मी में है, जो धर्मी ऐसा द्रव्य, उसका धर्मस्वभाव अन्दर गुण है, उसके अवलम्बन से पर्याय में धर्म होता है। धर्मी ऐसा आत्मा, उसमें रहे हुए अनन्त गुण, ऐसा जो धर्म उसका... आहाहा! ऐसे त्रिकाली धर्म का धारक भगवान है, उसके आश्रय से धर्म की पर्याय प्रगट होती है। बाकी सब बातें हैं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो मक्खन है।

वीतराग तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव इन्द्रों की सभा में, गणधरों की सभा में ऐसा कहते थे। वह बात यह है। आहाहा! परन्तु सुनने को मिलती नहीं। ऐसा का ऐसा अपनी दृष्टि से हाँकता जाता है। आहाहा! व्रत करना और तपस्या करना, यात्रा की और मानो धर्म है। धूल भी धर्म नहीं, सुन न! वह तो राग है, पुण्य है। वह स्वभाव में नहीं है, गुण में वह पुण्य नहीं है। आहाहा! गुण में तो पवित्रता (भरी है)। पुण्य उसे कहते हैं कि पवित्रता को पुण्य कहते हैं। यह शुभराग है, वह वास्तव में पुण्य नहीं है, यह तो पाप है। आहाहा! बहुत कठिन काम, प्रभु!

भगवान पूर्णानन्द सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि हमको जितनी केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द की पर्यायें प्रगट हुई हैं, वह तो विशेष हुई। परन्तु हुई कहाँ से? त्रिकाली द्रव्यस्वभाव के अवलम्बन से हुई है। आहाहा! उसका ही यहाँ उपदेश प्रभु का आया है। आहाहा! भगवान! एक समय में तेरा द्रव्य जो वस्तु है... अब द्रव्य क्या कहना? पैसा, वह द्रव्य होगा? आहाहा!

द्रव्य अर्थात् अखण्ड परमस्वभावभाव, जिसकी पर्याय में भी, जो पर्याय भी उसमें नहीं है। उसमें अनन्त-अनन्त गुण शक्तिस्वभाव ध्रुवरूप से हैं, परन्तु उसमें पर्याय क्षायिक की या केवलज्ञान की पर्याय भी उस द्रव्य में नहीं है। आहाहा! ऐसा जो ज्ञायकस्वभाव पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसके आश्रय से-अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान शान्ति और आनन्द की पर्याय होती है। वह वेदन में आती है, परन्तु उसका आश्रय लेने योग्य नहीं है। उसका अवलम्बन लेने योग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। पागल जैसा लगे, ऐसा है।

आहाहा! समाज में तो एकदम होहाकार चलता होता है। यह करो और यह करो, यह करो। यहाँ कहते हैं करो, करो में राग करो, उसमें मरना है। चैतन्य ज्ञाता पूर्णानन्द का नाथ, उसे राग करने का सौंपना, वह चक्रवर्ती को... आहाहा! महल में से झाड़ू निकालने का सौंपने जैसा है। आहाहा!

जवान ऐसे २५-२५ वर्ष के राजकुमार, उस आनन्द के नाथ को जहाँ अन्दर में देखा... आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में जहाँ पूर्णानन्द को देखा, वहाँ निर्मलानन्द की जो वेदनदशा हुई... अरे रे! हम पूर्णानन्द को प्रगट करने के लिये जंगल में, अन्तर में जायेंगे, जंगल में अर्थात् अन्तर में जायेंगे। आहाहा! हमें कोई बाहर के पदार्थ के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! यह चक्रवर्ती के राजकुमार, तीर्थकर के कुमार, राजकुमार, आनन्द के नाथ को जहाँ अन्तर में देखा। अनन्त-अनन्त गुण से भरपूर भगवान अस्ति है, मौजूद है, अन्दर प्रभु पड़ा है। आहाहा! है उसे देखा, मौजूदगी चीज़ भगवानस्वरूप ही प्रभु आत्मा है। अरे! कैसे जँचे? सुमनभाई! आहाहा! वे चक्रवर्ती के राज्य को छोड़कर चल निकलते होंगे। कुछ अन्दर विस्मयता देखी कि जो चमत्कार बाह्य में नहीं है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा सामान्य के आश्रय से ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है,... त्रिकाली ज्ञायकभाव पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अस्ति है। उसके आश्रय से ही विशेष धर्मदशा प्रगट होती है। आहाहा! बात बैठना कठिन, सुनने को मिलती नहीं। आहाहा! (मनुष्य) गति (में) मरकर देह छूटकर फिर कहीं भटकने चला जायेगा। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त भव सामान्य का अवलम्बन लिये बिना, निमित्त और राग के अवलम्बन से चार गति में भटका है। आहाहा!

सामान्य के आश्रय से ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है, ध्रुव के आलम्बन से ही निर्मल उत्पाद होता है। विशेष बात की है। पहले उसे पूर्ण गुण का पिण्ड अभेद वस्तु द्रव्य पूर्ण-ऐसा लिया था, पश्चात् उसे अखण्ड पारिणामिकभाव लिया था, पश्चात् उसे सामान्य लिया था, आहाहा! अब उसे ध्रुव कहा। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। उत्पाद-व्यय है, वह तो पर्याय है और ध्रुव है, वह सामान्य त्रिकाल है। उत्पाद-व्यय, वे विशेष हैं और ध्रुव है, वह सामान्य त्रिकाल है। आहाहा! एक-एक पैराग्राफ में कितना भरा है! पढ़ा है या नहीं? कितनी बार? दो बार। ठीक। आहाहा!

ध्रुव के आलम्बन से ही... जिसे सामान्य कहा था, जिसे परमस्वभावभाव त्रिकाल कहा था, जिसे पूर्ण गुण का एकरूप पूर्ण द्रव्य कहा था, उसे यहाँ ध्रुव कहा है। विशेष स्पष्ट करने के लिये (ऐसा कहा है)। आहाहा! ध्रुव के आलम्बन से ही निर्मल उत्पाद होता है। आहाहा! त्रिकाली भगवान ध्रुव नित्यानन्द प्रभु के अवलम्बन से ही पर्याय में निर्मल शुद्धता होती है। आहाहा!

इसलिए सब छोड़कर,... पर्याय का आश्रय, राग का आश्रय छोड़कर, एक शुद्धात्मद्रव्य के प्रति... शुद्धात्मद्रव्य त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द प्रभु। आहाहा! अखण्ड परमपारिणामिकभाव के प्रति... विशेष फिर लिया। एक शुद्धात्मद्रव्य के प्रति— अखण्ड परमपारिणामिकभाव के प्रति—दृष्टि कर,... आहाहा! वहाँ दृष्टि दे। भगवान पूर्णानन्द प्रभु आत्मा विराजता है। आहाहा! तेरी वर्तमान पर्याय के अन्दर में—समीप में भगवान पूर्ण स्वयं प्रभु है। आहाहा! वहाँ दृष्टि दे।

उसी के ऊपर निरन्तर जोर रख,... ओहो! पैराग्राफ है न! क्या कहलाता है, यह बोल? पैराग्राफ कहलाता है? बोल। आहाहा! उसी के ऊपर निरन्तर जोर रख,... आहाहा! उसी की ओर उपयोग ढले, ऐसा कर। वर्तमान ज्ञान जानने-देखने का भाव, वह उपयोग अन्दर ध्रुव में झुके, ऐसा कर। आहाहा! देखनेवाला दूसरे को देखने में रुक गया है, उस देखनेवाले के परिणाम में देखनेवाले को देख। तुझे देख अन्दर कौन है? आहाहा! इसके बिना कल्याण नहीं होगा, इसके बिना धर्म नहीं होगा, इसके बिना संसार का अन्त नहीं आयेगा। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल -१३, रविवार, दिनाङ्क १२-११-१९७८
वचनामृत-३७७ से ३७८ प्रवचन-१४८

स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये मुनिराज जंगल में बसे हैं। उस हेतु उनको निरन्तर परमपारिणामिकभाव में लीनता वर्तती है— दिन-रात रोम-रोम में एक आत्मा ही रम रहा है। शरीर है किन्तु शरीर की कोई चिन्ता नहीं है, देहातीत जैसी दशा है। उत्सर्ग एवं अपवाद की मैत्रीपूर्वक रहनेवाले हैं। आत्मा का पोषण करके निज स्वभावों को पुष्ट करते हुए विभावभावों का शोषण करते हैं। जिस प्रकार माता का पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक कुछ अड़चन दिखने पर अधिक जोर से पल्ला पकड़ लेता है, उसी प्रकार मुनि परीषह-उपसर्ग आने पर प्रबल पुरुषार्थपूर्वक निजात्मद्रव्य को पकड़ लेते हैं। 'ऐसी पवित्र मुनिदशा कब प्राप्त करेंगे!' ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टि को वर्तता है ॥३७७॥

३७७ बोल है। ३७६ कल पूरा हो गया। अब यहाँ सम्यग्दृष्टि की यह भावना होती है कि जो आत्मा में पर्यायबुद्धि, निमित्तबुद्धि छोड़कर जो स्वभावबुद्धि की है, उसे अन्तर में आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! वह स्वाद बढ़ाने को मुनिराज होता है। उसकी यहाँ बात चलती है और सम्यग्दृष्टि को मुनिराज होने की भावना होती है।

एक बात सवेरे यह आयी थी... कि कर्म है तो विकार है, ऐसा कहने का क्या आशय? यह आत्मावलोकन में है। यह ख्याल बाद में आया था कि ऐसा कहकर विकार अनित्य स्थापित करना है। वस्तु भगवान आत्मा नित्यानन्दस्वरूप की दृष्टि कराने को विकार निमित्त से हुआ है अर्थात् निमित्त है, वहाँ तक है—आत्मावलोकन में ऐसा है। ५६वीं गाथा में, परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं कि निमित्त है, इसलिए होता है। मात्र निमित्त

है, उसके लक्ष्य से होता है, इसलिए वह विकार अनित्य है—ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? वह है। उस समय याद आया था। तादात्म्यसम्बन्ध कहा न? पुण्य-पाप आदि भाव, गुणस्थानभेद को पुद्गलकर्म के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है, ऐसा कहा। सवेरे। उसका अर्थ यह कि कर्म जो जगत की वस्तु है, उसके आधीन ये सब भाव होते हैं, वे सब अनित्य हैं। आहाहा! वह वास्तव में पुद्गल के साथ तादात्म्य है, भगवान के साथ वे तादात्म्य नहीं हैं। यदि तादात्म्य होवे तो नाश नहीं हों और यह भी दृष्टान्त तो कहा कि जिसकी प्रत्येक अवस्था में हो, उसका नाम तादात्म्यस्वरूप है। जिसकी प्रत्येक अवस्था में न हो और किसी भी अवस्था में न हो और किसी समय हो, वह तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप एक बार ऐसा फरमाते थे कि अनित्य तादात्म्यसम्बन्ध।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनित्य तादात्म्य। पर्याय के साथ में अनित्य है। एक समय टिका है। उसकी बात 'पंथे मुस्संतं' में आ गयी (समयसार गाथा ५८) 'पंथे मुस्संतं लोगा भणंति ववहारी।' यह पंथ लुटता है, यह तो उपचार से है। इसी प्रकार आत्मा वस्तु ऐसी त्रिकाली ज्ञायक ज्योति वस्तु है, उसमें एक समय की, एक समय की बन्ध अवस्था देखकर उसके हैं, ऐसा व्यवहार से कहने में आया है, ऐसी बात है। निश्चय से त्रिकाली ज्ञायकभाव के साथ वह विकारी और भेद का तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है, इसलिए उन्हें कर्म के-पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध (कहा है)। जहाँ-जहाँ पुद्गलकर्म है, वहाँ-वहाँ होते हैं, होते हैं स्वयं से। यह प्रश्न अभी नहीं है। उसमें से कोई ऐसा निकाले कि कर्म के कारण होता है, ऐसा नहीं है। परन्तु जो होता है, वह भेद-निमित्त के आश्रय से होता है। स्वभाव के आश्रय से भेद नहीं होता स्वभाव के आश्रय से गुणस्थान आदि भेद नहीं पड़ता। कठिन बातें, भाई!

यह यहाँ कहते हैं, जिसे स्वभाव का भान हुआ—मैं तो चैतन्यज्ञायक ध्रुव आनन्दकन्द प्रभु हूँ। उसे कर्म के निमित्त के संग में जो विकार है, वह मेरे स्वरूप में नहीं है। आहाहा! स्वरूप में होवे तो निकले नहीं। स्वरूप तो तादात्म्य त्रिकाल है। ज्ञानानन्द अनन्त गुण के साथ, अनन्त गुण के साथ अभेद... आहाहा! ऐसा जो स्वरूप है, वह चैतन्यद्रव्य है। आहाहा! उसके साथ राग और गुणस्थान के भेद को सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसा

कहकर उसे पर्याय, भेद, निमित्त का लक्ष्य छुड़ाकर... आहाहा! जिसका स्वभाव कायमी आनन्दमूर्ति प्रभु है, उसकी दृष्टि कराकर उसके आश्रय से लाभ होता है, यह बताना है। आहाहा! तकरार करे, विवाद उठावे। बहुत प्रकार के लेख (विरोध में आते हैं)।

यहाँ ऐसा कहा कि पुद्गल के सम्बन्ध से तादात्म्य है। इसलिए फिर ऐसा माने कि पुद्गल के कारण विकार हुआ है। तुम कहते हैं कि उपादान से होता है, निमित्त से नहीं। भाई! वह तो बात तो ऐसी ही है। जिस समय में विकार की उत्पत्ति का काल है, उस समय में होता है, परन्तु उसका लक्ष्य निमित्त पर है, इसलिए उसे निमित्त के लक्ष्य से हुआ, वह उसका है—ऐसा गिनकर; स्वभाव में से निकल जाता है, इसलिए उसका नहीं है। ऐसी बात है। एक भी न्याय बदले तो वस्तु बदल जाती है, बापू! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये... आहाहा! अर्थात् ज्ञायकस्वभाव भगवान को विकार और पर्यायबुद्धि छोड़कर स्वभावबुद्धि हुई। जो द्रव्य में गुणों का एकरूप अभेद है, उस द्रव्य की दृष्टि होने पर पर्याय में आनन्द का अथवा अनन्त गुण की शक्तियाँ-गुण हैं, उनका एक अंश व्यक्त दृष्टि अन्दर पड़ने पर सब होता है। आहाहा! तो उसमें आनन्द भी आता है, शान्ति आती है, स्वच्छता आती है, ईश्वरता भी आती है। सम्यग्दर्शन होने पर सब पर्याय में एक अंश आता है। आहाहा!

अब जो स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये... आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर अन्दर है, उसमें आनन्द तो आया, दृष्टि होकर एकाग्र हुआ, इसलिए (आनन्द तो आया) परन्तु उस आनन्द को विशेष प्रगट करने के लिये... आहाहा! मुनिराज... आहाहा! बाघ की दहाड़ पड़ती हो, सिंह गरजता हो, काला नाग, सर्प जहाँ फुंफकार मारता हो। आहाहा! वहाँ मुनिराज जंगल में बसे हैं। आहाहा! ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि को होती है कि ऐसा मुनिपना मुझे कब आवे! आहाहा! ऐसा कहते हैं। है, अन्तिम शब्द यह है इसका। आहाहा!

मुनिराज स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये जंगल में बसे हैं। आहाहा! उस हेतु उनको निरन्तर परमपारिणामिकभाव में लीनता वर्तती है... आहाहा! परमपारिणामिकस्वभाव ज्ञायकभाव ध्रुव की लीनता विशेष वर्तती है। आहाहा! निरन्तर

ज्ञायकभाव ऐसा परमपारिणामिकभाव, सहज त्रिकाली ज्ञायकभाव में उन्हें लीनता वर्तती है। आहाहा! उन्हें महाव्रत के परिणाम हैं, वह कहीं मुनिपना नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वभाव आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये जंगल में बसते हैं। आहाहा! उन्हें वास्तव में वहाँ भी परमस्वभावभाव, उसमें सम्यग्दृष्टि को जो लीनता वर्तती है, उससे इन्हें विशेष लीनता वर्तती है। आहाहा! यह श्रीमद् में आता है न!

एकाकी विचरूँगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब ॥
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा ॥

आहाहा! उसे कब लक्ष्मी बढ़ेगी और स्त्री मिलेगी और पुत्र कब होगा—ऐसी भावना समकिति को नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? उसकी भावना तो... आहाहा! आनन्द का सागर अन्दर उछल जाये और उसमें लीनता स्वभाव में वर्ते। आहाहा!

दिन-रात रोम-रोम में एक आत्मा ही रम रहा है। रात और दिन। आहाहा! वह नींद में भी... आहाहा! जागृत हुआ आत्मा नींद में भी जागृत ही वर्तता है। आहाहा! यह दशा मुनिराज की! आहाहा! अपने अलग पुस्तक प्रकाशित हो गयी है न? धन्य मुनिदशा! दिया है न? क्यों धन्य मुनिदशा पुस्तक में आता है? अलग नहीं छपाया? यहाँ नहीं। यह पुस्तक है न? इसमें से निकाली है, धन्य मुनिदशा की पुस्तक। इसमें से ही निकाली है, इसमें सब है। यह सब इसमें, यह इसमें है वह। धन्य मुनिदशा! आहाहा! धन्य स्वर्ग की दशा और धन्य लक्ष्मी की दशा, यह नहीं, बापू! यह तो जड़ के संयोग हैं, इनकी क्या स्थिति। आहाहा!

वह समकिति चक्रवर्ती के राज में पड़ा दिखायी दे... आहाहा! परन्तु अन्तर में तो राग से भिन्न की भावना अन्दर होती है और आगे बढ़ने पर हम मुनि कब होंगे? ऐसी दशा! आहाहा! कि जिसे रोम-रोम में आनन्द-आनन्द वर्तता है। आहाहा! है? एक आत्मा ही रम रहा है। आहाहा! शरीर है किन्तु शरीर की कोई चिन्ता नहीं है,... आहाहा! ऐसी दशा की भावना सम्यग्दृष्टि को होती है। आहाहा! नग्नभाव, आता है न श्रीमद् में? नग्नभाव कब प्रगट होगा और कब ऐसी दशा आयेगी! 'नग्नभाव सह अस्नानता, अदन्त धोवन आदि

परम प्रसिद्ध' (अपूर्व अवसर काव्य)। आहाहा! उन्होंने भी इस नग्न-दिगम्बरदशा की भावना भायी है।

शरीर है किन्तु शरीर की कोई चिन्ता नहीं है, देहातीत जैसी दशा है। उत्सर्ग एवं अपवाद की मैत्रीपूर्वक रहनेवाले हैं। अर्थात्? उत्सर्ग अर्थात् आनन्द में रमना है, उसमें रमते हैं। नहीं रह सकते तो विकल्प व्यवहार का जरा आता है तो उसमें (आते हैं) किन्तु फिर भी ध्येय तो द्रव्य में जाने का है। आहाहा! हठ करके अन्दर नहीं रहते, ऐसा नहीं और हठ करके शुभभाव (को) करते हैं, ऐसा भी नहीं। आहाहा! अन्दर सहज आनन्द में रमते हुए, आनन्द में नहीं रह सकते, तब सहज भाव से शुभभाव आता है और शुभभाव में भी वहाँ रहना है, ऐसा ध्येय नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग! आहाहा!

आत्मा का पोषण करके... आत्मा का शान्ति और वीतरागभाव से पोषण करके। आहाहा! स्वभाव का उग्र आश्रय लेकर आत्मा का पोषण किया, आनन्द और शान्ति की वृद्धि की, वह आत्मा का पोषण है। आहाहा! अब ऐसी बातें। **निज स्वभावों को पुष्ट करते हुए...** जो निज ज्ञानानन्द सहजानन्द चैतन्यरत्नाकर प्रभु, ऐसा जो निज स्वभाव का रत्न-सागर, उसके भावों को पुष्ट करते हुए, पर्याय में, हों! आहाहा! आनन्द और शान्ति तो त्रिकाल एकरूप अन्दर पड़ी ही है। अब अन्दर में एकाग्र होने पर... आहाहा! उस आनन्द और शान्ति का पोषण आत्मा को करते हैं। यह प्रौषध है न? प्रौषध नहीं कहते? यह प्रौषध अर्थात् वास्तव में तो आत्मा आनन्द प्रभु है, उसका अनुभव हुआ है, अब उस आनन्द को पोसते और बढ़ाते हैं, उसका नाम प्रौषध है। इसे तो प्रौषध की कुछ खबर नहीं होती। यह क्रिया करने बैठे और ऐसा हुआ और प्रौषध किया। धूल में भी नहीं है। आहाहा!

भगवान! जैसे चना पानी में मोटा होता है परन्तु वह तो पोला मोटा होता है। यह क्या कहा? कच्चा चना पानी में मोटा हो परन्तु वह पोला-पोला पोचा होता है, वह कहीं कठिन नहीं है और यह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द में लवलीन हो जाये, तब वज्रमय पोषण अन्दर आनन्द का होता है। आहाहा! समझ में आया? चना पोचा होता है, इसलिए वहाँ तोल में बढ़ जाता है, ऐसा है? वह तो पानी का भाग इतना आ गया, तथापि वह तो पोला है। यह तो आनन्द का नाथ वज्रबिम्ब प्रभु, इसकी एकाग्रता में तो शान्ति और आनन्द का वज्रमय पोषण है। आहाहा! अब ऐसी बातें। आहाहा!

निज स्वभावों को पुष्ट करते हुए विभावभावों का शोषण करते हैं। पोषण और शोषण। ऐसे नित्यानन्द प्रभु में लीन होने पर स्वभाव का पोषण करते हैं, विभाव का शोषण करते हैं, (विभाव) नाश को प्राप्त होता है। आहाहा! ऐसी बात! पंचम काल के शिष्यों के लिये यह कहा है न? और पंचम काल में समकिति ऐसी भावना करे, वह पंचम काल के लिये बात है, या यह चौथे काल की बात है? आहाहा! उस विभावभाव का शोषण हो जाता है। जो विकृत अवस्था है, उसका नाश होता जाता है और अविकृत अवस्था की शुद्धि की वृद्धि होती जाती है। आहाहा!

जिस प्रकार माता का पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक कुछ अड़चन दिखने पर... कोई कुत्ता ऐसे भौंकता हुआ आया। आहाहा! ऐसी कोई प्रतिकूलता दिखने पर। आहाहा! अधिक जोर से पल्ला पकड़ लेता है,... आहाहा! माता के पास नजदीक जाने को। आहाहा! उसी प्रकार मुनि परीषह-उपसर्ग आने पर... आहाहा! प्रतिकूलता का संयोग आने पर। प्रतिकूलता कोई चीज़ नहीं है, परन्तु दुनिया की अपेक्षा से (कही जाती है)। आहाहा! क्योंकि वह तो ज्ञेय है परन्तु दुनिया जिसे प्रतिकूल कहती है, इस अपेक्षा से बात की है। आहाहा! सर्प का संयोग, बिच्छु का संयोग, आहाहा! तूफान ऐसे आवें, जंगल में पड़े हों, ऐसे तूफान आवे कि वृक्ष के वृक्ष उथल जायें। आहाहा! वे मुनि ध्यान में लीन हो जाते हैं। आहाहा! तूफान आवें न बहुत? चलते हुए मनुष्य को उड़ा दे, ऐसा तूफान आवे। चल नहीं सके, उसे उछाल दे। आहाहा! बैठे हुए व्यक्ति को भी पवन का इतना जोर हो कि ऐसे हिला दे। आहाहा! ऐसे प्रसंग में भी मुनिराज आनन्द में झूलते हैं। आहाहा! विशेष आनन्द में जाते हैं। आहाहा! ऐसा कहते हैं।

जिस प्रकार माता का पल्लू पकड़े हुए बालक को कोई कुत्ता भौंकता हुआ नजदीक आया, भले वह आया हो यूँ ही सूँघने कि कुछ है, देगा। परन्तु लड़का... माँ, माँ ऐसा करके पकड़ता है। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा के आनन्द में रमनेवाले मुनिराज को कोई प्रतिकूल निन्दा, प्रतिकूल उपसर्ग (आवे)। आहाहा! इस जंगल में बसते हुए जहरीले चूहे, जहरीले बिच्छु काट खायें। आहाहा! उस समय आनन्द में उग्ररूप से जाते हैं, कहते हैं। आहाहा! भगवान का पल्ला पकड़ा है, विशेष उग्रता (से) अन्दर जाते हैं। आहाहा! धन्य अवतार! आहाहा! इस दशा से ही छुटकारा, हों! इस दशा के बिना मुक्ति नहीं है। आहाहा!

ऐसी बात है। **प्रबल पुरुषार्थपूर्वक...** मुनि परीषह-उपसर्ग आने पर, **प्रबल पुरुषार्थपूर्वक निजात्मद्रव्य को पकड़ लेते हैं।** आहाहा! पूर्णानन्द प्रभु महापरमात्मस्वरूप... आहाहा! चिन्तामणि महारत्नप्रभु, कामधेनु गाय समान भगवान आत्मा, उसमें प्रतिकूलता के समय एकदम अन्दर में लीन होते हैं। आहाहा! जिस-जिस क्षण में अन्दर एकाग्र होते हैं, उस-उस क्षण में उन्हें आनन्द आता है। कामधेनु गाय, जिस क्षण में दूहे वहाँ तक दूध निकलता है। इन साधारण गायों को सवेरे और शाम दो बार (दूध) आता है। कामधेनु गाय थी, यहाँ वढ़वाण में थी, दादभा में। दादभा थे न चुन्नीलाल। उसका लड़का आता है न? उन्हें पहले थी। अभी नहीं थी। (संवत्) १९८२ के वर्ष में चुन्नीभाई ने हमारे समक्ष ब्रह्मचर्य लिया था। साधारण अवस्था और सभा बड़ी। ब्रह्मचर्य ले तो वहाँ कुछ बाँटना पड़े, पच्चीस-पचास रुपये, सौ रुपये हो जायें। बड़ी सभा १९८२ में। तीन उपाश्रयवाले आते थे। वढ़वाण। उपाश्रय में व्याख्यान नहीं चलते। यह तो १९८२ के वर्ष की बात है। सब आते थे। अब उसे ब्रह्मचर्य लेना था। घर में एकान्ततः लिया था। बाहर में पैसा (न होवे)। अब तो अभी वे लोग ठीक हैं परन्तु उन्हें कामधेनु गाय थी, उसके पहले उनके पिता के पास। सुना था या नहीं? चिमनभाई! नहीं सुना? दादभा में कामधेनु गाय थी। प्रसिद्ध है। ऐसी गाय थी कि जब दूहे, तब दूध दे।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा कामधेनु गाय है। जब अन्दर एकाग्र हो, तब इसे आनन्द मिले। आहाहा! इसे पंचम काल बाधक नहीं, इसे शरीर की संहननता-मजबूती न हो तो बाधक नहीं। आहाहा! इसे सेवा-चाकरी करनेवाला न हो तो बाधक नहीं। आहाहा! 'चलो सखी वहाँ जायें जहाँ अपना नहीं कोई।' जीवित सियालिया खाये, मरते रोवे न कोई... आहाहा! देह छूट जाये तो वहाँ रोनेवाला कौन होगा? गुफा में आनन्द में पड़े हों। आहाहा!

देखो! यह एक वस्तुस्थिति ऐसी करनी पड़ेगी, प्रभु! आहाहा! इसके बिना इसकी मुक्ति नहीं है, भाई! मात्र सम्यग्दर्शन-ज्ञान से कहीं मुक्ति नहीं है। आहाहा! तीन मनोरथ चले हैं न? तीन मनोरथ होते हैं। कब परिग्रह छोड़ूँ, कब मुनिपना ग्रहण करूँ और कब संथारा करूँ? ऐसा आता है, श्वेताम्बर में आता है। आहाहा! **मुनि परीषह-उपसर्ग आने पर...** अभ्यन्तर के **पुरुषार्थपूर्वक निजात्मद्रव्य को पकड़ लेते हैं।** जहाँ ध्रुव भगवान नित्य

अचल अविनाशी परमात्मस्वरूप को पकड़े... आहाहा! 'ऐसी पवित्र मुनिदशा कब प्राप्त करेंगे!' आहाहा! देखो! यह आया। आहाहा! कब हमें पुत्र हो और हमारा नाम रखे (प्रसिद्ध करे)... आहाहा! धूल भी नहीं, तेरा नाम कब था? आहाहा! धर्मी को तो यह भावना होती है। आहाहा! 'ऐसी पवित्र मुनिदशा कब प्राप्त करेंगे!' ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टि को वर्तता है। यह निष्कर्ष है। आहाहा! समझ में आया ?

जिसे स्वभाव की महिमा जागी है, ऐसे सच्चे आत्मार्थी को विषय-कषायों की महिमा टूटकर उनकी तुच्छता लगती है। उसे चैतन्यस्वभाव की समझ में निमित्तभूत देव-शास्त्र-गुरु की महिमा आती है। कोई भी कार्य करते हुए उसे निरन्तर शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का खटका लगा ही रहता है।

गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का अवलम्बन करनेवाली ज्ञानतृत्वधारा निरन्तर वर्तती रहती है। परन्तु पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण अस्थिरतारूप विभाव परिणति बनी हुई है, इसलिये उनको गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं। स्वरूप में स्थिर नहीं रहा जाता, इसलिये वे विविध शुभभावों में युक्त होते हैं:— 'मुझे देव-गुरु की सदा समीपता हो, गुरु के चरणकमल की सेवा हो' इत्यादि प्रकार से जिनेन्द्रभक्ति-स्तवन-पूजन एवं गुरुसेवा के भाव होते हैं तथा शास्त्र-स्वाध्याय के, ध्यान के, दान के, भूमिकानुसार अणुव्रत एवं तपादि के शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं। इन सब भावों के बीच ज्ञातृत्व-परिणति की धारा तो सतत चलती ही रहती है।

निजस्वरूपधाम में रमनेवाले मुनिराज को भी पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से विविध शुभभाव होते हैं:— उनके महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, पंचाचार, स्वाध्याय, ध्यान इत्यादि सम्बन्धी शुभभाव आते हैं तथा जिनेन्द्रभक्ति-श्रुतभक्ति-गुरुभक्ति के उल्लासमय भाव भी आते हैं। 'हे जिनेन्द्र! आपके दर्शन होने से, आपके चरणकमल की प्राप्ति होने से, मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ? अर्थात् आप मिलने से मुझे सब कुछ मिल गया।' ऐसे अनेक प्रकार

से श्री पद्मनन्दी आदि मुनिवरों ने जिनेन्द्रभक्ति के स्रोत बहाये हैं।—ऐसे-ऐसे अनेक प्रकार के शुभभाव मुनिराज को भी हठ बिना आते हैं। साथ ही साथ ज्ञायक के उग्र आलम्बन से मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा भी सतत् चलती ही रहती है।

साधक को—मुनि को तथा सम्यग्दृष्टि श्रावक को—जो शुभभाव आते हैं, वे ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण उनका आकुलतारूप से—दुःखरूप से वेदन होता है, हेयरूप ज्ञात होते हैं, तथापि उस भूमिका में आये बिना नहीं रहते।

साधक की दशा एकसाथ त्रिपुटी (-तीन विशेषताओंवाली) है:— एक तो, उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है, जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा होती है; दूसरा, शुद्ध पर्यायांश का सुखरूप से वेदन होता है; और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावों का समावेश है, उसका—दुःखरूप से, उपाधिरूप से वेदन होता है।

साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वे भाव हठपूर्वक होते हैं। यों तो साधक के वे भाव हठरहित सहजदशा के हैं, अज्ञानी की भाँति 'ये भाव नहीं करूँगा तो परभव में दुःख सहन करना पड़ेंगे' ऐसे भय से जबरन कष्टपूर्वक नहीं किये जाते; तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते। शुभभावों के साथ-साथ वर्तती, ज्ञायक का अलम्बन लेनेवाली जो यथोचित निर्मल परिणति, वही साधक को सुखरूप ज्ञात होती है।

जिस प्रकार हाथी के बाहर के दाँत—दिखाने के दाँत अलग होते हैं और भीतर के दाँत—चबाने के दाँत अलग होते हैं, उसी प्रकार साधक को बाह्य में उत्साह के कार्य—शुभ परिणाम दिखायी दें, वे अलग होते हैं और अन्तर में आत्मशान्ति का—आत्मतृप्ति का स्वाभाविक परिणामन अलग होता है। बाह्य क्रिया के आधार से साधक का अन्तर नहीं पहिचाना जाता ॥३७८ ॥

अब शुरुआत से बात करते हैं। जिसे स्वभाव की महिमा जागी है... जिसे परमात्मस्वरूप भगवान की महिमा जगी है। जिन आत्मा की बात है, हों! जिसमें अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. पवित्र गुणों की शक्ति का भण्डार, ऐसे निज स्वभाव की जिसे महिमा जगी है। आहाहा! ऐसे सच्चे आत्मार्थी को... वह सच्चा आत्मार्थी; आत्मा-अर्थी अर्थात् आत्मा की महिमा जिसे जगी, वह आत्मार्थी। आहाहा! दूसरी सब महिमा उड़ गयी। दया, दान के विकल्प की और पैसे की, इज्जत की, सब धूल की और... आहाहा! जिसे भगवान आत्मा अकेला चैतन्य कल्पवृक्ष... आहाहा! उसके स्वभाव की महिमा जगी है।

ऐसे सच्चे आत्मार्थी को विषय-कषायों की महिमा टूटकर... आहाहा! धर्मी, जिसे सच्ची महिमा प्रभु-आत्मा की लगी है, उसे विषय-कषाय की महिमा टूट जाती है। आहाहा! चाहे तो इन्द्र के इन्द्रासन हों, उनकी महिमा भी उसे टूट जाती है। आहाहा! यहाँ तो जरा दस हजार का वेतन हो और पाँच हजार बढ़े तो करो लापसी। आहाहा! पाँच लाख की पूँजी हो और दो लाख की आमदनी एक साथ हुई। सात हजार बढ़े, पचास हजार का खर्च गया, ढाई लाख... आहाहा! है न ऐसा सब? यह दुकान के धन्धे में। ऐ... शान्तिभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी तो मानने की बात है। जिसे आत्मा की महिमा जगी है, उसे आत्मार्थी कहते हैं। जिसे राग और पुण्य तथा उनकी महिमा है, उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं। आहाहा! तीन लोक का नाथ चैतन्य चिन्तामणि प्रभु! जिसकी खान में अनन्त गुण के रत्न भरे हैं। आहाहा! वे कितने? कि अनन्त... अनन्त.. अनन्त.. अनन्त का पार नहीं, इतने रत्न भरे हैं, चैतन्यरत्न। आहाहा! उसकी जिसे महिमा जगी, उसे विषय-कषाय की महिमा टूट जाती है। आहाहा! करोड़ों इन्द्राणियों का योग हो तो भी समकित्ती को उनकी महिमा टूट जाती है। आहाहा! समझ में आया?

राग आवे परन्तु काला नाग हो, ऐसा दिखता है। उसे दुःख दिखता है। आहाहा! उसकी महिमा नहीं कि यह विषय सेवन किये, इसलिए मजा आया। आहाहा! ऐसे किसी को मान में जीता, वह हारा और स्वयं जीत गया। आहाहा! ऐसे मान की महिमा ज्ञानी को नहीं होती। आहाहा! ऐसी बातें हैं। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।

मुमुक्षु : म्यान बड़ी हो तो रह सकती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : म्यान बड़ी होती ही नहीं। वह म्यान ही नहीं कहलाती। आहाहा! जिसे पुण्य और पाप के भाव की महिमा उड़ गयी है, जिसे अनुकूल संयोगों की महिमा-आश्चर्यता टल गयी है। आहाहा! जिसे इन्द्रासन मिलेंगे, ऐसा ख्याल में आया, किसी ने कहा कि तुम तो वहाँ इन्द्र में जानेवाले हो। आहाहा! जिसकी महिमा अन्तर से टूट गयी है। आहाहा! मेरा नाथ आनन्द का सागर, जिसमें अनन्त-अनन्त चैतन्यरत्न पड़े हैं, प्रभु! आहाहा! एक-एक रत्न की भी कीमत नहीं, इतनी अकीमती चीज़, अमूल्य चीज़ है। आहाहा! ऐसे चैतन्य के स्वभाव की आत्मार्थी को महिमा जागृत हुई, उसे आत्मार्थी कहते हैं। उसे आत्मा का प्रयोजन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आहाहा!

जिसे स्वभाव की महिमा जागी है, ऐसे सच्चे आत्मार्थी को... सच्चा आत्मार्थी और खोटा आत्मार्थी, दो होते हैं?बापू! यह वस्तु कोई अलौकिक है, भाई! आहाहा! दुनिया से मान प्राप्त करना हो, प्रसिद्ध करना हो, आहाहा! क्षयोपशम की बाहर में प्रसिद्धि हो, उसे महिमा लगे उसकी, उसे आत्मा की महिमा नहीं है।

उनकी तुच्छता लगती है। विषय-कषाय की महिमा टूटकर उनकी तुच्छता लगती है। आत्मार्थी नहीं हो, वस्तु के स्वभाव की महिमा नहीं हो, उसे उसकी—बाहर की महिमा लगती है। आहाहा! दो करोड़ रुपये, तीन करोड़ रुपये हुए। हमारी इज्जत पूरे हिन्दुस्तान में प्रसिद्धि हो गयी। पागल है।

मुमुक्षु : बनिया रुपये....

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिया किसे कहना? व्यापारी—आत्म व्यापार करे, वह बनिया है। राग का व्यापार करके उत्साह माने तो (बनिया नहीं है)। आत्मा आत्माराम (में) रमे, वह राम। उस राग में रमे, वह हराम है। राग आवे परन्तु उसकी महिमा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! शुभभाव आया, अब उसमें पुण्य बँधेगा और अपने स्वर्ग में जायेंगे... आहाहा! यह महिमा ज्ञानी को नहीं होती। पहले से बहुत सरस बात ली है। यह ठेठ तक की बातें इसमें बहुत है। आहाहा!

जिसे स्वभाव की महिमा जागी है, ... जगी है, ऐसे सच्चे आत्मार्थी को विषय-कषायों की... पाँच इन्द्रियों के विषयों की मिठास जिसे उड़ गयी है, जिसे क्रोध, मान,

माया, लोभ की महिमा उड़ गयी है। आहाहा! जिसे वह विषय-कषाय का भाव तुच्छ लगता है। आहाहा! तुच्छता लगती हो। आहाहा! विषय-कषाय का भाव, जिसे आत्मा की महिमा आयी हो, उसे (विषयादि के भाव की) तुच्छता लगती है और जिसे वह अधिक लगता है, उसे आत्मा की महिमा का अभाव है। आहाहा!

उसे चैतन्यस्वभाव की समझ में... आहाहा! चैतन्यस्वभाव की समझ में निमित्तभूत देव-शास्त्र-गुरु की महिमा (व्यवहार से) आती है। निमित्त है न, इसलिए व्यवहार से। अपनी महिमा है, वह निश्चय है। आहाहा! आती है। आहाहा! देव-शास्त्र और गुरु। है न, भाषा ऐसी है न? 'देव शास्त्र गुरु तीन।' देव, गुरु और शास्त्र, ऐसा वहाँ नहीं लिया। देव-शास्त्र-गुरु तीन। भक्ति में नहीं आता? देव-शास्त्र-गुरु तीन। देव-गुरु-शास्त्र, ऐसा नहीं। इसलिए ये तीन शब्द आये हैं। देव-शास्त्र-गुरु तीन। आहाहा! पहले नम्बर में देव, दूसरे नम्बर में शास्त्र, तीसरे नम्बर में गुरु। आहाहा! जिनवाणी। आहाहा! अकेले मन्त्र झरते होते हैं। परमागम की महिमा आती है। है विकल्प, परन्तु स्वभाव की महिमा छोड़कर महिमा आती है, ऐसा नहीं है। स्वभाव की महिमावन्त को ऐसे महिमावन्त गुरु की उसे व्यवहार से महिमा आती है। आहाहा!

कोई भी कार्य करते हुए... चाहे जो कार्य करते हुए अर्थात् इस महिमा का विकल्प आया, उस समय भी, उसे निरन्तर शुद्ध स्वभाव की... आहाहा! निरन्तर। शुद्धस्वभाव प्रभु परमानन्द की मूर्ति आत्मा को प्राप्त करने का खटक लगा ही रहता है। आहाहा! निरन्तर शुद्धस्वभाव, आहाहा! मेरा प्रभु पूर्ण शुद्धस्वभाव से भरपूर है। उसे प्राप्त करने की खटक। आहाहा! अन्दर गरज, खटक रहा ही करती है। आहाहा!

गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को... सम्यग्दृष्टि है, ज्ञानी है। ऐसे गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को शुभाशुभभाव से भिन्न... आहाहा! उसे भी शुभ-अशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का अवलम्बन करनेवाली... ज्ञायकस्वरूप जो शुद्ध चैतन्यघन को अवलम्बन करनेवाली ज्ञानतृत्वधारा निरन्तर वर्तती रहती है। आहाहा! ज्ञायक की परिणति जो हुई है... क्या कहते हैं? गृहस्थाश्रम में धर्मी हो, तथापि उसे शुभाशुभभाव आते हैं परन्तु उस काल में भी... आहाहा! ज्ञानतृत्वधारा निरन्तर वर्तती रहती है। ज्ञातादृष्टा का परिणमन है, वह निरन्तर वर्तता है। आ गया न अपने? (समयसार) १११ कलश में। ज्ञानधारा और कर्मधारा, १११

कलश में है। यह रागधारा हो, तथापि धर्मी को तो ज्ञानधारा कायम चलती है। आहाहा! आहाहा! स्वभाव की सन्मुखता की दशा जो हुई है, वह तो कायम शुद्ध ही है। आहाहा! अरे! उसके अशुभभाव के काल में भी... आहाहा! ज्ञातृधारा जो शुद्ध चैतन्य का परिणमन है, वह परिणमन तो चालू ही है। आहाहा! है न?

परन्तु ज्ञातादृष्टा की जो धारा, वह तो निरन्तर ही होती है। परन्तु पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण... परन्तु, आहाहा! पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण अस्थिरतारूप विभाव परिणति बनी हुई है,... आहाहा! अस्थिरता-रागभाव, आहाहा! अस्थिरतारूप विभाव परिणति बनी हुई है, इसलिये उनको गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं। आहाहा! उसके योग्य अशुभभाव और उसके योग्य शुभभाव। आहाहा! ऐसी उनकी विभाव परिणति बनी हुई है, इसलिये उनको गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं। आहाहा! स्वरूप में स्थिर नहीं रहा जाता... आहाहा! जहाँ भगवान को देखा, देखा है, उसमें अन्दर में नहीं रह सकता, आहाहा! इसलिए वे विविध शुभभावों में युक्त होते हैं... विविध अर्थात् अनेक प्रकार के देव-गुरु-शास्त्र का विनय, महिमा इत्यादि में जुड़ते हैं। आहाहा!

‘मुझे देव-गुरु की सदा समीपता हो,...’ ऐसी भावना होती है, तथापि उस काल में ज्ञाताधारा तो है। आहाहा! ऐसी बात है। ‘देव-गुरु की सदा समीपता हो,...’ यहाँ शास्त्र निकाल दिया। शास्त्र है, वह निमित्तरूप से है परन्तु स्वयं अर्थ समझे तदनुसार करे न? यह तो देव-गुरु उसे समझाते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह गुरु की महिमा का अर्थ (यह कि) यह क्या कहते हैं वह सुनने के लिये महिमा है न? व्यवहार से। आहाहा!

‘गुरु के चरणकमल की सेवा हो, देव-गुरु की सदा समीपता हो’ इत्यादि प्रकार से जिनेन्द्रभक्ति... आहाहा! देखो न, प्रवचनसार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने गाथा ली है। अनन्त भूत के तीर्थकर, वर्तमान और भविष्य के तथा वर्तमान में भरतक्षेत्र के और महाविदेह के। आहाहा! सबको एक समूह को याद करके और प्रत्येक-प्रत्येक को वन्दन करके, आहाहा! पहली पाँच गाथाओं में कितना भरा है! यह प्रवचनसार। पाँचों की

व्याख्या करके वापस ऐसा कहा कि ओहोहो! जो हमारे गुरु, देव और शास्त्र हमें समीप हो। आहाहा! उस समय आत्मा तो समीप वर्तता है परन्तु इस प्रकार से व्यवहार से समीप हो, ऐसा भाव आता है। आहाहा!

जिनेन्द्रभक्ति-स्तवन-पूजन... बड़ी गाथा (बोल) है, ७८ बड़ी है। एवं गुरुसेवा के भाव होते हैं तथा शास्त्र-स्वाध्याय के,... आहाहा! भाव होते हैं। आहाहा! ध्यान के,... शास्त्र भी कौनसे? सर्वज्ञ कथित वे, वह शास्त्र। आहाहा! उनके स्वाध्याय का भाव होता है। आहाहा! ध्यान का अर्थात् वह ध्यान अर्थात् वह विकल्प है, ऐसा भाव होता है। दान के,... दान के अर्थात् गुरु को कुछ देना-आहार-पानी इत्यादि। आहाहा! ऐसा भाव व्यवहार से होता है। यह व्यवहार की बात है न? निश्चयदान तो स्वयं अपने स्वरूप में से प्रगट करके रखे, वह सम्प्रदान दान है। आहाहा! भगवान अनन्त गुण का सागर, उसमें एकाग्र होकर पर्याय में जो आनन्द और शान्ति प्रगट करे और उसे रखे, वह दान है परन्तु यह व्यवहार दान का विकल्प भी आता है, इतना। आहाहा!

ध्यान के, दान के, भूमिकानुसार... पाँचवें गुणस्थान की भूमिकानुसार, अणुव्रत... के भाव भी आते हैं। बारह व्रत जो हैं न? अणुव्रत। आहाहा! परन्तु ज्ञातृत्वधारा शुरु है और यह आवे। आहाहा! राग है। आवे, होता है परन्तु इससे वह बन्ध का कारण है, वह मुक्ति का कारण हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! भावपाहुड़ में तो बहुत कहा है, नहीं? उसकी पच्चीस भावना और पंच महाव्रत और सोलह तीर्थकरगोत्र और यह करूँ, यह करूँ... भावपाहुड़ में आता है। समकिति को भी, अशुभ से बचने के लिये यह आता है। मिथ्यादृष्टि है, वहाँ तो अशुभ से बचने का प्रसंग ही नहीं है। आहाहा! जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और अनुभव हुआ, उसे अशुभ से बचने को शुभ में आना, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

उनके हठ बिना आते हैं - अणुव्रत तथा तप... तप का भाव आता है, तप के बहुत प्रकार हैं न? अनशन, ऊनोदर, वृत्ति (परिसंख्यान) इत्यादि, विनय आदि का भाव। इत्यादि शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं। सहज उस प्रसंग में उन्हें वह भाव आते हैं। हठ से आते हैं, ऐसा नहीं है।

इन सब भावों के बीच... ऐसे सब भावों के प्रसंग में भी ज्ञातृत्व-परिणति की धारा तो सतत चलती ही रहती है। आहाहा! मैं ज्ञातादृष्टा हूँ, यह परिणमन धारा तो चालू

ही है। आहाहा! ऐसे भाव आये, इसलिए ज्ञातृत्वधारा टूट जाती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! सब भावों के बीच ज्ञातृत्व-परिणति की धारा तो सतत चलती ही रहती है। आहाहा! यह गृहस्थाश्रम की बात की, समकिति को गृहस्थाश्रम की बात की। पहले आत्मा की महिमा आयी थी, उसकी बात थी, तीन बोल लिये। जिसे आत्मा की महिमा आयी है, उसकी बात थी। पश्चात् समकिति गृहस्थाश्रम में रहे हुए की बात थी। अब मुनिराज की बात है। आहाहा!

निजस्वरूपधाम में रमनेवाले... आहाहा! निजस्वरूपधाम। आहाहा! सुखधाम, सुखधाम अनन्त सुसन्त चहि, आता है न? सुसन्त चहि, स्वयं आत्मा... स्वयं। निजस्वरूपधाम में रमनेवाले मुनिराज को भी... 'भी' क्यों आया? उस श्रावक का पाँचवाँ गुणस्थान का आता है, ज्ञातृत्वधारा होने पर भी; इसी प्रकार इन मुनिराज को भी। आहाहा! ऐसा कि आगे बढ़ गये हैं, इसलिए इन्हें शुभभाव नहीं होता, ऐसा नहीं है। तीन कषाय का अभाव और वीतरागता प्रगट हुई है। आहाहा! उन्हें भी पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से... यह कारण (बतलाया)। वीतरागदशा है, परन्तु पूर्ण वीतरागदशा के अभाव में। आहाहा! पूर्ण वीतरागता नहीं है, इसलिए बीच में राग आये बिना नहीं रहता। आहाहा!

विविध शुभभाव होते हैं... देव-गुरु का विनय, शास्त्र स्वाध्याय, ऐसा भाव होता है न! मुनि को तो दो ही होते हैं-ध्यान और स्वाध्याय। आता है न? दूसरा तो वहाँ कुछ है नहीं। आहाहा! पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से विविध शुभभाव होते हैं:— उनके महाव्रत,... उसको (श्रावक को) अणुव्रत थे, पंचम गुणस्थान। महाव्रत, अट्टाईस मूलगुण, पंचाचार,... व्यवहार, हों! स्वाध्याय, ध्यान इत्यादि सम्बन्धी शुभभाव आते हैं... देखा? पंचाचार के शुभभाव व्यवहार के। उन्हें जिनेन्द्रभक्ति... होती है। श्रुतभक्ति-गुरुभक्ति के उल्लासमय भाव भी आते हैं। फिर इसकी विशेष बात करेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल -१४, सोमवार, दिनाङ्क १३-११-१९७८
वचनामृत-३७८ प्रवचन-१४९

तीसरा पैराग्राफ है। ३७८ का तीसरा पैराग्राफ है।

निजस्वरूपधाम में रमनेवाले... पहले गृहस्थाश्रम की बात की, कि गृहस्थाश्रम में जो ज्ञानी-धर्मी होते हैं, वे अपना जिनस्वरूप जो वीतरागस्वरूप आत्मा है, उसके आश्रय से वीतरागी परिणति प्रगट की, वह धर्म है। उसमें कमजोरी के कारण शुभभाव आता है, परन्तु वह हेयरूप से आता है। आहाहा! समझ में आया? गृहस्थी को, सम्यग्दृष्टि को अन्तर में वीतरागस्वरूप जो आत्मा, उसकी परिणति वीतरागदशा हुई है, तो उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। आहाहा! उस भूमिका में अणुव्रतादि, भक्ति आदि का भाव आता है परन्तु उसे हेयरूप से जानते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

अब यहाँ तो मुनि की बात है। श्रावक की बात तो हुई। आहाहा! बात तो ऐसी है कि जिनस्वरूप जो आत्मा, वह वीतरागस्वरूप है। आत्मा है, वह जिनस्वरूप, वीतरागस्वरूप है, तो वीतराग परिणति जब वीतराग जिनस्वरूप के आश्रय से होती है, उतना धर्म कहने में आता है। देव, वीतराग, गुरु, वीतराग, धर्म वीतराग, द्रव्य वीतराग। सर्वज्ञ परमेश्वर ने वीतराग... पर्याय में वीतराग। मुनि भी पर्याय में वीतराग। भले अल्प वीतरागता है, परन्तु हैं वीतराग और वस्तु है, वह वीतरागस्वरूप है। आहाहा!

वीतरागधर्म का अर्थ कोई वीतराग पक्ष नहीं है। वह वीतराग जिनस्वरूप है 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सों मतवाला समझे न।' घट घट अन्तर जिनस्वरूपी वीतराग आत्मा भगवान है। आहाहा! उसकी शक्ति स्वभाव ही वीतराग है। आहाहा! उस वीतराग भगवान को जाना तो वीतराग ने वीतरागता का उपदेश दिया। वीतरागस्वरूप जो भगवान आत्मा, उसका आश्रय करने से जो दशा—वीतरागी

अवस्था उत्पन्न होती है, वह जैनधर्म है, क्योंकि जैनस्वरूप ही आत्मा वीतरागस्वरूप जिन है। आहाहा! उसके अवलम्बन से जो परिणति / अवस्था होती है, वह वीतराग है, तो पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ हुए, पूर्ण वीतराग द्रव्यस्वभाव है, स्वभाव है। पर्याय में पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ हुए। आहाहा! अपूर्ण वीतरागता का अंश सम्यग्दृष्टि आदि श्रावक को भी उत्पन्न होता है। उस भूमिका में व्रतादि के शुभभाव आते हैं परन्तु वे हेय हैं। आहाहा! और उन्हें नाश करने को यत्न नहीं करना पड़ता। अपने स्वरूप की ओर का ध्यान एकाग्र है, तो उस राग की उत्पत्ति नहीं होती, तो राग का नाश हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! क्योंकि वीतरागस्वरूप आत्मा है, तो वीतरागपरिणति उत्पन्न होने पर राग का नाश होता है। नाश करना नहीं पड़ता। आहाहा! ऐसा भाव सम्यग्दृष्टि को, सच्चे श्रावक को भी, परिणति में वीतरागपर्याय आती है, साथ में शुभभाव आता है, वह हेय है। जिनेन्द्र भक्ति आदि (के भाव) आते हैं। अब यहाँ तो मुनिराज की बात करते हैं।

निजस्वरूपधाम में रमनेवाले... मुनि किसे कहते हैं! प्रभु कहते हैं। आहाहा! निजस्वरूप जो वीतरागमूर्ति प्रभु जिन आत्मा है... आहाहा! ऐसा धाम। **निजस्वरूपधाम...** अपना अविकारी वीतरागीस्वरूप निजस्वरूपधाम... आहाहा! उसमें **रमनेवाले मुनिराज को भी पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से...** पूर्ण वीतरागदशा तो सर्वज्ञदेव को है। आहाहा! वह भी वीतरागदशा, वीतरागस्वभाव भगवान के अवलम्बन से हुई है। आहाहा! वीतराग... वीतराग... वीतराग... और उसमें आता है न? आत्मावलोकन में कहा था।

गुरु उसे कहते हैं कि वीतराग... वीतरागपने का उपदेश दे। आत्मावलोकन, दीपचन्द्रजी (कृत) 'मुहुं मुहुं वीतराग' क्योंकि जिनस्वरूप प्रभु आत्मा वीतरागमूर्ति है, उसमें से वीतरागता प्रगट करना, वह गुरु का उपदेश है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा पाठ है। 'मुहुं मुहुं' बारम्बार (कहते हैं)। मुनि उसे कहते हैं कि जो वीतराग की बात करे। वीतरागस्वरूप प्रभु के अवलम्बन से वीतरागपना प्रगट करो, बस! आहाहा! यह सन्तों का उपदेश है। जिस उपदेश में ऐसा आता है कि यह व्रत, तप, भक्ति, पूजा करने से धर्म होता है, वे मुनि नहीं हैं, वे धर्मी नहीं हैं। आहाहा! उनका यह उपदेश विपरीत है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि **पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से विविध शुभभाव होते हैं...** आहाहा! शुभभाव तो होते हैं। विध-विध। एक प्रकार का नहीं, भिन्न-भिन्न प्रकार

का। कोई व्रत का, कोई भक्ति का, कोई पूजा का, भगवान के स्मरण का-ऐसे विविध भाव आते हैं। बहुत कठिन काम, भाई! उनके महाव्रत,... यह शुभभाव है। आहाहा! वृत्ति है न? विकल्प है, आस्रव है। महाव्रत। आहाहा! अट्टाईस मूलगुण,... यह भी शुभभाव है। पंचाचार,... व्यवहार, हों! ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार। ऐसा व्यवहार का शुभभाव आता है। स्वाध्याय,... शास्त्र का स्वाध्याय करने का पर की ओर के लक्ष्यवाला भाव आता है। ध्यान इत्यादि सम्बन्धी शुभभाव आते हैं... ध्यान अर्थात्? मैं ध्यान करूँ, ऐसा जो विकल्प है... आहाहा! वह भी शुभभाव है। आहाहा!

तथा जिनेन्द्रभक्ति-श्रुतभक्ति-गुरुभक्ति... आया। देखो, देव, शास्त्र और गुरु। आता है न? देव-शास्त्र-गुरु तीन। तो देव की भक्ति भी शुभभाव है। मुनिराज को भी, वीतरागता अपूर्ण है, इस कारण से (ऐसा भाव आता है)। सर्वज्ञ तो पूर्ण वीतराग हैं, इसलिए उन्हें ऐसा विकल्प नहीं आता। जिनेन्द्र की भक्ति, जिनेन्द्र को वन्दन यह उन्हें है नहीं परन्तु अपूर्ण वीतरागतावाले को वीतरागता है, वीतरागता। आहाहा! उसमें ऐसा जिनेन्द्रभक्ति-श्रुतभक्ति-गुरुभक्ति... देव-शास्त्र-गुरु। भक्ति में आता है, देव-शास्त्र-गुरु तीन। आहाहा! उल्लासमय भाव भी आते हैं।

‘हे जिनेन्द्र!’ ‘....’ पद्मनन्दि कहते हैं ‘आपके दर्शन होने से,...’ आहाहा! ‘आपके चरणकमल की प्राप्ति होने से, मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ?’ ऐसा उल्लास आता है। परन्तु है शुभभाव। आहाहा! तथापि कहते हैं, आहाहा! ‘अर्थात् आप मिलने से मुझे सब कुछ मिल गया।’ ऐसे अनेक प्रकार से श्री पद्मनन्दी आदि मुनिवरों ने जिनेन्द्रभक्ति के स्रोत बहाये हैं। आहाहा! धारावाही बहायी है, कहते हैं। ऐसे-ऐसे अनेक प्रकार के शुभभाव मुनिराज को भी हठ बिना आते हैं। हठ बिना आते हैं। मैं शुभ नहीं करूँ तो मुझे दुर्गति होगी, ऐसा नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग मार्ग, उसका सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, यह कोई अलौकिक है। आहाहा! उस वस्तु को समझे बिना जो कुछ व्रत-तप-भक्ति आदि करे, वह सब संसार खाते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! हठ बिना शुभभाव आते हैं। मुझे करना पड़ता है, करना पड़ता है - ऐसा नहीं। आते हैं। आहाहा!

साथ ही साथ ज्ञायक के उग्र आलम्बन से... आहाहा! ज्ञायक अर्थात् वीतरागस्वरूप

प्रभु जिनस्वरूप, उसके-द्रव्य के उग्र आलम्बन से... आहाहा! मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा... मुनियोग्य। समकिति को समकिति के योग्य; श्रावक को श्रावक के योग्य, आहाहा! मुनि को मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा... जानन-देखन वीतराग परिणति धारा तो चलती है। शुभभाव हो, तो भी यह ज्ञातृत्वधारा, ज्ञातादृष्टा का परिणमन तो चलता ही है। ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : देव की भक्ति आदि का राग, वह कर्मधारा कहने में आती है और यह आत्मा ज्ञानस्वरूप, वीतरागस्वरूप की परिणति चलती है, वह वीतरागधारा है, वह ज्ञानधारा है। पर्याय में, हों! ज्ञानस्वरूप, वीतरागस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, उसकी दृष्टि हुई, अनुभव हुआ तो पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि उत्पन्न हुए, वह वीतरागी पर्याय है। वह परिणति तो निरन्तर रहती है। आहाहा! शुभभाव आते हैं, हठ बिना आते हैं। आहाहा! मैं करता हूँ, मुझे करना पड़ता है, ऐसा नहीं है। उस शुभभाव के समय भी मुनि को मुनियोग्य जानन-देखन वीतराग धारा चलती है, ज्ञानधारा चलती है। यह ज्ञानधारा, वह धर्मधारा है और यह रागधारा, वह कर्मधारा है। यह धर्मधारा, वह कर्मधारा। ऐसी बात भगवान के घर की बहुत सूक्ष्म है, भाई! अभी लोगों को बेचारों को कठोर पड़ता है। जैनदर्शन (साप्ताहिक पत्र) में इतना विरोध आता है। आहाहा! सोनगढ़ का साहित्य ऐसा है। उन्हें उस शुभभाव से मनवाना है और निमित्त से भी होता है, ऐसा मनवाना है। यह बात उसे उल्टी पड़ती है, इसलिए उसकी दृष्टि से तो यह बात विरोध है, बात सच्ची है। आहाहा!

भगवान आत्मा निर्विकल्प अभेद वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा। आहाहा! उसका अवलम्बन लिये बिना, सम्यग्दर्शन की पर्याय कभी नहीं होती। और अवलम्बन के काल में शुभभाव आता है, तथापि स्वरूप के अवलम्बन की परिणति चलती है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, वीतराग जिनस्वरूप आत्मा, वीतराग परिणति अपूर्ण, वह गुरु और वीतराग परिणति, वह धर्म है। आहाहा! समझ में आया? उसमें यह भाव आता है। हो, हठ के बिना आता है। जानते हैं कि है, परन्तु परिणति तो वहाँ उसकी जानने की जो ज्ञातृत्वधारा है, वह तो चलती ही है। आहाहा! इसका नाम मुनिराज और इसका नाम

धर्म की परिणति। आहाहा! भाई! यह कहीं (कथा-वार्ता नहीं है)। आहाहा! अलौकिक बातें हैं, प्रभु! लोगों से भिन्न है।

अन्तर्मुख तत्त्व जो भगवान है; भगवान अर्थात् आत्मा, हों! वह तो वीतरागमूर्ति प्रभु है, जिनबिम्ब है। यह प्रतिमा जिनबिम्ब तो व्यवहार है। यह चैतन्य प्रतिमा जिनबिम्ब वस्तु है। आहाहा! उसके दर्शन करने से, उसका अवलम्बन लेने से जो दशा-वीतरागधारा उत्पन्न हुई। सम्यग्दृष्टि को सम्यग्दर्शनपूर्वक की वीतरागधारा, श्रावक को श्रावक के योग्य वीतरागधारा, मुनि को मुनि के योग्य वीतरागधारा (उत्पन्न हुई)। आहाहा! अब ऐसा उपदेश! वह तो सतत् चलती ही रहती है। आहाहा! जो भगवान आत्मा पूर्ण अभेद स्वरूप का आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन आदि उत्पन्न हुए, उनकी परिणति तो निरन्तर चलती है। आहाहा! श्रावक को अशुभभाव की विषयवासना होती है, उस समय भी यह ज्ञातृत्वधारा तो चलती ही है। आहाहा! ऐसे श्रावक को भगवान की भक्ति इत्यादि का भाव आता है। उस समय में भी उसके योग्य ज्ञातृत्वधारा तो चलती ही है। मुनि को उनके योग्य ज्ञातृत्वधारा कहा, इसका अर्थ कि उनकी वीतरागधारा विशेष है। पूर्ण नहीं है। परन्तु चौथे-पाँचवें गुणस्थान में जो वीतरागधारा थी, उससे मुनि को विशेष वीतरागधारा है। आहाहा! वह धारा तो निरन्तर है। आहाहा!

अरे! सम्यग्दृष्टि, आत्मज्ञान हुआ है, वह युद्ध में खड़ा हो, उस समय भी सम्यग्दर्शन की धारा तो चलती ही है। आहाहा! वीतराग का ऐसा मार्ग। लोगों को एकान्त लगता है क्योंकि कुछ क्रिया, दया, दान, व्रत, भक्ति करे तो लाभ होगा, शुभभाव (से लाभ होगा) ऐसा लोग लिखते हैं परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि शुभभाव आता है, परन्तु शुभभाव धर्म नहीं है और शुभभाव से धर्म नहीं होता। शुभभाव कारण और यह धर्म कार्य। यह आया था न? मक्खनलालजी के गाँव में। क्या गाँव कहा? मुरैना। आया था न। परन्तु वह तो बेचारा नरम होकर सुनता था। वे लोग सब ऐसा कहते हैं। शुभभाव करते-करते होगा, शुभभाव वह साधन है, उसके पश्चात् धर्म होता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। ऐसी मिथ्याशल्य तो अनन्त बार की है। आहाहा! तेरा स्वभाव वीतराग है, उसका तुझे आश्रय और रुचि हुई नहीं। आहाहा! और राग की रुचि में पड़ा, वह मिथ्यात्व शल्य है। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, वह बात

यहाँ है। अपने स्वरूप में सन्तों के योग्य जो धारा-वीतरागधारा, तीन कषाय का अभाव होकर वीतरागदशा, परिणतिधारा चलती है। वहाँ भले शुभ उपयोग हो, तथापि उस धारा में खण्ड नहीं होता। आहाहा! वह सतत् चलती ही रहती है। आहाहा!

साधक को—अब साधक की व्याख्या। कि मुनि को तथा सम्यग्दृष्टि श्रावक को—यह तीन साधक। मुनि, सम्यग्दृष्टि चौथे (गुणस्थान) में, मुनि छठे (गुणस्थान) में और श्रावक पाँचवें (गुणस्थान) में। जो शुभभाव आते हैं... इन्हें जो शुभभाव आते हैं, वे ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण... आहाहा! ऐसा है। भगवान् आत्मा अमृत का सागर, अमृत का सागर प्रभु आत्मा, वीतरागरूपी अमृत का सागर प्रभु है। आहाहा! उसके अवलम्बन से जो वीतरागता हुई, वह तो आनन्दरूप धारा है, वीतरागधारा है। आहाहा! और बीच में ऐसे शुभभाव आते हैं... आहाहा! वे ज्ञातृत्व स्वभाव से (विरुद्ध स्वभाववाले) होने से ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण... आहाहा! सोनगढ़ का ऐसा कठिन पड़ता है। सोनगढ़ का है या भगवान् का है? आहाहा!

यहाँ तो शुभभाव को जहर कहा है, जबकि भगवान् तो अमृत का सागर प्रभु अन्दर डोलता है। ऐई! अमृतलालजी! आहाहा! सुधारस, अमृतरस। पूर्णानन्द प्रभु सुधारस से भरपूर है। उस भगवान् की सुधारस धारा में पर्याय में सुधारस अमृतधारा है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान स्वरूपाचरणचारित्र, वह अमृतधारा है। जो राग आता है, वह उससे विरुद्ध स्वभाववाला है। आहाहा! यहाँ तो उससे लाभ हो, उससे धर्म होता है—ऐसा (अज्ञानी) कहता है। प्रभु! प्रभु! प्रभु! यह तुझे शोभा नहीं देता, नाथ! ऐसे मैल से आत्मा को निर्मलता प्रगटेगी? आहाहा! कठिन बात है। क्या कहते हैं?

ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण... शुभभाव। आहाहा!
आकुलतारूप से—.. होने के कारण आकुलतारूप से... आहाहा! मुनिराज को, श्रावक को और समकित्ती को ज्ञातृत्वधारा राग से विरुद्ध है, वह आकुलता की धारा है। आहाहा! है? **आकुलतारूप से—दुःखरूप से वेदन होता है,**... आहाहा! यह भाई ने लिखा था। द्रव्यदृष्टि प्रकाश है न? पढ़ा है भाई? द्रव्यदृष्टि प्रकाश। सोगानी... सोगानी, सोगानी का द्रव्यदृष्टि प्रकाश है। उसमें यह लिखा है कि धर्मी को भी राग-दुःख का वेदन है। आहाहा! वह यह है। यह दीपचन्दजी सेठिया को नहीं जँचता। सरदारशहर। ज्ञानी को दुःख?

आहाहा! क्या हो ? ज्ञानी को जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक राग आता है तो राग, वीतरागभाव से विरुद्ध है। वीतरागभाव आनन्दरूप है और राग दुःखरूप है। वीतरागभाव अनाकुलरूप है, राग आकुलतारूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : क्षपक मुनि को ऐसा राग....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे होवे तो भी इतना दुःख है। क्षपकश्रेणी में भी जितना राग बाकी है, वह दुःख है। अबुद्धिपूर्वक है, परन्तु है दुःख का वेदन। आहाहा!

जितना वीतरागभाव प्रगट हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-स्वरूपाचरण विशेष (हुआ), इतनी आनन्द की धारा है। आहाहा! वह वीतरागधारा है, वह शान्ति की धारा है और राग आता है, वह अशान्ति की, आकुलता की, दुःख की धारा है। उस दुःख का वेदन ज्ञानी को भी है। आहाहा! बड़ी चर्चा हुई थी। सरदारशहर। पहले यहाँ आते थे परन्तु अब बारह महीने में कभी आते हैं। उसमें दीपचन्दजी का देखकर। दीपचन्दजी न? निहालभाई सोगानी का। दृष्टि विपरीत। बाहर से पढ़कर धारणा हुई। ऐसा जहाँ अन्दर आया कि शुभभाव दुःखरूप वेदन है, भट्टी लगता है—ऐसा शब्द है। द्रव्यदृष्टि प्रकाश नहीं देखा? भाई! सोगानी का द्रव्यदृष्टि प्रकाश। वहाँ खण्डवा में है। उसमें यह है कि धर्मी को शुभभाव आता है परन्तु है भट्टी।

‘राग आग दाह दहै सदा, तातैं समामृत सेईये।’ आहाहा! यह छहढाला में आता है। जितना राग आता है, वह आग दाह है। आग है, अग्नि है, दाह है, दुःख है। आहाहा! ‘तातैं समामृत सेईये’ समतारूपी अमृत का सेवन कर, प्रभु! आहाहा! क्योंकि समता और अमृतस्वरूप तो भगवान है ही। आत्मा समता अर्थात् वीतराग और अमृतस्वरूप, सुख-आनन्दस्वरूप तो है ही। आहाहा! उसके आश्रय से; वीतराग और अमृत आनन्दस्वरूप है, उसके अवलम्बन से पर्याय में जो वीतरागता और अतुल आनन्द आया, वह तो वास्तविक-यथार्थ है परन्तु जो राग आया, वह दुःख है।

यहाँ तो स्पष्ट लिखा है। देखा? उसका आकुलतारूप से—दुःखरूप से वेदन होता है,... आहाहा! यह तो कोई आया नहीं। दूसरा आया है। उसके बहनोई को लेकर... आ गया है। एक लड़का आ गया है। दूसरा आनेवाला है। कठिन पड़ा। बहुत फेरफार कर डाला। आहाहा! उसे सहन नहीं हुआ। ऐसा कि मैं एक बाहर पड़ा (प्रसिद्ध हुआ), यह

और कौन निकला ? भाई ! कोई आठ वर्ष का बालक भी निकले । उसमें दिक्कत क्या है ? मारे इसकी तलवार है, हाथ में रखे उसकी नहीं । आत्मा आनन्द का नाथ जहाँ जगाया है, चाहे वह आठ वर्ष का बालक हो । आहाहा !

वीतराग और अमृतस्वरूप भगवान आत्मा, उसे जो राग की एकता से ताला लगाया है, प्रभु ! आहाहा ! वह ताला जिसने-प्रभु ने खोल डाला । आहाहा ! स्वयं प्रभु है । उस राग की एकता तोड़कर वीतरागता की एकता जिसने प्रगट की, उसे भी अपूर्ण वीतरागता है, इसलिए राग आता है । आहाहा ! एक समय की पर्याय में आनन्द और वीतरागता भी है तथा उसकी पर्याय में एक भाग में दुःख और राग है । आहाहा ! ऐसी बातें हैं, बापू ! आहाहा !

साधक को... यहाँ से शुरु किया है न ? साधक अर्थात् मुनि, सम्यक्त्वी और श्रावक, तीनों । आहाहा ! बहुत संक्षिप्त भाषा में, सादी भाषा और एकदम माल भरा हुआ है । आहाहा ! जो कोई पढ़ता है, उसे ऐसा हो जाता है कि आहाहा ! अभी सवेरे खण्डवावाले भाई को पूछा । बहुत सरस बात है । यह तो वस्तु कुदरती-सहज आ गयी है ।

यहाँ कहते हैं, बात तो ऐसी ली है न कि... पहले कहा था न ? पूर्ण वीतराग नहीं, ऐसा कहा था न ? पूर्ण वीतराग नहीं । है न ? पहले शुरुआत में । पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से, यहाँ से शुरुआत की है । पैराग्राफ शुरु किया है । पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से... तो अपूर्ण वीतरागता तो है । आहाहा ! उस दशा में पूर्ण वीतरागता न होने से, अपूर्ण वीतरागता की धारा तो है परन्तु साथ में शुभराग आता है । आहाहा ! ऐसी बात है । वह तो दुःखरूप है । भगवान की भक्ति का भाव, व्रत का भाव वह दुःखरूप है । अर..र.. ! ऐसी बात है ।

पंच महाव्रत का भाव, वह राग है, दुःख है । यह छहढाला में नहीं कहा ? 'मुनिव्रत धार अनन्त बौर ग्रीवक उपजायो, पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो ।' इसका अर्थ क्या हुआ ? 'मुनिव्रत धार अनन्त बौर ग्रीवक उपजायो ।' मुनिव्रत, पंच महाव्रत, अट्टाईस मूलगुण लिये । उनसे पुण्यबन्ध हुआ तो ग्रैवेयक में गया परन्तु 'पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो ।' इसका अर्थ क्या हुआ ? महाव्रत के परिणाम, अट्टाईस मूलगुण के परिणाम, वह दुःख है । आहाहा !

आत्मज्ञानस्वरूप भगवान, आत्मज्ञान, हों! आत्मा के गुण का ज्ञान, पर्याय का ज्ञान—ऐसा नहीं। आत्म जिनस्वरूपी भगवान आत्मा... आहाहा! उसके ज्ञान बिना पंच महाव्रत और अट्टाईस मूलगुण में भी सुख नहीं है, दुःख है। आहाहा! ऐसा कठिन काम पड़े। क्या करे? समझ में नहीं आता। उल्टा दिखे, इसलिए बेचारा क्या करे? समाचार पत्र में आया है। सिवनी में से सोनगढ़ का साहित्य निकाल डाला। परन्तु निकाल ही डाला हुआ है, उसकी दृष्टि में नहीं तो। मन्दिर में रखा नहीं और अमुक। उसमें क्या? बापू! उसे नहीं जँचता। आहाहा! ऐसा निरालम्बी तत्त्व, वह पर के अवलम्बन से प्रगट नहीं होता। आहाहा! देव-गुरु और शास्त्र के अवलम्बन से भी सम्यक्त्व नहीं होता। आहाहा! और व्रत तथा शरीर का आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करे, ऐसे भाव से समकित नहीं होता। वह तो विकल्प-राग है, प्रभु! आहाहा!

जिनस्वरूपी वीतरागमूर्ति प्रभु विराजता है। उसके अवलम्बन से वीतरागता के भाव के अवलम्बन से वीतरागभाव प्रगट होता है। आहाहा! अपने वीतरागस्वभाव के अतिरिक्त पर के अवलम्बन से तो राग होता है। वह राग हो, आवे, पूर्ण वीतरागता नहीं है तो वहाँ आता है। महाव्रत का भाव, श्रावक को बारह व्रत का भाव, भगवान की भक्ति का भाव (आता है)... आहाहा! परन्तु वह दुःखरूप, आकुलतारूप दुःखरूप वेदन में है। अब यह। कहो!

जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधता है, वह भाव सम्यक्त्व को, मुनि को आता है परन्तु है वह आकुलता और दुःखरूप। अरे! आहाहा! क्योंकि उसके भाव से तो बन्धन होता है न? तो भाव यदि धर्म हो तो बन्धन नहीं होगा। धर्म से विरुद्ध निश्चय से तो वह राग पुण्य है, अधर्म है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। दुःखरूप है। आहाहा! दुःखरूप भाव से तीर्थकर प्रकृति बँधती है। बन्धन है न? प्रकृति भी बन्धन है न? वह कहीं अबन्ध द्रव्य और अबन्ध परिणाम है? आहाहा! वस्तु भगवान अबन्धस्वरूप है, उसके अवलम्बन से अबन्ध परिणाम उत्पन्न होते हैं। पर का अवलम्बन लेने जाये तो राग उत्पन्न होता है, तो राग, वह दुःखरूप का वेदन है। आहाहा! आता है, होता है। आहाहा! सम्मेदशिखर की यात्रा का भाव, वह राग है। वह राग दुःख है। अर र..! ऐसा! उसमें ऐसा आता है कि 'एक बार वन्दे जो कोई नरक पशुगति नहीं होई।' नरक पशु न हो, उसमें क्या आया? शुभभाव होवे तो मनुष्यपना, स्वर्गादि मिले। उसमें कहीं भव का अभाव नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : बन्ध कहो परन्तु भट्टी किसलिए कहते हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भट्टी कहो या आग दाह कहो। यह छहढाला का उद्धरण नहीं दिया ? 'राग आग दाह दहे सदा' चाहे तो शुभराग हो परन्तु आग है, अग्नि है, कषाय है। आहाहा! भगवान अमृतस्वरूप प्रभु, वीतरागस्वरूप में यह विकल्प जो आता है, वह दुःख का वेदन-आकुलता है। कठिन बात, भाई! आहाहा! दीपचन्दजी सेठिया ने ही पूरा बदल डाला। यहाँ का कितना वर्ष का परिचय था। वर्ष में आवे। भट्टी कहा वहाँ भड़क गये।

मुमुक्षु : उनका कहना तो ऐसा है कि ज्ञानी दुःख को वेदन करे या छेदन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान वेदन है। छेदता तो बाद में है। है वहाँ तक तो वेदन करता है या नहीं ? छेदन तो बाद में स्वरूप में स्थिर हो, तब छिदता है। है उसकी बात है या नहीं ? छेदे तो सर्वथा छिद गया ? एक समय में आया, उसमें सर्व छिद गया ? तब तो बात कहाँ रही ? वह है, उसे छेदता है। छेदने का काल तो भिन्न है। है का काल भिन्न है। आहाहा! यह तो पहले कहा न ? कि स्वरूप में जितनी एकाग्रता होती है, उतना राग का नाश होता है, परन्तु है उसका नाश होता है या नहीं उसका ? और जो है, उस सबका नाश होता है ? आहाहा! जितने अंश में स्वरूप में एकाग्र / मग्न होता है, उतने अंश में वहाँ राग की उत्पत्ति नहीं होती तो राग का नाश हुआ, ऐसा कहने में आता है, परन्तु सर्व राग का नाश हुआ, तब तो सर्वज्ञ वीतराग हो जाये। समझ में आया ? अब ऐसी बातें, ऐसा उपदेश ! प्रभु का मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

यहाँ तो स्पष्ट कहा है कि ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण... कारण (दिया है)। विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण उनका आकुलतारूप से—... अर्थात् आकुलतारूप। इसलिए लाईन की है न ? अर्थात् आकुलतारूप से—अर्थात् दुःखरूप से वेदन होता है,... आहाहा! मुनि को भी जितना राग आता है, वह दुःखरूप वेदन है। अर..र..र..! ऐसी बात !

पुरुषार्थसिद्धिउपाय में तो कहा है कि पर की दया का भाव राग है। राग, वह स्वरूप की हिंसा है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय, अमृतचन्द्राचार्य का। आहाहा! वीतरागस्वरूप प्रभु, वीतरागदेव पूर्ण परमात्मा, वीतरागस्वरूप का आश्रय करके वीतराग परिणति, वह

अमृतस्वरूप; भगवान् पूर्ण अमृतस्वरूप; पर्याय में परमात्मा अमृतस्वरूप; द्रव्य में अमृत और वीतराग पूर्ण स्वरूप, उसके आश्रय से परिणति प्रगट होती है, वह वीतराग और अमृतस्वरूप है। अपूर्ण है, इसलिए वहाँ राग आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

इस ज्ञातृत्व धारा से-जानन-देखन जो वीतरागी पर्याय हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो धारा स्वद्रव्य के अवलम्बन से साधक को हुई, उससे राग विरुद्ध है। आकुलतारूप से—.. लाईन करके कहा। आकुलता अर्थात् क्या? दुःखरूप से वेदन होता है,... आहाहा! पूर्ण आनन्द का वेदन परमात्मा को; पूर्ण दुःख का वेदन मिथ्यादृष्टि को और सम्यग्दृष्टि तथा मुनि को पूर्ण आनन्द का वेदन नहीं। आहाहा! आनन्द का वेदन है। मिथ्यादृष्टि को आंशिक भी आनन्द का वेदन नहीं है, उसे मात्र दुःख का वेदन है। चाहे तो व्रत पाले, भक्ति करे, वह सब अकेला दुःख का वेदन है। परमात्मा सर्वज्ञदेव को अकेले आनन्द का वेदन है, वीतराग का आनन्द है। आहाहा! परन्तु साधक है, अभी साधकदशा में है, वहाँ बाधकपना अन्दर उत्पन्न होता है। आहाहा! साधक सिद्ध हुए, उन्हें दुःख नहीं, उन्हें राग नहीं। पूर्णानन्द प्रभु (हो गये)। द्रव्य में भी पूर्णानन्द प्रभु, स्वरूप तो पूर्ण आनन्द प्रभु है। आहाहा! यह तो परसों आ गया था, नहीं? ३७६ (वचनामृत)। है न? ३७६, ३७६।

पूर्ण गुणों से अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से, उसी के आलम्बन से, पूर्णता प्रगट होती है। ३७६ की पहली लाईन। ३७६ बोल। ३७८ से दो पहले। ३७५ बोल के बाद। दो पेज है। आहाहा! पूर्ण गुणों से अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से, उसी के आलम्बन से, पूर्णता प्रगट होती है। आहाहा! इस अखण्ड द्रव्य का आलम्बन वही अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव का आलम्बन है। आहाहा! ज्ञानी को उस आलम्बन से प्रगट होनेवाली औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभावरूप पर्यायों का—व्यक्त होनेवाली विभूतियों का—वेदन होता है... साथ में पूर्ण वीतरागता और पर्याय में पूर्णता नहीं है, इस कारण वहाँ भट्टी, व्रत आदि का शुभराग आता है। आहाहा! यह बात! यदि (राग) न होवे तो पूर्ण आनन्द होना चाहिए। और पूर्ण आनन्द नहीं है, वहाँ अल्प आनन्द है, तो वहाँ राग का दुःख भी है। आहाहा! तो उस आनन्द के वेदन के साथ राग का दुःख का वेदन भी ज्ञानी को है। आहाहा! क्या हो? लोगों को अटकने के स्थान बहुत, छूटने का एक। त्रिकाली द्रव्य का आश्रय लेना, (वही) छूटने का एक

रास्ता है। आहाहा! इसमें भड़क गये थे। फिर हमारे प्रति पत्र आया था। पर्यूषण के बाद। तुम मेरे लिये जो दोष कहते हो, उससे भी अधिक मैं दोष में हूँ परन्तु यह दोष है। रामजीभाई कहे, यह तो स्पष्ट किया नहीं। आहाहा! कि मैं दुःख का वेदन (नहीं) ऐसा मानता हूँ, वह खोटा है। वेदन है। समझ में आया? उस बेचारे को परिचय नहीं रहा और यह सोगानी की वाणी कड़क। यह (बहिनश्री के वचनमृत) द्रव्यदृष्टि प्रकाश से भी ऊँची चीज़ है। आहाहा! इसमें तो अकेला माल ही आया है। उसमें तो उसके घर का ऐसा और अमुक-अमुक आता है। आहाहा!

भगवान! तू क्या चीज़ है? तू कौन है? यह तो आत्मा वीतराग अविकारी अकषायस्वरूप अमृतरूप है अर्थात् सुखरूप है। अकषाय सुखरूप, वीतराग अमृतरूप। आहाहा! यह सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! सत्, चिद् और आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा तो है। उसके अवलम्बन से पर्याय में सच्चिदानन्द की शाश्वत् ज्ञान की व्यक्त पर्याय प्रगट होती है। शक्ति में है, वह व्यक्त होती है। आहाहा! तो पूर्ण शक्ति की व्यक्तता प्रगटी, वह तो वीतराग परमात्मा जिनेन्द्र है और पूर्ण दुःख का वेदन है, वह तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है।

अब साधक को—वह मिथ्यादृष्टि से आगे गया, परन्तु पूर्णता उत्पन्न नहीं हुई। आहाहा! ऐसी बात लोगों को कठिन पड़ती है। क्या हो? उसे कितना परिचय था, कितना वांचन चलता था। मोक्ष अधिकार में चलता कि शुभभाव जहर है। समयसार में मोक्ष अधिकार में शुभभाव जहर है, ऐसा आता है, तो जहर है, इसका वेदन है या नहीं? आहाहा! कठिन काम। बेचारे क्या करें? अरे! दुःखरूप से वेदन होता है, हेयरूप ज्ञात होते हैं,... ज्ञान में हेयरूप है, तथापि उस भूमिका में आये बिना नहीं रहते। सम्यग्दृष्टि, श्रावक और मुनि। साधक में आत्मज्ञान प्रगट हुआ, परन्तु साधक है, पूर्ण सिद्ध नहीं हुए तो साधक को अपूर्ण वीतराग के कारण, कमजोरी से शुभभाव आता है। हर्ष बिना आता है। आहाहा! परन्तु है दुःखरूप। आहाहा! बाहुबलीजी और भरत दोनों युद्ध में चढ़े। सम्यग्दर्शन की धारा है। आहाहा! दोनों सम्यग्दृष्टि हैं।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि कलह करते होंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कलह नहीं करते। राग कलह करता है। यह कहना है न कि अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान है, सुख का वेदन है परन्तु युद्ध का भाव आया, वह दुःख का वेदन

है। आहाहा! ऐसा है। लोगों ने सुना न हो न, और चीज़ क्या है, इसकी खबर न हो, इसलिए लोगों को विरुद्ध लगता है। उनकी दृष्टि में विपरीतता है, उसे यह विपरीत लगता है। इसमें कोई विशेषता नहीं है। आहाहा!

साधक की दशा एक साथ... बहुत सरस बात आयी। आहाहा! साधक की दशा एकसाथ त्रिपुटी (-तीन विशेषताओंवाली) है:—एक तो, उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है,... आहाहा! माल-माल आया है। ज्ञायकस्वरूप भगवान, ज्ञान की प्रधानता से ज्ञायक कहा। वीतराग की प्रधानता से वीतरागस्वरूप है, आनन्द की प्रधानता से आनन्दस्वरूप है, प्रभुता की प्रधानता से ईश्वरस्वरूप है परन्तु ज्ञान स्व-पर को जाननेवाला है, ऐसा लेकर वह ज्ञायक भगवान (कहा है)। बस, अकेला जानन-देखन प्रभु! आहाहा! उसका आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति... है ?

एक तो, उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है,... आहाहा! ज्ञायकभाव के प्रति तो जोर वर्तता ही है। ध्रुव को ध्येय में लिया, वहाँ तो प्रयत्न जोर से वर्तता ही है। आहाहा! भाई! यह (बात है)। अब यहाँ कहे, युद्ध करते हों, विषयभोग की वासना में आते हों तो भी वह तो है ही। अजर प्याला है, भाई! ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है,... प्रयत्न उस ओर है ही। जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा होती है;... जिसमें अशुद्धता-रागादि और शुद्ध पर्याय प्रगट हुई, उसकी भी उपेक्षा है। आश्रय नहीं, अवलम्बन नहीं, आदर नहीं। आनन्द आदि, समकित दर्शन शुद्धपर्याय प्रगट हुई तो उस पर्याय की भी उपेक्षा है। द्रव्य में दृष्टि है तो पर्याय की उपेक्षा है। ऐसी बातें। भारी कठिन काम, भाई! अरे रे! वीतरागी मार्ग अर्थात् जिनस्वरूपी प्रभु का मार्ग, हों! यह द्रव्य का। आहाहा! राग में सब मनवा लिया - ऐसी क्रिया करो, यह करो, यह करो और अन्त में ऐसा कहे कि समकित की कुछ खबर नहीं पड़ती और यह तो खबर पड़ती है परन्तु समकित की खबर नहीं पड़े, वही मिथ्यात्व है, ऐसा बताता है। ऐ... देवानुप्रिया! यह सब तुम्हारे यहाँ चलता है, बहुत सब प्रश्न चलते हैं। आहाहा!

अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा... क्या ? ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्णानन्द

प्रभु का शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है, जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध... पर्याय की भी उपेक्षा है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई, परन्तु सम्यग्दर्शन का जोर द्रव्य के ऊपर है। अपनी पर्याय की भी उपेक्षा है। आहाहा! अन्दर द्रव्य के अवलम्बन से जो चारित्र उत्पन्न हुआ, उस चारित्र की पर्याय की भी द्रव्यदृष्टि में उपेक्षा है। उसका आश्रय नहीं, अवलम्बन नहीं। अवलम्बन तो त्रिकाल द्रव्य ज्ञायक का है। आहाहा! ध्रुव पर डोर बाँधी है, वह ध्रुव अटता नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें। आहाहा!

दूसरा, शुद्ध पर्यायांश का सुखरूप से वेदन होता है;... आहाहा! और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावों का समावेश है उसका—दुःखरूप से, उपाधिरूप से वेदन होता है। आहाहा! बहुत बार कहा गया है परन्तु यह तो थोड़े शब्दों में एकदम (बात आ गयी है)। आहाहा! त्रिपुटी हुई। एक तो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव पर जो दृष्टि पड़ी है, उसका जोर वहाँ से हटता नहीं और इस अपेक्षा से शुद्ध पर्याय या अशुद्ध पर्याय जो है, उसकी उसमें उपेक्षा रहती है, आदर और आश्रय नहीं। तीसरा, कि शुद्धपर्याय जो है, उसका सुखरूप से पर्याय में वेदन होता है। त्रिकाल की दृष्टि से ध्रुव के ध्येय से पर्याय शुद्ध और अशुद्ध की उपेक्षा है, तथापि उस शुद्धपर्याय का वेदन है, वह सुखरूप है। आहाहा!

और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावों का समावेश है उसका—दुःखरूप से, उपाधिरूप से वेदन होता है। आहाहा! यह एक पैराग्राफ। अकेला माल है। आहाहा! यह वस्तुस्वरूप है, भाई! आहाहा! तीन प्रकार लिये हैं। एक तो ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द की जहाँ दृष्टि हुई तो ध्येय में, ध्यान में ध्येय का जोर है। आहाहा! इस अपेक्षा से शुद्ध और अशुद्ध पर्याय की भी उपेक्षा (वर्तती है), एक बात। अब जो शुद्धपर्याय—सम्यग्दर्शन आदि धर्म पर्याय—उत्पन्न हुई, उसका सुखरूप वेदन है और बाकी जो अशुद्ध अंश है, उसका दुःखरूप वेदन है। त्रिपुटी, एक समय में तीन (बातें) चलती हैं। द्रव्य की दृष्टि; शुद्धपर्याय का वेदन; अशुद्ध का वेदन। उपेक्षा होने पर भी वेदन है। विशेष कहेंगे..... (श्रोता: प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल -पूर्णिमा, मंगलवार, दिनाङ्क १४-११-१९७८
वचनामृत-३७८ से ३७९ प्रवचन-१५०

साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—क्या कहते हैं ? कि जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञायकभाव परम स्वभावभाव की अन्तर्दृष्टि हुई और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान आदि प्रगट हुए। वे प्रगट तो त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से होते हैं। आत्मा का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और शान्ति, वे सब स्व त्रिकाली ज्ञायकभाव में से प्राप्त होते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो एक ही बात करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो यह है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पन्थ।'

अब यहाँ तो साधक को क्या है, यह बात है परन्तु साधक कैसे होता है, यह बात पहले की। आहाहा! भगवान आत्मा राग से तो भिन्न है, परन्तु एक समय की पर्याय में वह द्रव्य आता नहीं। द्रव्य जो त्रिकाली ज्ञायकभाव है, वह तो एक समय की पर्याय में भी नहीं आता। आहाहा! ऐसे एक द्रव्य का स्वभाव शुद्ध चैतन्य, उसके अवलम्बन से दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, तब उसे साधक कहते हैं। उस साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं... उसे शुभभाव आते हैं। साधक को पूर्ण वीतरागदशा की प्राप्ति का अभाव होने के कारण पर्याय में शुभभाव आते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव आता है परन्तु वह उपाधिरूप लगते हैं। आहाहा! अब यहाँ (अज्ञानी) कहते हैं कि दया, दान, व्रत, तप वह धर्म है और धर्म का कारण है। आहाहा! बहुत अन्तर, बहुत अन्तर।

मुमुक्षु : बहुत अन्तर नहीं, पूरा-पूरा अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या है ? वस्तु ऐसी है। अभी तो... आहाहा! साधक अर्थात् शुद्धस्वरूप प्रभु, पूर्णानन्द शुद्ध परमस्वभावभाव, निज परमात्मद्रव्य जो वस्तु है, उसकी दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान धर्मपर्याय उत्पन्न होती है, तब से

उसे साधक कहने में आता है। फिर वह चौथे में हो, या पाँचवें में हो, छठवें गुणस्थान में हो। उसे पूर्ण वीतरागभाव नहीं है, इसलिए शुभभाव आता है। ऊपर कहा है। **अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावों का समावेश है...** ऊपर है ऊपर। आहाहा! है तो अशुद्ध पर्याय। यह दया, भक्ति, तप, उपवास आदि करना, यह सब शुभविकल्प-राग है। आहाहा! यह उपाधि है। अभी यह बात कठोर पड़ती है।

मुमुक्षु : आप ऐसा कहोगे तो कोई व्रत करेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन व्रत करे? वह तो स्वरूप की स्थिरता हो, तब ऐसा शुभभाव आये बिना नहीं रहता। यह अभी कहेंगे। आहाहा! व्रत, तप वह तो शुभभाव है। यह बाह्य तप, हों! अन्तर में, स्वरूप में लीन हुआ, वह तो अलग दशा। 'तपयन्ते इति तपः' भगवान् अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप जो व्यक्तरूप से पर्याय में आनन्द आया; सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान में, ऐसी जो चीज़ अन्दर त्रिकाल है, उसमें उग्ररूप से लीन होना, चारित्र की लीनता में, अन्तर में लीनता है। उसमें भी शेष लीनता उत्पन्न होना, उसका नाम सच्चा निश्चय तप कहने में आता है। आहाहा! यह तो व्यवहार तप का विकल्प आवे। उपवास करूँ, भगवान् का विनय करूँ, यह सब तप के भेद हैं न?

शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं... आहाहा! इसका ऐसा अर्थ नहीं... परन्तु इसका ऐसा अर्थ नहीं। क्या? **कि वे भाव हठपूर्वक होते हैं।** हठपूर्वक होते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! उपाधिरूप ज्ञात होते हैं, इसलिए हठपूर्वक आये हैं, ऐसा नहीं है। आया है, वह तो सहज पर्याय के काल में शुभभाव उत्पन्न होने के समय में आते हैं। आहाहा! समझ में आया? उस समय में वह राग उत्पन्न होने का निज क्षण है। आहाहा! आता है और वह निमित्त के लक्ष्य से आता है, ऐसा भी कहने में आता है। वीतरागता नहीं है, यहाँ पूर्ण आश्रय नहीं है, वहाँ लक्ष्य ऐसे रहता है, परन्तु है उपाधि।

साधक के वे भाव हठरहित सहजदशा के हैं,... आहाहा! उस पर्याय में उस काल में होनेवाले... आहाहा! क्रमबद्ध आते हैं, उस समय में तो इसकी अकर्तापने की बुद्धि है। ज्ञानी के क्रमबद्ध में राग आता है, तो धर्मी की उसमें अकर्ताबुद्धि है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ! इससे आया इसलिए हठपूर्वक आया और आया, इसलिए स्वस्वभावभाव है, ऐसा

नहीं है। आहाहा! ऐसी बात। अभी तो यही चलता है। सम्यग्दर्शन तो अपने को है। बस, भगवान की श्रद्धा। अब व्रत, तप और यह कर लो।

हमारे सम्प्रदाय में ऐसा कहते थे। (संवत्) १९८० के वर्ष की बात है। इससे पहले भी कहते होंगे, परन्तु १९८० के साल में तो हीराजी महाराज गुजर गये थे, तथापि हम व्याख्यान में जरा तत्त्व की बात रखते थे, तब उसका विरोध करने के लिये उन्होंने कहा, लोग बैठे थे उसमें (कहा), हों! देखो! भाई! अपने को सम्यग्दर्शन तो है। गणधर जैसा सम्यग्दर्शन। स्थानकवासी के... अब अपने व्रत, तप, चारित्र करना। यह करने का बाकी है। आहाहा! ऐसा कहते थे। मूलचन्दजी थे न? अरे! वहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र ही मिथ्या हैं। आहाहा!

यह तो सर्वज्ञदेव, सच्चे सन्त और सच्चे शास्त्र जिसे निमित्तरूप से है तो यहाँ जिसे स्वभाव का शरण हुआ है, जिसमें देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति-विनय का भाव आता है परन्तु वह है शुभभाव। आहाहा! है उपाधिभाव। ऊपर आ गया है। उसका वेदन दुःखरूप है। आहाहा! व्रत, अपवास आदि करूँ, भगवान का विनय करना, वह भाव दुःखरूप है। अरे रे! यह कैसे जँचे? ऐसी बातें, बापू! आहाहा! लोगों ने पूरा मार्ग बदल डाला है। आहाहा! फेरफार-फेरफार।

सिवनी का एक लेख आया है। आया है न? सब जगह रखा होगा। यहाँ की पुस्तकें निकाल डाली न? दूसरे सब लेख दिये हैं। मलार गाँव है कोई? उस गाँव का बड़ा लेख है कि तुमने जो यह किया, वह जिनवाणी का बड़ा अन्याय किया, महापाप बाँधा है। सिवनीवालों को कहा है। वे तो कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र हैं। वे कहीं सोनगढ़ से प्रकाशित हुए, इसलिए (सोनगढ़ के हैं), ऐसा नहीं है। ऐसा अभी बड़ा लेख है। विरोध किया है। कोई छोटा गाँव है, मलार।

मुमुक्षु : मंडला।

पूज्य गुरुदेवश्री : मंडला, हाँ यह गाँव है। उसने बड़ा लेख लिखा है। सिवनीवालों के प्रति विरोध का। हमें जवाब दो। कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्रों को निकाल डालना, यह महा अविनय, जिनवाणी का महापाप तुमने बाँधा है। ऐसा लिखा है। बड़ा लेख है। आहाहा!

मात्र यहाँ सोनगढ़ से प्रकाशित हुए, यह उन्हें दिक्कत है। आहाहा! अरे! भाई! कारण कि सोनगढ़वालों को ऐसा कि यह तो साधु मानते नहीं, इसलिए इनकी श्रद्धा विपरीत है। आहाहा! भाई! यह साधु किसे कहना? बापू! यह कोई पक्ष नहीं। आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द की धारा, प्रचुर आनन्द का वेदन जिसे होता है, उसे मुनि कहते हैं, भाई! पंच महाव्रत के विकल्प और नग्नपना, वह कोई मुनिपना नहीं है। आहाहा! यह धन्य मुनिदशा पुस्तक में आया है न? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, उन मुनि आदि को, चौथे-पाँचवें, छठवें (गुणस्थान) में शुभभाव हठरहित सहजरूप से आता है। अज्ञानी की भाँति 'ये भाव नहीं करूँगा तो परभव में दुःख सहन करना पड़ेंगे'... ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत स्पष्ट आया। ओहोहो! शुरुआत से ठेठ तक। एक पुस्तक ने तो बेड़ा पार कर दिया है। आहाहा! और वह स्वयं बहिन ने कहाँ लिखी है? लिखनेवालों ने लिखी है। उन्हें खबर नहीं थी कि ये लिखती हैं। लिखनेवालों को खबर नहीं थी कि यह बाहर प्रकाशित होगी। यह तो सहजरूप से जहाँ बना है वहाँ... आहाहा! बहुत ही संक्षिप्त में पूरे सत्य का संग्रह है। आहाहा! पूरी एक पुस्तक में इतना भरा है। कोई भी पढ़ता है, वह ऐसा कहता है। आहाहा! जिसे आग्रह हो, उसे ऐसा लगता है कि यह खोटा है। आहाहा! यह तो सहज की वाणी है। आहाहा!

अज्ञानी की भाँति 'ये भाव नहीं करूँगा तो परभव में दुःख सहन करना पड़ेंगे' ऐसे भय से जबरन कष्टपूर्वक नहीं किये जाते;... साधक समकिति को, श्रावक को, मुनि को वह शुभभाव कष्टपूर्वक जबरन कष्टपूर्वक नहीं किये जाते;... है? तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते। आहाहा! हठ से नहीं, कष्ट से नहीं। है कष्टरूप, परन्तु कष्ट वेदन कर करते हैं, ऐसा नहीं है। आते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग।

मुमुक्षु : एक-एक शब्द जो है...

पूज्य गुरुदेवश्री : ओहोहो! एक-एक पैराग्राफ में बहुत भरा है! आहाहा!

ऐसे भय से जबरन कष्टपूर्वक नहीं किये जाते; तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते। आहाहा! धर्मी, साधक को शुभभाव आते हैं। वे हठ से नहीं, जबरन कष्टपूर्वक करूँ, ऐसा नहीं। एक समय में आते हैं। आते हैं तो वे सुखरूप लगते हैं, ऐसा भी नहीं है।

आहाहा! ऐसी बात है। अब अभी तो शुभभाव ही होता है, बस! (ऐसा लोग कहते हैं)। आहाहा! इसलिए लोगों को यहाँ का कठिन लगता है, उन्हें दुःख लगता है। इतने कष्ट करते हैं, अपवास करते हैं, परीषह सहन करते हैं, उपसर्ग सहन करते हैं। अरे! भाई! जहाँ स्वभाव का भान नहीं, चिदानन्द भगवान परमानन्द की मूर्ति प्रभु की जहाँ खिलवट पर्याय में हुई नहीं, वहाँ यह सब कष्टरूप क्रिया है—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि। आहाहा! क्लेश है, क्लेश है। निर्जरा अधिकार में ऐसा कहा, क्लेश है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते। क्या कहते हैं? आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द, उसका ज्ञान हुआ, सम्यक् हुआ। पर्याय में चैतन्य की जागृति हुई तो आनन्द और शान्ति भी आयी। उस साधक को शुभभाव आते हैं, वे हठपूर्वक नहीं, जबरन कष्टपूर्वक करना पड़े – ऐसा नहीं; सहज आते हैं, तथापि वे सुखरूप नहीं लगते। ऐसी बातें हैं, कठिन पड़ता है। निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! बनिये को हाथ आया यह जैनधर्म और बनिये व्यापार में उलझ गये। यह करूँ... यह करूँ... अब उसमें ऐसा उपदेश। आहाहा!

एकदम अन्दर तीन लोक के नाथ को जगाना। यह सब व्यापार आदि के परिणाम से पृथक् पड़कर.. परिणाम से, हों! वह व्यापार की क्रिया तो कर नहीं सकता। आहाहा! उस परिणाम से पृथक् पड़कर और अन्दर विकल्प हटे नहीं। शुभ आदि यह... यह.. यह.. ऐसे राग की धारा चला करे, उससे भी हटकर... आहाहा! यह राग तो कृत्रिम विकार का ऊपर का वेष है। यह स्वरूप में नहीं है। आहाहा! और राग करना, ऐसा इसका कोई गुण भी नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव जो चिदानन्द प्रभु... उसमें आता है न?

‘पर्यायबुद्धि नाहिं, स्वारथ के सांचे, परमारथ के सांचे, सांचे सांचे बेन कहे, सांचे जिनमति है। काहू के विरोधी नाहिं, परजायबुद्धि नाहिं।’ एक समय की पर्यायबुद्धि जैन समकिति को नहीं होती। आहाहा! काहू के विरोधी नाहिं। भगवान! वे भी चैतन्य भगवान है न? आहाहा! ‘काहू के विरोधी नाहिं, परजायबुद्धि नाहिं, अन्तर की लक्ष्मी सों अजाची, लक्षपति है।’ अन्दर लक्षपति, ध्रुवपति, उसके लक्ष्य का पति वह आत्मा है। आहाहा! ‘दास भगवन्त के उदास रहे जगत सों सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिति हैं।’ यह

बनारसीदास (कृत छन्द हैं)। आहाहा! उसमें यह शुभभाव सहज आता है, तथापि सुखरूप नहीं लगता। आहाहा!

शुभभावों के साथ-साथ... शुभभावों के साथ-साथ वर्तती, ज्ञायक का अवलम्बन लेनेवाली जो यथोचित निर्मल परिणति... आहाहा! यह वस्तु ध्रुव नित्य प्रभु, उसे अवलम्बन करनेवाली जो ज्ञातृत्व परिणति... आहाहा! उसे अवलम्बन लेनेवाली जो यथोचित... यथा-उचित। जिसे-जिसे योग्य वह। इसलिए शब्द लिया चौथे, पाँचवें, छठवें। निर्मल परिणति, वही साधक को सुखरूप ज्ञात होती है। आहाहा! धर्मी को आनन्दस्वरूप भगवान की दृष्टि और परिणति हुई है, इस कारण से वह परिणति सुखरूप लगती है और राग आता है, वह दुःखरूप लगता है। आहाहा! देव-गुरु और शास्त्र.. आहाहा! उनकी भक्ति और उनका विनय भी विकल्प है, राग है। यह बात लोगों को कठिन पड़ती है।

भगवान स्वयं कहते हैं, प्रभु! हम तुझसे परद्रव्य हैं न! तो जितना परद्रव्य के ऊपर तेरा लक्ष्य जायेगा, उतना राग होगा। उतनी चैतन्य की गति (नहीं), दुर्गति है उतनी। आहाहा! प्रभु! प्रभु! इनकी वाणी तो देखो! अरे! ऐसा मार्ग! आहाहा! भगवान आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन, वह अन्दर गुप्त है और रागादि प्रगट दिखते हैं, इसलिए वह हूँ—ऐसा उन्हें मान बैठा है। ऐसा मान बैठा है। आहाहा! समझ में आया? जहाँ दृष्टि है वहाँ तो रागादि दिखते हैं। आहाहा! राग के समीप में प्रभु अन्तर आनन्दस्वरूप विराजता है, उसकी तो दृष्टि भी नहीं।

मुमुक्षु : वह दृष्टि का विषय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि का विषय ही वह है। यह दृष्टि—पर्यायबुद्धि—तो मिथ्या है; रागबुद्धि, वह तो मिथ्याबुद्धि है। आहाहा! मार्ग बहुत (सूक्ष्म) है। आहाहा!

वही साधक को सुखरूप ज्ञात होती है। क्या? जो आत्मा ज्ञायकस्वरूप, उसकी दृष्टि में जो ज्ञायक आया और पर्याय में जो निर्मल शुद्ध परिणति / दशा हुई, वह सुखरूप लगती है। साथ में शुभभाव आता है, वह दुःखरूप लगता है। आहाहा! दीपचन्दजी के साथ यह बड़ा विवाद था न? बेचारे पाँच वर्ष आये नहीं। क्या हो? ऐसा का ऐसा परिचय

नहीं और दृष्टि तो विपरीत होगी ही। वह बाहर आयी। आहाहा! भट्टी, शुभराग भट्टी? वे तो ऐसा कहते थे कि दुःख वेदन करे, वह तीव्र कषायवाला होत है। परिचय रहा नहीं। पाँच वर्ष से परिचय रहा नहीं और यहाँ पाँच-सात दिन आवे। उसमें अब सब बात ऐसी नहीं होती। आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही! तेरी प्रभुता में तो अतीन्द्रिय आनन्द, ज्ञान और शान्ति पड़ी है। उस पर दृष्टि जाने से तेरी पर्याय में आनन्द और शान्ति का अंश प्रगट होगा। समझ में आया? वह परिणति सुखरूप लगती है और साथ में शुभराग आता है, वह दुःखरूप लगता है। आहाहा! ऐसा है। यहाँ वे दिल्ली के जयकुमार और ज्ञानचन्दजी बेचारे बदल गये। क्या हो? आहाहा! ऐसा है। यह बहुत दुर्लभ चीज़, बापू! अरे! अभी तो श्रद्धा करने को मथते थे, वहाँ उल्टे रस्ते चढ़ गये। आहाहा! क्या हो? आहाहा! दुर्लभ चीज़ है। है तो सहज स्वरूप अपना है न? अपना स्वरूप है न? परन्तु अभ्यास नहीं, इसलिए दुर्लभ लगता है। आहाहा!

यह कहते हैं, आहाहा! जिस प्रकार हाथी के बाहर के दाँत—दिखाने के दाँत अलग होते हैं... बड़े। और भीतर के दाँत—चबाने के दाँत अलग होते हैं,... वह कहीं बड़े दाँत से नहीं चबाता। आहाहा! उसी प्रकार... यह दृष्टान्त (कहा)। आहाहा! साधक को बाह्य में उत्साह के कार्य—धर्मी, समकित्ती, श्रावक और मुनि। इन साधक को बाह्य में उत्साह के कार्य—शुभ परिणाम दिखायी दें, वे अलग होते हैं... आहाहा! और अन्तर में आत्मशान्ति का—आत्मतृप्ति का स्वाभाविक परिणामन अलग होता है। आहाहा! उत्साह दिखता है, वह हाथी के बाहर के दाँत हैं। आहाहा!

और अन्तर में आत्मशान्ति का—अर्थात् आत्मतृप्ति का... इसीलिए लाईन की है। आत्मशान्ति अर्थात् क्या? आत्मतृप्ति। आहाहा! जितना अन्तर में आनन्द का स्वाद आया, सम्यग्दृष्टि, मुनि या श्रावक को, उसके योग्य। इसलिए कहा न? यथोचित निर्मल परिणति वही... यह भाषा यथोचित में समाहित हो जाती है। आहाहा! अन्तर में आत्मशान्ति... आहाहा! जिसे धर्म कहते हैं, जो धर्मी ऐसा आत्मा, उसके आश्रय से—अवलम्बन से—प्रगट हुई, ऐसी जो शान्ति, ऐसा जो सम्यग्दर्शन—सम्यग्ज्ञान—स्वरूपाचरण स्थिरता। आहाहा! अन्तर में आत्मतृप्ति का स्वाभाविक परिणामन अलग होता है। शुभभाव के परिणामन से

वह शुद्धपरिणति का परिणमन अलग है। आहाहा! एक समय में दोनों हैं। सूक्ष्म बात है, भाई!

भगवान आत्मा, जैनशासन में सर्वज्ञ ने कहा वह, हों! अज्ञानी आत्मा.. आत्मा.. करते हैं, वह नहीं। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ, उन्होंने जो आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड देखा, ऐसा आत्मा। आहाहा! भगवान जैसे देखते हैं, वैसे यदि अपना आत्मा अपने को देखे.. आहाहा! तब तो कहते हैं कि अन्दर में शान्ति मिलती है। उस शान्ति की धारा सुखरूप लगती है। साथ में शुभराग आता है, वह ऊपर-ऊपर दुःखरूप लगता है। आहाहा! अब ऐसी बात कहाँ ?

बाह्य क्रिया के आधार से साधक का अन्तर नहीं पहिचाना जाता। आहाहा! बाह्य में भक्ति में हो, दान आदि में हो, आहार-पानी सन्तों को देता हो। आहाहा! उस बाह्य क्रिया के आधार से अन्तर का माप नहीं आता। आहाहा! बाह्य क्रिया के आधार से साधक का अन्तर नहीं पहिचाना जाता। आहाहा! अन्तर्मुख जो आनन्द का सागर प्रभु, उसकी परिणति और बाह्य क्रिया का आधार रागादि की, उससे बाहर देखे। आहाहा! तो बाह्य के आधार से अन्दर की परिणति का ख्याल नहीं आता। आहाहा! ३७८ (बोल पूरा हुआ) बड़ा पैराग्राफ था।

जगत में सर्वोत्कृष्ट वस्तु तेरा आत्मा ही है। उसमें चैतन्यरस और आनन्द भरे हैं। वह गुण-मणियों का भण्डार है। ऐसे दिव्यस्वरूप आत्मा की दिव्यता को तू नहीं पहिचानता और परवस्तु को मूल्यवान मानकर उसे प्राप्त करने का परिश्रम कर रहा है! परवस्तु तीन काल में कभी किसी की नहीं हुई है, तू व्यर्थ भ्रमणा से उसे अपनी बनाने का प्रयत्न करके अपना अहित कर रहा है! ॥३७९॥

३७९ जगत में सर्वोत्कृष्ट वस्तु तेरा आत्मा ही है। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा भी नहीं। वह तो एक समय की पर्याय है। यह तो द्रव्य की बात है। आहाहा! जगत में... जगत सिद्ध किया। 'ज' ऐसा कहकर अर्थ किया है। जो गत-परिणमन करता है द्रव्य, वह

जगत। अर्थात् जगत है, है। उसमें सर्वोत्कृष्ट वस्तु... वस्तु। आहाहा! सर्वोत्कृष्ट ऊँचे में ऊँची वस्तु, सार में सार वस्तु... आहाहा! वह तेरा आत्मा ही है। सार। सार और असार आता है। अष्टपाहुड़ की टीका में आता है। सार और असार, सार-सार, असार-सार आता है। आहाहा! यहाँ तो वे कहते हैं साधक को व्यवहार ही होता है, निश्चय तो सिद्ध को होता है। अर..र..र..! खोटे कर्म कर डाले हैं और इस समयसार के अर्थ किये।

मुमुक्षु : उपाध्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उपाध्याय जैन.. अरे! प्रभु! प्रभु! प्रभु! क्या करे? अरे रे! तीन लोक के नाथ की अनुपस्थिति। यहाँ पुण्य की अनुपस्थिति। इतना पुण्य नहीं कि देव आकर कहे (कि) यह झूठ है। आहाहा!

मुमुक्षु : विश्वधर्म की जय बुलायी।

पूज्य गुरुदेवश्री : विश्वधर्म किसे कहे? जैन स्वरूप ही विश्व स्वरूप है। आहाहा! विश्व अर्थात् समस्त पदार्थ और सार में सार तो प्रभु आत्मा है। परपदार्थ तो पर में हैं। उसमें अपने को क्या सार आया? यह कोई पक्ष नहीं। यह तो वस्तु का स्वरूप है। जैनधर्म कोई वस्तु का पन्थ या पक्ष नहीं है। कितने ही ऐसा कहते हैं न, यह जैनधर्म तो बनियों का धर्म है, क्योंकि बनिये पूजा, भक्ति, व्रत, तप करे, ऐसी क्रिया करे, इसलिए बनियों का धर्म। यहाँ गाँव में कितने ही ऐसा बोलते हैं। यह तो सब बनियों का धर्म है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बनियों का धर्म है। अरे! प्रभु! यह बनिये के धर्म की नहीं, यह तो आत्मा के धर्म की बात है, प्रभु! तू इतना अधिक लांछन न दे। आहाहा! यह तो भगवान आत्मा... आहाहा! चिन्तामणि, कल्पवेली, कामधेनु... आहाहा! सुरतरु। सुरतरु अर्थात् देवकृत वृक्ष। आहाहा! यह सब उपमा जिसे हीन लगती है, ऐसी चीज़ अन्दर है। आहाहा!

सर्वोत्कृष्ट... आहाहा! गजब बात है न! जगत में सर्वोत्कृष्ट वस्तु तेरा आत्मा ही है। आहाहा! परवस्तु सार नहीं, उत्कृष्ट नहीं, राग उत्कृष्ट नहीं, एक समय की पर्याय भी उत्कृष्ट नहीं। आहाहा! सर्वोत्कृष्ट वस्तु तेरा आत्मा ही है। एकान्त कर डाला 'ही'। आहाहा!

कथंचित् सर्वोत्कृष्ट वस्तु और कथंचित् दूसरे सर्वोत्कृष्ट, ऐसा नहीं है। आहाहा! **उसमें चैतन्यरस और आनन्द भरे हैं**। आहाहा! भगवान आत्मा देह से भिन्न, कर्म से भिन्न, पुण्य-पाप के राग से भिन्न, चैतन्यरस और आनन्दरस से प्रभु आत्मा भरपूर है। आहाहा!

प्रभु! कोई चीज़ सर्वोत्कृष्ट होवे तो तेरा आत्मा ही है। आहाहा! परद्रव्य को सर्वोत्कृष्ट कहेगा तो वहाँ पर की ओर का विकल्प आयेगा। और तू सर्वोत्कृष्ट है, ऐसी दृष्टि करेगा तो तुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होंगे। आहाहा! ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या हो? ऐसा काल आया। आहाहा! चैतन्य चिन्तामणि रत्न प्रभु आत्मा—अपना परमेश्वर। ३८वीं गाथा में आया न? मेरे परमेश्वर को मैं भूल गया था। आहाहा! परमेश्वर सर्वोत्कृष्ट प्रभु! मैं राग के प्रेम में और पर्याय के प्रेम में सर्वोत्कृष्ट वस्तु को भूल गया था। आहाहा!

ऐसा सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मा, उसमें चैतन्यरस, ज्ञानरस, दर्शनरस, ज्ञानरस, ध्रुव, हों! आहाहा! चैतन्यरस जिसमें भरा है। आहाहा! अरसमरुव आया था न? (समयसार ४९ गाथा में)। 'अरसमरुवमगंधं' मूल तो रस से लेना। आहाहा! इसलिए वहाँ रस से लिया है... आहाहा! भगवान आत्मा में रस नहीं है। यह रस चैतन्य रस है। आहाहा! शक्कर में मिठास भरी है, जैसे... क्या कहा यह? बाहर कहा न? यह कोठी। उस कोठी में ज्वार (होवे), वैसे आत्मा में ज्ञान और आनन्द नहीं है। जैसे शक्कर में मिठास और सफेदी है, वैसे भगवान आत्मा... आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान का रस और अतीन्द्रिय आनन्दरस भरा है। आहाहा!

वह गुण-मणियों का भण्डार है। दो लेकर विशेष पूरा डाला। दो मुख्य है। शास्त्र में जहाँ-तहाँ आता है। चिदानन्द, ज्ञानानन्द, ज्ञानानन्द—ज्ञान और आनन्द। आहाहा! यह प्रभु अन्दर गुणरूपी मणियों का तो भण्डार है। आहाहा! अनन्त... अनन्त... अनन्त.. गुणों का वह गुणमणि है। आहाहा! गुणरत्न का प्रभु तो भण्डार है। **ऐसे दिव्यस्वरूप आत्मा की...** ऐसे दिव्यस्वरूप आत्मा की दिव्यता को तू नहीं पहिचानता... आहाहा! भगवान अन्दर अनन्त-अनन्त गुणमणियों की माला, प्रभु! **गुण-मणियों का भण्डार...** आहाहा! उसे तो तू पहिचानता नहीं। उसे तो पहिचानता नहीं। ज्ञान को वहाँ ले जाता नहीं। ज्ञान यह.. यह.. यह.. (देखता है)। अजायबघर में देखता है कि ऐसा है, ऐसा है। अजायबघर तो तेरा है, प्रभु! आहाहा! ऐसी बातें।

दिव्यस्वरूप आत्मा की दिव्यता को... दिव्यस्वरूप आत्मा की दिव्यता को तू नहीं पहिचानता... आहाहा! अपनी चीज़ की कीमत आये बिना, पर की कीमत और महिमा नष्ट नहीं होती। आहाहा! अपनी चीज़ जो कीमती वस्तु भगवान पूर्णानन्द प्रभु की कीमत, अमोल का मोल आये बिना... आहाहा! पर की कीमत हटती नहीं। शरीर ठीक है, इज्जत ठीक है, पैसा ठीक है, राग ठीक है, पुण्य ठीक है। आहाहा!

मुमुक्षु : किसी को सरीखा होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। मानता है न उसे। भले गरीब हो परन्तु उसे... आहाहा!

यहाँ तो चैतन्यस्वरूप अनमोल चीज़ है। महा आनन्द और ज्ञानरस और गुणमणियों का भण्डार है, उसे जानता नहीं और पर को जानने में रुक गया है। आहाहा! और परवस्तु को मूल्यवान मानकर... देखो! आया। (मूल्यवान) मानकर। आहाहा! शरीर बहुत अच्छा, वाणी बहुत अच्छी। आहाहा! मकान बड़ा अच्छा हो, इज्जत अच्छी हो। अरे! अमूल्यी चीज़ का तू मूल्य आँकता है! आहाहा!

मुमुक्षु : जगत में तो पुण्य का बोलबाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दुनिया को, पागल को तो यह है। पुण्य की महिमा। आहाहा! एक बार उस सेठ की माँ मर गयी न? अहमदाबाद। अम्बालाल सेठ था न बड़ा? बड़ा सेठ था। फिर उसकी माँ मर गयी। माँ को जलाकर आये बाद में (कहा), भाई! सब बातें ठीक परन्तु मुझे तू कहनेवाली वह महिला (माँ) गयी, मेरी माँ। मुझे तू कहकर कौन बुलावे? आहाहा! ऐसा कहे। इसी प्रकार यहाँ तू कहकर इसे कौन जाने? ऐसा कहते हैं। यह बना हुआ है। सब रोने आवे न? बापू! दूसरा तो कुछ नहीं। परन्तु मुझे 'तू आया भाई!' यह कहनेवाली अब गयी। मुझे तू कौन कहे? बड़ा सेठ। इसी प्रकार यह तू भगवान आत्मा बड़ा है, उसे तू कौन माने? आहाहा!

परवस्तु को... कैसी भाषा आयी है, देखो न! मूल्यवान मानकर उसे प्राप्त करने का परिश्रम कर रहा है! आहाहा! यह पैसा मिले, इज्जत मिले, मान मिले, बड़ा पद मिले... आहाहा! कुछ अधिपति होऊँ... अरे..रे..! यह तू क्या करता है? प्रभु! उसे प्राप्त करने का परिश्रम कर रहा है! आहाहा! ऐसे कमाऊँ, ऐसे कमाना, ऐसे कमाना। यहाँ से माल लाना, लन्दन से लाना, अमेरिका से लाना।

मुमुक्षु : वहाँ सस्ता...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ सस्ता होगा, बहुत कहते हैं। ऐसा यहाँ नहीं मिलता। आहाहा! अरे! परन्तु यह क्या है? भगवान तेरा यहाँ विराजता है, उसकी तो कीमत करता नहीं और बाहर की चीज़ के मोल कर-करके वहाँ रुक गया। तू क्या करता है? प्रभु! आहाहा!

उसे प्राप्त करने का परिश्रम कर रहा है! अरे! मुझे कोई बड़ा माने, मान दे, पदवी दे। आहाहा! एक महीने में पचास हजार की आमदनी। पचास हजार का वेतन मुझे सरकार की ओर से (मिले) तो मेरी गिनती करे या नहीं कोई? अरे! तू यह क्या करता है?

मुमुक्षु : किसी को पचास हजार की रकम....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी बड़ा होगा। जॉर्ज और उसे होती है न? राजा को पैसे बहुत आते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सालाना...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह सालाना। महीने की लाख-लाख की आमदनी होती होवे न? साधारण व्यापारी। वह बड़ा व्यापारी नहीं, सुमनभाई का सेठ। उसमें नौकर है। इसके साथ की साढ़े तीन करोड़ की आमदनी है। सुमनभाई जिसमें नौकर है, वह जामनगर का है। विसाश्रीमाली मन्दिरमार्गी है, उसे साढ़े तीन करोड़ की वार्षिक आमदनी है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात की थी। वह मिला था न! यहाँ आया था। यहाँ आया था। वहाँ भी मिला था, वह देखने गये थे न? शरीर का देखने गये थे। अस्पताल में। वहाँ खड़ा था।

मुमुक्षु : उसके लड़के की बहू पास में आवे...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे तो प्रेम है। लड़के की बहू को तो (प्रेम है)। आहाहा! अरे! धूल में अब साढ़े तीन (करोड़)। बनिये को साढ़े तीन करोड़ की आमदनी है और अभी बढ़ाना चाहता है। पाँच करोड़ (करना चाहता है) ऐसा सुना है। आहाहा! यह सुना है कि अभी बड़ा व्यापार शुरू करके इस साढ़े तीन करोड़ की आमदनी से बढ़ाना चाहता है। आमदनी, हों! पूँजी नहीं। अब उसमें रुककर आत्मा मर गया। महा अनमोल चीज़ अन्दर

है, उसकी कीमत करने अन्दर जाता नहीं। अन्दर जाता नहीं और बाहर की कीमत करने में लग रहा है।

परवस्तु तीन काल में कभी किसी की नहीं हुई है... आहाहा! यह शरीर, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति... आहाहा! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती (था)। सोलह हजार देव सेवा करे, छियानवें हजार स्त्रियाँ। एक रानी की एक हजार देव (सेवा करें)। आहाहा! ऐसा रत्न के पलंग में सोता था, देव खड़े (हों)। आहाहा! कुछ शरण नहीं। मरकर सातवें नरक में गया। अभी तो उसकी स्थिति थोड़ी सी हुई है। अभी तो एक पल्योपम भी नहीं हुआ। आहाहा! इतना तो तैंतीस सागर रहेगा। भाई! इसने कुछ विचार किया है? जिसके क्षण के दुःख करोड़ों जीभ से करोड़ों भव में न कहे जायें, उस तैंतीस सागर के दुःख का, वह चक्रवर्ती बड़ा साहिब, छियानवें हजार स्त्रियों का साहिबा, वह नरक में जा पोढ़ा। आहाहा! इस मिथ्यात्व शल्य के कारण (वहाँ गया)। उसके गर्भ में-मिथ्यात्व में-अनन्त भव ऐसे पड़े हैं। आहाहा! जिसने भगवान आत्मा की कीमत नहीं की, उसने पर की कीमत की, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! साठ वर्ष में लड़का आवे (पैदा हो) तो मेरा नाम तो रहेगा। अरे रे! यह तू क्या करता है?

मुमुक्षु : नाम नहीं, वंश रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इस नाम का अर्थ मेरा वंश। तेरा वंश कहाँ था? प्रभु! क्या कहता है तू यह? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि परवस्तु का सम्बन्ध तू चाहता है। मेहनत करता है परन्तु वह परवस्तु किसी की हुई नहीं है। आहाहा! और तेरी वस्तु तू कर तो वह जाये, ऐसी नहीं है। आहाहा! भगवान अनन्त-अनन्त गुणमणि का भण्डार, उसे यदि 'मेरा' करके माने तो वह जाये नहीं परन्तु पररूप से मेरा करके माने तो वह वस्तु तेरी नहीं होगी। यह तो तेरा है, ऐसा होगा। आहाहा! यह क्या? ऐसी बात। आहाहा!

परवस्तु तीन काल में कभी किसी की... कभी और किसी की। किसी को और किसी काल में। दो (शब्द) हैं। आहाहा! तीन काल में कभी किसी की... कभी किसी काल में किसी की नहीं हुई है... परवस्तु इस आत्मा की नहीं हुई। आहाहा! इस राग को

तेरा करने जायेगा तो यह राग तेरा नहीं होगा। आहाहा! और अनन्त गुण का पिण्ड, प्रभु! उसे तू तेरा करेगा तो तेरा रहेगा। आहाहा! परवस्तु.. शरीर, इज्जत, कीर्ति, लक्ष्मी, कोई भी (परपदार्थ)। आहाहा! स्त्री, पुत्र... आहाहा! गहने, कपड़े पहने ऐसे तो... आहाहा! शरीर को ऐसे शृंगार करे तो ऐसा लगे। आहाहा! भाई! परवस्तु तेरी नहीं होगी। आहाहा! परवस्तु... राग से लेकर सब परवस्तु, हों! आहाहा! यह राग भी परवस्तु है, प्रभु! आहाहा! तीन काल में। आहाहा! कभी किसी की नहीं हुई है,... किसी की हुई नहीं, भाई!

तू व्यर्थ भ्रमणा से... व्यर्थ की भ्रमणा से, मुफ्त की भ्रमणा में रुक गया है। आहाहा! उसे अपनी बनाने का प्रयत्न कर रहा है... परवस्तु को अपना बनाने का प्रयत्न कर रहा है। आहाहा! अपना अहित कर रहा है! अपना स्वरूप नित्य है, वह अपना रहेगा। परन्तु इसकी खबर नहीं तो परवस्तु को नित्य बनाना चाहता है। वह कायम टिके। कायम तो वह चीज टिकती है। उसे तो भूल गया और पर को नित्य बनाऊँ, ध्रुव बनाऊँ, टिकाऊँ बनाऊँ (यह) तेरा परिश्रम व्यर्थ है। आहाहा! पहले भले प्रकार पैसा कमा लें तो फिर वृद्धावस्था में काम आयेंगे। यह क्या करता है? वीरजीभाई एक बार (संवत्) १९९० के वर्ष में कहते थे। दर्शन करने आये थे। कहते हैं कमा लें। वीरजीभाई! तुम क्या बोलते हो? उसने तो बहुत पढ़ा था। १९९० के वर्ष की बात है। बड़वाण में तीन-तीन हजार लोग। दरियापरी में उतरे हुए। सब पूरा संघ मोरबी से आया था। बहुत तीन-तीन हजार लोग। समाते नहीं। बाहर के कमरे में पटिया नीचे पड़ा हुआ। १९९० के वर्ष की बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप सबसे अलग पड़ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई रहा नहीं, परन्तु उनका था कब? आहाहा! तब तो एक दृष्टान्त दिया था कि आत्मा त्रिकाल जाननेवाला है, वह तूने किया नहीं परन्तु जहाँ-जहाँ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में आया, वहाँ-वहाँ जानना कर-करके अनन्त काल बिताया। समझ में आया?

मुमुक्षु : इस भव, दूसरे भव में जानना किया...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे प्रत्येक भव में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को जानकर... जानकर... जानकर... जानकर... जानकर... जानकर... अनन्त भव किये।

परन्तु एक समय में मैं तीन काल का जाननेवाला हूँ, उसे जाना नहीं। आहाहा! उसे जाना नहीं। तब कहा था। तीन हजार लोग, बड़ी सभा। आहाहा! १९९० का वर्ष। कितने वर्ष हुए? ४५। ४५ वर्ष पहले की बात है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। वह पर तो वह तो चींटी का दर। वह कहीं आत्मा की चीज़ नहीं है। आहाहा! ये इतने श्रावक बनाये, इतने माननेवाले बनाये, मुझे माननेवाले बनाये। परन्तु यह क्या है? यह तेरा भ्रम है। अपना अहित कर रहा है। ३७९ वाँ बोल पूरा हुआ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

सम्यग्दृष्टि-हंस

अहा! देखो यह 'आत्मख्याति!' देखो, यह भगवान आत्मा की प्रसिद्धि की रीति! ...यह महाकल्याणकारी सम्यग्दर्शन का उपाय! इस शुद्ध चैतन्यस्वभाव की प्रतीति और अनुभव करे, वह हंस है। जिस प्रकार हंस अपनी चोंच के बल से दूध और पानी को पृथक् कर देता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव अपनी शुद्धनयरूपी चोंच के बल से कर्म और आत्मा को भिन्न-भिन्न जानकर शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है; इसलिये वह 'हंस' है; और उस शुद्ध आत्मा में एकदम लीन होकर चैतन्यस्वरूप के अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले वीतरागी मुनिवर 'परमहंस' हैं। अन्तर्मुख दृष्टि करके जहाँ शुद्ध चिदानन्दस्वभाव का अवलम्बन लिया, वहाँ उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन का उत्पाद हुआ और मिथ्यात्व का व्यय हुआ; तथा निमित्त की और भेद की रुचि छूट गयी, व्यवहार के आश्रय की बुद्धि टल गयी। व्यवहार के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता, भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। सम्यक्त्वी की दृष्टि में से भूतार्थस्वभाव का अवलम्बन एक समय भी नहीं छूटता। यदि एक समय भी दृष्टि में से भूतार्थस्वभाव का अवलम्बन छूटकर व्यवहार की रुचि हो तो वहाँ सम्यग्दर्शन नहीं रहता; इसलिये यह महान सिद्धान्त है कि आत्मा के भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी